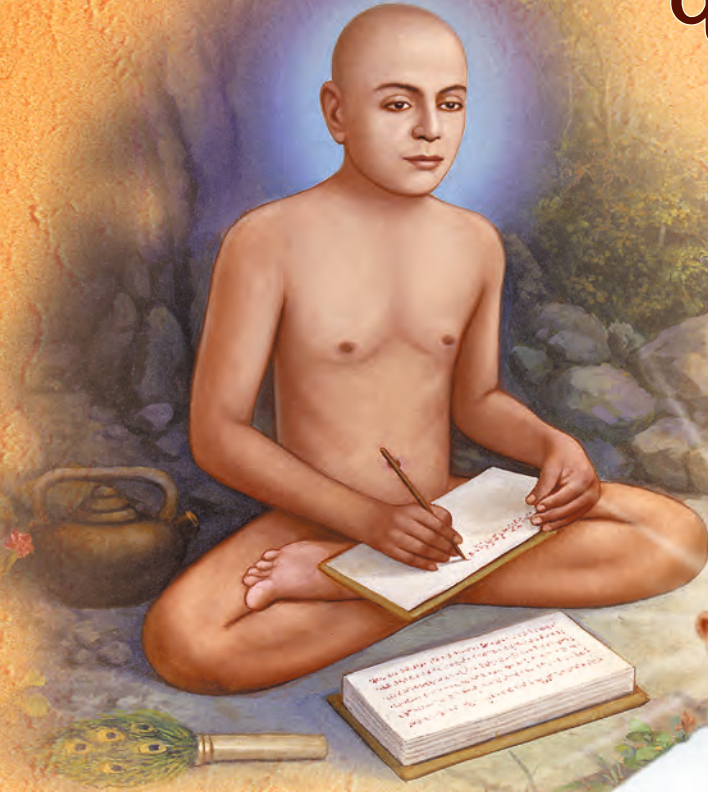


परमात्म प्रकाश प्रवचन भाग-२





श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-2

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (प्रथम अधिकार)
गाथा 49 से 78, प्रवचन क्रमांक 32 से 60

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

(ii)

विक्रम संवत
2078

वीर संवत
2548

ई. सन
2022

—: प्रकाशन :—

दशलक्षण महापर्व माघ शुक्ल चतुर्दशी
(उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म दिन) 15 फरवरी 2022
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी ।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर

प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दशः ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत द्वितीय भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरशः प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित

करने की योजना है। जिसमें से यह द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन हेतु प्रवचनों को सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक में वाक्य रचना पूर्ण की जाती है। जिस गाथा के प्रवचन उपलब्ध न हों अथवा कम हो उन्हें इससे पूर्व हुए प्रवचनों में से लिया जाता है। तत्पश्चात् प्रवचनों को सुनकर व्यवस्थित करके प्रकाशन हेतु प्रेस में दिया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भावन यथावत् बने रहें इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया गया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं। यदि पाठकवर्ग को भी कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आवश्यक संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत अक्षरशः प्रवचन डी.वी.डी. से सुनकर गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का काम श्री निलेशभाई जैन, भावनगर तथा समग्र प्रवचनों को चैक करने का कार्य श्री मणीभाई गाला, देवलाली और स्व. श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ vitragvani.com वेबसाइट एवं [vitragvani app](http://vitragvani.app) पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुर्ब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्णपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिङ्गी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :-

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तों ! तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों !!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों !!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
३१	४९	११-०७-१९७६	००१
३२	५० से ५२	१२-०७-१९७६	०१७
३३	५२	१३-०७-१९७६	०३७
३४	५३ - ५४	१४-०७-१९७६	०५२
३५	५५ - ५६	१५-०७-१९७६	०७२
३६	५६ - ५७	१६-०७-१९७६	०९१
३७	५७ - ५८	१७-०७-१९७६	११०
३८	५८ - ५९	१८-०७-१९७६	१२८
३९	५९ से ६१	२०-०७-१९७६	१४६
४०	६१ से ६३	२१-०७-१९७६	१६३
४१	६३ - ६४	२२-०७-१९७६	१८२
४२	६४-६५*१	२३-०७-१९७६	१९६
४३	६६ - ६७	२४-०७-१९७६	२१३
४४	६७ - ६८	२५-०७-१९७६	२३१
४५	६८	२७-०७-१९७६	२४७
४६	६८	२८-०७-१९७६	२६०
४७	६८	२९-०७-१९७६	२७३
४८	६९	३०-०७-१९७६	२८६
४९	७०	३१-०७-१९७६	३०१
५०	७०	०१-०८-१९७६	३१७
५१	७१	०२-०८-१९७६	३३२
५२	७१ - ७२	०३-०८-१९७६	३४९
५३	७२ - ७३	०४-०८-१९७६	३६६
५४	७३ - ७४	०५-०८-१९७६	३८२
५५	७४	०६-०८-१९७६	३९९
५६	७५ - ७६	०८-०८-१९७६	४१४
५७	७६	०९-०८-१९७६	४३१
५८	७७	१०-०८-१९७६	४४८
५९	७७ - ७८	११-०८-१९७६	४६६
६०	७८	१२-०८-१९७६	४८४



॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - 2)

गाथा - ४९

अथ यः कर्मनिबद्धोऽपि कर्मरूपो न भवति कर्मापि तद्रूपं न संभवति तं परमात्मानं भावयेति कथयति -

४९) कम्म-णिबद्धु वि होइ णवि जो फुडु कम्म कया वि।

कम्म वि जो ण कया वि फुडु सो परमप्पउ भावि॥४९॥

कर्मनिबद्धोऽपि भवति नैव यः स्फुटं कर्म कदापि ।

कर्मापि यो न कदापि स्फुटं तं परमात्मानं भावय॥४९॥

कम्मणिबद्धु वि होइ णवि जो फुडु कम्म कया वि कर्मनिबद्धोऽपि भवति नैव यः स्फुटं निश्चितम्। किं न भवति। कर्म कदाचिदपि। तथाहि-यः कर्ता शुद्धात्मोपलम्भाभावे-नोपार्जितेन ज्ञानावरणादिशुभाशुभकर्मणा व्यवहारेण बद्धोऽपि शुद्धनिश्चयेन कर्मरूपी न भवति। केवलज्ञान-नाद्यनन्तगुणस्वरूपं त्यक्त्वा कर्मरूपेण न परिणमतीत्यर्थः। पुनश्च किंविशिष्टः। कम्म वि जो ण कया वि फुडु कर्मापि यो न कदापि स्फुटं निश्चितम्। तद्यथाज्ञानावरणादिद्रव्यभावरूपं कर्मापि कर्तृभूतं यः परमात्मा न भवति स्वकीयकर्मपुद्गलस्वरूपं विहाय परमात्मरूपेण न परिणमतीत्यर्थः। सो परमप्पउ भावि तमेवंलक्षणं परमात्मानं भावय। देहरागादिपरिणतिरूपं बहिरात्मानं मुक्त्वा शुद्धात्मपरिणतिभावानारूपेऽन्तरात्मनि स्थित्वा सर्वप्रकारोपादेयभूतं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं परमात्मानं भावयेति भावार्थः॥४९॥ एवं त्रिविधात्मप्रतिपादकप्रथम-महाधिकारमध्ये यथा निर्मलो ज्ञानमयो व्यक्तिरूपः शुद्धात्मा सिद्धौ तिष्ठति, तथाभूतः शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण देहेऽपि तिष्ठतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्विंशतिसूत्राणि गतानि॥

इसके बाद जो आत्मा कर्मों से अनादिकाल का बँधा हुआ है, तो भी कर्मरूप नहीं होता, और कर्म भी आत्मस्वरूप नहीं होते आत्मा चैतन्य है, कर्म जड़ हैं, ऐसा जानकर उस परमात्मा का तू ध्यान कर, ऐसा कहते हैं -

जो कर्मों से बाँधा हुआ है किन्तु न उनसे तन्मय है।

कर्म कभी नहीं आत्मामय हों, भावो उस परमात्मा को॥४९॥

अन्वयार्थ :- [यः] जो चिदानन्द आत्मा [कर्मनिबद्धोऽपि] ज्ञानावरणादिकर्मों से बँधा हुआ होने पर भी [कदाचिदपि] कभी भी [कर्म नैव स्फुटं] कर्मरूप निश्चय से नहीं [भवति] होता, [कर्म अपि] और कर्म भी [यः] जिस परमात्मरूप [कदाचिदपि स्फुटं] कभी भी निश्चयकर [न] नहीं होते, [तं] उस पूर्वोक्त लक्षणोंवाले [परमात्मानं] परमात्मा को तू [भावय] चिंतवन कर।

भावार्थ :- जो आत्मा अपने शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न किये ज्ञानावरणादि शुभ-अशुभ कर्मों से व्यवहारनयकर बँधा हुआ है, तो भी शुद्धनिश्चयनय से कर्मरूप नहीं है, अर्थात् केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर कर्मरूप नहीं परिणमता, और ये ज्ञानावरणादि द्रव्य-भावरूप कर्म भी आत्मस्वरूप नहीं परिणमते, अर्थात् अपने जड़रूप पुद्गलपने को छोड़कर चैतन्यरूप नहीं होते, यह निश्चय है, कि जीव तो अजीव नहीं होता, और अजीव है, वह जीव नहीं होता। ऐसी अनादिकाल की मर्यादा है। इसलिये कर्मों से भिन्न ज्ञान-दर्शनमयी सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य) परमात्मा को तुम देह रागादि परिणतिरूप बहिरात्मपने को छोड़कर शुद्धात्मपरिणति की भावनारूप अन्तरात्मा में स्थिर होकर चिन्तवन करो, उसी का अनुभव करो, ऐसा तात्पर्य हुआ॥४९॥

वीर संवत् २५०२, आषाढ शुक्ल १५, रविवार
दिनांक-११-०७-१९७६, गाथा-४९, प्रवचन-३१

परमात्माप्रकाश, ४९ गाथा। ४८ (गाथा) हो गयी है। इसके बाद जो आत्मा कर्मों से अनादिकाल का बँधा हुआ है, तो भी कर्मरूप नहीं हुआ, ... यह बात करनी है। वस्तु भगवान् चैतन्यमूर्ति आत्मा, वह पर्याय में राग के सम्बन्ध से बँधा हुआ दिखता है,

तो भी वह कर्मरूप आत्मस्वरूप हुआ नहीं। कर्मरूप हुआ नहीं, आत्मा कर्मरूप होता नहीं। अर्थात् कि भावकर्म और जड़कर्मरूप भगवान हुआ ही नहीं, होता नहीं। आहाहा! ज्ञायक चैतन्यस्वरूप जो वस्तु, वह शुभाशुभभाव जो भावकर्म, वे अचेतन हैं। यह चेतनस्वरूप उन अचेतनरूप कभी हुआ नहीं। तो जड़कर्मरूप तो कैसे होगा? आहाहा! समझ में आया?

(समयसार) छठवीं गाथा में भी आया है न? कि आत्मा शुभाशुभभावरूप कभी हुआ नहीं। क्योंकि शुभाशुभभावरूप हो तो आत्मा जड़ हो जाये। ज्ञायक है वह जड़ कभी नहीं होता। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वे अचेतन हैं। उनमें चैतन्य की शक्ति का अभाव है। आत्मा वस्तु चैतन्यस्वभाव, उन शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं। जड़कर्मरूप तो कैसे होगा? और शुभाशुभभाव, वे आत्मारूप हुए नहीं। आहाहा! थोड़ी बात परन्तु मुद्दे की है, यह मुद्दे की बात है। यह शुभ-अशुभभाव इनरूप आत्मा (हुआ नहीं), शुभाशुभभाव वे आत्मारूप हुए नहीं। आहाहा!

आत्मा चैतन्य है, कर्म जड़ है,... आत्मा चैतन्यस्वरूप-जाननस्वभाव... आहाहा! और पुण्य-पाप के भाव तथा कर्म वे तो जड़ हैं। आहाहा! इसके भाव में भासन होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसा जानकर उस परमात्मा का तू ध्यान कर,...** आहाहा! जो भगवान ज्ञायकस्वभाव नित्यानन्द प्रभु शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं और अजीव कर्मरूप तो हुआ ही नहीं। आहाहा! जड़कर्म का चैतन्य में और चैतन्य का कर्म में अभाव, दो वस्तुएँ भिन्न हैं न? आहाहा! तो उसके साथ तो ठीक, परन्तु पुण्य-पाप के भाव में आत्मा नहीं और पुण्य तथा पाप का भाव आत्मारूप कभी हुआ नहीं। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है। इसे विश्वास आया नहीं। समझ में आया? मैं एक परमात्मस्वरूप ही हूँ। श्रीमद् में आता है न? दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा कहा है कि मोक्ष होता नहीं। जीव का मोक्ष होता नहीं। मोक्ष समझ में आता है। आहाहा! जो राग और पुण्य से बँधा हुआ हूँ, ऐसी जो मान्यता है, इससे उसे उसमें (ऐसा) होता था कि आत्मा बँधा हुआ है। यह तो मान्यता के कारण से ऐसा हुआ, वस्तु ऐसी नहीं है। आहाहा! वस्तु है, वह तो मोक्षस्वरूप ही है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर मोक्षस्वरूप है, ऐसा यदि अनुभव नहीं करे और मात्र राग की क्रिया को मानकर वहीं का वहीं अटकेगा तो मर जायेगा। शुद्ध निश्चय का विषय दृष्टि में न ले और अकेली राग की क्रिया में अटक जायेगा, मुझमें नहीं, मुझमें नहीं, ऐसा करके राग के आचरण (करेगा) तो भटक मरेगा, ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : कहा है कि एकान्त निश्चय को पकड़कर मैं तो ऐसा हूँ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह, परन्तु इसका अर्थ ही यह कि एक शुद्ध निश्चयदृष्टि हुई नहीं। वह मुक्तस्वरूप है, यह धारणा में आना चाहिए, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। मुक्तस्वरूप है, ऐसी परिणति में भास होना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! यह तो अपने आ गया है, नहीं? शुद्धात्मानुभूति के काल में आत्मा उपादेय है। उपादेय, उपादेय करे तो उपादेय कब? किसे? आत्मा ज्ञायक है, वह उपादेय है और राग है, वह हेय है—परन्तु किसे?—कि जिसने अन्तर स्वरूप में अनुभूति से आत्मा को उपादेयरूप से पकड़ा है, उसे आत्मा उपादेय है। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : दूसरे को आत्मा हेय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की रुचिवाले को और राग की एकता में पड़ा है, उसे आत्मा हेय है। आत्मा हेय है। आहाहा! (क्योंकि) वहाँ उसे आत्मा हेयरूप हुआ है। हेय है अर्थात्? आहाहा! जिसे राग की रुचि के प्रेम में परिणमन हुआ है, उसे आत्मा हेय हो गया है, करना पड़ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! यह बात आ गयी है कि आत्मा हेय है। धर्मी को आत्मा उपादेय है। किस काल में? किस समय?—कि उस ओर की अनुभूति होती है, उस काल में उसे आत्मा उपादेय है। आहाहा! और उस काल में उसे राग हेय है और अज्ञानी को रागपने का जो उपादेय भाव है, उस काल में उसे आत्मा लक्ष्य में नहीं तो हेय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! आत्मा उपादेय है; उपादेय है अर्थात् यह धार रखा है? धार रखे, वह तो ज्ञान की भावना में धारणा हुई। उपादेय कहाँ हुआ उसे? समझ में आया? आहाहा! प्रभु! आनन्दरस प्रभु अकेला मुक्तस्वरूप ही है। मुक्तस्वरूप है, ऐसा किसे माने?

मुमुक्षु : गुरु कहे तब ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है । गुरु इसका आत्मा है । इसकी पर्याय में-परिणति में जब यह आत्मा आवे, उसने यह आत्मा उपादेय जाना है, उसे उपादेय हुआ है । समझ में आया ? ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, बापू ! वीतरागमार्ग ऐसा है । और जिसे यह राग आदरणीयरूप से—उपादेयरूप से परिणमा है, चाहे तो शुभराग हो, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, उस भावरूप आदररूप परिणमा है, उसे आत्मा हेय है । आहाहा ! कहो, रतिभाई ! यह ऐसी बातें हैं । आत्मा को उपादेय अनुभव करनेवाले को राग हेय है, यह बात तो बहुत बार आयी है । परन्तु यह... आहाहा ! अर्थात् कि जिसे राग के शुभभाव का आदर करके उपादेयरूप से परिणमा है... आहाहा ! उसे उस काल में आत्मा हेय है । आहाहा ! हेय करना पड़ता नहीं । वस्तु भगवान पूर्णानन्द की मौजूदगी है, वस्तु स्वभाव की मौजूदगी है, उसका सन्मुख में स्वीकार नहीं होकर राग के सन्मुख में होकर राग का स्वीकार करके... आहाहा ! उसे आत्मा हेयरूप से हो गया है । आहाहा ! समझ में आया ? और जिसे आत्मा त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन अनुभूति में उपादेय हुआ है, उसे राग हेय हो गया है, राग हेय करना नहीं पड़ता । आहाहा ! समझ में आया ? यह मुद्दे की बात है ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा नहीं था ? अपने आ गया, नहीं ? कितने पृष्ठ पर आ गया ?

मुमुक्षु : ३६ पृष्ठ पर ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३६ पृष्ठ ? गाथा । आ गया है यह । ३६ गाथा है । आत्मा सदैव वीतराग-निर्विकल्पसमाधि में लीन साधुओं को तो प्रिय है, ... प्रिय का अर्थ उपादेय है । उसका अर्थ इन्होंने बराबर नहीं किया । किन्तु मूढ़ों को नहीं । ऐसी साधारण भाषा कर डाली । पाठ में ऐसा नहीं है । पाठ में ऐसा है, 'सदैव परमात्मा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो' ऊपर संस्कृत है, भाई ! यह कहा न ! 'सदैव परमात्मा वीतराग-निर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो ।' ३६ की टीका । अन्तिम संस्कृत, संस्कृत । अर्थ में साधारण किया है । अर्थ में इतना किया है कि साधुओं को प्रिय है और मूढ़ों को नहीं ।

परन्तु इसकी अपेक्षा संस्कृत में ऐसा है। और वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो भवत्यन्तयेषां हेय' देखा? तब भी कहा था। आहाहा!

जो कोई अन्तर में राग के शुभभाव को भी प्रियरूप से अनुभव करके उपादेय अनुभव करता है,... आहाहा! उसे भगवान् त्रिकाल सच्चिदानन्द प्रभु का उसे आदर नहीं है, इसलिए उसे हेय वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! दो बात—जिसने राग से भिन्न पड़कर अरागी परिणति में आत्मा को उपादेयरूप से अनुभव किया है, उसे वह उपादेय है। आहाहा! वह आदरणीय है, वह आदरणीय है, ऐसा इसे रटना है? यह उपादेय है, ऐसा नहीं है। वह त्रिकाली आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप स्वयं; परमात्मा की व्याख्या है न? उस परमात्मस्वरूप के सन्मुख होकर अनुभूति में उसे उपादेयरूप से अनुभव किया, उसे उपादेय है। धारणा में ले लिया कि यह उपादेय है और यह हेय है, उसे उपादेय नहीं हुआ। उपादेय कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू!

वीतराग मार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एकावतारी इन्द्र और गणधर (पूजते हैं)। गणधर तो उस भव से मोक्ष जानेवाले हैं। जिन्हें सभा में सुनते हैं। आहाहा! वह वाणी और दिव्यध्वनि कैसी होगी! समझ में आया? यह सब परमागम दिव्यध्वनि की वाणी है। परमागम में अन्दर... आहाहा! इस परमागम में ऐसा कहा है। वीतराग की वाणी की गणधरों ने रचना की, उसे परमागम कहा। उस परमागम में यह है। आहाहा! कि परम आनन्दस्वरूप भगवान् की जिसने सन्मुखता की, उस सन्मुखता के परिणामन में उसे उपादेय हुआ। आहाहा! कान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। और जिसने अनादि से चैतन्यघन वस्तु परमात्मस्वरूप ऐसा आत्मा मौजूद है, उसकी ओर का लक्ष्य छोड़कर राग के भाव को अपनेरूप से उपादेयपने अनुभव करता है, उसे राग उपादेय है, उसे भगवान् आत्मा हेय है। आहाहा! यह ऐसी बातें हैं। कहो, गिरधरभाई! आहाहा!

टीका तो ऐसी है, 'भवत्यन्तयेषां हेय' यह टीका है। ऐसी व्याख्या अन्यत्र नहीं आती। आत्मा उपादेय और राग हेय, (ऐसा आवे)। परन्तु उपादेय भी कब और किसे, वह भी इसमें आया। और वह आत्मा हेय किसे और कब? आहाहा! जो उस राग की पर्यायबुद्धि में पड़ा है, उसे द्रव्यबुद्धि का हेयपना है, मूल तो ऐसा कहते हैं। आहाहा!

समझ में आया ? जो पर्यायबुद्धि में राग में एकाकार होकर पड़ा है, उसे भगवान आत्मा हेयरूप से परिणमा है। आहाहा! समझ में आया ? कहो, नवरंगभाई! लो, आज यह अष्टाहिका का अन्तिम दिन है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। गाथा।

(४९) कम्म-णिबद्धु वि होइ णवि जो फुडु कम्मु कया वि।

कम्मु वि जो ण कया वि फुडु सो परमप्पउ भावि ॥४९ ॥

(गाथा) ४९ का अन्वयार्थ :- 'यः' जो शब्द है न ? जो, है न ? जो। इस जो का किया 'यः'। 'यः' का किया यह। 'यः' जो चिदानन्द आत्मा... आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप है। समझ में आया ? लो, आज तो पूर्णिमा है, कल एकम् है। भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। श्रावण कृष्ण एकम्। ६६ दिन में भगवान के दिव्यध्वनि खिरी थी। कल है। आज यह देव और इन्द्र बावन जिनालय आठवें द्वीप में है। नन्दीश्वर द्वीप, आठवाँ द्वीप है। सर्वत्र यह कथन है। स्थानकवासी में है, श्वेताम्बर में है, दिगम्बर में है। सर्वत्र नन्दीश्वर द्वीप का कथन है। बावन जिनालय है। एक-एक में १०८ रत्न की प्रतिमा है। तिरछी हो ऐसे। देवलोक में अलग है। व्यन्तर में हैं असंख्य प्रतिमायें हैं। उनकी पूजा इन्द्र एकावतारी—एक भव में मोक्ष जानेवाले, स्वयं को निश्चित है। उसकी इन्द्राणी है, उसे एक भव में मोक्ष जाना निश्चित है। शकेन्द्र।

मुमुक्षु : निश्चित है तो... पूजता है, क्यों पूजता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुभभाव आता है, इसलिए वहाँ पूजने जाता है। तो भी अन्दर में वह उसे हेय मानता है। समझ में आया ? ऐसी बात है। पढ़ा है या नहीं यह ? स्थानकवासी के बड़े-बड़े आचार्यों ने मूर्ति को स्वीकार किया है। अब और बाहर आया, कौन जाने। जयन्तीभाई! यह लेख है। कहाँ गये ? स्थानकवासी का अखबार (पत्रिका) है। उसमें बड़े-बड़े आचार्यों ने जवाहरलाल, यह अमरमुनि है न ? अमरचन्दजी। तुलसी तेरापंथी। दूसरा एक तेरापंथी का बड़ा शतावधानी है। सब इस भगवान की मूर्ति के सामने देखकर हर्ष-हर्ष आ गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : विभोर हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : विभोर हो गये। बात अब बाहर आयी, गुप्त थी। इसमें है।

मुमुक्षु : साहेब! अभी व्याख्यान में न कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्यान में न कह सके, सम्प्रदाय है न! आहाहा! ... मुनि है। ऐसे भगवान के पास बैठे थे। और यह दिगम्बर मुनि की शान्त मुद्रा देखकर विभोर हो गये। उल्लसित वीर्य हो गया। अन्दर में प्रसन्न-प्रसन्न हो गये। ऐसा पाठ है। यह आया है। कोई महेन्द्र है। उसे अध्यात्मयोगी शतावधानी कहते हैं। वह तो बात करता हो तेरापंथी की। वहाँ कहाँ... वह भी मथुरा चौरसी है न? मथुरा चौरासी। वहाँ गये और एक अजीतनाथ भगवान की प्रतिमा है। देखकर अन्दर ऐसा प्रसन्न हो गया है। यह प्रसन्नता मुझे कभी विस्मृत नहीं होगी। ऐ... दास! यह स्थानकवासी का है और यह मूर्ति रखी है। देखो यह।

मुमुक्षु : सब सम्प्रदाय एक हो जायेंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक कहाँ से हो, भाई! आहाहा! वह तो यह गुप्त बात बाहर आयी। मुझे तो वहाँ (संवत्) १९९० के वर्ष में बात हुई थी। १९९० में जब सम्प्रदाय में थे न! सुधर्मा जाना था न? चातुर्मास (करने)। तब रतनचन्द्रजी शतावधानी लींबडी सम्प्रदाय के। उनके गुरु थे गुलाबचन्द्रजी, ५५ वर्ष की दीक्षा। उस समय तो लगभग ७५ वर्ष की उम्र होगी। बाद में तो बीस वर्ष रहे थे। चोटीला में उपाश्रय में इकट्ठे हुए थे। (संवत्) १९९० के वर्ष। बात एकान्त में की। कोई व्यक्ति नहीं था। मैंने कहा, शास्त्र में प्रतिमा (कही) है। मूर्ति की पूजा है। मुझे भी खबर है, कहे। हमको तो पूरी जिन्दगी शंका में गयी है। क्या? शास्त्र में प्रतिमा है, पूजा है। शिष्य पढ़ेंगे तो हमारी श्रद्धा उड़ जायेगी। ऐसा कहते थे। लो! हमारी पूरी जिन्दगी ऐसी की ऐसी गयी। बात पहले की थी। अब इन लोगों की बाहर आयी। जवाहर, तुलसी, महेन्द्र और अमरमुनि।

मुमुक्षु : जवाहरलाल गुजर गया या विद्यमान है?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजर गया, जवाहरलाल गुजर गया। उसके शिष्य हैं, नानालाल। नहीं? अपनी पुस्तकें जुगराजजी ने भेजीं। जुगराजजी, नहीं? स्थानकवासी करोड़पति। उन्होंने अपनी पुस्तकें भेजीं। उसने पढ़ी। परन्तु पढ़कर ऐसा कहा कि हम तो व्यवहार में पड़े हैं। परन्तु तुम्हारे व्यवहार भी कहाँ था? गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : जो बात शास्त्र में, वह बात अन्दर में, वह बात बाहर प्रसिद्ध करनेवाले आप अकेले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय में छोड़कर इसमें चले, वह तो यह एक ही है। पूर्व का पुण्य साथ में था न! यह बात है।

मुमुक्षु : डर लगता है ?....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है। आहाहा! कहा न? (संवत्) १९७३ के वर्ष में। १९७३ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ५९? ५९ हुए न? १९७३ में बात हुई। मैंने कहा, शास्त्र में शाश्वत् प्रतिमा को 'जिन' के ऊँचे प्रमाण में उपमा दी है। वह मैं पढ़ता था। १९७३। 'जीवाभिगम' एक श्वेताम्बर सूत्र है। ३२ सूत्र को ४५ में से। ... उसमें लोग यक्ष की कहते हैं। और यहाँ दामोदर ने यक्ष की स्थापित की थी। भावनगर, नहीं? पैसे का विरोध था न? बोटाद के अपने सब गृहस्थों ने पैसे दिये हुए और अब यहाँ आये, इसलिए उसका हक नहीं। पैसे दिये हों न पहले? फिर दिगम्बर में आ गये, इसलिए उनका हक नहीं। और वह मूर्ति यक्ष की है, ऐसा स्थापित किया। दामोदर सेठ ने।

(संवत्) १९७३ में मैंने एकान्त में पूछा, कहा, मुझे तो यह तीर्थकर की प्रतिमायें लगती हैं। क्यों? कि 'जिणोसे पमाणे' शब्द है। जीवाभिगम में 'जिन' के ऊँचाई प्रमाण में प्रतिमा है। यक्ष की हो तो जिन की ऊँचाई प्रमाण की उपमा नहीं दी जाती। ऐ... नवरंगभाई! तब कहे, है तो तीर्थकर की। ओय..! बाहर में यक्ष की कहे। यक्ष की कहे, उसे अनुमोदन करे और अन्दर में यह। अरररर! गजब बात, कहा। सब श्रद्धा उड़ गयी एकदम। सबकी। तीर्थकर की प्रतिमा शाश्वत् है, ऐसा उन्होंने कहा। दामनगर में बाहर वाडा में अकेले सो रहे थे। कोई व्यक्ति नहीं था। मैंने पूछा, कहा, यह क्या है? है तो तीर्थकर की। उसे उस समय नहीं कहा जाता। चार वर्ष की (मेरी) दीक्षा और उनकी... मार्ग उत्थापित कर डाला। आहाहा! सत्य का विरोध किया। इसलिए अब तो सत्य को स्वयं शोधना पड़ेगा, कहा। खोटा है यह, खोटी बात है। तीर्थकर की शाश्वत् प्रतिमायें हैं, तुम मानते हो, शास्त्र में है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी के शास्त्रों में है और दिगम्बर शास्त्रों में है। और जब तुम उसे ऐसा कहो कि यह तो देव का व्यवहार है, देव का व्यवहार है। परन्तु देव समकित्ती हैं, उसे पूजते हैं तो व्यवहार कैसा? किस जाति का? उसका शुभभाव है। इन्द्र एकावतारी शकेन्द्र आदि। ऐसा नहीं चलता, कहा,

यहाँ पक्ष नहीं चलता। सत्य हो वह रहेगा। एक भवतारी इन्द्र, इन्द्राणियाँ भगवान के निकट णमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं...

मुमुक्षु : देव का व्यवहार कहकर निषेध कर डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव का व्यवहार, ऐसा करके। कुछ कारण होगा या लौकिक व्यवहार? भगवान की मूर्ति पूजे, वह लौकिक व्यवहार है? नहीं, ऐसा नहीं चलता। और द्रौपदी का अधिकार। द्रौपदी विवाह के समय भगवान की पूजा करने जाती है। तब वे लोग यह कहते हैं कि वह तो विवाह के प्रसंग का था, वह कहीं धर्म नहीं। कहा, परन्तु वहाँ भगवान की मूर्ति सामने बोली थी। णमोत्थुणं, अरिहंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, ऐसा बोली थी? प्रभु! आप तीर्थ के नायक हो। आप अरिहन्त हो। ऐसा बोली थी, वह विवाह के लिये था? और वह मूर्ति और मन्दिर पहले से कोई बनाते होंगे, तब थे या नहीं? और वह तो द्रौपदी के समय की बात है, पाण्डवों के समय में। ८५००० वर्ष पहले प्रतिमा और मन्दिर शास्त्र में सिद्ध है। ऐसा नहीं चलता, कहा। यहाँ यहाँ आ गये, इसलिए तुम उलझाओगे नहीं। मुँहपत्ती में आ गये, इसलिए यहाँ पड़े रहेंगे, ऐसा नहीं है। हम तो क्षण में सब छोड़ देंगे। उन लोगों को डर लगता था, इसलिए बहुत नहीं कहे। मन्दिर वहाँ है, द्रौपदी वन्दना करने गयी। पाण्डवों के समय में ८५००० वर्ष पहले मन्दिर और मूर्ति वहाँ शास्त्र से सिद्ध है। और अरिहन्तरूप से पूजा है। भले वह भाव शुभ है, धर्म नहीं। परन्तु वह वस्तु है, उसे तुम उत्थापित कर डालो, (उसमें) मार्ग का बड़ा विरोध होता है। समझ में आया? जयन्तीभाई! यह बात अब यहाँ आयी, देखो इसमें!

जवाहरलाल ने स्वीकार किया है। विद्वान तो मूर्ति को स्वीकार करते ही हैं। पूर्वधर पूजते थे, ऐसा उसमें आता है? इसमें आता है। पूर्वधर। ग्यारह अंग के ऊपर जिन्हें पूर्व था। समझ में आया? है इसमें? पूर्वधर कहीं शब्द किया होगा। प्राचीन प्रकाण्ड विद्वान शास्त्रज्ञ एवं यहाँ तक कि पूर्वधर पर्यन्त करते आये हैं। पूर्वधर भी भगवान की मूर्ति की पूजा करते आये हैं। बात सच्ची है परन्तु अब यह बाहर आयी थोड़ी। पूर्वधर के समय से भगवान की पूजा चली आती है। स्वयं करते थे। है तो उसमें शुभभाव, परन्तु है और निषेध (करते हैं, उसमें) पूरा मार्ग फेरफार हो जाता है। यह कहीं पूजा

में धर्म होता है या संवर, निर्जरा होती है—ऐसा नहीं है। इससे नहीं, परन्तु यह वस्तु नहीं है, ऐसी वस्तु स्थापित करना, वह बड़ा शासन का अपलाप होता है, सत्य की निन्दा होती है।

यहाँ तो कहते हैं, यहाँ देखो! अब यहाँ तो पूरी दूसरी बात लेनी है। आहाहा! जो चिदानन्द आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मों से बँधा हुआ होने पर भी कभी भी कर्मरूप निश्चय से नहीं होता,... आहाहा! वह कर्मरूप तो नहीं हुआ, परन्तु वह शुभभावरूप हुआ नहीं। समझ में आया? यहाँ द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनों लेना। अकेले द्रव्यकर्म नहीं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, बापू! जिनवरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी, यह वह क्या चीज़ है! समझ में आया? यह मार्ग दिगम्बर में सुरक्षित रहा है। श्वेताम्बर ने तो कल्पित शास्त्र बनाये हैं। ३२ और ४५ (सूत्र) तो कल्पित बनाये हैं। भगवान के कहे हुए नहीं, ज्ञानी के कहे हुए नहीं। आहाहा! यहाँ ऐसी स्पष्ट बात है। देखो!

कभी भी कर्मरूप निश्चय से नहीं होता और कर्म भी... कर्म अर्थात् पुण्य-पाप के भाव तथा जड़कर्म, दोनों। परमात्मरूप कभी भी निश्चयकर नहीं होते,... आहाहा! अन्वयार्थ है न? उस पूर्वोक्त लक्षणोंवाले परमात्मा को तू चिन्तवन कर। आहाहा! ऐसा जो परमात्म ज्ञान-दर्शनस्वभाव से भरपूर प्रभु, उसके सन्मुख होकर उसका ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! चिन्तवन 'भावय' है न? 'भावय'—भाव। इसका अर्थ किया है। चिन्तवन अर्थात् विकल्प, ऐसा नहीं। स्वरूप चिदघन आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह आत्मा, हों! अन्यमति कहते हैं, उसे खबर नहीं। ऐसे आत्मा को तू ध्यान में ले। आहाहा! इस ओर की दृष्टि बदल डाल। पर्यायबुद्धि-रागबुद्धि बदल डाल। बदल डाल नहीं कहा। इसके ऊपर का ध्यान कर, ऐसा कहा है। अस्ति से कहा है। समझ में आया? आहाहा! परमानन्द का नाथ भगवान स्वयं अन्दर है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है वह। आहाहा!

शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं देते? शक्करिया। उसकी छाल के अतिरिक्त वह शकरकन्द, शक्कर की मिठास का वह कन्द है, इसलिए शक्करकन्द कहलाता है। वह शक्करकन्द। उस छाल का भाग न देखें तो वह शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड ही है। इसी प्रकार भगवान आत्मा को पुण्य-पाप के विकल्प की छाल न देखो...

आहाहा! तो अन्दर में वह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द ही आत्मा है। किसे? उसे देखनेवाले को। आहाहा!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनवरदेव, उसे आत्मा कहते हैं। यह परमात्मा कहा न? यह परमात्मा अर्थात् यह आत्मा स्वयं पूर्ण स्वरूप। जो पुण्य के, दया, दान, व्रत के भावरूप हुआ नहीं तथा वे पुण्यपरिणाम आत्मारूप हुए नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। उसमें वह व्यवहार आवे, उसे उड़ा दे। व्यवहार होता है। हेय होने पर भी भगवान की पूजा (आदि) श्रावक को छह बोल नहीं? छह आवश्यक शुभभाव के हैं, वे सब। शुभभाव के वे भाव हैं। श्रावक को होते हैं। होते हैं, वह अलग बात है और उपादेय-आदरणीय, वह अलग बात है। समझ में आया?

‘भावय’ भाववान को भा। आहाहा! परम स्वभावभाव भगवान मोक्षस्वरूप आनन्द का कन्द पूर्ण आनन्द का कन्द, उसकी भावना कर। आहाहा! स्वरूप पूर्ण है, उसका विश्वास लाकर उस ओर ढल जा, ऐसा कहते हैं। करने का यह है। समझ में आया? अब ऐसी बातें! झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा... अरे! झगड़ा मिटने की बात है, उसमें झगड़ा। उसमें यह लिखा है, वह बराबर लिखा है कि यह आडम्बर बहुत बढ़ गया है, वह नहीं होना चाहिए। दीपक करना और छोटे जीव मरें, पानी के ढेर, एक-एक बूँद में असंख्यात जीव, फूल के ढेर। बारह महीने में करोड़ों रुपये के फूल करते होंगे, ऐसा उसमें लिखा है। आहाहा! एक-एक फूल में कितने जीवांत होती है! अच्छे समय में फूल की पूजा थी न! परन्तु वह अमुक। अभी तो आचार्यों ने कहा कि अभी बहुत जीवांत है, इसलिए यह नहीं (प्रयोग करना)। ऐसा ही है। विवेक चाहिए, भाई! यह तो अहिंसा धर्म का मार्ग है। इसमें एकदम फूल और पानी की हिंसा करके, दीपक जगमगाहट (करे), छोटे जीव मरें और उसमें शुभभाव का ठिकाना न हो। धर्म तो वहाँ नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जो आत्मा अपने शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति के अभाव से... कर्म कैसे बँधे, उसकी बात करते हैं। आत्मा अपने शुद्धात्मस्वरूप... भगवान शुद्ध चैतन्यघन, वह शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा की प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न किये ज्ञानावरणादि शुभ-अशुभ कर्मों से... देखा! मूल तो शुभाशुभभाव किये और उससे कर्म हुआ, दोनों इकट्ठे

डाल दिये। शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति का जो अभाव तो अशुद्धभाव की प्राप्ति का सद्भाव, ऐसा दूसरी भाषा से कहें तो। अशुद्ध अर्थात् पुण्य और पाप, उसकी प्राप्ति से उत्पन्न हुए कर्म। आहाहा! ज्ञानावरणादि शुभ-अशुभ कर्मों से व्यवहारनयकर बँधा हुआ है,...

विकार है, वह स्वतन्त्र है और एक बार कहा था, योगसार की बात में। आत्मा है, वह द्रव्य है, वह तो विकार में निमित्त है। निमित्त अर्थात्? बस, है इतना। विकार का उपादान स्वतन्त्र पर्याय का है। वस्तु है, वह तो विकार में निमित्तमात्र है। निमित्त अर्थात् उसका अर्थ कि कुछ नहीं। योगसार में है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा, उसकी प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न हुए शुभाशुभभाव अपवित्र (भाव)। स्वयं जब शुद्धात्म स्वरूप पवित्र है। आहाहा! यह तो अपने दोपहर में आ गया, नहीं? अशुचि। पुण्य-पाप भाव अशुचि है, अपवित्र है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु पवित्र है। आहाहा! पवित्र को अप्राप्त कर और अपवित्रता के परिणाम को प्राप्त करके, आहाहा! जो शुभाशुभ कर्म हुआ। शुभाशुभ वापस ऐसा नहीं लेना वहाँ कि ज्ञानावरणादि शुभ और अशुभ दो हैं। वह तो साता आदि है, उसे शुभ है, ऐसा कहा है। ज्ञानावरणादि तो अकेला अशुभ ही है। परन्तु समुच्चय शब्द है। ऐसी भाषा ज्ञानावरणादि शुभ-अशुभकर्म। अर्थात् वहाँ और ऐसा लगा दे कि ज्ञानावरणीय में कोई शुभ और कोई अशुभ। ऐसा नहीं है। वेदनीय में शुभ-अशुभ है। गोत्र में शुभ-अशुभ है, आयुष्य में शुभ-अशुभ है, नाम में शुभ-अशुभ है। आहाहा! समझ में आया?

अब वह 'कान्ति ईश्वर' यह लगाता है। ऐसा कि शुभभाव में... ऐसा कुछ लगाता है। तुमको बताया था न? जिससे मोह बँधे, उसे शुभ कैसे कहना? ऐसा वह कहता है। उस शुभ में जितना शुद्ध निर्मल का अंश है, ऐसा वह कहता है। कान्तिलाल ईश्वर है न? उसकी सब बातें खोटी हैं। वह यह कहते हैं। ऐसा कि शुभभाव से पुण्य बँधता नहीं, ऐसा कहता है। शुभभाव से तो आत्मा को लाभ होता है। क्योंकि पुण्य बँधता है, उस समय तो मोह भी बँधता है। पुण्य से मोह बँधता है? शुभभाव में अन्दर थोड़ी पवित्रता भिन्न लेनी है। समझ में आया? ऐसा नहीं है। वह सब कर्म बँधते हैं। शुभभाव से पुण्य बँधे और अशुभ से पाप बँधे। आहाहा! शुभभाव से चारित्रमोह की (प्रकृति) बँधे। मिथ्यादृष्टि हो, उसे उसमें दर्शनमोह भी बँधता है। समझ में आया?

शुभभाव से सातावेदनीय ही बँधती है या उच्च नाम, गोत्र (बँधता है), ऐसा कुछ नहीं है। शुभभाव है, दर्शनमोह मिथ्यात्वी को वह बँधता है। समकिती को शुभभाव है, वहाँ चारित्रमोह बँधता है। चारित्रमोह बँधता है, इसलिए वह अशुभ है, ऐसा नहीं। परमार्थ से अशुभ, वह दूसरी वस्तु। यह तो शुभभाव को अन्यत्र खतौनी करना चाहता है— निर्जरा के काम में। आहाहा!

यहाँ देखो! यह आया, व्यवहारनयकर बँधा हुआ है, तो भी शुद्धनिश्चयनय से कर्मरूप नहीं है,... भगवान निश्चय अर्थात् सत्यार्थ दृष्टि से देखें तो वह पुण्य के परिणाम और कर्मरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! शुद्धनिश्चयनय से देखें तो कर्मरूप नहीं। केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप... आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञान... केवलज्ञान (स्वरूप है)। केवलज्ञान पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन। अनन्तगुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर कर्मरूप नहीं परिणमता... आहाहा! कर्मरूप से कभी हुआ नहीं। आहाहा! दोनों लेते हैं, देखो!

और ये ज्ञानावरणादि द्रव्य-भावरूप कर्म भी... देखा! दोनों आये। ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म और भावकर्म। दोनों। है? संस्कृत में है, देखो! 'ज्ञानावरणादिद्रव्यभावरूपं कर्मापि' दूसरी लाईन। इसमें ऊपर से दूसरी में है। द्रव्य-भावरूप कर्म। इसमें इस ओर की दूसरी लाईन है। ऐसे पहले से छठी लाईन है। पहले से छठवीं लाईन है। 'ज्ञानावरणादिद्रव्यभावरूपं कर्मापि' आहाहा! अर्थात् कि जो छह प्रकार से ज्ञानावरणीय बँधते हैं, वे छह प्रकाररूप से भी आत्मा परिणमा नहीं। आहाहा! वस्तु जो चिदानन्द भगवान है... ऐसा कहते हैं। जो छह कारण से ज्ञानावरणीय बँधते हैं न? छह कारण से दशरूनावरणीय। निहव, (आदि) परन्तु उस भावरूप द्रव्य परिणमा नहीं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य तो त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, जिसमें विपरीतता तो नहीं परन्तु अल्पता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग, बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! जिससे जन्म-मरण के अन्त आवे और जिससे अनन्त समाधि आनन्द प्राप्त हो, वह सादि-अनन्त प्रगटी, सो प्रगटी, अनन्त काल रहे। उसका उपाय तो अलौकिक होगा या नहीं? आहाहा!

केवलज्ञानादि... केवलज्ञान अर्थात् केवल पर्याय नहीं लेना। केवलज्ञान अर्थात्

अकेला ज्ञान। अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्वच्छता, अकेली प्रभुता। ऐसे अनन्तगुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर... आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त संख्या से गुण हैं और एक-एक गुण की वापस अनन्त शक्ति है। समझ में आया? अनन्तगुणरूप अपने स्वरूप को छोड़कर कर्मरूप नहीं परिणमता... अर्थात् रागरूप और जड़रूप वह अनन्त गुण का नाथ भगवान, उनरूप कभी परिणमता नहीं।

और ये ज्ञानावरणादि द्रव्य-भावरूप कर्म भी आत्मस्वरूप नहीं परिणमते,... यह छह प्रकार के ज्ञानावरणीय बँधे, वह ज्ञानावरणीय और छह प्रकार—निह्व आदि, उन भावरूप आत्मा। भावरूप कर्म भी आत्मस्वरूप नहीं परिणमते,... वे भाव आत्मस्वरूप नहीं होते। आहाहा! छह प्रकार के विभावभाव से कर्म बँधे, वह विभावभाव आत्मस्वरूप नहीं होते। समझ में आया? वह विभावभाव आत्मस्वरूपरूप नहीं होते। आहाहा! और अनन्त गुण का आत्मस्वरूप, वह विभावभावरूप नहीं हुआ। आहाहा! जिस कारण से ज्ञानावरणीय छह प्रकार से बँधे, दर्शनावरणीय छह प्रकार से बँधे, वेदनीय आदि बोल आते हैं न सब? मोहनीय, अन्तराय, उन भावरूप आत्मा हुआ नहीं और वे भाव आत्मस्वरूपरूप हुए नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पर्याय में हुआ है, वह वस्तु में कहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु तो ऐसी की ऐसी निर्मलानन्द प्रभु, वह मलिन परिणामरूप वस्तु हुई नहीं और मलिन परिणाम आत्मस्वरूपरूप हुए नहीं। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान वस्तु का स्वरूप है।

अर्थात् अपने जड़रूप पुद्गलपने को छोड़कर चैतन्यरूप नहीं होते,... आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभभाव, वह अपना जड़पना छोड़कर चैतन्यरूप नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? वास्तव में तो जितने प्रकार से आठ कर्म जिस भाव से बँधते हैं, वे सब भाव जड़ हैं। कर्म की १४८ प्रकृति है न? जड़, अजीव साक्षात् अजीव। उसके जो बन्ध के कारण—भाव वे भी जड़ और अचेतन हैं। आहाहा! आत्मस्वरूप नहीं परिणमते, अर्थात् अपने जड़रूप पुद्गलपने को छोड़कर.... यह तो अपने दोपहर में आ गया है, नहीं? पुण्य-पाप के भाव जड़ हैं। क्योंकि दूसरे के द्वारा ज्ञात होते हैं, इसलिए जड़ हैं। अर्थात् भावकर्म जड़ है। आहाहा! अर्थात् भावकर्म जो आस्रव है, उसरूप जीव हुआ नहीं, और भावकर्म जीवरूप हुए नहीं। आहाहा! ऐसा समझना, इसे

मेहनत का पार नहीं होता। वह तो सीधासट्ट था। व्रत पालना, अपवास करना, दया पालना। ऐई! रात्रिभोजन नहीं करना, कन्दमूल नहीं खाना।

मुमुक्षु : वह धर्म नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प की बातें हैं, राग की बातें हैं यह तो। जो राग आत्मरूप हुआ नहीं, आत्मा रागरूप हुआ नहीं। आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश है न! जो पर्याय में परमात्मपना पर्याय प्रगट होती है, वह परमात्मस्वरूप में न हो तो बाहर से आयेगी? आहाहा! वह स्वयं ही परमात्मस्वरूप भगवान है। तीनों काल। आहाहा! उसके आश्रय से पर्याय में परमात्मपना आता है। जिसमें भरा हुआ है, उसमें प्राप्त की प्राप्ति है। परमात्मा केवली होते हैं, वह प्राप्त की प्राप्ति—अन्दर है उसमें से आती है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसका विश्वास आना (चाहिए) सम्यग्दर्शन। ऐसी पूर्णानन्द की शक्ति का पिण्ड प्रभु। आहाहा!

यह निश्चय है कि जीव तो अजीव नहीं होता, और अजीव है, वह जीव नहीं होता। ऐसी अनादि काल की मर्यादा है। आहाहा! अनादि काल की मर्यादा है कि शुभभाव चैतन्यरूप नहीं होता, चैतन्य शुभभावपने नहीं होता। आहाहा! इसलिए कर्मों से भिन्न ज्ञान-दर्शनमयी सब तरह उपादेयरूप (आराधनेयोग्य) परमात्मा को देह रागादि परिणतिरूप... देखा! देह रागादि परिणतिरूप बहिरात्मपने को छोड़कर शुद्धात्मपरिणति की भावनारूप अन्तरात्मा में स्थिर होकर चिन्तवन करो,... आहाहा! अनुभूति में उसे याद करो, ऐसा कहते हैं। ऐसा जो परमात्मा है, उसे अनुभूति में उपादेयरूप से जानो। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण १, सोमवार
दिनांक-१२-०७-१९७६, गाथा-५० से ५२, प्रवचन-३२

(आज) भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। श्रावण कृष्ण १ (आज) श्रावण कृष्ण १ है। भगवान को केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल १० को हुआ था (परन्तु) वाणी नहीं निकली। छियासठ दिन (बाद वाणी खिरी)। आज (६६ दिन) पूरे होते हैं। इन्द्रों को विचार हुआ कि यह कैसे हुआ? छियासठ दिन तक वाणी निकलती नहीं और तीर्थंकर की वाणी तो केवलज्ञान हो, तब निकलनी चाहिए। इसके पश्चात् गौतम जो कुश्रुत के वेदान्त के पारगामी थे, उनके पास गया और (उन्हें) लाया और यहाँ वाणी-दिव्यध्वनि खिरी! विपुलाचलपर्वत पर श्रावण कृष्ण एकम, सूर्य के उदयकाल में योग की पहली घड़ी, पाँच वर्ष का जो योग था, उसका भी पहला काल था। उस समय भगवान ने भावश्रुत की प्ररूपणा की। यह क्या कहा, समझ में आया? केवलज्ञान की नहीं, वाणी निकली, वह भावश्रुत(पने निकली)। समझनेवाले को, गणधर को भावश्रुत हुआ न? गणधरदेव भावश्रुतरूप से परिणमित हुए, तब भगवान की वाणी भावश्रुतपने निकली। आहा! उसमें भावश्रुत में केवलज्ञान आदि सब आवे, परन्तु प्ररूपणा की भावश्रुत की। समझ में आया?

वह वाणी गौतम ने सुनी। वे तो गणधरपद को प्राप्त हुए। वह भी यह दिन है। उन्होंने अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग और चौदहपूर्व की रचना की, वह भी यह दिन है। यहाँ तो भावश्रुत में अर्थ करते तीर्थंकर और भावश्रुत की द्रव्य की रचना करनेवाले भावश्रुतपने परिणमित गणधर। द्रव्यश्रुत की रचना (हुई)। भगवान की वाणी में अर्थ आया, गणधर ने सूत्र की रचना की। समझ में आया? इन गणधर ने बारह अंग और चौदह पूर्व (की रचना की उसका) यह दिवस है। आहाहा! गणधरपद को प्राप्त हुए, चौदह पूर्व की रचना हुई, भगवान की वाणी निकली, वह सब दिवस आज है। योग का दिवस है। सूर्योदय के काल में यह वाणी निकली-ऐसा भी दिवस है। आहाहा!

उस वाणी में ऐसा आया - नवपदार्थ सहित छह द्रव्यों का और वीतरागी भाव का ज्ञान आया। उन्होंने उनकी वाणी में वीतरागभाव का वर्णन किया। भावश्रुत में भी

वह आया। जिससे आत्मा वीतरागी सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान प्राप्त करे, वीतरागी चारित्र प्राप्त करे और उसकी पूर्ण की प्राप्ति करे, वह उपदेश वीतराग की वाणी में आया? समझ में आया?

पहले में आ गया है। भगवान के पास राजा आदि गये, वह पहले आगम के प्रश्न किये, परन्तु पश्चात् शुद्धात्मा का प्रश्न पश्चात् किया। आता है? आहाहा! समझ में आया? अपने पहले आ गया है। पाण्डवों ने नेमीनाथ भगवान से प्रश्न किये। रामचन्द्रजी ने कुलभूषण-देशभूषण केवली से किये। महावीर भगवान से गौतम ने प्रश्न किये। गौतम को जीव-अजीव का संदेह था। लो, ठीक! उसके वेद में पारंगत और जीव-अजीव की बात में संदेह! अरे! भगवान के दर्शन किये, वहाँ मिथ्यात्वादि सब उड़ गये; पश्चात् वाणी निकली है। पात्र थे न! आहाहा! ऐसे मानस्तंभ देखते हैं। पात्र है न! अन्दर मान गल जाता है और अन्दर से एकदम साधुपदपना आता है। आहाहा! वाणी खिरती है तो भावश्रुतज्ञान की बात, भावश्रुत से परिणमित हुए सुनते हैं। आहाहा!

उस वाणी को कहा है न? 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी।' वीतराग की वाणी। 'नमो देवी वागेश्वरी जिनवाणी।' नहीं आता? 'नमो देवी वागेश्वरी...' वागेश्वरी अर्थात् वाक् (अर्थात्) वचन में ईश्वरी। वाघेश्वरी (का अर्थ) ऐसा नहीं (कि) बाघ के सिर (पर) सरस्वती (-ऐसा नहीं)। वागेश्वरी (अर्थात्) वाक् में ईश्वर-ऐसी जो वीतराग की वाणी भावश्रुतज्ञान से आयी। आहाहा! पात्र जीव प्राप्त कर गये। लो! उन्होंने शास्त्रों की रचना की, उसमें से ये समयसार (आदि) सब चले आते हैं। वह भगवान की वाणी है, उसमें से ये चले आते हैं। समझ में आया? 'धवल' के पहले भाग में बहुत लेख है; तिथि, वार और बहुत लम्बा (लेख है)।

शास्त्र का विच्छेद होगा-ऐसा विचारकर धरसेनाचार्य को... गिरनार में गुफा है न? (वहाँ) संदेह हुआ (कि) अरे! शास्त्र-विच्छेद होगा। कहो, भावमुनि / भावलिंगी-आत्मध्यानी! उन्हें ऐसा लगा कि अरे! शास्त्र, यह परम्परा से नहीं रहे तो? (ऐसा) भय हुआ। लो! मुनि कहीं होंगे... नगरी में इकट्ठे हुए होंगे, महोत्सव में। उसमें लेख लिखा है। वहाँ मुनि ने पढ़ा। पहले दो मुनि भेजे। पुष्पदन्त, भूतबली। (ये) नाम बाद में पड़े हैं। दोनों को भेजा। आहाहा! यहाँ धरसेनाचार्यदेव को स्वप्न आता है। मुनि को रात्रि

के पिछले भाग में निद्रा होती है न? 'पिछली रयनि।' उसमें स्वप्न आता है कि दो बैल हैं, सफेद बैल, विनयवन्त, शीलवन्त, आकर नमस्कार करते हैं। स्वप्न में आया, तब ऐसा (हुआ कि) ठीक! यह स्वप्न पूरा हुआ। जयवन्त श्रुतदेवता! आहा! जयवन्तो श्रुतदेवता!! जो धारणा है, इससे विनयवन्त आते हैं। आहाहा!

वैसे तो दो बैल (स्वप्न में आये थे)। विनयवन्त सन्त आते हैं, उसका यह स्वप्न आया। मुनि आते हैं, वन्दन करते हैं। तीन दिन तक ऐसा का ऐसा चलता है। वीतरागी मुनि हैं न! तीन दिन तक धरसेनाचार्य कुछ नहीं देते। तीसरे दिन कहते हैं—प्रभु! हम इसके लिये आये हैं। आहाहा! वे तो वीतरागी हैं। उन्हें विकल्प आया, तब आया; न आवे तो कुछ नहीं। आहाहा! आहा! ये सन्त की परिपाटी में परिपक्व, तीन दिन में (कहा) महाराज! इसके लिये हम आये हैं। 'अच्छा, कल्याण हो!' भावमुनि, भावमुनि को कहते हैं। आहाहा! आहाहा! 'अच्छा, कल्याण हो!' ओहो! वह काल कैसा होगा!! भावलिंगी (मुनि) वीतरागी, तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में परिणमित, वीतराग के आनन्द की दशा में आनन्द का झूला झूलनेवाले! आहाहा! दोनों मुनि आनन्द के झूले में झूलते हुए! आहाहा! तीन दिन तक तो लेख (पत्र) लिखा तो भी बुलाते नहीं। महाराज! हम आये हैं। आहाहा! क्या उनकी वीतरागता! 'अच्छा! कल्याण हो!' फिर शुरु करते हैं। उसमें से यह षट्खण्डागम की रचना हुई।

यहाँ अपने 'परमात्मप्रकाश' (चलता है)। यह भी सन्तों की वाणी है। परम्परा से जो आगम की -परमागम की रचना थी, उसकी यह वाणी है। ४९ गाथा हुई है। आहाहा! पहले 'धवल' में इसकी महिमा बहुत की है। यह तिथि और यह और यह। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। द्रव्य-कहनेवाले भगवान; क्षेत्र-विपुलाचल पर्वत; काल-श्रावण कृष्ण एकम्, सूर्य उगने के काल में; भाव-भावश्रुत कहा। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! वह यह परम्परा दिगम्बर के आचार्यों का कथन है। वे सर्वज्ञ के-परमेश्वर के पथानुगामी हैं। उनकी यह वाणी है। यह परमात्मप्रकाश, समयसार (आदि)। जगत को कठिन पड़ता है, कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर तो बाद में निकले हैं। यह वाणी तो परम्परा से-ठेठ सर्वज्ञ से आयी हुई वाणी है। वह (यहाँ) उत्कीर्ण है।

४९ (गाथा में) यह आया, इसलिए कर्मों से भिन्न... ४९ (गाथा की) चौथी

लाईन। ज्ञान-दर्शनमयी सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य) परमात्मा को तुम... लो! यह बात आयी। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनमयी है। उसमें विकार भी नहीं है। उसे संयोगी चीज़ में संयोग में हो, परन्तु स्वयं संयोगी चीज़ में नहीं है। यह तो ऊपर आ गया न? जीव, अजीव में नहीं और अजीव में (जीव नहीं), यह ऊपर आ गया। संयोगी चीज़ में स्वयं नहीं; अपनी चीज़ में संयोगी चीज़ नहीं—ऐसा जो भगवान दर्शन-ज्ञानमयी आत्मा, दृष्टा-ज्ञातास्वभावमय आत्मा का ध्यान कर, कहते हैं। आहाहा! उसे तेरी पर्याय का विषय (बना)। पर्याय के विषय में उसे विषय बना। आहाहा! समझ में आया? यह कहा न? देखो न?

सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य)... आहाहा! परमात्मा को तुम देह, रागादि परिणतिरूप बहिरात्मपने को छोड़कर... आहाहा! शरीर और राग। (राग) अन्दर और बाह्य शरीर की ओर की परिणति को छोड़कर, आहाहा! शुद्धात्मपरिणति... देहरहित तो शुद्धात्मा हुआ, रागरहित तो शुद्धपरिणति हुई। आहाहा! शुद्धात्मपरिणति की भावनारूप अंतरात्मा में स्थिर होकर... उसे अन्तर में स्थिर होकर ध्यान कर—ऐसा कहते हैं। तब तुझे उपादेयपना ज्ञात होगा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! दर्शन-ज्ञानमयी आत्मा सर्व प्रकार से उपादेय है, आराधनेयोग्य है—ऐसा कब ज्ञात होगा? आहाहा!

देह और राग की परिणति छोड़कर, देहरहित भगवान शुद्धात्मद्रव्य और रागरहित की यहाँ शुद्धपरिणति (हो)—ऐसी शुद्धपरिणति द्वारा तुझे आत्मा ज्ञात होगा, तब तुझे उपयोगरूप से गिनने में आयेगा। आहाहा! थोड़े में भी बहुत (भरा है)। 'थोड़ा लिखा बहुत करके जानना' (—ऐसा) नहीं कहते? आहाहा! वीतराग वाणी में यह आया।

जहाँ तू जैसा है, वहाँ तू नजर कर—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तू जहाँ है, वहाँ दर्शन-ज्ञानमयी प्रभु तू है। आहाहा! इसकी नजर वहाँ डाल, तब तुझे, आत्मा उपादेयपने किया—ऐसा कहा जाएगा। समझ में आया? आहाहा! अब ५० गाथा।

गाथा - ५०

अथ उर्ध्वं स्वदेहप्रमाणव्याख्यानमुख्यत्वेन षट्सूत्राणि कथयन्ति। तद्यथा -

५०) किं वि भणन्ति जिउ सव्वगउ जिउ जडु के वि भणन्ति।
किं वि भणन्ति जिउ देह-समु सुण्णु वि के वि भणन्ति॥५०॥
केऽपि भणन्ति जीवं सर्वगतं जीवं जडं केऽपि भणन्ति।
केऽपि भणन्ति जीवं देहसमं शून्यमपि केऽपि भणन्ति॥५०॥

केऽपि भणन्ति जीवं सर्वगतं, जीवं केऽपि जडं भणन्ति, केऽपि भणन्ति जीवं देहसमं, शून्यमपि केऽपि वदन्ति। तथाहि-केचन सांख्यनैयायिकमीमांसकाः सर्वगतं जीवं वदन्ति। सांख्याः पुनर्जडमपि कथयन्ति। जैनाः पुनर्देहप्रमाणं वदन्ति। बौद्धाश्च शून्यं वदन्तीति। एवं प्रश्नचतुष्टयं कृतमिति भावार्थः॥५०॥

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के कहनेवाले पहले महाधिकार के पाँचवे स्थल में जैसा निर्मल ज्ञानमयी प्रगटरूप शुद्धात्मा सिद्धलोक में विराजमान है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप से देह में तिष्ठ रहा है, ऐसे कथन की मुख्यता से चौबीस दोहा-सूत्र कहे गये। इससे आगे छह दोहा-सूत्रों में आत्मा व्यवहारनयकर अपनी देह के प्रमाण है, यह कह सकते हैं :-

कोई जीव को कहे सर्वगत और अचेतन कोई कहें।

कोई शून्य कहे आत्मा को कोई देह प्रमाण कहें॥५०॥

अन्वयार्थ :- [केऽपि] कोई नैयायिक, वेदान्ती और मीमांसक-दर्शनवाले [जीवं] जीव को [सर्वगतं] सर्व व्यापक [भणन्ति] कहते हैं, [केऽपि] कोई सांख्य-दर्शनवाले [जीवं] जीव को [जडं] जड़ [भणन्ति] कहते हैं, [केऽपि] कोई बौद्ध-दर्शनवाले जीव को [शून्यं अपि] शून्य भी [भणन्ति] कहते हैं, [केऽपि] कोई जिनधर्मी [जीवं] जीव को [देहसमं] व्यवहारनयकर देहप्रमाण [भणन्ति] कहते हैं, और निश्चयनयकर लोकप्रमाण कहते हैं। वह आत्मा कैसा है? और कैसा नहीं है? ऐसे चार प्रश्न शिष्य ने किये, ऐसा तात्पर्य है॥५०॥

गाथा - ५० पर प्रवचन

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के... (अर्थात्) बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा— ये तीन प्रकार का वर्णन चला। पहले महाधिकार के पाँचवें स्थल में जैसा निर्मल ज्ञानमयी प्रगटरूप शुद्धात्मा... जैसा निर्मल ज्ञानमयी जैसा शुद्धात्मा प्रगटरूप शुद्धात्मा... आहाहा! सिद्धलोक में बिराजमान है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप से देह में तिष्ठ रहा है,... आहा! देखा? शुद्धनिश्चयनयकर जैसा निर्मल ज्ञानमयी प्रगटरूप शुद्धात्मा... पर्याय में, ऐसा। सिद्ध में बिराजता है। आहाहा! सिद्धलोक में बिराजमान है,... यहाँ प्रगटरूप कहा है न? पर्याय में प्रगट हो गया है। वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर... शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से, स्वभावरूप से। आहाहा! ऐसा भगवान देह में तिष्ठ रहा है,... जैसा सिद्ध सिद्धालय में हैं, ऐसा ही देह देवालय में भगवान यहाँ बिराजता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। यहाँ कहा न! आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर... अर्थात् शुद्ध परमार्थ वस्तु की दृष्टि से देखे तो, ऐसा। शक्तिरूप से देह में भगवान बिराजता है। ऐसे कथन की मुख्यता से चौबीस दोह-सूत्र कहे गये। इससे आगे छह दोहा-सूत्रों में आत्मा व्यवहारनयकर अपनी देह के प्रमाण है, यह कहते हैं... ५० (गाथा) है न? संस्कृत है न? अतः उर्ध्व... उर्ध्व अर्थात् अब। पाठ में है न?

(५०) कि वि भणंति जिउ सव्वगउ जिउ जडु के वि भणंति ।

कि वि भणंति जिउ देह-समु सुण्णु वि के वि भणंति ॥५० ॥

कोई नैयायिक, वेदान्ती और मीमांसक-दर्शनवाले जीव को सर्वव्यापक कहते हैं,... यह सिद्ध करेंगे। किस अपेक्षा से सर्वव्यापक है? क्षेत्र से नहीं; लोकालोक को जानने की अपेक्षा से सर्वव्यापक कहने में आता है। वे एकान्त कहते हैं कि क्षेत्र में सर्वव्यापक है (परन्तु) ऐसा नहीं है। आहाहा!

कोई सांख्य-दर्शनवाले जीव को जड़ कहते हैं,... यह कहेंगे। इन्द्रियज्ञान का

अभाव हो गया न, इस अपेक्षा से जड़ (कहा)। पूरा अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो गया, इन्द्रियज्ञान से जानने का रहा नहीं, इस अपेक्षा से जड़ कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? वे लोग तो, जानपने से रहित रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। जहाँ तक जानना रहे, वहाँ तक आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। जानने का नाश हो जाए, तब आत्मा (कहलाता है)—ऐसा (वे) कहते हैं। जबकि यहाँ कहते हैं कि इन्द्रिय (ज्ञान का) नाश होता है, इस अपेक्षा से जड़ कहने में आता है। समझ में आया?

वे लोग कहते हैं कि पूर्ण हो, तब उसका ज्ञान नहीं रहता। ज्ञान रहे तो अन्दर वह अपूर्णता है। जानना रहे, जानना रहे, (ऐसा कहते हैं) सुन तो सही! जानना रहता है, वहाँ तक वह चैतन्य नहीं—ऐसा (वे) कहते हैं। यह जानना छूट जाये, तब चैतन्य कहलाता है। यहाँ कहते हैं कि एक अपेक्षा से तेरी बात सत्य है। इन्द्रिय का ज्ञान छूट गया, इस अपेक्षा से उसे जड़ कहा जाता है। मूल ज्ञान छूट नहीं गया है। आहाहा! समझ में आया? वे लोग कहते हैं कि ज्ञान-जानना नाश हो, तब उसकी मुक्ति होती है। यहाँ तो (कहते हैं कि) इन्द्रियज्ञान का नाश हो, तब उसकी मुक्ति होती है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ से (सिद्ध) हुई वाणी है। आहाहा!

कोई बौद्ध-दर्शनवाले जीव को शून्य भी कहते हैं,... लो! शून्य... शून्य। शून्य भी है, पर से शून्य है। प्रवचनसार में शून्य-अशून्य (नय) आता है। पर से शून्य है, अपने से अशून्य है। आहाहा! समझ में आया?

कोई जिनधर्मी जीव को व्यवहारनयकर देहप्रमाण कहते हैं,... व्यवहार से देहप्रमाण अलग है। निश्चय से लोकप्रमाण है, इतना असंख्य प्रदेशी चौड़ा है न! उसकी शक्ति इतनी है। लोकप्रमाण असंख्यप्रदेशी है न! इस अपेक्षा से। इस प्रकार व्यवहार से देह प्रमाण है, निश्चय से जो असंख्यप्रदेश हैं, वे लोकप्रमाण हैं। यहीं के यहीं, हों। समझ में आया? लो!

वह आत्मा कैसा है? और कैसा नहीं है? ऐसे चार प्रश्न शिष्य ने किये,... यह चार प्रश्न। ऐसा तात्पर्य है। गाथा का तात्पर्य हुआ न? ऐसा कहते हैं। शिष्य ने चार प्रश्न किये, वह यहाँ तात्पर्य है, इतना। अब ५१ (गाथा में) उत्तर (कहते हैं)।

गाथा - ५१

अथ वक्ष्यमाणनयविभागेन प्रश्नचतुष्टयस्याप्यभ्युपगमं स्वीकारं करोति -

५१) अप्पा जोड़य सव्व-गउ अप्पा जडु वि वियाणि।

अप्पा देह-पमाणु मुणि अप्पा सुण्णु वियाणि॥५१॥

आत्मा योगिन् सर्वगतः आत्मा जडोऽपि विजानीहि।

आत्मानं देहप्रमाणं मन्यस्व आत्मानं शून्यं विजानीहि॥५१॥

आत्मा हे योगिन् सर्वगतोऽपि भवति, आत्मानं जडमपि विजानीहि, आत्मानं देहप्रमाणं मन्यस्व, आत्मानं शून्यमपि जानीहि। तद्यथा। हे प्रभाकरभट्ट वक्ष्यमाणविवक्षितनयविभागेन परमात्मा सर्वगतो भवति, जडोऽपि भवति, देहप्रमाणोऽपि भवति, शून्योऽपि भवति नापि दोष इति भावार्थः ॥५१॥

आगे नय-विभागकर आत्मा सब रूप है, एकान्तवादकर अन्यवादी मानते हैं, सो ठीक नहीं है, इस प्रकार चारों प्रश्नों को स्वीकार करके समाधान करते हैं -

नय विभाग से कहा सर्वगत और किसी नय से जड़ है।

शून्य कहा है किसी अपेक्षा देह प्रमाण किसी नय से॥५१॥

अन्वयार्थ :- [हे योगिन्] हे प्रभाकरभट्ट, [आत्मा सर्वगतः] आगे कहे जानेवाले नय के भेद से आत्मा सर्वगत भी है, [आत्मा] आत्मा [जडोऽपि] जड़ भी है ऐसा [विजानीहि] जानो, [आत्मानं देहप्रमाणं] आत्मा को देह के बराबर भी [मन्यस्व] मानो, [आत्मानं शून्य] आत्मा को शून्य भी [विजानीहि] जानो। नय-विभाग से मानने में कोई दोष नहीं है, ऐसा तात्पर्य है॥५१॥

गाथा - ५१ पर प्रवचन

५१।

(५१) अप्पा जोड़य सव्व-गउ अप्पा जडु वि वियाणि ।

अप्पा देह-पमाणु मुणि अप्पा सुण्णु वियाणि ॥५१ ॥

आगे नय-विभागकर आत्मा सर्वगत है, सब रूप है,.... 'सब रूप' अर्थात् ये जो चार बोल कहे न? वे सब रूप है, एकान्तवादकर अन्यवादी मानते हैं, सो ठीक नहीं है, इस प्रकार चारों प्रश्नों को स्वीकार करके समाधान करते हैं-(हे योगीन्) हे प्रभाकरभट्ट,.... शिष्य को कहते हैं न? आहा!

मुमुक्षु : प्रभाकरभट्ट मुनि थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये प्रभाकर मुनि हैं ।

आत्मा सर्वगत... भी है । आगे कहे जानेवाले नय के भेद से आत्मा सर्वगत भी है, आत्मा जड़ भी है... अपेक्षा से (बात) है न! ऐसा जानो, आत्मा देह के बराबर भी मानो और आत्मा को शून्य भी जानो । किस अपेक्षा से ? इसमें है, इस अपेक्षा से बात करे । पर से शून्य है, इन्द्रियज्ञान से जड़ है, अभाव है । सर्वव्यापक है-ज्ञान की अपेक्षा से सर्वव्यापक भी है । क्षेत्र से (सर्वव्यापक) नहीं । आहा !

नय विभाग से मानने में कोई दोष नहीं है, ऐसा तात्पर्य है । लो, अब इसका स्पष्टीकरण ।

गाथा - ५२

अथ कर्मरहितात्मा केवलज्ञानेन लोकालोकं जानाति तेन कारणेन सर्वगतो भवतीति प्रतिपादयति -

५२) अप्पा कम्म-विवज्जियउ केवल-णाणें जेण।

लोयालोउ वि मुणइ जिय सव्वगु वुच्चइ तेण॥५२॥

आत्मा कर्मविवर्जितः केवलज्ञानेन येन।

लोकालोकमपि मनुते जीव सर्वगः उच्यते तेन॥५२॥

आत्मा कर्मविवर्जितः सन् केवलज्ञानेन करणभूतेन येन कारणेन लोकालोकं मनुते जानाति हे जीव सर्वगत उच्यते तेन कारणेन। तथाहि-अयमात्मा व्यवहारेण केवलज्ञानेन लोकालोकं जानाति, देहमध्ये स्थितोऽपि निश्चयनयेन स्वात्मानं जानाति, तेन कारणेन व्यवहारनयेन ज्ञानापेक्षया रूपविषये दृष्टिवत्सर्वगतो भवति न च प्रदेशापेक्षयेति। कश्चिदाह। यदि व्यवहारेण लोकालोकं जानाति तर्हि व्यवहारनयेन सर्वज्ञत्वं, न च निश्चयनयेनेति। परिहारमाह-यथा स्वकीय-मात्मानं तन्मयत्वेन जानाति तथा परद्रव्यं तन्मयत्वेन न जानाति तेन कारणेन व्यवहारो भण्यते न च परिज्ञानाभावात्। यदि पुनर्निश्चयेन स्वद्रव्यवत्तन्मयो भूत्वा परद्रव्यं जानाति तर्हि परकीय-सुखदुःखरागद्वेषपरिज्ञातो सुखी दुःखी रागी द्वेषी च स्यादिति महद्दूषणं प्राप्नोतीति। अत्र येनैव ज्ञानेन व्यापको भण्यते तदेवोपादेयस्यानन्तसुखस्याभिन्नत्वादुपादेयमित्यभिप्रायः॥५२॥

आगे कर्मरहित आत्मा केवलज्ञान से लोक और अलोक दोनों को जानता है, इसलिये सर्व व्यापक भी हो सकता है, ऐसा कहते हैं -

कर्म रहित होता जब आत्मा केवलज्ञान कला द्वारा।

लोकालोक प्रकाशित करता अतः सर्वगत उसे कहा॥५२॥

अन्वयार्थ :- [आत्मा] यह आत्मा [कर्मविवर्जितः] कर्मरहित हुआ [केवलज्ञानेन] केवलज्ञानसे [येन] जिस कारण [लोकालोकमपि] लोक और अलोकको [मनुते] जानता है [तेन] इसीलिये [हे जीव] हे जीव, [सर्वगः] सर्वगत [उच्यते] कहा जाता है।

भावार्थ :- यह आत्मा व्यवहारनय से केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है, और शरीर में रहने पर भी निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है, इस कारण ज्ञान

की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है, प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है। जैसे रूपवाले पदार्थों को नेत्र देखते हैं, परंतु उन पदार्थों से तन्मय नहीं होते, उसरूप नहीं होते हैं। यहाँ कोई प्रश्न करता है, कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है, और निश्चयनय से नहीं, तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर न हुआ ? उसका समाधान करते हैं - जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है, वैसा ही पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं समझना, लेकिन निज स्वरूप से तो तन्मयी है, और पर से तन्मयी नहीं। और जिस तरह निज को तन्मयी होकर निश्चय से जानता है, उसी तरह यदि पर को भी तन्मय होकर जाने, तो पर के सुख, दुःख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो, यह बड़ा दूषण है। सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। यहाँ जिस ज्ञान से सर्व व्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है, यह अभिप्राय जानना। इस दोहा में जीव को ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत कहा है॥५२॥

गाथा - ५२ पर प्रवचन

५२।

(५२) अप्या कम्म-विवज्जियउ केवल-णाणं जेण।
लोयालोउ वि मुणइ जिय सव्वगु वुच्चइ तेण ॥५२ ॥

आहाहा! कर्मरहित आत्मा के केवलज्ञान से लोक और अलोक दोनों को जानता है,... लोक-अलोक दोनों को जानता है न! वेदान्त ऐसा कहता है कि पर को जाने तो पर में प्रवेश करे तो जाने। प्रवेश किये बिना किस प्रकार जाने? इस लकड़ी को जानना हो तो लकड़ी में ज्ञान प्रवेश करे तो लकड़ी ज्ञात हो, (ज्ञान) बाहर रहे और लकड़ी ज्ञात हो? (संवत्) १९८४ में प्रश्न हुआ था। राणपुर में एक क्षत्रिय था, क्षत्रिय। व्याख्यान में आता था। (उसने कहा) महाराज! तुम यह परमाणु कहते हो (इसे) जाने। परमाणु

में प्रवेश किये बिना ज्ञान किस प्रकार जानेगा ? सर्वव्यापक हो गया, तो चीज़ भिन्न नहीं रही। (उससे) कहा – ऐसा नहीं है। अग्नि में प्रवेश किये बिना अग्नि को नहीं जानता ? उसमें प्रवेश करे तब तो अग्निमय हो जाये। अग्नि को जानने से ज्ञान अग्नि में प्रवेश करके जानता है ?

यह गर्म है—ऐसा ज्ञान उसमें प्रवेश किये बिना, अपने में रहकर उष्ण को जानता है। इसलिए ज्ञान पर में प्रवेश करे तो ही उसे जाने – ऐसा नहीं है। यह तो (संवत्) १९५४ में भी प्रश्न किया था। यह गाँधी का वेदान्ती नहीं, मसरूवाला ? मसरूवाला। नरम व्यक्ति था। १९५५ में आया था, तब गाँधीजी थे न ? उनकी पुस्तक पढ़ी, उसमें था कि सामने घड़ी का ज्ञान होता है, यदि वह ज्ञानरूप न हो तो ज्ञान किस प्रकार हो ? पुस्तक है न ? 'जीवन संशोधन' है, पढ़ी थी। राजकोट में तब १९९५ (में पढ़ी थी) 'जीवन संशोधन' में ऐसा लिखा था कि सामने चीज़ है, उसका यहाँ ज्ञान होता है तो वह ज्ञान हो तो ज्ञान होता है। वह (वस्तु) ज्ञान है—ऐसा कहते हैं। उसका ज्ञान कब होता है ? कि वह ज्ञानमय हो तो ज्ञान होता है ! ऐसा नहीं है।

जड़ और चैतन्य का ज्ञान जड़ और चैतन्य में प्रवेश किये बिना होता है। आहा ! अरे ! यह ज्ञान की पर्याय जो द्रव्य को जानती है, स्वयं को, हों ! वह द्रव्य को स्पर्श किये बिना पर्याय, द्रव्य को जानती है। पर की बात तो एक ओर रही, परन्तु वस्तु जो है... १४४ में कहा था, मुम्बई। प्रतिभास। तुम वहाँ थे ? नहीं थे। एक समय की पर्याय में प्रतिभास (होता है) पूरे द्रव्य का भास होता है। द्रव्य में पर्याय नहीं आती। पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा ! परन्तु द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, वह सब पर्याय के ज्ञान में आ जाती है। समझ में आया ? ऐसी बात है।

पर की तो बात क्या करना ! परन्तु स्वद्रव्य में ज्ञानपर्याय प्रवेश नहीं करती, तथापि वह पर्याय उसे पूर्ण जानती है ! आहाहा ! पर्याय में पर्याय का ज्ञान है, पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान है, पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान है। छह द्रव्य का ज्ञान है, स्वद्रव्य का ज्ञान है। जिसका स्वभाव है उसे पर की अपेक्षा क्या है ? आहाहा ! उसे कहाँ अपेक्षा है।

मुमुक्षु : विकार में पर की अपेक्षा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विभाव को भी पर की अपेक्षा नहीं। विभाव भी अपनी एक

समय की पर्याय षट्कारक से परिणमती है। उसे निमित्त कारक की अपेक्षा नहीं, उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। ठीक है? यह तो पंचास्तिकाय की ६२ गाथा। वहाँ (दिगम्बर के एक विद्वान के साथ) चर्चा हुई थी। विकार एक समय में षट्कारकरूप से (परिणमता है) पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। समय एक, विकारभाव और षट्कारक। क्योंकि द्रव्य-गुण में षट्कारक हैं। पर्याय में षट्कारक का परिणमन स्वयं से आया है। आहाहा!

यहाँ तो सर्वव्यापक किस अपेक्षा से कहा? देखा! यह आत्मा कर्मरहित हुआ केवलज्ञान से जिस कारण लोक और अलोक को... 'मनुते' जानता है... जानता है। जिसकी पर्याय का स्वभाव जानना है, उसे जानने की मर्यादा नहीं होती। वह तो लोकालोक से अनन्तगुना होता तो भी वह पर्याय जानती। वह तो पहले आ गया है। नहीं? मण्डप पर बेल। मण्डप है, वहाँ तक बेल चलती है, परन्तु उसमें बेल को आगे जाने की शक्ति नहीं है-ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय लोकालोक को जानती है। वह तो पर्याय, वह लोकालोक है; इसलिए जानती है-ऐसा भी नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय की ताकत इतनी है कि अपना अस्तित्व ही इतना बड़ा है। आहाहा! समझ में आया? लोकालोक है, इसलिए पर्याय जानती है-ऐसा भी नहीं है। उसका अस्तित्व है, इसलिए पर्याय के अस्तित्व में ऐसा जानना आया-ऐसा भी नहीं है। ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! लोग बेचारे बाहर में क्रियाकाण्ड की उलझन में पड़े हैं और वस्तु रह गयी है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना सब व्यर्थ है।

ऐसी पर्याय की ताकत, ऐसा जो द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान... आहा! वह ज्ञान पर से सिमट गया, हट गया। निमित्त से, राग से, एक (समय की) पर्याय में से हटकर (अन्दर ध्रुव में) गया, तब पर्याय का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञान साथ में हुआ। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में पर्याय थी, तब तक पर्याय का ज्ञान भी सच्चा नहीं था। यह वीतराग का मार्ग सूक्ष्म, बापू! सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है। अनन्त काल में इसने एक सैकेण्ड भी किया नहीं और वह हुआ तो इसके जन्म-मरण कभी रहते नहीं। आहा!

अर्थात्? आत्मा द्रव्य और गुण से ज्ञानदर्शनमय और अनन्तगुणमय है। उसका एक समय में ज्ञान होता है। कब? कि स्वसन्मुख हो तब। उसने द्रव्य-गुण का आश्रय

लिया-ऐसा कहने में आता है। (द्रव्य-गुण) आश्रय देते हैं, (पर्याय) आश्रय लेती नहीं। नवरंगभाई! ऐसा मार्ग है यह। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ तेरी पर्याय का ऐसा सामर्थ्य बतलाते हैं।

मुमुक्षु : (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ का आश्रय तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ का आश्रय (करे तो) सम्यग्दृष्टि होता है, परन्तु इसका अर्थ यह कि स्वसन्मुख हुआ, उसने आश्रय लिया-ऐसा कहने में आता है। अरे! ऐसी बात है। भाषा ऐसी आती है। **भूदत्थमस्मिदो खलु सम्मादिद्वी हवदि जीवो** त्रिकाल भगवान् पूर्णानन्द का नाथ प्रभु का आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो। यह तीर्थकर केवली परमात्मा का आश्रय करे, तो भी समकित नहीं होता। इस पर्याय का आश्रय करे तो भी समकित नहीं होता। ऐसी बातें, बापू! यह पर्याय ऐसे झुकी, इसलिए आश्रय किया-ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह कहने की क्या अपेक्षा है-यह जानना चाहिए न?

मुमुक्षु : पर्याय तन्मय रहकर जानती है या अतन्मय रहकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : अतन्मय रहकर जानती है। तन्मय होकर जानती है (ऐसा जो कहा वह तो) इस ओर झुकी है इतना। इस ओर झुकी है। इस अपेक्षा से वह (तन्मय) कहलाती है। राग में तन्मय थी तो ऐसे तन्मय (थी)। राग में झुकी थी, वह ऐसे (स्वरूप की ओर) झुकी इसलिए तन्मय कहलाती है। बाकी पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। द्रव्य और पर्याय तीन काल-तीन लोक में एक नहीं होते।

मुमुक्षु : अखण्ड एक सत् लें तो

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड एक सत् लें तो भी पर्याय, पर्याय में और द्रव्य, द्रव्य में है।

मुमुक्षु : पर्याय और द्रव्य में प्रदेशभेद हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेशभेद है।

मुमुक्षु : सर्वथा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा है। पर्याय और द्रव्य में प्रदेशभेद सर्वथा है।

मुमुक्षु : एक अखण्ड सत् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अखण्ड सत् बाद में। यह तो पर्याय का विषय अखण्ड सत् है। ऐसी बात है। यह तो जिनेश्वर केवली तीन लोक के नाथ जिनेश्वर भगवान साक्षात् विराजते हैं। आज दिव्यध्वनि का दिन है। तुमने कल कहा था, कोई (सूक्ष्म बात) आवे। वह आवे तो आवे। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि पर्याय को सर्वव्यापक कहना अर्थात् लोकालोक को जानती है, इस अपेक्षा से व्यापक कहना। परन्तु पर्याय उस लोकालोक के क्षेत्र में पसर जाती है (-ऐसा नहीं है)। वेदान्त कहते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! पर्याय की मर्यादा, यद्यपि द्रव्य का क्षेत्र है, वह ही उसका क्षेत्र है, परन्तु उस क्षेत्र का अंश है, वह भिन्न है। जितने में पर्याय है, वह क्षेत्र भिन्न है; जितने में ध्रुव है, वह क्षेत्र भिन्न है। दो धर्म ही हैं, दो वस्तु हैं—धर्म और धर्मी दो वस्तु है।

यह तो आसमीमांसा में कहा है—धर्म और धर्मी दो निरपेक्ष वस्तु है। धर्मी है, इसलिए पर्याय है—धर्म है—ऐसा नहीं है और धर्म है, इसलिए धर्मी है—ऐसा नहीं है। यह तो केवलज्ञानी परमात्मा का मार्ग है, बापू! लोगों ने सुना नहीं। बाहर की मजदूरी (किया करते हैं)। यह यात्रा की, भक्ति की, व्रत पालन किये, अपवास किये और हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धूल भी धर्म नहीं अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं (अर्थात्) अच्छा पुण्य भी नहीं, ऐसा। समकिति को जो पुण्य बाँधता है, वैसा पुण्य भी इसे नहीं। आहाहा! यह कहीं आया था, किसमें आया था? कहीं आया था, पाठ में आया था, हों! कृषि-खेती करने पर अनाज पकता है, तब घास भी पकती है। भक्ति में आया था। कल आया था? सौ कलथी अनाज पके, (तब) सौ गाड़ी भूसा होता है परन्तु भूसा भूसे से, अनाज अनाज से। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को जो पुण्य होता है, वह दूसरे प्रकार का होता है। वह तीर्थकरगोत्र बाँधता है, सर्वार्थसिद्धि में जाता है—इत्यादि-इत्यादि। आहाहा! तथापि वह पुण्य है, वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं ज्ञान की पर्याय... आत्मा को सर्वव्यापक कहना—किस अपेक्षा

से ?-कि उस पर्याय में कर्म के आवरण का अभाव होकर, वह पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है। ऐसी बात की है। लोकालोक को जानती है। समझ में आया न? इससे उसे सर्वव्यापक कहने में आता है। वास्तव में तो वह पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है और लोकालोक को जानती है, इससे उस पर्याय को सर्वव्यापक कहने में आता है। क्षेत्र से पर में जाती है और यह पर्याय क्षेत्र से ध्रुव में जाती है-ऐसा नहीं है। चन्दुभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : कहलाये सर्वव्यापक परन्तु निश्चय से द्रव्य में व्यापक है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय में, पर्याय व्यापक है। दो वाचक शब्द है न? तो दो के वाच्य भिन्न होंगे या नहीं? नहीं तो दो भिन्न कैसे पड़े? ऐसी बात है, जरा सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : अपेक्षा से कहलाता है या (ऐसा है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; इस अपेक्षा से ऐसा ही है।

मुमुक्षु : सर्वथा ऐसा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा ऐसा है।

मुमुक्षु : एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये दोनों एकान्त है। पर्याय, पर्याय में है; पर्याय, द्रव्य में नहीं। परन्तु फिर जब पर से भिन्न करना हो, तब कहा जाता है कि पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता। 'पर्याय विजुत्तं द्रव्यं' पंचास्तिकाय में आता है। वह तो पर से भिन्न करने की अपेक्षा से (कहा है)। पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। वह तो पर से-उससे भिन्न (है और) वह पर्याय अपने द्रव्य की है, ऐसा (कहना है)। दोनों में जब भेद करना हो, वे दो वस्तु हैं न? एक वस्तु नहीं।

प्रमाण के द्रव्यरूप से द्रव्य-पर्याय शामिल गिने। परन्तु प्रमाण जो द्रव्य-पर्याय को जानता है, उस अनुसार, तदनुसार अर्थात् उस प्रमाणज्ञान में निश्चय से द्रव्य, द्रव्य में है, उसका ज्ञान तो उसमें रखा है, उपरान्त पर्याय का (ज्ञान) मिलाया, इसलिए प्रमाण हुआ।

मुमुक्षु : नयज्ञान का विरोध करके प्रमाण नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। निश्चय को उड़ाकर प्रमाण हुआ है-ऐसा नहीं है। तब तो उस प्रमाण में दो नहीं रहते। ऐसा है भाई जरा!

प्रमाण है और वह स्वयं ही व्यवहार है। दो इकट्ठे हुए, इसलिए व्यवहार हो गया। निश्चय और व्यवहार, दो इकट्ठे हुए न? द्रव्य और पर्याय, इसलिए वह प्रमाण (कहा)। वह प्रमाण स्वयं सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, निश्चय का नहीं। इसीलिए तो कहा कि निश्चय है, वह पूज्य है या प्रमाण पूज्य है? क्योंकि प्रमाण में दो साथ आते हैं-द्रव्य और पर्याय। और निश्चय में अकेला द्रव्य आता है। तो कहते हैं निश्चय पूज्य है। प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए वह पूज्य नहीं है। रतिभाई! सूक्ष्म है, बापू यह तो। आहाहा!

मुमुक्षु :है, तथापि अपूज्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। निश्चय की अपेक्षा से नहीं। जिसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, वह पूज्य नहीं है। परमार्थ की अपेक्षा से बात है।

भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु निश्चयनय का विषय है, वह निश्चयनय पूज्य है। वैसे तो व्यवहार भी पूज्य है, कहा है। नहीं? पद्मनन्दि में। है न, सब पता है। वह तो व्यवहार से व्यवहार पूज्य है, निश्चय से वह पूज्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! जिनवरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। इसने कहा था। यहाँ कुछ तैयार है? आने का हो, वह आता है। आहाहा! ओहोहो! ऐसा वीतराग का मार्ग। त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा फरमाया है। यह उस दिव्यध्वनि का दिन है। लो, देखो! भावार्थ है न!

यह आत्मा व्यवहारनय से केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है,... देखो! स्पष्टीकरण आयेगा। और शरीर में रहने पर भी... केवलज्ञानी परमात्मा शरीर में होने पर भी निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,... निश्चयनय से तो अपने स्वरूप को जानते हैं, व्यवहार से पर का जानते हैं।

मुमुक्षु : निश्चयनय से पर्याय, पर्याय को ही जानती है, व्यवहारनय से परद्रव्य को जानती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार ऐसा नहीं। निश्चय से तो पर्याय, द्रव्य को जानती है, वह निश्चय कहलाता है, ऐसा है। नियमसार में स्व-पर प्रकाशक के दो बोल लिये हैं। एक तो स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान - पर का ज्ञान - उसे निश्चयव्यवहार कहना। ज्ञान, ज्ञान को जानता है और ज्ञान के अतिरिक्त अपने गुण को जानता है... उसे स्व-पर प्रकाशक कहना। (वीतराग की) बातें, बापू! यह अलौकिक मार्ग लोगों ने-बेचारों ने सुना नहीं। आहाहा! इस तत्त्व की गहराई क्या है, इसे पहुँचा नहीं। पहुँचे तो, इसका कल्याण हुए बिना नहीं रहे। जन्म-मरण का अन्त आ जाये। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। गुण और पर्याय सबको जानता है। गुण को भी जानता है न! आहाहा! समझ में आया? अकेली पर्याय की बात नहीं है। ज्ञान की पर्याय ज्ञान को जाने, ज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण को जाने, ज्ञान की पर्याय दूसरे गुणों को जाने और ज्ञान की पर्याय गुण की पर्याय को जाने। यह तो बहुत आगे गया। ऐसा मार्ग है, बापू!

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य, अद्रव्य है; वैसे पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य भी अद्रव्य है। वह पर्याय में आया नहीं, (इसलिए) पर है। आहाहा! कितनी सामर्थ्यता, वह यहाँ वर्णन करते हैं। एक समय की पर्याय वस्तु है—ऐसा कहा है। एक समय की जो पर्याय है, वही वस्तु एक है, बस! बाकी सब वस्तु उसकी अपेक्षा से अवस्तु है। एक पर्याय छह द्रव्य को जाने, एक पर्याय छह को जाने और एक को जाने। इसीलिए एक पर्याय में सब पूरा आ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : महत्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता करनेवाली पर्याय है न? तो पर्याय की ही महत्ता है। द्रव्य की महत्ता जाननेवाला कौन? द्रव्य जाने? ऐसी बात है। त्रिकाली भगवान की महत्ता जाननेवाला कौन? आहाहा! पर्याय ऐसा जानती (है कि) 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसा जानती है। मैं ध्रुव हूँ, वहाँ लक्ष्य है न! पर्याय ऐसा जाने कि 'मैं ध्रुव हूँ' आहाहा!

(समयसार गाथा) ३२० में आता है। (वहाँ) अन्त में ऐसा कहा—धर्मी, अखण्ड

त्रिकाली निरावरण परमात्मा का ध्यान करता है, खण्ड-खण्ड का नहीं। पर्याय खण्ड-खण्ड है। आहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म आ गया, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : जमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : जमा? एक बार तुम्हें याद किया था। नवरंगभाई, भाई ऐसा कहते हैं कि जमा। आहाहा!

निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है, इस कारण ज्ञान की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है, प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है। प्रदेश अपने में हैं। ज्ञान पर के क्षेत्र में व्यापता है-ऐसा नहीं है। अपने क्षेत्र में व्यापता है-ऐसा कहना है। वह द्रव्य और पर्याय - अभी यह भेद नहीं है। यह तो जानने की पर्याय सर्व को-परक्षेत्र को व्यापकर जानती है-ऐसा नहीं है। अपना क्षेत्र है, वहाँ रहकर वह जानती है।

मुमुक्षु :....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय का जितना क्षेत्र है, वह पर्याय का क्षेत्र है। वह तो पर से भिन्न करना हो तब... अपने को भिन्न करना, दो भेद हैं न? दो चीज़ भिन्न है।

प्रमाण का विषय द्रव्य और पर्याय है। निश्चय का विषय अकेला द्रव्य है। विषय करनेवाली पर्याय है। आहाहा! कार्य तो पर्याय में आता है न! कारण द्रव्य त्रिकाली है। वह कारण द्रव्य है, उसमें कहाँ कार्य आता है? यह तो प्रश्न हुआ था। 'त्रिभुवन वारिया' है न? ऐसा कि तुम कारणपरमात्मा कहो... सुनो! कारणपरमात्मा है, उसका स्वीकार हो, उसे कारणपरमात्मा या नहीं स्वीकारे और कारणपरमात्मा?

मुमुक्षु : स्वीकार की क्या आवश्यकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है, उसे जाने बिना 'यह है'-ऐसा निर्णय तो हुआ नहीं, तो उसे कहाँ है? कारणपरमात्मा है किसे? वह है अनादि का, ऐसा नहीं। जिसने पर्याय में कारणपरमात्मा का आश्रय लेकर निर्णय किया, उसे कारणपरमात्मा है। जिसे पर्याय में उसका निर्णय हुआ, उसे कारणपरमात्मा है और उस कारणपरमात्मा का जिसे निर्णय हुआ, उसे कार्य-सम्यग्दर्शन-आये बिना रहता ही नहीं। समझ में आया? गिरधरभाई! ऐसी-ऐसी बातें हैं। आहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और इसका फल भी कैसा!

अनन्त-अनन्त आनन्द सादि-अनन्त (काल) प्रगट हो। आहाहा! उसके उपाय भी अलौकिक होंगे या नहीं? इसमें वाद-विवाद को स्थान नहीं है। आहाहा!

देखो! प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है। प्रदेश की अपेक्षा अर्थात्? परप्रदेश में ज्ञान जाता नहीं, ऐसा। अपने प्रदेश में रहकर पर को जानता है, इस अपेक्षा से सर्वगत जानने की अपेक्षा से कहने में आता है, परन्तु क्षेत्र में जाता है, इसलिए सर्वव्यापक है-ऐसा नहीं है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण २, मंगलवार
दिनांक-१३-०७-१९७६, गाथा-५२, प्रवचन-३३

परमात्मप्रकाश ५१ गाथा है। भावार्थ।

मुमुक्षु : ५२ (गाथा)।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५१, ५१, ५१ बाकी। ५१ है। यह आत्मा व्यवहारनय से केवलज्ञानरूपकर लोक-अलोक को जानता है.... लोकालोक को व्यवहारनय से जानता है, निश्चय से नहीं। अर्थात् कि तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा है। अपने ज्ञान को जानता है, वह तो तन्मय होकर जानता है, जिससे उसका सुख, आनन्द का वेदन (होता है)। अपने को तन्मय होकर जानता है, इसलिए आनन्द का वेदन अपने में है। पर को तन्मय होकर जाने तो उनके सुख-दुःख का वेदन यहाँ आवे। समझ में आया? यह समयसार में सर्वविशुद्ध अधिकार में आया है। संस्कृत टीका, जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। उसमें लिखा है।

व्यवहारनय से केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है। शरीर में रहने पर भी निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है.... ज्ञान ज्ञान को जानता है। समयसार १७-१८ गाथा में आया न? समयसार, ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। क्या कहा यह? ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ही, अपना द्रव्य जो है, वही ज्ञात होता है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उस द्रव्य पर नहीं है, इसलिए ज्ञान में यह आत्मा जाननेवाला ही पर्याय में ज्ञात होता है, पर नहीं (यह ख्याल में नहीं आता)। १७-१८ (गाथा)। सबको (ज्ञात होता है) वापस ऐसा कहा वहाँ तो। सदा, सर्व जीव को... आहाहा! भगवान आत्मा इसकी ज्ञान की पर्याय में (ज्ञात होता है), क्योंकि उस पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से वह स्व जाननेवाले को ही जानती है, तथापि अज्ञानी की दृष्टि उस ज्ञान की पर्याय में जाननेवाला ज्ञात होता है,... उसके ऊपर नहीं होने से उसे ऐसा लगता है कि इस राग को और उसे जानता है। समझ में आया? अर्थात् क्या कहा?

ज्ञान की पर्याय है, उसका त्रिकाल कायम स्व-परप्रकाशक स्वभाव ही है। तो

वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय, द्रव्य जो है, उसे जानती है और उसमें परप्रकाशकपना इकट्ठा आ जाता है। स्व को जानते हुए राग को जाने, ऐसा वह तो स्वतः स्व-परप्रकाशकपना आ जाता है, परन्तु अज्ञानी को ज्ञान की पर्याय में स्वप्रकाश सामर्थ्य से जाननेवाला ज्ञात होता है, ऐसा उसका लक्ष्य नहीं है। इसलिए उसे राग और परप्रकाशक है, अकेला परप्रकाशक है, ऐसा मिथ्यादृष्टि को भासित होता है। समझ में आया ? आहाहा ! समझ में आया इसमें ? सुजानमलजी ! यह सूक्ष्म बात है। आहाहा !

(समयसार गाथा) १७-१८ में कहा, सदा सबको ज्ञात होने पर भी उसका उसे लक्ष्य नहीं, इसलिए वह ज्ञान में पर्याय में राग और परज्ञेय ज्ञात होता है, अकेला परप्रकाशक अज्ञानी को भास होता है। समझ में आया ? मार्ग, बापू ! सूक्ष्म बात है, भाई ! समझ में आया ?

वहाँ तो ऐसा कहा, ६६ में नहीं ? तब एक बार कहा था... लड्डू मैंने खाया,... यह मैंने छोड़ा। मैं कहीं तन्मय हुआ नहीं, छोड़े क्या ? ... यह मकान बनाया। यह तो व्यवहार से बोलने में आता है। उसमें बनाया है अन्दर तन्मय होकर ? लड्डू खाया, इन लड्डू के रजकणों को खाता है ? वह तो राग को खाता है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि लड्डू खाये, रोटी खायी, मैसुर खाया। समझ में आया ?

इसी प्रकार यह मकान बनाया। मकान बनाया है इसने ? राग को बनाया है। कौन बनावे ? वह तो परमाणु की पर्याय बनाती है। परमाणुओं में कर्ता और करण नाम का गुण है या नहीं ? उसके द्वारा यह पर्याय होती है। परन्तु कहते हैं कि यह मैंने किया, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा कहना है। इसके साथ मिलाना है न ?

आत्मा लोकालोक को जानता है, यह व्यवहार है, क्योंकि पर को जानते हुए पर के साथ एकमेक होकर नहीं जानता। और अपने को जानते हुए तन्मय होकर, उसकी पर्याय में तन्मय होकर पर्याय को जानता है। तुम्हारा द्रव्य का प्रश्न है, इसलिए कहा। पर्याय को जानते हुए पर्याय में तन्मय होकर पर्याय को जानता है। पर को जानते हुए पर में तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा जाता है। चन्दुभाई ! इसमें बहुत लम्बा है, हों ! आहाहा !

मुमुक्षु : पर को जानना खोटा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो ऐसा ही है। पर को जानना खोटा! कहेंगे इसमें, इसमें भी कहा है। तो फिर व्यवहार से सर्वज्ञ है न? ऐसा पूछा है। व्यवहार से सर्वज्ञ है न? आहाहा! लड्डू आदि रोटी, दाल, सब्जी, भात। भोक्ता वह तो व्यवहार है। यह उन्हें कहाँ भोगता है? यह छोड़ा, इसने कहाँ छोड़ा है? ... वास्तव में तो इसने राग को किया और राग को भोगा है। लड्डू को खाया है और घर को और मकान को बनाया है, ऐसा है नहीं। इत्यादि अनेक पर्याय... निश्चय-व्यवहारनय को जानना। तब प्रश्न आया। वह यह लिखा है न? परमात्मप्रकाश ५५ पृष्ठ और यहाँ लिखा है ६६ पृष्ठ।

.... क्या कहा यह? निश्चय से सर्वज्ञ इन सबके जाननेवाले नहीं, व्यवहार से पर के जाननेवाले हुए तो निश्चय से सर्वज्ञ नहीं हुए। जैसे अपने आनन्द और ज्ञान में तन्मय होकर जानते हैं, वैसे परद्रव्य न जाति! आहाहा! जानते हैं तो बराबर। पर को तन्मय होकर जाने तो पर के जो सुख-दुःख अर्थात् कल्पना का सुख, हों! उसके साथ इसे तन्मय (पना हो) तो उसका सुख-दुःख यहाँ वेदन हो जाये। क्या कहा, देखो!

निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,... ज्ञान, ज्ञान को जानता है। यह आया नहीं अपने? भाई! वह कलश। स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञान। ज्ञान यह और ज्ञेय पर, ऐसा नहीं। परज्ञेय को जानता है, यह तो व्यवहार हुआ और उसे जानने का जो ज्ञान अपने में हुआ अपना, उसे ज्ञेयरूप से जानता है, वह निश्चय है। आहाहा! इस कारण ज्ञान की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है,.... इस अपेक्षा से। प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है। पर के क्षेत्र में ज्ञान जाता है (और) उसे जानता है, ऐसा नहीं है। अपने प्रदेश में रहकर जानता है। दृष्टान्त दिया है।

जैसे रूपवाले पदार्थों को नेत्र देखते हैं,... नेत्र रूप को देखते हैं, रूप में तन्मय होकर देखते हैं? लो! परन्तु उन पदार्थों से तन्मय नहीं होते,.... आँख पर को जाने, अग्नि को जाने, बर्फ को जाने, लो! अग्नि में तन्मय होकर जानती है? (तन्मय होकर जाने) तब तो आँख गर्म हो जाये। आँख गर्म नहीं होती। आँख में गर्मपने का ज्ञान अपना है, वह होता है। अग्नि को जानते हुए अग्नि सम्बन्धी का स्व-अपना जो ज्ञान है, उसे जानता है। अग्नि सम्बन्धी का अपना जो ज्ञान है, उसे वह जानता है। अग्नि को

जानता है, ऐसा कहे तब तो उसके साथ, अग्नि के साथ एकमेक हो जाये, (परन्तु) ऐसा तो है नहीं। आहाहा! उसरूप नहीं होते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है, और निश्चयनय से नहीं, तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ,.... वहाँ कहा था यह। तो व्यवहारनय से सर्वज्ञ हुआ। निश्चयनयकर न हुआ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता,.... लो! इस अपेक्षा से व्यवहार कहा। अपना और पर का जानना, वह तो तन्मय है, वह अपने में है। समझ में आया? परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता है,.... वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानता है। अग्नि को जानता ज्ञान जानता है कि अग्नि भिन्न है। लोकालोक को जानता ज्ञान जानता है कि लोकालोक भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। क्या कहा यह? पर के ज्ञान का यहाँ अभाव है, इसलिए उसे व्यवहार से पर को जानता है, ऐसा कहा, ऐसा नहीं है। उसमें तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए नहीं जानता, (ऐसा कहा है)। परन्तु जानना तो तन्मय अपने में है। स्व-परप्रकाशक का... ४७ शक्ति में आया नहीं? वह आत्मज्ञ है, सर्वज्ञ है, वह आत्मज्ञ है। वह तो सर्वज्ञपना ही, आत्मज्ञपने का ही इतना सामर्थ्य है। उसे जानता है, ऐसा कहना तो व्यवहार है। परन्तु सर्वज्ञपने की पर्याय जो है, वह अपने सर्वज्ञपद को स्वयं जानती है, स्व और पर को पूर्ण जानती है। वह आत्मज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं। आहाहा! भिन्नता बताते हैं।

भिन्नता का ज्ञान होने पर भी भिन्नता के कारण नहीं। समझ में आया? भिन्न पदार्थ का ज्ञान यहाँ होता है, वह भिन्न पदार्थ है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है और भिन्न को जानता है, उसमें तन्मय होकर जानता है, ऐसा नहीं है। वह भिन्न सम्बन्धी का जो ज्ञान (होता है), वह तो अपने सामर्थ्य से हुआ अपने में होकर जाने और अपने में रहता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें।

भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। पर के ज्ञान का यहाँ अभाव है, इसलिए पर को जानता है, वह व्यवहार

कहा, ऐसा नहीं है। परसम्बन्धी के ज्ञान का तो अपने में सद्भाव है, परन्तु पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया इसमें ?

सर्वज्ञ अर्थात् कि सर्वज्ञ को जाने, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। क्योंकि सर्व को जानते हुए, सर्व चीज में वह ज्ञान स्पर्शकर, प्रवेश करके जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इस लकड़ी को ऐसे जानता है। इस लकड़ी में ज्ञान प्रवेश करके जानता है ? (—नहीं!) तथापि उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान होता है, वह तो अपने स्व-पर सामर्थ्य के कारण हुआ है। उसके कारण हुआ है, उसमें जाकर हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवेश तो है, पर्याय में प्रवेश नहीं ? यह और अलग, यह प्रश्न अलग। वह तो खबर है, इसलिए तो पहले से बात करते हैं। द्रव्य में वह तन्मय होकर जानता है, इसका अर्थ पर्याय के प्रदेश एक हैं, ऐसा गिनकर। बाकी वास्तव में तो पर्याय द्रव्य में तन्मय होकर जानती है, ऐसा नहीं। यहाँ यह बात नहीं करना। यहाँ तो पर को जानते हुए पर में उसका छूना-स्पर्श करना, स्पर्शना हुआ नहीं, इसलिए उसे व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा। परन्तु परसम्बन्धी का ज्ञान और स्वसम्बन्धी का ज्ञान, उस ज्ञान का उसमें अभाव है, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक अपने सामर्थ्य से हुआ है। समझ में आया ? अरे... अरे... ! ऐसा है। सर्वज्ञ को सिद्ध करने के लिये उसे भी उसे... आहाहा!

सर्वज्ञ, वह सर्व को जाने, सर्वज्ञ, सर्व को जाने इसलिए सर्वज्ञ, ऐसा नहीं है। सर्व को जानते हुए वह सर्वज्ञ की पर्याय पर में गयी नहीं, पर को स्पर्शी नहीं। आहाहा! परन्तु उस पर का ज्ञान यहाँ अपने से अपने द्वारा हुआ है, इसलिए तन्मय होकर जानता है, ऐसा कहकर निश्चय कहा। पर में तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहार कहा। समझ में आया ? यहाँ वापस यह नहीं लेना। यह तो मस्तिष्क में पहले से था। तन्मय कहा, तब ज्ञान की पर्याय द्रव्य को जानती है तो तन्मय होकर जानती है ? यह यहाँ अभी नहीं लेना। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। (पर्याय पर्याय में) रहकर द्रव्य को जानती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार नहीं। इस व्यवहार का अर्थ कि ये दोनों भिन्न हैं। यह और यह दो भिन्न चीज़ हैं न? इस अपेक्षा से उसे जानता है, ऐसा तन्मय से अपने असंख्य प्रदेश में है इसलिए। बाकी वास्तव में पर्याय द्रव्य में एक नहीं होती। यह तो कल बहुत बात हो गयी है। समझ में आया? यह अभी प्रश्न नहीं है। अभी तो पर को जाने, वह व्यवहार और अपने को जाने, वह निश्चय, इतना सिद्ध करना है। इस कारण से, बस इतना। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने में वह द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों आये। समझ में आया? परन्तु फिर जब दो का भेद डालना हो तो पर्याय एक समय की जो है, वह पूरा द्रव्य है, उसे जानती है। यह तो बहुत बात कल हुई थी। और इसलिए वहाँ १७-१८ में कहा न कि सबको ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य ही ज्ञात होता है। क्योंकि पर्याय का अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव का सामर्थ्य है। वह द्रव्य के कारण नहीं है। समझ में आया? वह पर्याय का, एक समय की पर्याय है, उसका सामर्थ्य स्व और पर को अपने में रहकर जानना, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म है, भाई!

अभी तो मात्र पर को जानता है, इसलिए यह व्यवहार कहा, इसलिए पर का ज्ञान यहाँ नहीं है, ऐसा नहीं है। पर का ज्ञान वह अपना ज्ञान है। स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान, वह स्व का ज्ञान है। सर्वज्ञपने का अभाव नहीं। पर सम्बन्धी का ज्ञान, वह स्वसम्बन्धी के ज्ञान का अभाव नहीं। मात्र पर को जानता है, वह तन्मय होकर नहीं, इसलिए व्यवहार कहा है परन्तु सर्वज्ञपना जो है, वह व्यवहार है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? नवरंगभाई! ऐसी बातें हैं यह सब। आहाहा! जैन परमेश्वर का कथन अलौकिक है, ऐसा अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा!

व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। देखा? अर्थात् क्या

कहा?—कि सर्व को जानता है कहना, वह तो व्यवहार है। तब सर्वज्ञ का ज्ञान यहाँ नहीं?—कि सर्व का ज्ञान, वह अपना ज्ञान यहाँ है। सर्व का ज्ञान... वह तो निमित्त है परन्तु उस सम्बन्धी का, स्वसम्बन्धी का ज्ञान पर्याय में अपने से है। वह ज्ञान का स्व-परप्रकाश का ज्ञान का अभाव नहीं है। परप्रकाशक ज्ञान का उसमें अभाव नहीं है, परवस्तु का अभाव है। समझ में आया? आहाहा! इतना सामर्थ्य का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। एक समय की पर्याय... आहाहा!

कल रह गया था। यहाँ से जाने के बाद तुम गये परन्तु मुझे याद था। अलिंगग्रहण का बीसवाँ बोल, भाई! आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। बीसवाँ बोल। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसी जो चीज़, प्रत्यभिज्ञान का कारण, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता, आलिंगन नहीं करता। उस वर्तमान पर्याय का वेदन है, उतना मात्र आत्मा है। अन्तिम (बोल)। तुम्हारे जीवाभाई ने कहा था, नहीं? गत वर्ष आये थे दर्शन करने? लोटिया वोरा। आहाहा! महाराज! लोटिया वोरा मुसलमान ९३-९४ वर्ष की उम्र, घर में वाँचन करता है। वाँचन करके दर्शन करने आया। शरीर काँपता है, इसलिए व्याख्यान में नहीं आया। सेठ! जीवाजीभाई लोटिया वोरा है, राजकोट। वह इतना वाँचन करे। ९३-९४ वर्ष की उम्र है और इतना वाँचन कि १८-१९-२० बोल का वाँचन करके घर से आये और कहे... आहाहा! क्या १८-१९-२० बोल का... कमाल कर दिया है।

क्या १८ में है?—कि आत्मा गुणविशेष को स्पर्शता नहीं, भेद को स्पर्शता नहीं। ऐसा १८वाँ बोल है। ऐसा वाँचन कर घर में मनन करके आया और ऐसा प्रसन्न हुआ ऐसा... आहाहा! यह वस्तु!! हम तो पा गये हैं, हमारे तो मोक्ष होनेवाला है, ऐसा कहे। १८वाँ बोल ऐसा है। अलिंगग्रहण अर्थात् कि अर्थावबोधरूप गुण विशेष... यह पाठ है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसे आलिंगन नहीं करता। ऐसा वह आत्मा शुद्धात्मा है। अर्थात् कि गुणी, गुण के भेद को स्पर्शता नहीं। अभेद है। भेद करना, वह तो व्यवहार हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसे आलिंगन नहीं करता, ऐसा आत्मा शुद्ध है, ऐसा पाठ है। अर्थात् कि आत्मा गुणी, वह गुण के भेद में आता नहीं। सेठ! वह वोरा ऐसा

लेकर आया। घर में वाँचकर, हों! है न, अभी है। अभी आये थे। हम गये थे न, इस बार व्यवहार का दूसरा लाया था। आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन नहीं। आज लाया था। सातवीं गाथा आती है न? आहाहा! बहुत सूक्ष्म विचारक है। पहले सुनने आता था (फिर) जंगल में ध्यान करने चला जाता। मुसलमान लोटिया वोरा। आत्मा है या नहीं?

इसलिए पहला बोल यह है कि अर्थावबोधरूप गुणविशेष को आत्मा आलिंगन नहीं करता, ऐसा वह शुद्ध आत्मा अभेद है। १९, अर्थावबोधरूप पर्याय विशेष... अब पर्याय आयी। उसे नहीं आलिंगन करता, ऐसा आत्मा शुद्धात्मा है। आहाहा!

फिर तीसरा प्रत्यभिज्ञान का कारण यह है... है... है... है... है... है... आत्मा ध्रुव है, प्रत्यभिज्ञान का कारण वह है... है... है... है... उसे आत्मा नहीं आलिंगन करता पर्यायमात्र है। अनुभव में पर्याय आती है, द्रव्य अनुभव में नहीं आता। वेदन में तो पर्याय आती है। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है परन्तु वेदन में पर्याय है। अनुभव है वह द्रव्य, गुण का—ध्रुव का अनुभव नहीं हो सकता। समझ में आया या नहीं कुछ? वेदन में तो पर्याय ही आती है। केवली को भी पर्याय का वेदन है, द्रव्य-गुण का (वेदन) नहीं होता। द्रव्य-गुण का ज्ञान हो परन्तु वेदन द्रव्य-गुण का नहीं। आहाहा! देखो न, एक न्याय तो देखो! ओहोहो!

आनन्द के अनुभव में वेदन पर्याय का है, तथापि उस ज्ञान की पर्याय में द्रव्य और गुण का ज्ञान है परन्तु द्रव्य-गुण का वेदन नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय में पूरे द्रव्य का अनन्त गुण की पिण्ड वस्तु का उसमें ज्ञान है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य-गुण का वेदन नहीं। आहाहा! सेठ! वह लोटिया वोरा लेकर आया। घर में अभ्यास करता है। (संवत्) १९८९ के वर्ष से व्याख्यान में आता है। १९८९ के वर्ष। व्याख्यान में हमेशा (आवे)। दो, तीन व्यक्ति (आते थे)। एक बेचारे गुजर गये। दो लोटिया वोरा थे। लड़कों को भी... घर में पूरे दिन यह बात किया करे। यह बात किया करे। लड़के हैं, परन्तु उन्हें भी... आहाहा! गजब बात! अब यहाँ बनियों को खबर नहीं होती। उनके घर में है, जैन में जन्मा। १९८९ के वर्ष, १९८९ के वर्ष में वस्त्र दिया। १९८९ के वर्ष में वस्त्र दिया। तब बाहर का था न। गाँव नहीं? राजकोट से कौन सा गाँव? यह तुम्हारे पिता का था। मोहनभाई का था तब। उन

मोहनभाई का, हों! यह नहीं। वे मोहनभाई। मोहन दामोदर थोराळा १९८९ में उठे तब थोराळे भाई का मोहनलाला दामोदर का जीमण था। बहुत लोग आये थे, बहुत, थोराळा तब वहाँ जीवाजीभाई आये थे और कपड़ा देने का कहा। फिर लिया या नहीं खबर नहीं। तब १९८९ के वर्ष में। देखो! यह तीन बोल वाँचकर लेकर आये। अलिंगग्रहण का वहाँ घर में वाँचन किया। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय की ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य पूरे द्रव्य को जाने, पूरे लोकालोक को जाने। स्वप्रकाशक रूप से द्रव्य को जाने, परप्रकाशकरूप से लोकालोक (जाने)। वह भी स्व-परप्रकाशक का सामर्थ्य अपना है, पर के कारण नहीं। वह पर का ज्ञान हुआ, इसलिए पर के कारण हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, परन्तु लोगों को निवृत्ति कहाँ है निर्णय करने की? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ... आहाहा! जिन्हें इन्द्र, गणधर सुनते हैं। आहाहा! चौदह पूर्व और बारह अंग की अन्तर्मुहूर्त में गणधर ने रचना की, वह गणधर भी सुनने बैठते हैं। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, यहाँ कोई प्रश्न करता है, कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है, और निश्चयनय से नहीं, तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर न हुआ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता,... इतना सिद्ध करना है। भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। पर को अपने ज्ञान का जहाँ अभाव है, स्व का ही ज्ञान है और पर का ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं है। आत्मा को स्व का ही ज्ञान है और पर का नहीं, ऐसा नहीं है। कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। देखा? आहाहा! ज्ञान की पर्याय में निज पूरा द्रव्य, गुण, पर्याय और पर लोकालोक, यह पूरा अस्तित्व है, यहाँ पूरा यह अस्तित्व है। दोनों का ज्ञान तो समान है। आहाहा! निज और पर का समान है। अर्थात्? निज का ज्ञान भी अपने में है और पर का ज्ञान अपने से हुआ, वह अपने में है, समान है वहाँ। निज का ज्ञान और परसम्बन्धी का अपना ज्ञान, यह दोनों समान है। यह तो पर

में प्रवेश नहीं करता, इसलिए पर को जानता नहीं, पर को जाने, वह व्यवहार कहा। पर में प्रवेश नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। आहाहा! और वास्तव में तो लोकालोक की अस्ति है, इसलिए ज्ञान की पर्याय में परप्रकाशकपना, ज्ञान आया, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी, दामनगर। १९८३ में। वीरजीभाई और ... दामोदर सेठ कहे, लोकालोक है तो यहाँ ज्ञान की पर्याय उसके जानने की हुई। ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय का ही सामर्थ्य ऐसा है, स्व को और पर को जानने का समान सामर्थ्य है, ऐसा कहा न? पर को जानने के लिये पर की हस्ति है, इसलिए जानता है, (ऐसा नहीं है)। अरे! द्रव्य को जानने के लिये द्रव्य की अस्ति है, इसलिए पर्याय जानती है, ऐसा भी नहीं है। पर्याय का ही इतना सामर्थ्य है। स्व को जानना और पर को जानना दोनों समान सरीखे अपने से हैं। आहाहा! गिरधरभाई! यह कहाँ कभी विचार भी कहीं किया है सब? ऐसे के ऐसे संसार की मजदूरियाँ की हैं। एक तो सेठिया और वापस कार्यकर्ता! फँस गये अन्दर, हो गया। क्या कहा?

मुमुक्षु : कीचड़-कीचड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीचड़ है, बात सच्ची है। तो भी सब भाग्यशाली हैं। आहाहा!

क्या कहा? देखो! **निज और पर का समान है।** यह क्या कहा?—कि अपना ज्ञान होता है और पर का ज्ञान, वह अपने से समान बराबर है। ऐसा नहीं कि पर है, इसलिए यहाँ होता है। यह अपना और पर का ज्ञान अपने सामर्थ्य से अपने में है। आहाहा! नवरंगभाई! एक बार मगनभाई उपाश्रय में ऐसा बोले थे, (संवत्) १९८९ के वर्ष। कौन जाने उनके मुख में से कैसे ऐसा निकल गया कि यह तुम्हारा नया श्रावक आया। ऐसा बोले थे। तुमको खबर नहीं होगी। उपाश्रय में बोले थे। १९८९ के वर्ष। उन्हें इस समय कौन जाने ऐसी भाषा आयी। मुझे बराबर याद है। (ऐसा बोले थे कि) यह तुम्हारा श्रावक आया। मैंने कहा, ठीक! यह तो तुम्हारा पुत्र है। १९८९ की बात है, हों! एक बार आहार लेने गये थे। उस ओर रहते थे। खबर है? पहले अन्यत्र रहते थे। आगे कहीं माणेकचौक की उस ओर रहते थे। आहार लेने गये थे। आहाहा! १९८९ की बात है। पहले की बात है।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! ज्ञानकर निज का और पर का जानपना समान है। आहाहा! अर्थात्? स्वयं अपने ज्ञान में तन्मय होकर जानता है, वैसे पर सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान है, वह उसमें तन्मय होकर उसे जानता है, पर में तन्मय होकर नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? वीतरागमार्ग... बापू! ज्ञानकर जानपना, ज्ञानकर जानना, वह तो निज और पर का समान है। इतने शब्दों में कितना समाहित कर दिया है, देखा? स्वयं ही द्रव्य, गुण, पर्याय है, उसे जानता है, ऐसे पर के लोकालोक को द्रव्य, गुण, पर्याय त्रिकाल है, उसे जानता है, वह जानना तो समान ही है। स्व का और पर का जानना अपने में समान है। पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। इसलिए परसम्बन्धी का अपना जो ज्ञान है, उसका अभाव नहीं। आहाहा! सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञपना है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आत्मज्ञ ही ऐसी स्थिति है कि स्व और पर को जानने की स्थितिवाला आत्मज्ञपना सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! स्पष्टीकरण कैसा है, देखा!

ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है,.... देखा? वैसा ही पर को भी (सन्देह रहित) जानता है,.... परसम्बन्धी का ज्ञान निःसन्देह अपने में है, ऐसा कहते हैं। पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं समझना,.... पर को जानना, ऐसा व्यवहार कहा, इसलिए परसम्बन्धी का यहाँ ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं है। वह परसम्बन्धी का ज्ञान, वह अपना ज्ञान यहाँ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है, बापू! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

इसलिए राग को ज्ञान जानता है, उसे सद्भूत उपचार व्यवहारनय कहा। चार नय कहे न? सद्भूत उपचारनय, सद्भूत अनुपचारनय, असद्भूत उपचारनय, असद्भूत अनुपचारनय। राग है, वह ख्याल में आवे, इतना राग, उसे असद्भूत उपचार कहा, और उस समय राग का भाग ख्याल में आने के पीछे, ख्याल में आया नहीं, उसे असद्भूत अनुपचार कहा। परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ है। उसका ज्ञान, उसका ज्ञान वह सब असद्भूत भी उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने में होता है, वह तो अपने से हुआ है। समझ में आया? आहाहा! अर्थात्? दो हुए।

तीसरा। राग को ज्ञान जाने, ऐसा जो सद्भूत उपचार प्रमाण का, उस प्रमाण को भी सद्भूत उपचार कहा। राग को जाने, वह सद्भूत उपचार और ज्ञान, वह आत्मा, वह

सद्भूत अनुपचार। परन्तु वह उपचार कहा, परन्तु जानने की जो पर्याय हुई है, राग को जानने की, अनुपचार को जानने की, उपचार को (जानने की)। वह पर्याय स्वयं से हुई है। आहाहा! यह चैतन्य-सूर्य भगवान चैतन्य तेज इसका है, जिसके चैतन्य के नूर के तेज प्रकाश का पूर पड़ा है। आहाहा! जिसके आभास से पर्याय में ऐसा भास हुआ स्व का और पर का। वह अपनी चीज़ है, कहते हैं। वह पर के कारण नहीं। समझ में आया? कहो, सेठ! यह समझ में आये ऐसा है। भाषा तो सादी है, भाव भले ऊँचे। भगवानदास की अपेक्षा इनको अधिक रस है। निवृत्ति लेते हैं। बापू! यह करनेयोग्य है। बाकी तो क्या है, यह सब खबर नहीं? आहाहा! ओहोहो!

कहते हैं, जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है, वैसा ही पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं.... पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु पर सम्बन्धी का ज्ञान है, इसमें सन्देह नहीं। वह अपना ज्ञान है। आहाहा! भाई! विषय जरा सूक्ष्म आ गया। ऐसी बात है। जितना इसका अस्तित्व सामर्थ्य है, उतना इसे ख्याल में आना चाहिए न! क्या कहा, समझ में आया? ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व का सामर्थ्य इतना है कि स्व और पर को जानने का अपने से अपने कारण से है। ऐसा उस पर्याय का सामर्थ्य है। उस पर्याय को माना तब कहलाये कि जितना उसका सामर्थ्य है, उस रीति से माने तो माना कहलाये। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन कहा न? सम्यक् अर्थात् जैसा सत् का स्वरूप द्रव्य, गुण, पर्याय का है, उस प्रकार से सम्यक् प्रतीति हो, जैसा है, उस प्रकार से प्रतीति हो तो वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

लेकिन निज स्वरूप से तो तन्मयी है, और पर से तन्मयी नहीं। लो, ठीक। और जिस तरह निज को तन्मयी होकर निश्चय से जानता है,.... यही स्पष्टीकरण वहाँ किया है। उसी तरह यदि पर को भी तन्मय होकर जाने, तो पर के सुख, दुःख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो,.... जाये। ज्ञान की पर्याय पर के सुख, दुःख में तन्मय होकर जाने तो यहाँ (सुखी, दुःखी हो जाये)। सुख अर्थात्? सांसारिक सुख, हों! इन्द्रिय के सुख की बात है। इन्द्रिय के सुख-दुःख को तन्मय होकर जाने तो यहाँ इन्द्रिय के सुख में आत्मा आ जाये। समझ में आया? तो यहाँ राग-द्वेष हो जाये। पर के राग-द्वेष को तन्मय होकर जाने तो राग-द्वेष यहाँ आ जाये। आहाहा! अग्नि में तन्मय

होकर जाने तो ज्ञान गर्म हो जाये। बर्फ को तन्मय होकर जाने तो ज्ञान ठण्डा हो जाये, गर्म-ठण्डा तो जड़ की अवस्था है, स्पर्श की अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई!

सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। ज्ञान पर को जानते हुए यदि पर में तन्मय हो तो ज्ञान में सुख-दुःख और राग-द्वेष हो जाये, तो ऐसा है नहीं। आहाहा! पापी के परिणाम ज्ञान जाने परन्तु वे पापी के परिणाम हैं, इसलिए जानता है, ऐसा नहीं है। वह अपने सामर्थ्य से जानता है। उसे स्पर्श किये बिना, उसकी अस्ति है, इसलिए जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी इसकी अस्ति का सामर्थ्य है। सत्... सत्... सत्... समझ में आया?

सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। यहाँ जिस ज्ञान से सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है,.... लो! आहाहा! जो ज्ञान उपादेय सर्वव्यापक कहकर सर्व अर्थात् सर्व को जानना, ऐसा। व्यापक का अर्थ (यह है)। जो ज्ञान सर्व को जानने का कहा, व्यापक का यह अर्थ है। वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है,.... आहाहा! उस ज्ञान को उपादेय जानने से अतीन्द्रिय आनन्द आये बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो सर्वव्यापक अर्थात् स्व और पर को जानने का जो पर्यायधर्म, ऐसा जो ज्ञान, उसे जानते हुए वह उपादेय है। वह उपादेय अर्थात् उसके सन्मुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा, अतीन्द्रिय आनन्द द्वारा, उसे उपादेय किया, तब उपादेय हुआ, तब अतीन्द्रिय आनन्द साथ में है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कैसे कहा?—कि भाई! ऐसा-ऐसा आत्मा स्व-परप्रकाशक... उसे उपादेय किया। उपादेय कब होता है? वह शुद्धरूप से अन्दर परिणमे तब। तब उसे आनन्द साथ में आता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उपादेय धारणा में किया, वह अलग (चीज़) और उपादेयरूप परिणमित हुआ, वह अलग चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! उपादेयरूप से परिणमे, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वहाँ स्वभाव में ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द शामिल है। अर्थात् उस ज्ञान को जहाँ उपादेयरूप से परिणति से हुआ, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द साथ में आया। आहाहा! समझ में आया?

वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान.... आहाहा! सुखरूप वह ज्ञान है, ऐसा कहा न? कौन सा (ज्ञान)? निजपर का परिणति का जो ज्ञान, अपना ज्ञान, उसे जहाँ उपादेयरूप से करने जाता है, तब उसे अतीन्द्रिय सुख से अभिन्न होने से वह ज्ञान सुखरूप परिणमता है। वह ज्ञान आनन्दरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है,.... क्योंकि अन्तर में ज्ञान और आनन्द अभिन्न है तो अन्तर में निर्मल परिणति द्वारा जहाँ उस ज्ञान का आदर किया तो साथ ही ज्ञान और आनन्द साथ में आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कल कहा था न? नहीं? २९ कलश। अशुद्ध परिणति का अभाव, वहाँ शुद्ध परिणति का सद्भाव। शुद्ध परिणति भी हो और अशुद्ध परिणति भी साथ में हो, (ऐसा नहीं)। जैसा अशुद्धपना अनादि का है वैसा का वैसा रहे और शुद्ध परिणति हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! २९ कलश में (आया है)। २८ में मरणप्राप्त (आया)। आहाहा! अर्थात्?—कि अकेले पुण्य-पाप के राग की अस्ति को स्वीकारनेवाला पूरा तत्त्व है, उसे यह मार डालता है, अनादर करता है। पुण्य के दया-दान के, व्रत के परिणाम शुभ हैं, इतनी अस्ति का स्वीकार करनेवाला त्रिकाली आनन्द का नाथ है, उसका अस्वीकार करे, अर्थात् मरणतुल्य कर डालता है। ऐई! आहाहा! ऐसा है। यह २८ में आया, २९ में यह आया।

स्वभाव अनन्त आनन्द आदि इसका स्वभाव है, इसका जो आदर के, तब उसकी शुद्ध परिणति हुए बिना आदर हो सकता ही नहीं। उस समय अशुद्ध परिणति रहे नहीं। अस्थिता की रहे, वह यहाँ प्रश्न नहीं। शुद्ध परिणति में, जो अशुद्ध परिणति मिथ्यात्व सहित की थी, (वह होती नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है,.... आहाहा! जिस ज्ञान में निज और पर का जानने का समानरूप से अपना अपने से हुआ है... आहाहा! ऐसे ज्ञान को आदर करनेवाला, वह आनन्द से खाली नहीं होता। क्योंकि ज्ञान और आनन्द अभिन्न है। मणियार! यह ऐसी बातें हैं। वे तो (कहे), एकेन्द्रिय की दया पालो और यह करो। आहाहा! कल अमरचन्दजी का आया है। अमरचन्दजी का उसमें आया होगा। है न एक अमरचन्द श्वेताम्बर है। आता है, पहले यहाँ आता था। फिर तो श्वेताम्बर का,

दिगम्बर का पृथक् पड़ा, वह उसे अच्छा नहीं लगा। श्रीमद् दोनों एक सरीखे कहते हैं और तुम अलग करते हो। अमरचन्द्र, कल पत्र आया है। वह आया होगा न कि पर की दया, पूजा, यह सब शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं, वह तो नुकसान करनेवाला है।

मुमुक्षु : अचेतन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अचेतन। तुम दया, दान के परिणाम को अचेतन कहते हो। राग है न? अचेतन कहते हो (तो) दुनिया को डुबा दोगे। यह ज्यादा सयाना हुआ है। पहले आता था। फिर जब श्वेताम्बर, दिगम्बर का अलग पड़ा न कि वे दोनों एक नहीं। वास्तव में तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी अन्यमति हैं, जैनमति नहीं। ऐई! टोडरमलजी ने कहा है।

मुमुक्षु : टोडरमलजी ने कहा इसलिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वस्तुस्थिति ऐसी है इसलिए। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न, '....' कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। '....' वस्त्र का टुकड़ा जिसे नहीं और जिसे तीन कषाय के अभाव की दशा प्रगट हुई है, ऐसे नग्न का मोक्ष है। इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है—ऐसा कहा। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। अब तो ४३ वर्ष हुए अब। समझ में आया ? आहाहा!

यह अभिप्राय जानना। लो! यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि जिस ज्ञान में स्व और पर को जानने का पर के सम्बन्ध बिना, पर की अस्ति के स्वीकार बिना अपनी ही इतनी अस्ति का स्वीकार है, वह ज्ञान आदरणीय है। समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म पड़े, पोपटभाई! मार्ग यह है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा!

इस दोहा में जीव को ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत कहा है। लो! यह सिद्ध किया। ज्ञान की अपेक्षा से, जानने की अपेक्षा से सर्वगत कहा परन्तु फैलने की अपेक्षा से सर्वगत नहीं कहा। लो! समय हो गया, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५३

अथ येन कारणेन निजबोधं लब्ध्वात्मन इन्द्रियज्ञानं शनास्ति तेन कारणेन जडो भवतीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति -

५३) जे णिय-बोह-परिट्टियहँ जीवहँ तुट्टइ णाणु।
इंदिय-जणियउ जोइया तिं जिउ जडु वि वियाणु॥५३॥
येन निजबोधप्रतिष्ठितानां जीवानां त्रुटयति ज्ञानम्।
इन्द्रियजनितं योगिन् तेन जीवं जडमपि विजानीहि॥५३॥

येन कारणेन निजबोधप्रतिष्ठितानां जीवानां त्रुटयति विनश्यति। किं कर्तृ। ज्ञानम्। कथंभूतम्। इन्द्रियजनितं हे योगिन् तेन कारणेन जीवं जडमपि विजानीहि। तद्यथा। छद्मस्थानां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिकाले स्वसंवेदनज्ञाने सत्यपीन्द्रियजनितं ज्ञानं नास्ति, केवलज्ञानिनां पुनः सर्वदैव नास्ति तेन कारणेन जडत्वमिति। अत्र इन्द्रियज्ञानं हेयमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः॥५३॥

आगे आत्म-ज्ञान को पाकर इन्द्रिय-ज्ञान नाश को प्राप्त होता है, परमसमाधि में आत्मस्वरूप में लीन है, परवस्तु की गम्य नहीं है, इसलिये नयप्रमाणकर जड़ भी है, परन्तु ज्ञानाभावरूप जड़ नहीं है, चैतन्यरूप ही है, अपेक्षा से जड़ कहा जाता है, यह अभिप्राय मन में रखकर गाथा-सूत्र कहते हैं -

आत्म ज्ञान में लीन जीव का इन्द्रिय ज्ञान नष्ट होता।
हे योगी! इसलिए जीव को भी जड़रूप कहा जाता॥५३॥

अन्वयार्थ :- [येन] जिस अपेक्षा [निजबोधप्रतिष्ठितानां] आत्म-ज्ञान में ठहरे हुए [जीवानां] जीवों के [इन्द्रियजनितं ज्ञानम्] इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ ज्ञान [त्रुटयति] नाश को प्राप्त होता है, [हे योगिन्] हे योगी, [तेन] उसी कारण से [जीवं] जीव को [जडमपि] जड़ भी [विजानीहि] जानो।

भावार्थ :- जिस अपेक्षा आत्म-ज्ञान में ठहरे हुए जीवों के इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ ज्ञान नाश को प्राप्त होता है, हे योगी, उसी कारण से जीव को जड़ भी जानो। महामुनियों के वीतरागनिर्विकल्प-समाधि के समय में स्वसंवेदनज्ञान होने पर भी

इन्द्रियजनित ज्ञान नहीं है, और केवलज्ञानियों के तो किसी समय भी इन्द्रियज्ञान नहीं है, केवल अतीन्द्रिय ज्ञान ही है, इसलिये इन्द्रिय-ज्ञान के अभाव की अपेक्षा आत्मा जड़ भी कहा जा सकता है। यहाँ पर बाह्य इन्द्रियज्ञान सब तरह हेय है और अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है, यह सारांश हुआ।।५३।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण ३, बुधवार
दिनांक-१४-०७-१९७६, गाथा-५३-५४, प्रवचन-३४

परमात्मप्रकाश, ५३ गाथा। आगे आत्म-ज्ञान को पाकर इन्द्रिय-ज्ञान नाश को प्राप्त होता है, परमसमाधि में आत्मस्वरूप में लीन है, परवस्तु को गम्य नहीं है,... इस अपेक्षा से उसे जड़ कहा जाता है। है? इसलिए नयप्रमाणकर जड़ भी है, परन्तु ज्ञानाभावरूप जड़ नहीं है,... आहाहा! ज्ञान के अभावस्वरूप जड़ नहीं है। परन्तु इन्द्रियज्ञान की गम्यता नहीं। अपने स्वरूप में समाधि, शान्ति में लीन है, वहाँ इन्द्रियगम्य का ज्ञान नहीं है, इसलिए उसे इस अपेक्षा से जड़ कहा जाता है।

(५३) जे णिय-बोह-परिद्वियहँ जीवहँ तुट्टइ णाणु।

इंदिय-जणियउ जोइया तिं जिउ जडु वि वियाणु ॥५३ ॥

अन्वयार्थ :- जिस अपेक्षा आत्म-ज्ञान में ठहरे हुए... आत्मज्ञान में स्थिर हुए जीवों के इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ ज्ञान... 'त्रुट्यति' नाश को प्राप्त होता है,... आत्मज्ञान में स्थिर होने से इन्द्रियज्ञान रहता नहीं। आहाहा! हे योगी, उसी कारण से जीव को जड़ भी जानो। इस अपेक्षा से जड़, हों! ज्ञान के अभाव-अपेक्षा से नहीं। परन्तु इन्द्रियज्ञान के अभाव की अपेक्षा से जड़ कहा जाता है।

भावार्थ :- महामुनियों के वीतरागनिर्विकल्प-समाधि के समय में स्वसंवेदनज्ञान होने पर भी इन्द्रियजनित ज्ञान नहीं है,... आहाहा! महामुनियों को वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय में। क्योंकि वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप प्रभु आत्मा है। त्रिकाल, हों! उसके समीप में उसका आश्रय लेकर वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय स्वसंवेदनज्ञान अपना ही ज्ञान है वहाँ तो। इन्द्रियज्ञान नहीं। आहाहा! और केवलज्ञानियों

के (तो) किसी समय भी इन्द्रियज्ञान नहीं है,... यह दूसरी बात ली। दो बातें लीं। आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप में लीन (होता है), तब उसे इन्द्रियज्ञान नहीं। केवलज्ञानी को इन्द्रियज्ञान है ही नहीं। केवली को केवल अतीन्द्रियज्ञान ही है, इसलिए इन्द्रियज्ञान के अभाव की अपेक्षा आत्मा जड़ भी कहा जाता है। यहाँ पर इन्द्रियज्ञान सब तरह हेय है... बाह्य इन्द्रियज्ञान है, वह हेय है। वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा! भावेन्द्रिय ज्ञान को ज्ञान ही कहा नहीं। ज्ञायकभाव त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से भावेन्द्रिय का ज्ञान, उसे परज्ञेय में डालकर वह खण्ड-खण्ड बतलानेवाला ज्ञान, उसे आत्मा के ज्ञान में मिलाया नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए इन्द्रियज्ञान हेय है। भावेन्द्रिय से ज्ञात हो, वह ज्ञान हेय है, ऐसा कहते हैं। जड़ तो जड़ है। भावेन्द्रिय से एक-एक विषय ज्ञात हो, वह इन्द्रियज्ञान, वह ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलाता है; इसलिए वह इन्द्रियज्ञान हेय है। समझ में आया?

अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है। भावेन्द्रिय, जड़इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय, तीनों से हटकर 'णाणसहावाधियं' तीनों से भिन्न ज्ञानस्वभाव पृथक् परिपूर्ण है। उसका ज्ञान, उसे अतीन्द्रियज्ञान कहते हैं। वह अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो ग्यारह (अंग) और नौ पूर्व की लब्धिरूप ज्ञान होता है, परन्तु वह सब इन्द्रियज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! टिका नहीं रहता न? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप है। उसके ज्ञान में से ज्ञान आवे, वह अतीन्द्रियज्ञान, वह टिकता ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि वह टिकती चीज़ नहीं, परन्तु नाशवान है। इसलिए भगवान आत्मा श्रद्धास्वरूप ही पूरा है। ज्ञान में कहा। ज्ञानस्वरूप ही पूर्ण, इन्द्रियज्ञान से भिन्न वह अतीन्द्रियज्ञान, वही आत्मज्ञान और उसका ही भान, वह अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है। आहाहा! इन्द्रिय से होता अंग-पूर्व का ज्ञान या ग्यारह अंग का ज्ञान भी हेय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि वास्तविक श्रद्धा नहीं है, वह हेय है।

त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली श्रद्धास्वरूप है। त्रिकाली सम्यग्दर्शनस्वरूप ही वह पूरा है। पर्याय की व्याख्या बाद में। ऐसा सम्यग्दर्शन जो त्रिकाल के आश्रय से प्रगट होता है, वह सम्यग्दर्शन अतीन्द्रिय है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सब इन्द्रियज्ञान

की श्रद्धा है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप ही है। उसके आश्रय से जो ज्ञान होता है, वह अतीन्द्रिय कहलाता है। बाकी पराश्रय से जितना हो... आहाहा! यह सुनकर, पढ़कर (हो), वह सब इन्द्रियज्ञान है। आहाहा!

इसलिए इन्द्रियज्ञान के अभाव की अपेक्षा आत्मा जड़ भी कहा जा सकता है। यहाँ पर बाह्य इन्द्रियज्ञान सब तरह हेय है... लो! सब तरह हेय है... आहाहा! जड़ इन्द्रिय निमित्त है। भावेन्द्रिय से होता ज्ञान हेय है। समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार में तो नहीं कहा? भाई! ३४-३५ (गाथा)। क्षयोपशमज्ञान से बस होओ। हमारे इस ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। वहाँ तक बात ली है। आहाहा! हमारा भगवान हमारी श्रद्धा, हमारे भगवान के आश्रय से श्रद्धा हुई है। भगवान के आश्रय में लीनता है, हमारे विशेष क्षयोपशम के ज्ञान की कुछ आवश्यकता नहीं है। देखो न! किसका निषेध किया! कहाँ तक का ऐसा कि, आहाहा! है? अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो इन्द्रियज्ञान हेय (कहते हैं)। आहाहा! वह सब क्षयोपशम का बाह्य आश्रय से ही होता है, उसके साथ मुझे क्या काम है? भगवान पूर्ण ब्रह्म चिदानन्दस्वरूप के आश्रय से हुआ ज्ञान, वह अतीन्द्रिय, वह उपादेय है। क्योंकि उसमें अतीन्द्रिय आनन्द के साथ ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बात है। जड़ कहकर मूल तो यह कहा। इन्द्रियज्ञान की कीमत निकाल दी। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को ऐसा होता है न, अपने यह शास्त्र पढ़े, इसलिए अपने को कुछ ज्ञान है। ओहोहो! समझ में आया? उस ज्ञान की कीमत ही यहाँ नहीं गिनी। भगवान आत्मा अतीन्द्रियज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से हुआ जो ज्ञान, वह नित्यानन्द में से आया हुआ है। नित्यानन्द नित्य ज्ञान में से आया हुआ है। आहाहा! वह ज्ञान त्रिकाली उपादेय है और उस पर्याय का ज्ञान, वह भी उपादेय है। इस अपेक्षा से उसे जड़ कहा। देखा!

गाथा - ५४

अथ शरीरनामकर्मकारणरहितो जीवो न वर्धते न च हीयते तेन कारणेन मुक्तश्चरम-
शरीरप्रमाणो भवतीति निरूपयति -

५४) कारण-विरहितु सुद्ध-जिउ वड्ढइ खिरइ ण जेण।

चरम-सरीर-पमाणु जिउ जिणवर बोल्लहिं तेण॥५४॥

कारणविरहितः शुद्धजीवः वर्धते क्षरति न येन।

चरमशरीरप्रमाणं जीवं जिनवराः ब्रुवन्ति तेन॥५४॥

कारणविरहितः शुद्धजीवो वर्धते क्षरति हीयते न येन कारणेन चरमशरीरप्रमाणं मुक्तजीवं
जिनवरा भणन्ति तेन कारणेनेति। तथाहियद्यपि संसारावस्थायां हानिवृद्धिकारणभूत-
शरीरनामकर्मसहितत्वाद्धीयते वर्धते च तथापि मुक्तावस्थायां हानिवृद्धिकारणाभावाद् वर्धते
हीयते च नैव, चरमशरीरप्रमाण एव तिष्ठतीत्यर्थः। कश्चिदाहमुक्तावस्थायां प्रदीपवदावरणाभावे
सति लोकप्रमाणविस्तारेण भाव्यमिति। तत्र परिहारमाह-प्रदीपस्य योऽसौ प्रकाशविस्तारः स
स्वभावज एव न त्वपरजनितः पश्चाद्भाजनादिना साद्यावरणेन प्रच्छादितस्तेन कारणेन तस्यावरणा-
भावेऽपि प्रकाशविस्तारो घटते एव। जीवस्य पुनरनादिकर्मप्रच्छादितत्वात्पूर्वं स्वभावेन विस्तारो
नास्ति। किंरूपसंहारविस्तारो। शरीरनामकर्मजनितौ। तेन कारणेन शुष्कमृत्तिकाभाजनवत् कारणा-
भावादुपसंहारविस्तारौ न भवतः। चरमशरीरप्रमाणेन तिष्ठतीति। अत्र य एव मुक्तौ शुद्धबुद्ध-
स्वभावः परमात्मा तिष्ठति तत्सदृशो रागादिरहितकाले स्वशुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः॥५४॥

आगे शरीरनामा नामकर्मरूप कारण से रहित यह जीव न घटता है, और न बढ़ता
है, इस कारण मुक्त-अवस्थामें चरम-शरीर से कुछ कम पुरुषाकार रहता है, इसलिये
शरीरप्रमाण भी कहा जाता है, ऐसा कहते हैं -

नामकर्म बिन शुद्ध जीव में वृद्धि हानि नहीं होती।

इसीलिए जिनदेव जीव को चरम शरीर प्रमाण कहे॥५४॥

अन्वयार्थ :- [येन] जिस हेतु [कारणविरहितः] हानि-वृद्धि का कारण शरीर
नामकर्म से रहित हुआ [शुद्धजीवः] शुद्धजीव [न वर्धते क्षरति] न तो बढ़ता है, और न
घटता है, [तेन] इसी कारण [जिनवराः] जिनेन्द्रदेव [जीवं] जीव को [चरमशरीरप्रमाणं]
चरमशरीरप्रमाण [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

भावार्थ :- यद्यपि संसार अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण शरीरनामा नामकर्म है, उसके संबंध से जीव घटता है, और बढ़ता है; जब महामच्छ का शरीर पाता है, तब तो शरीर की वृद्धि होती है, और जब निगोदिया शरीर धारता है, तब घट जाता है और मुक्त अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण जो नामकर्म उसका अभाव होने से जीव के प्रदेश न तो सिकुड़ते हैं, न फैलते हैं, किन्तु चरमशरीर से कुछ कम पुरुषाकार ही रहते हैं, इसलिये शरीरप्रमाण हैं, यह निश्चय हुआ। यहाँ कोई प्रश्न करे, कि जब तक दीपक के आवरण है, तब तक तो प्रकाश नहीं हो सकता, और जब उसके रोकनेवाले का अभाव हुआ, तब प्रकाश विस्तृत होकर फैल जाता है, उसी प्रकार मुक्ति अवस्था में आवरण का अभाव होने से आत्मा के प्रदेश लोक-प्रमाण फैलने चाहिये, शरीर-प्रमाण ही क्यों रह गये? उसका समाधान यह है, कि दीपक के प्रकाश का जो विस्तार है, वह स्वभाव से होता है, पर से नहीं उत्पन्न हुआ, पीछे भाजन आदि से अथवा दूसरे आवरण से आच्छादन किया गया, तब वह प्रकाश संकोच को प्राप्त हो जाता है, जब आवरण का अभाव होता है, तब प्रकाश विस्ताररूप हो जाता है, इसमें संदेह नहीं और जीव का प्रकाश अनादिकाल से कर्मों से ढका हुआ है, पहले कभी विस्ताररूप नहीं हुआ। शरीर-प्रमाण ही संकोचरूप और विस्ताररूप हुआ, इसलिये जीव के प्रदेशों का प्रकाश संकोच विस्ताररूप शरीरनामकर्म से उत्पन्न हुआ है, इस कारण सूखी मिट्टी के बर्तन की तरह कारण के अभाव से संकोच-विस्ताररूप नहीं होता, शरीरप्रमाण ही रहता है, अर्थात् जबतक मिट्टी का बर्तन जल से गीला रहता है, तबतक जल के सम्बन्ध से वह घट बढ़ जाता है, और जब जल का अभाव हुआ, तब बर्तन सूख जाने से घटता बढ़ता नहीं है-जैसे का तैसा रहता है। उसी तरह इस जीव के जबतक नामकर्म का संबंध है, तबतक संसार-अवस्था में शरीर की हानि-वृद्धि होती है, उसकी हानि-वृद्धि से प्रदेश सिकुड़ते हैं और फैलते हैं। तथा सिद्ध-अवस्था में नामकर्म का अभाव हो जाता है, इस कारण शरीर के न होने से प्रदेशों का संकोच विस्तार नहीं होता, सदा एक से ही रहते हैं। जिस शरीर से मुक्त हुआ, उसी प्रमाण कुछ कम रहता है। दीपक का प्रकाश तो स्वभाव से उत्पन्न है, इससे आवरण से आच्छादित हो जाता है। जब आवरण दूर हो जाता है, तब प्रकाश सहज ही विस्तरता है। यहाँ तात्पर्य है, कि जो शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव परमात्मा मुक्ति में तिष्ठ रहा है, वैसा ही शरीर में भी विराज रहा है। जब राग का अभाव होता है, उस काल में यह आत्मा परमात्मा के समान है, वही उपादेय है।॥५४॥

गाथा - ५४ पर प्रवचन

अब ५४ (गाथा) ।

वे लोग सर्वव्यापक कहते हैं न ? शरीरप्रमाण ही आत्मा है, यह सिद्ध करना है । भले उसे ऐसा कहा था, निश्चयनय से लोकप्रमाण है, टीका में नहीं, इन्होंने डाला है । ५० गाथा में । व्यवहारनय से देहप्रमाण और निश्चयनय से लोकप्रमाण । ऐसा है न ? यह टीका में ऐसा नहीं है । है ? टीका में ऐसा नहीं है । परन्तु उन्हें यह सिद्ध करना है कि नियतप्रदेशत्वशक्ति है न ? ४७ (शक्तियों) में । नियतप्रदेशत्व । असंख्य प्रदेश नियत है, वे । लोकप्रमाण व्यापे, ऐसा यहाँ नहीं । समझ में आया ? लोकप्रमाण आवरण टले तो व्यापे, ऐसा नहीं । क्योंकि... यह कहेंगे । यह ज्ञान कभी विकास पाया नहीं था कि संकोच हुआ है । संकोच में ही अनादि से है । क्या कहा ? यहाँ दीपक का दृष्टान्त देंगे । आहाहा ! देखो !

आगे शरीरनामा नामकर्मरूप कारण से रहित यह जीव न घटता है, और न बढ़ता है, इस कारण मुक्त-अवस्था में चरमशरीर से कुछ कम पुरुषाकार रहता है, इसलिए शरीरप्रमाण भी कहा जाता है,... इस अपेक्षा से शरीरप्रमाण । शरीर के प्रमाण में किंचित् न्यून प्रमाण में वहाँ रहता है । है लोकप्रमाण असंख्य प्रदेशी । अर्थात् संख्या इतनी है, परन्तु लोकप्रमाण विस्तरे, वह निश्चय—ऐसा नहीं है । समझ में आया ? क्योंकि लोकप्रमाण विस्तार प्राप्त आत्मा कभी है ही नहीं । इसलिए आवरण टालने पर भी जितने प्रमाण में—शरीरप्रमाण में है, उतने ही प्रमाण में रहेगा । समझ में आया ? यहाँ यह सिद्ध करते हैं । आहाहा ! वहाँ भी शरीरप्रमाण रहता है । आवरण टल गये, इसलिए असंख्य प्रदेशी है, वह असंख्य प्रदेश चौड़ा हो, ऐसा नहीं । समझ में आया ? निश्चय असंख्य प्रदेशी, वह तो असंख्य प्रदेश नियत है, ऐसा निश्चय । परन्तु असंख्यप्रदेशी है, इसलिए आवरण टलने से असंख्य प्रदेश में ऐसे चौड़ा हो, ऐसा उसका स्वरूप है ही नहीं, ऐसा सिद्ध करना है । शरीरप्रमाण सिद्ध करना है न ? आहाहा ! समझ में आया ? नियतप्रदेशशक्ति है न ४७ में ? वह नियतप्रदेश अर्थात् असंख्य प्रदेश नियत—निश्चय है, इस अपेक्षा से यहाँ कहा था । परन्तु वे असंख्य प्रदेश निश्चय है, इसलिए असंख्य

प्रदेश, आवरण टलने से चौड़े हो जायें, ऐसा नहीं है। वह तो आवरण टलने पर भी शरीर प्रमाण ही रहेंगे। न्याय समझ में आता है कुछ? आहाहा! देखो! ५४।

(५४) कारण-विरहिउ सुद्ध-जिउ बुड्ढइ खिरइ ण जेण ।

चरम-सरीर-पमाणु जिउ जिणवर बोललिहँ तेण ॥५४ ॥

देखा! भले 'कारण-विरहिउ' आवरण समाप्त हो जाये, तो भी वह शरीरप्रमाण ही रहेगा। असंख्य प्रदेश हैं। लोकप्रमाण उसके असंख्य प्रदेश हैं। वे तो संख्या से इतने नियत प्रदेश हैं। परन्तु आवरण टलने से लोकप्रमाण व्याप जायें, ऐसा उनका स्वरूप है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अन्वयार्थ :- जिस हेतु हानि-वृद्धिरूप कारण शरीर नामकर्म से रहित... देखा! आवरणरहित शुद्ध जीव न तो बढ़ता है और न घटता है, इसी कारण जिनेन्द्रदेव जीव को चरमशरीरप्रमाण कहते हैं। देखो! आहाहा! मुक्त में भी अत्यन्त आवरण गया तो भी देहप्रमाण ही वहाँ है। आवरण गया, इसलिए असंख्य प्रदेश लोक में व्याप जाये, उसे असंख्य प्रदेशी कहना, ऐसा नहीं है। सर्वगत से विरुद्ध कहना है न। आहाहा! समझ में आया? गिरधरभाई! ऐसी अलग-अलग बातें हैं इसमें। उसमें लिखा है कि लोकप्रमाण निश्चय से। टीका में नहीं। मात्र उसे नियतप्रदेश है न, इतना वहाँ लिखना था। नियतप्रदेश अर्थात् असंख्य प्रदेश लोक जितने। यह निश्चय ऐसा। परन्तु निश्चय का अर्थ ऐसा नहीं कि असंख्य प्रदेश चौड़े हों तो वह निश्चय, व्याप जाये तो निश्चय, ऐसी यहाँ व्याख्या नहीं है। समझ में आया? आहाहा! वह सर्वगत कहते हैं न? उसकी अपेक्षा से असंख्य प्रदेशी सर्वगत है। सर्वगत इतना हो सकता है ऐसा। परन्तु आवरण टले, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है। वह तो आवरण टले तो भी शरीरप्रमाण ही रहेगा। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कि आवरण है वहाँ तक हानि-वृद्धि, हानि-वृद्धि क्षेत्र से, हों! प्रदेश तो इतने के इतने (रहते हैं)। शरीर के प्रमाण में हजार (योजन का) मच्छ (होता है), अंगुल के असंख्य भाग में आवरण अर्थात् हानि-वृद्धि होती है। परन्तु आवरण गये तो लोकप्रमाण होता है या नहीं? नहीं। वह शरीरप्रमाण ही रहेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलीसमुद्घात...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग वस्तु हुई। वह तो दूसरी बात। वह कहीं लोकाकाश प्रमाण हुआ है, निश्चय से (ऐसा नहीं है)। तो निश्चय ऐसा का ऐसा रहना चाहिए। समझ में आया? लोकालोक प्रमाण असंख्य प्रदेशी है और लोकालोक प्रमाण हो, तो निश्चय (कहलाये), तब तो वह कायम ऐसा रहना चाहिए। वह निश्चय नहीं रहा।

विशिष्टता यहाँ रखी है। चरम शरीर प्रमाणं। भले आवरण टल जाये, आवरण रहे नहीं। आवरण की स्थिति में हानि-वृद्धि हो। छोटा, व्यापक, निगोद का, मच्छ में (उस-उस शरीरप्रमाण होता है)। और आवरण टलने के बाद शरीरप्रमाण रहे। आवरण टलने के बाद लोकाकाशप्रमाण व्याप जाये, ऐसा नहीं है। समुद्घात का कहा, वह तो उसका व्यवहार हुआ। निश्चय नहीं हुआ। आहाहा! निश्चय तो कायम एकरूप रहे, उसे निश्चय कहते हैं। तो शरीरप्रमाण कायम रहता है। संसार में भी और सिद्ध में भी शरीरप्रमाण ही रहता है। भले शरीर नहीं परन्तु शरीर (प्रमाण रहता है)। समझ में आया? शरीर भले नहीं। उसका प्रश्न (नहीं)। यहाँ शरीर है तो भी अपने कारण से हानि-वृद्धि है और वहाँ नहीं तो भी स्वयं के कारण से इतने प्रमाण में—देहप्रमाण में रहते हैं। वह स्वयं के कारण से है। आहाहा! न्याय समझ में आता है कुछ? वे सर्वगत कहते हैं, उनके सामने यह न्याय की दलील दी है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक, बापू!

नियतप्रदेशत्वशक्ति, वह इसका गुण है। ४७ गुण में नियतप्रदेशत्वशक्ति है। संसार की अपेक्षा में संकोच-विस्तार हो और अन्त में स्थिति चरमशरीर प्रमाण रहे। वहाँ यह अर्थ है। नियतप्रदेश है न! यह शक्ति है, गुण है। जो अनादि संसार से लेकर संकोच-विस्तार से लक्षित है... हानि-वृद्धि इसमें कहा न! और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित होता है, ऐसा लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म-अवयवत्व जिसका लक्षण है, ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति। शरीरप्रमाण ही सदा है। यहाँ हानि-वृद्धि पावे तो वह शरीर के प्रमाण में अपनी (पाता है)। यहाँ शरीर रह गया तो भी शरीरप्रमाण ही है। असंख्य प्रदेश, इसलिए व्यापना हो जाये, यह निश्चय, ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! देखो!

भावार्थ :- यद्यपि संसार-अवस्था में हानि-वृद्धि... देखो! इसमें आया। संकोच-

विकास आया। शरीरनामा नामकर्म है, उसके सम्बन्ध से जीव घटता है, और बढ़ता है;... संकोच-विकास होता है। निगोद के शरीर में ऐसे अवगाहन थोड़ा हो जाता है। एक हजार योजन का मच्छ (हो) तो बड़ा अवगाहन व्यापे। परन्तु वह सब शरीरप्रमाण। उसके सम्बन्ध से जीव घटता है, और बढ़ता है; जब महामच्छ का शरीर पाता है,... देखो! तब तो शरीर की वृद्धि होती है,... एक हजार योजन। ओहोहो! और जब निगोदिया शरीर धारता है... अँगुल का असंख्य भाग। अँगुल के असंख्य भाग में भी वह शरीरप्रमाण रहा। यहाँ हानि-वृद्धि पावे तो वह शरीर के प्रमाण में अपनी। वहाँ शरीर रह गया (अभाव हो गया) तो भी शरीरप्रमाण ही है, उनके असंख्य प्रदेश हैं, इसलिए व्यापना हो जाये, यह निश्चय ऐसा यहाँ नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो!

संसार-अवस्था में हानि-वृद्धि... देखो! इसमें आया, संकोच-विकास आया। शरीरनामा नामकर्म है, उसके सम्बन्ध से जीव घटता है, और बढ़ता है;... संकोच-विकास होता है। निगोद के शरीर में ऐसे अवगाहन थोड़ा हो जाये। एक हजार योजन का मच्छ (हो, उसमें) बड़ा अवगाहन व्यापे। परन्तु वह सब शरीरप्रमाण। आहाहा! उसके सम्बन्ध से जीव घटता है, और बढ़ता है; जब महामच्छ का शरीर पाता है, तब तो शरीर की वृद्धि होती है,... एक हजार योजन। ओहोहो! और जब निगोदिया शरीर धारता है... अँगुल के असंख्य भाग में। अँगुल के असंख्य भाग में भी वह शरीरप्रमाण ही रहा। मुक्त अवस्था में... देखा! निगोदिया शरीर धारता है, तब घट जाता है और मुक्त अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण जो नामकर्म उसका अभाव होने से जीव के प्रदेश न तो सिकुड़ते हैं, फैलते हैं,... संकुचित होता नहीं और विस्तार होता नहीं। किन्तु चरमशरीर से कुछ कम पुरुषाकार ही रहते हैं, लो! इसलिए शरीरप्रमाण है, यह निश्चय हुआ। व्यापे तो वह निश्चय है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

यहाँ कोई प्रश्न करे कि जब तक दीपक के आवरण है,... दीपक को आवरण है, तब तक तो प्रकाश नहीं हो सकता, और जब उसके रोकनेवाले का अभाव हुआ, तब प्रकाश विस्तृत होकर फैल जाता है... दीपक का। दीपक का प्रकाश ऐसे सर्वत्र फैल जाता है। आवरण है, वह (हटने पर) फैल जाता है। विस्तृत होकर फैल जाता है, उसी प्रकार मुक्ति अवस्था में आवरण का अभाव होने से... लो! आत्मा के प्रदेश

लोक-प्रमाण फैलने चाहिए,... यह प्रश्न निश्चय का करता है। शरीरप्रमाण ही क्यों रह गये ?

उसका समाधान यह है कि दीपक के प्रकाश का जो विस्तार है, वह स्वभाव से होता है,... उसका स्वभाव ही ऐसा है। आवरण हो तो इतने प्रमाण में ऐसे जाये तो ऐसे प्रकाश हो। पर से नहीं उत्पन्न हुआ, पीछे भाजन आदि से अथवा दूसरे आवरण से आच्छादन किया गया, तब वह प्रकाश संकोच को प्राप्त हो जाता है, जब आवरण का अभाव होता है, तब प्रकाश विस्ताररूप हो जाता है,... उसका स्वभाव है यह तो। इसमें सन्देह नहीं और जीव का प्रकाश अनादि काल से कर्मों से ढँका हुआ है... देखो! आहाहा! कभी विस्तार था, प्रकाश फैला हुआ था और संकोच हुआ है, ऐसा नहीं है। दीपक का तो स्वभाव ही ऐसा प्रकाश फैले, ऐसा है। समझ में आया? यह सब युक्ति और बनियों को यह समझना। आहाहा!

जीव का प्रकाश अनादि काल से... इतने में शरीरप्रमाण ही वह है। कर्मों से ढँका हुआ है, पहले कभी विस्ताररूप नहीं हुआ। दीपक का स्वभाव तो प्रकाशरूप है। उसे कभी विस्तार हुआ है और फिर संकोच हुआ है, पूरे लोकप्रमाण हो गया है और फिर शरीरप्रमाण रहा है—ऐसा नहीं है। आहाहा! न्याय समझ में आता है? यह द्रव्यसंग्रह में भी लिया है। जीव का प्रकाश अनादि काल से कर्मों से ढँका हुआ है, पहले कभी विस्ताररूप नहीं हुआ। शरीरप्रमाण ही संकोचरूप और विस्ताररूप हुआ है,... देखो! शरीरप्रमाण ही संकोच और विस्तार (हुआ है)। विस्तार हुआ हजार योजन का यह शरीरप्रमाण (हुआ)। संकोच हुआ अँगुल के असंख्य भाग में (तो भी) वह शरीरप्रमाण। कभी लोकप्रमाण विस्तार हो गया था, ऐसा कभी बना नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! शरीरप्रमाण सिद्ध करने के लिये (इतनी बात करते हैं)।

दीपक का प्रकाश तो स्वाभाविक ही है। ऐसा फैलाव और संकुचित होना, वह तो उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसी प्रकार जीव का स्वभाव ऐसा नहीं कि आवरण जाये तो लोकप्रमाण व्याप जाये। ऐसा नहीं है। क्योंकि अनादि से शरीरप्रमाण ही इसका संकोच है। शरीरप्रमाण ही है। हानि-वृद्धि हो तो शरीर के प्रमाण में। वह स्वयं के कारण से। और मुक्त अवस्था में भी शरीरप्रमाण ही वह रहा है। अन्तिम चरमशरीर है,

उसके प्रमाण में रहा है। मुक्त हो गया है, इसलिए फैल जाये, ऐसा कभी फैला हुआ स्वभाव नहीं था कि फैल जाये। असंख्य प्रदेशी उसका स्वभाव सही। समझ में आया? ऐसे....

मुमुक्षु : हमारे क्या उपयोग ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि तू शरीरप्रमाण है, ऐसा निर्णय कर। चौड़ा (होकर) कभी बाहर गया नहीं, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार यह इसके काम का है। अर्थात् ? कि इसे जब ध्यान करना पड़े, तब ऐसा होता है, ऐसे अन्दर जाते हैं। ऐसे जाता नहीं। किस काम का है ? नवरंगभाई! आहाहा! यदि ऐसे चौड़ा हो तो उसे ऐसे जाना चाहिए। ऐसा नहीं। यह शरीरप्रमाण ही चौड़ा है। जिससे इसे ध्यान करना हो तो वहाँ मुड़ना पड़ता है, इतने में, बाहर में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुद्दे की ही बात है। समझ में आया? उस रजनीश का एक बार आया था। इतना बड़ा फोटो। वह ऐसे व्यापक मानता है न! अज्ञान मूढ़ है। बड़ा फोटो आया था। मानो ऐसे व्यापक हो न, ऐसा। धूल भी नहीं, सुन न! त्रिकाल यह आत्मा शरीरप्रमाण ही रहता है। आवरण टले तो भी शरीरप्रमाण की चौड़ाई स्वयं के कारण से, वह अपना ही कारण ऐसा है। आहाहा! नियतप्रदेशत्वशक्ति में आ गया न!

मुमुक्षु : असंख्य प्रदेशी जीव व्यापता है, यह ख्याल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में नहीं। असंख्यप्रदेशी आकृति नहीं, आकृति ख्याल में कहाँ आवे। इससे तो स्पष्टीकरण किया है न! रहस्यपूर्ण चिट्ठी में स्पष्टीकरण किया है। उसे आकार नहीं दिखता। उसे आकार देखने का नहीं। उसे भाव देखने का है, भाव। अखण्ड परिपूर्ण भाव। बस, ज्ञायकभाव, श्रद्धाभाव, आनन्दभाव, चारित्रभाव, वीतरागभाव वह कोई भी भावस्वरूप पूरा परिपूर्ण है।

मुमुक्षु : भाव भी असंख्यात प्रदेश में फैला हुआ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असंख्यात प्रदेश में फैला हुआ, उस प्रदेश का यहाँ काम नहीं। उसे असंख्य प्रदेश दिखाई दे, इसका काम नहीं। वह ऐसे जाता है तो यह असंख्य प्रदेश

में ही होता है इतना। क्या कहा, समझ में आया? यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में स्पष्टीकरण किया है। केवली को पूर्ण निरावरण असंख्य प्रदेश दिखते हैं। तो यहाँ कुछ थोड़े तो निरावरण दिखते हैं या नहीं? ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह स्पष्टीकरण कहाँ किया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रहस्यपूर्ण चिट्ठी। क्या कहा यह? यही आया, देखो! यह दृष्टान्त प्रदेश की अपेक्षा से नहीं है... देखो! है? इसमें (३५५) पृष्ठ है। देखो! (प्रश्न है)। आत्मा को प्रत्यक्ष जाने तो कर्मवर्गणाओं को प्रत्यक्ष कैसे न जाने? यही कहा है कि आत्मा को प्रत्यक्ष तो केवली ही जानते हैं, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानता है। और तुमने लिखा कि दूज के चन्द्रमा की भाँति आत्मा के प्रदेश थोड़े खुल्ले हैं, ऐसा कहो।

उत्तर :—यह दृष्टान्त प्रदेश की अपेक्षा से नहीं है परन्तु गुण की अपेक्षा से है। है? स्याद्वाद अष्टसहस्री का श्लोक है न, उसके बाद। उस श्लोक के बाद है। श्लोक के बाद दूसरा पेरोग्राफ। यह दृष्टान्त प्रदेश की अपेक्षा से नहीं है परन्तु गुण की अपेक्षा से है। इस प्रकार सम्यक्त्व सम्बन्धी तथा अनुभव सम्बन्धी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षादि के जो प्रश्न तुमने लिखे थे, उनका प्रत्युत्तर मेरी बुद्धि अनुसार लिखा है। यह इतना ही है। समझ में आया? आत्मा को प्रत्यक्ष तो केवली ही जानते हैं,... दूज के चन्द्र की भाँति आत्मा के प्रदेश थोड़े खुल्ले हैं, ऐसा कहो। ऐसा नहीं है। प्रदेश खुल्ले हैं या अधिक, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। प्रदेश तो असंख्य प्रदेश में ही इतना गुण का उघाड़ है। आहाहा! उसे कहा है न आगे? तीन दृष्टान्त दिये हैं न! यह कहीं है अवश्य। यह तीन अंश जो कहे। देखो! यहाँ।

तुमने जो दृष्टान्त लिखे अथवा दृष्टान्त द्वारा प्रश्न लिखे, परन्तु दृष्टान्त सर्वांग मिलते नहीं हैं। दृष्टान्त हैं वे एक प्रयोजन दर्शाते हैं। यहाँ दूज का चन्द्र, जलबिन्दु, अग्निक्वण—यह तो एकदेश है और पूर्णिमा का चन्द्र, महासागर तथा अग्निक्वण्ड—यह सर्वदेश है, इसी प्रमाण चौथे गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट हुए हैं... गुण एकदेश प्रगट हुए हैं। समझ में आया? थोड़े प्रदेश इसमें से दिखते हैं, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! काम कितने किये हैं, देखो न! सब क्या कहलाते हैं यह? टोडरमल... टोडरमल। जीते टोडरमल, नहीं आता अपने यहाँ? विवाह में (गाते हैं)

‘अेळे बांधीने लाव्या...’ ऐसा कुछ कहते हैं। ‘गाडे बेसाडी ने हेडे लाव्या ने जाळे जीत्या टोडरमल।’ स्त्री को विवाह करके लाते हैं न! ‘गाडे नाखीने हेड लाव्या ने जाळे जीत्या टोडरमल।’ यह आता है। यह तो सब पढ़ा था न। स्त्री विवाह करके लाये, हेड लाये अब। भाई ने तो यहाँ तक कहा, नहीं? भाई हुकमचन्दजी। हुकमचन्दजी ने उसमें डाला है। ‘महावीर का व्यक्तित्व और (कर्तृत्व)’ क्या कहा? कर्तृत्व। महावीर का कर्तृत्व और व्यक्तित्व। आया है न? अपने आत्मधर्म में यह आया है। उसमें यह डाला है, स्त्री से विवाह किया तो सब दुर्घटना शुरु हो गयी अब। क्योंकि एक तो उसे प्रसन्न रखने के लिये, अमुक करने के लिये, ढींकणा करने के लिये मन्थन चलेगा। उन्होंने लिखा है। बात सच्ची। हुकमचन्दजी बात जो स्पष्ट करे, वह बहुत सरस स्पष्ट करते हैं। हुकमचन्दजी का क्षयोपशम बहुत। हुकमचन्दजी की पण्डिताई बहुत। सब पण्डितों को पानी भरावे, ऐसा है अभी। तथापि बेचारा निर्मान है, निर्मान। हुकमचन्दजी। उन्होंने ऐसा लिखा है, महावीर ने विवाह नहीं किया। विवाह किया होता तो, स्त्री को लाये होते तो पाप की घटनायें एक के बाद एक उसे खड़ी करना ही पड़े। दूसरा कोई उपाय नहीं होता। आहाहा! ऐई! यह दुर्घटना भगवान को बनी नहीं, ऐसा कहा है। ‘व्यक्तित्व और कर्तृत्व’ में लिखा है। उनकी पुस्तक थी इसमें यह है न, ऐसी छोटी है, फोटोवाली।

मुक्ति अवस्था में आवरण का अभाव होने से आत्मा के प्रदेश लोकप्रमाण फैलने चाहिए,... शिष्य का प्रश्न है। शरीरप्रमाण ही क्यों रह गये? उसका समाधान यह है कि दीपक के प्रकाश का जो विस्तार है, वह स्वभाव से होता है, पर से नहीं उत्पन्न हुआ, पीछे भाजन आदि से अथवा दूसरे आवरण से आच्छादन किया गया, तब वह प्रकाश संकोच को प्राप्त हो जाता है, जब आवरण का अभाव होता है, तब प्रकाश विस्ताररूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं और जीव का प्रकाश अनादि काल से कर्मों से ढँका हुआ है,... अर्थात्? यह तो निमित्त से बात की है। परन्तु ऐसा इस प्रकार का शरीरप्रमाण का शरीर का प्रदेश का प्रमाण स्वयं के कारण से है। वह तो कर्म के निमित्त की बात हुई। शरीरप्रमाण होना, छोटे-बड़े प्रमाण में (होना), वह भी अपनी योग्यता से होता है। नामकर्म तो निमित्त है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे लोटे में पानी हो, लोटे में पानी। जैसा लोटा हो, वैसा पानी का आकार होता है, परन्तु वह पानी का आकार लोटे के कारण से नहीं है। काशीघाट का। आहाहा! आत्मा में प्रदेश स्वयं रहे हैं, वे इस शरीर के कारण से नहीं, कर्म के कारण से नहीं। अपने आकार की पर्याय की योग्यता ही इतनी है। आहाहा!

जीव का प्रकाश अनादिकाल से कर्मों से ढँका हुआ है,... अर्थात् कि जीव का असंख्य प्रदेशी विस्तार कभी हुआ नहीं, ऐसा। असंख्य प्रदेशी विस्तार कभी हुआ नहीं। पहले कभी विस्ताररूप नहीं हुआ। देखा! सिद्धान्त तो यह सिद्ध करना है न! असंख्य प्रदेश का पहले कभी विस्तार हुआ था, ऐसा कभी हुआ नहीं। शरीरप्रमाण ही संकोचरूप और विस्ताररूप हुआ,... आहाहा! देखो न! न्याय सिद्ध करते हैं। इसलिए जीव के प्रदेशों का प्रकाश संकोच-विस्ताररूप शरीरनामकर्म से उत्पन्न हुआ है, इस कारण सूखी मिट्टी के बर्तन की तरह... सूखी हुई मिट्टी-बर्तन हो न? कारण के अभाव से संकोच-विस्ताररूप नहीं होता,... मिट्टी का सूखा बर्तन है, उसमें संकोच-विकास होगा? गीला हो, तब तक (होता है)। उसमें आवरण गया तो ऐसा का ऐसा असंख्य प्रदेश में रह गया। समझ में आया? सूखी मिट्टी फिर संकोच पाती नहीं तथा विस्तार पाती नहीं; इसी प्रकार मुक्त अवस्था में असंख्य प्रदेशी जैसा आकार है, जितना शरीरप्रमाण (है वह) उतना का उतना रहता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं।

सर्वगत को लोक में व्यापे तो सर्वगत कहते हैं, ऐसा नहीं। यह तो उसकी शक्ति इतनी है कि असंख्य प्रदेश नियत प्रदेश लोकप्रमाण है, परन्तु इसका विस्तार कभी लोकप्रमाण हुआ है, ऐसा कभी हुआ नहीं। वह तो अनादि से शरीर के प्रमाण ही उसके संकोच-विकास की आकृति रही है। मुक्त-अवस्था में भी शरीरप्रमाण ही उसकी आकृति रहती है। आवरण गया, इसलिए असंख्य प्रदेश फैल जाते हैं, ऐसा नहीं। रतिभाई! ऐसी बातें हैं। बनिये को जरा बुद्धि फैलानी पड़े, ऐसा है इसमें। बनियों को धन्धा यह। पूरे दिन वह का वह और कपड़े का धन्धा... उसमें कुछ लम्बा... दाने का धन्धा, लोहे का धन्धा हो।

मुमुक्षु : पूरी दुनिया में कपड़े का क्या भाव है यह जानना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या भला हुआ? क्या भाव से लाये थे और इसमें

कितना खपा और कितना बाकी, अभी भाव कितना ? ऐसे हजारों चीजों की त्रिपट्टी का ख्याल होता है। हमारे आणन्दजी था, उसे सब ख्याल था। दुकान में माल...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें क्या हुआ ? उसमें है क्या ? साधारण बात है।

यह तो भगवान का ज्ञान है, उसे अन्दर पकड़ना, ऐसी उसे सीख-बुद्धि चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वह तो इन्द्रियज्ञान है। आहाहा ! निगोद में से निकला, अक्षर के अनन्तवें भाग (ज्ञान) था और यहाँ राग की मन्दता करके नौ पूर्व (का जानपना) हुआ। लो ! परन्तु वह तो इन्द्रियज्ञान है। वह वापस ढँक जायेगा। यहाँ से निकलकर जायेगा, हो गया। जाओ ! आहाहा ! यहाँ ऐसा नहीं, ऐसा कहना है।

यहाँ तो असंख्य प्रदेश जो क्षेत्र है, वह कभी असंख्य प्रदेश चौड़े हुए थे विस्ताररूप से तो उसे आवरण जाने के बाद चौड़े हों, ऐसा नहीं है। आहाहा ! दीपक का प्रकाश तो पहले से विस्तार पाता हुआ ही उसका स्वभाव है। इसी प्रकार आत्मा के असंख्य प्रदेश का कभी चौड़ा विस्तार हुआ है, फिर ढँक गया और उसके जाने के बाद चौड़ा हुआ, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? शरीरप्रमाण ही है, बस। भले सिद्ध में कुछ थोड़ा (न्यून हो), परन्तु वह शरीरप्रमाण न्यून होता है, ऐसा। आहाहा ! देखो !

शरीरप्रमाण ही रहता है, अर्थात् जब तक मिट्टी का बर्तन जल से गीता रहता है, ... बर्तन जब तक पानी से गीता रहता है, जब तक जल के सम्बन्ध से वह घट-बढ़ जाता है, ... गीला बर्तन हो, वहाँ तक बढ़े-घटे। ऐसे थपाट मारते हैं न ? तो घट जाये और पानी अधिक डालने से फूल जाये। जब तक जल के सम्बन्ध से वह घट-बढ़ जाता है, ... घट और बढ़ दोनों लेना है न ? जब जल का अभाव हुआ, तब बर्तन सूख जाने से घटता-बढ़ता नहीं है- देखा ! दृष्टान्त कैसा दिया है ! सूखा बर्तन होने के बाद घटता-बढ़ता नहीं है। आहाहा ! जैसे का तैसा रहता है।

उसी तरह इस जीव के जब तक नामकर्म का सम्बन्ध है, तब तक संसार-अवस्था में शरीर की हानि-वृद्धि होती है, ... उस पानी के दृष्टान्त से। उसकी हानि-

वृद्धि से प्रदेश सिकुड़ते हैं और फैलते हैं। तथा सिद्ध-अवस्था में नामकर्म का अभाव हो जाता है, इस कारण शरीर के न होने से प्रदेशों का संकोच-विस्तार नहीं होता,... आहाहा! संकोच-विस्तार तो उसकी योग्यता से होता था। फिर वह योग्यता समाप्त हो गयी। तत्प्रमाण रह गया। सूखा बर्तन जैसा है, वैसा रह गया। मुक्त अवस्था में सादि-अनन्त शरीर के आकार प्रमाण से किंचित् न्यून, परन्तु आकार तो शरीरप्रमाण रहा। चौड़ा हो गया है, ऐसा है नहीं। ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! उसमें सिद्ध करने में वापस असंख्य प्रदेश सिद्ध (करते हैं)। वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ के अतिरिक्त असंख्य प्रदेशी जीव, ऐसी व्याख्या सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं।

इसलिए श्रीमद् में भी आता है न? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहे, कर विचार तो पाम।' शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञान का घन। शुद्ध बुद्ध। चैतन्यघन—वहाँ यह असंख्य प्रदेश लिये हैं। समझ में आया? शुद्ध है, पवित्र है, बुद्ध है, ज्ञानपिण्ड है, ज्ञान का घन और चैतन्यघन वह है। असंख्य प्रदेशी, चैतन्य का असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है। स्वयं ज्योति—अपने से ज्योति है। उसका कोई कर्ता नहीं, स्वयंसिद्ध सत् है। सुखधाम है। आनन्द का वह क्षेत्र है। आहाहा! भगवान आनन्द का धाम है। जिसमें से आनन्द अंकुर फूटे, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? उस चैतन्यघन में प्रदेश डाले हैं। अन्यत्र कहीं यह बात नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवाय (कहीं नहीं है)।

श्वेताम्बर में प्रदेश लिये हैं, परन्तु दोनों में फेरफार है। दिगम्बर में और उनमें बहुत बड़ा फेरफार है। लोकाकाश के प्रदेश और उसमें बड़ा अन्तर है। समझ में आया? इसमें भी अन्तर है। ३७० राजुघन है न? दिगम्बर में कहा है, वह वस्तु की यथार्थता है। उन्होंने (श्वेताम्बरों ने) कहा उसमें मिलान नहीं खाता। उसमें वह अपने को... है। आया है, ग्रन्थ में आया है। वह मिलान नहीं खाता। ३४३ राजु प्रमाण। अपने यहाँ एक पुस्तक है न? है उसमें यह। खबर है, यह सब देखा है। जीव के प्रदेश की संख्या जो यह कहते हैं, उतनी ही उसे नहीं। फेरफार है। क्योंकि पूरे लोक के प्रदेश में फेर हुआ तो उसे आत्मा के प्रदेश में फेर (अन्तर आवे)। सब फेरफार है। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की ध्वनि से आया हुआ सत् का प्रवाह है। आहाहा! कोई भी बोल न्याय से कहीं कमजोर नहीं होता। जो चीज़ है, उसकी सिद्धि होती है। आहाहा!

शरीर के न होने से प्रदेशों का संकोच-विस्तार नहीं होता,... संकोच तो नहीं परन्तु विस्तार भी नहीं, ऐसा। कर्म गया, इसलिए असंख्य प्रदेश का विस्तार हो जाये, (ऐसा नहीं है)। सूखी मिट्टी रही, अब उसे विस्तार हो, ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं। आहाहा! सदा एक से रहते हैं। जिस शरीर से मुक्त हुआ,... देखा! उसी प्रमाण कुछ कम रहता है। दीपक का प्रकाश तो स्वभाव से उत्पन्न है,... स्वभाव से ही उत्पन्न है। इससे आवरण से आच्छादित हो जाता है। जब आवरण दूर हो जाता है, तब प्रकाश सहज ही विस्तरता है। ऐसा यहाँ नहीं। दीपक का प्रकाश तो सहज ही स्वभाव से ही फैला हुआ है। समझ में आया? आवरण रखो तो इतने में दिखता है। आवरण निकाल दो तो विस्तार (हो जाता है)। ऐसा इसमें नहीं है।

आत्मा के असंख्य प्रदेश कभी विस्तार पाकर लोकप्रमाण हो गये हैं और अब उन्हें आवरण है, ऐसा नहीं। अनादि से असंख्य प्रदेश शरीरप्रमाण आकार से रहे हैं। आहाहा! इसलिए आकार टलने पर भी शरीरप्रमाण ही उनका रहना रहता है। लोक में व्याप जाये, ऐसा उनका स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दीपक का स्वभाव (प्रकाश) स्वाभाविक चौड़ा है। उसी प्रकार जीव के प्रदेश का चौड़ापन स्वभाव से लोक में व्यापे, ऐसा कभी है नहीं—ऐसा कहते हैं। इसलिए दीपक के प्रकाश को आवरण में इतना संकोच (होता है), आवरण टलने पर विस्तार (होता है), वह तो उसका स्वरूप—स्वभाव है। इसका ऐसा स्वभाव नहीं। आहाहा! इसके असंख्य प्रदेश चौड़े थे, विस्तार प्राप्त थे और उन्हें आवरण के निमित्त से संकोच में आये, तो आवरण जाने पर वे विस्तार पा जायें, ऐसा है नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा ने असंख्य प्रदेशी उनके शरीरप्रमाण हैं, ऐसा कहने को यह सिद्धि करते हैं। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। ऐसा अन्तर डालकर बतलाते हैं। आहाहा!

यहाँ तात्पर्य है, जो कोई शुद्ध बुद्ध... लो, कितनी गाथा? ५४। शुद्ध बुद्ध स्वभाव।

मुझे तो यह देखना था, एक शब्द है या नहीं इसमें। इसमें नहीं। वरना अन्यत्र है, शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। अपने दो-तीन जगह आया। इन्होंने अर्थ 'एक' नहीं किया। यहाँ तो शुद्ध बुद्ध स्वभाव, बस इतना लेना है। इसमें शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। **शुद्ध बुद्ध स्वभाव परमात्मा मुक्ति में तिष्ठ रहा है,...** आहाहा! शुद्ध बुद्ध स्वभाव परमात्मा मुक्ति में (विराजते हैं), वैसा ही शरीर में भी विराज रहा है। आहाहा! जिनस्वरूपी ही भगवान अन्दर यहाँ है। आहाहा! ज्ञान से देखो तो ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु, श्रद्धा से देखो तो, शक्ति की श्रद्धा, हों! प्रगट की नहीं, तो भी पूरा श्रद्धास्वरूप ही—सम्यग्दर्शनस्वरूप ही पूरा (परिपूर्ण है), चारित्र से देखो तो वीतरागस्वरूप ही पूरा है। आनन्द से देखो तो पूर्ण आनन्दस्वरूप है। पुरुषार्थ से देखो तो पूर्ण पुरुषार्थ है। स्वच्छता से देखो तो पूर्ण स्वच्छ है। ईश्वरता से देखो तो पूर्ण ईश्वर है। आहाहा! समझ में आया ?

शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव... वह ज्ञानस्वभाव लिया है न। इस प्रकार सब भाव लेना। ज्ञान की प्रधानता है न! जाननेवाला ज्ञान है, इसलिए उसे मुख्य लिया। दूसरे गुण जानते नहीं, अस्ति धराते हैं। यह गुण तो अस्ति धराते हैं और जानते हैं। दूसरे गुण अस्ति धराते हैं परन्तु अपने को जानते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध है परन्तु बुद्ध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्ध नहीं, बुद्ध तो ज्ञान ही है। आहाहा!

(ज्ञान) स्वभाव परमात्मा मुक्ति में तिष्ठ रहा है, वैसा ही शरीर में विराज रहा है। आहाहा! जिन सो ही जिनवर और जिनवर सो ही जिन। आता है। समयसार नाटक में। जिनवर और जीव में कोई अन्तर नहीं। जिनवर पर्याय से प्रगट हुए हैं, यह शक्ति से पूरा जिनवर ही है। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु उसे भरोसे में आना चाहिए न! समझ में आया ? है, ऐसा इसे भरोसे में आना चाहिए न! जब तक न आवे, तब तक है—ऐसा कहाँ आया इसे ? आहाहा! जो सम्यग्दर्शनस्वरूप ही पूरा है, वह है, इसे पर्याय में भरोसा आवे, तब वह है—ऐसा इसे आया। आहाहा! समझ में आया ? इसी प्रकार पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ (कि) यह है। पर्याय भले अल्प एक समय की, परन्तु ऐसा पूरा है, ऐसा ज्ञात हुआ, तब इसे पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा हुआ।

है की—है की प्रतीति कब हो ? है सन्मुख झुकी हुई प्रतीति, उसमें है की प्रतीति होती है। आहाहा! समझ में आया ? यह आनन्दस्वरूप है, भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसा आनन्दस्वरूप है, ऐसा इसे कब हो ? कि पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द से आनन्दस्वरूप है, ऐसा जाने तब हो। आहाहा! समझ में आया ? यह तो परमात्मप्रकाश, जिनवरदेव की वाणी है, भाई! वे सन्त जब इसके उकेल करते होंगे... आहाहा! केवली के मुख से निकले, उसकी तो बात ही क्या करना!

वैसा ही शरीर में (भी) विराज रहा है। वैसा ही... आहाहा! जब राग का अभाव होता है, उस काल में यह आत्मा परमात्मा के समान है, वही उपादेय है। भाषा क्या कही ? क्या की यह ? जब दृष्टि में से राग का अभाव करे, उस काल में यह आत्मा परमात्मा के समान है,... ऐसा जानने में आया। आहाहा! जब राग का अभाव करके परिणति को अन्दर में झुकाया, उस समय आत्मा परमात्मा के समान उपादेय हुआ। आहाहा! इसे उपादेय हुआ। समझ में आया ?

मुमुक्षु :परमात्मा प्रगट हो गया है, ऐसा कहना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट है, ऐसा यहाँ तो अभी कहना है। उपादेय लेना है न यहाँ! उपादेय किसे ? उसकी ओर परिणति मुड़कर जिसने अनुभव किया, उसे उपादेय है, ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी यह बात नहीं। यह तो बहुत जगह इसमें आता है। उपादेय कब ? उपादेयरूप से जब परिणमा है तब। भले सिद्ध हुआ नहीं, परन्तु उस ओर की परिणति को वहाँ मोड़कर उसे उपादेय किया, उपादेय किया अर्थात् आदर किया, ऐसी परिणति से आदर किया, उसे वह उपादेय है, ऐसा सिद्ध करना है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५५

अथाष्टकर्माष्टादशदोषरहितत्वापेक्षया शून्यो भवतीति न च केवलज्ञानादिगुणापेक्षया चेति दर्शयति -

५५) अट्ठ वि कम्मइँ बहुविहइँ णवणव दोस वि जेण।
सुद्धहँ एककु वि अत्थि णवि सुण्णु वि वुच्चइ तेण॥५५॥
अष्टावपि कर्माणि बहुविधानि नवनव दोषा अपि येन।
शुद्धानां एकोऽपि अस्ति नैव शून्योऽपि उच्यते तेन॥५५॥

अष्टावपि कर्माणि बहुविधानि नवनव दोषा अपि येन कारणेन शुद्धात्मनां तन्मध्ये चैकोऽप्यस्ति नैव शून्योऽपि भण्यते तेन कारणेनैवेति। तद्यथा। शुद्धनिश्चयनयेन ज्ञानावरणाद्यष्ट-द्रव्यकर्माणि क्षुधादिदोषकारणभूतानि क्षुधातृषादिरूपाष्टादशदोषा अपि कार्यभूताः, अपिशब्दात्सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणरूपेण शुद्धजीवत्वे सत्यपि दशप्राणरूपमशुद्धजीवत्वं च नास्ति तेन कारणेन संसारिणां निश्चयनयेन शक्तिरूपेण रागादिविभावशून्यं च भवति। मुक्तात्मनां तु व्यक्तिरूपेणापि न चात्मानन्तज्ञानादिगुणशून्यत्वमेकान्तेन बौद्धादिमतवदिति। तथा चोक्तं पञ्चास्तिकाये - 'जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स। ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा'। अत्र य एव मिथ्यात्वरगादिभावेन शून्यश्चदान्दैकस्वभावेन भरितावस्थः प्रतिपादितः परमात्मा स एवोपादेय इति तात्पर्यार्थः एवं त्रिविधात्मप्रतिपादक-प्रथममहाधिकारमध्ये य एव ज्ञानापेक्षया व्यवहारनयेन लोकालोकव्यापको भणितः स एव परमात्मा निश्चयनयेनासंख्यातप्रदेशोऽपि स्वदेहमध्ये तिष्ठतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्कं गतम्॥५५॥

आगे आठ कर्म और अठारह दोषों से रहित हुआ विभाव-भावोंकर रहित होने से शून्य कहा जाता है, लेकिन केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा शून्य नहीं है, सदा पूर्ण ही है, ऐसा दिखलाते हैं -

क्योंकि अष्टकर्मों एवं अष्टादश दोष विहीन हुआ।

इसीलिए तो शुद्ध आत्माओं को शून्य कहा जाता॥५५॥

अन्वयार्थ :- [येन] जिस कारण [अष्टौ अपि] आठों ही [बहुविधानि कर्माणि]

अनेक भेदोंवाले कर्म [नवनव दोषा अपि] अठारह ही दोष इनमें से [एकः अपि] एक भी [शुद्धानां] शुद्धात्माओं के [नैव अस्ति] नहीं है, [तेन] इसलिये [शून्योऽपि] शून्य भी [भण्यते] कहा जाता है।

भावार्थ :- इस आत्मा के शुद्धनिश्चयनयकर ज्ञानावरणादि आठ द्रव्यकर्म नहीं है, क्षुधादि दोषों के कारणभूत कर्मों के नाश हो जाने से क्षुधा-तृषादि अठारह दोष कार्यरूप नहीं हैं, और अपि शब्द से सत्ता चैतन्य ज्ञान आनंदादि शुद्ध प्राण होने पर भी इन्द्रियादि दश अशुद्धरूप प्राण नहीं हैं, इसलिये संसारी-जीवों के भी शुद्धनिश्चयनय से शक्तिरूप से शुद्धपना है, लेकिन रागादि विभाव-भावों की शून्यता ही है। तथा सिद्ध जीवों के तो सब तरह से प्रगटरूप रागादि से रहितपना है, इसलिये विभावों से रहितपने की अपेक्षा शून्यभाव है, इसी अपेक्षा से आत्मा को शून्य भी कहते हैं। ज्ञानादिक शुद्ध भाव की अपेक्षा सदा पूर्ण ही है, और जिस तरह बौद्धमती सर्वथा शून्य मानते हैं, वैसा अनंतज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता। ऐसा कथन श्रीपंचास्तिकाय में भी किया है - 'जेसिं जीवसहावो' इत्यादि। इसका अभिप्राय वह है, कि जिन सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है, जिस स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है, वे सिद्धभगवान् देह से रहित हैं, और वचन के विषय से रहित हैं, अर्थात् जिनका स्वभाव वचनों से नहीं कह सकते। यहाँ मिथ्यात्व रागादिभावकर शून्य तथा एक चिदानंदस्वभाव से पूर्ण जो परमात्मा कहा गया है, अर्थात् विभाव से शून्य स्वभाव से पूर्ण कहा गया है, वही उपादेय है, ऐसा तात्पर्य हुआ॥५५॥

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण ४, गुरुवार
दिनांक-१५-०७-१९७६, गाथा-५५ - ५६, प्रवचन-३५

परमात्मप्रकाश, ५५वी गाथा। आत्मा शून्य है, यह बात अब सिद्ध करते हैं। जड़ कहा। इन्द्रियज्ञान नहीं, इस अपेक्षा से उसे जड़ भी कहा जाता है, ऐसा कहा। अब शून्य। आठ कर्म और अठारह दोषों से रहित हुआ विभाव-भावोंकर रहित होने से शून्य कहा जाता है,... कर्म, विभाव और दोषों से रहित है, इसलिए उसे शून्य कहा जाता है। अपने स्वभाव से पूर्ण अशून्य है। अपने स्वभाव से पूर्ण अशून्य है। परभाव से

शून्य है। यह कहते हैं। लेकिन केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा शून्य नहीं है, सदा पूर्ण ही है, ऐसा दिखलाते हैं :-

(५५) अट्ट वि कम्मइँ बहुविहइँ णवणव दोस वि जेण ।

सद्धहँ एक्कु वि अत्थि णवि सुण्णु वि वुच्चइ तेण ॥५५ ॥

अन्वयार्थ :- जिस कारण आठों ही अनेक भेदोंवाले कर्म अठारह ही दोष इनमें से एक भी शुद्धात्माओं के नहीं है,... सिद्ध को नहीं तथा इस आत्मा को भी नहीं। आहाहा! इसलिए शून्य भी कहा जाता है। पंचास्तिकाय में लिया है न! स्व से अशून्य और पर से शून्य। सप्तभंगी ली है। पंचास्तिकाय। स्वयं अपने से अशून्य है, पूर्ण है और पर से वह शून्य है। इसकी सप्तभंगी ली है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : विकार से शून्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकार और कर्म सबसे शून्य है। वस्तु पर से तो शून्य है। नास्ति कही। स्व से अस्ति और पर से नास्ति तो शून्य कहा।

भावार्थ :- इस आत्मा के शुद्धनिश्चयनयकर ज्ञानावरणादि आठ द्रव्यकर्म नहीं है,... वस्तु स्वयं है, उसमें आठ कर्म है ही नहीं, यहाँ। यहाँ भी नहीं। सिद्ध को तो नहीं। उन्हें निमित्तरूप भी नहीं। यहाँ तो वस्तुरूप से सिद्ध को आठ कर्म का अभाव है, ऐसा ही यह भगवान आत्मा आठ कर्म के भाव से शून्य है। क्षुधादि दोषों के कारणभूत कर्मों के नाश होने से क्षुधा-तृषादि अठारह दोष कार्यरूप नहीं है,... अठारह दोष कार्यरूप परमात्मा सिद्ध को नहीं तथा आत्मा में अन्दर नहीं। आहाहा!

और अपि शब्द से तथा चैतन्य ज्ञान आनन्दादि शुद्ध प्राण होने पर भी... सत्ता है, चैतन्य है। ज्ञान, दर्शन दोनों। ज्ञान है। आनन्दादि शुद्ध प्राण, त्रिकाल शुद्ध प्राण इसके हैं। इन्द्रियादि दस अशुद्धरूप प्राण नहीं है,... इस अपेक्षा से शून्य कहा। स्वप्राण से अशून्य है, परप्राण से शून्य है। स्वप्राण-चैतन्यसत्ता, आनन्द, ज्ञान से अशून्य है और इन्द्रिय आदि के परप्राण से शून्य है। है ? इसलिए संसारी जीवों के भी... देखा! शुद्धनिश्चयनय से शक्तिरूप से शुद्धपना है,... यह तो शुद्ध शक्ति सत्त्व ही है। परमात्मस्वरूप ही, संसारी जीव भी परमात्मस्वरूप ही है। द्रव्यस्वरूप, वह तो परमात्मस्वरूप ही है। शक्तिस्वरूप—स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा संसारी जीव को भी शुद्धपना है।

लेकिन रागादि विभावभावों की शून्यता ही है। यहाँ भी रागादिभाव की स्वभाव में—शक्ति में शून्यता है। आहाहा! उसमें लिया है न? आलापपद्धति में। भव्य-अभव्य। अपने स्वभावरूप से होना और पररूप न होना, ऐसा भव्य-अभव्य स्वभाव है। यह तो तुमने जीवत्वशक्ति का निकाला था न? ऐसा नहीं, परन्तु यह... उसमें से याद आया। आलापपद्धति में है। भव्य-अभव्य। अपनेरूप हो, ऐसा गुण है। पररूप न हो, ऐसा भव्य-अभव्य उसका स्वभाव है। और पंचास्तिकाय में ३७ गाथा में भव्य-अभव्य लिया है। वह भविष्य की पर्याय होने के योग्य, वह भव्य, भूत की पर्याय होने के योग्य नहीं, वह अभव्य। यहाँ इसमें ३५ का दृष्टान्त देंगे। परन्तु ३७ गाथा में भी है। भव्य-अभव्य।

आहाहा! भगवान आत्मा में भव्यपना है। अर्थात्? भविष्य की पर्याय होने के योग्य है, इस अपेक्षा से भव्य। भूत की पर्यायरूप होने के अयोग्य है, इसलिए अभव्य है। आलाप पद्धति में भव्य-अभव्य अर्थात् अपनेरूप होना, वह भव्य; पररूप न होना, वह अभव्य। ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों में से सच्चा कौन सा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सच्चे। यह तो दोनों एक की एक बात हुई। स्व-रूप से है और पर-रूप से नहीं। स्व-रूप से पूर्ण अशून्य है, पर-रूप से शून्य है। आहाहा!

ज्ञानादि शुद्धभाव की अपेक्षा सदा पूर्ण ही है,... आहाहा! है? ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसे स्वभाव हैं, इससे तो परिपूर्ण वस्तु है। परिपूर्ण है। एक समय की पर्याय की भी उसमें (अपेक्षा नहीं)। परिपूर्ण शुद्ध है। यह तो कल आ गया न? ज्ञान, दर्शन परिपूर्ण है। ७३ (गाथा समयसार) में आ गया था न? सामान्य-विशेष / ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण है। आहाहा! रागरूप होने के योग्य नहीं, इसलिए शून्य है। स्वभावरूप होने के योग्य है और स्वभावरूप है, इसलिए वह अशून्य है। आहाहा! समझ में आया? **सिद्ध जीवों के तो सब तरह से प्रगटरूप रागादि से रहितपना है,...** संसार की शक्तिरूप में स्वभाव की बात की। शक्तिरूप जो आत्मा निश्चयनयकर वस्तु... ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और जिस तरह बौद्धमति सर्वथा शून्य मानते हैं, वैसा अनन्त ज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता। अनन्त ज्ञान। अनन्त अर्थात् जिसका स्वभाव है, उसे हद नहीं, मर्यादा नहीं। ऐसा जिसका ज्ञानस्वभाव अनन्त है। इसी प्रकार दर्शन अनन्त है, आनन्द

अनन्त है, श्रद्धास्वभाव अनन्त है, वीतरागस्वभाव अनन्त है। स्वच्छतास्वभाव अनन्त है, ईश्वरत्वस्वभाव अनन्त है। समझ में आया ? देखो ! सर्वथा शून्य मानते हैं, वैसा अनन्त ज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता। स्व से कभी भी शून्य नहीं हो सकता। अनन्त ज्ञानादि गुणों से कभी नहीं हो सकता। सर्वथा शून्य। बौद्धमति शून्य कहते हैं न, इस अपेक्षा से।

ऐसा कथन पंचास्तिकाय में भी किया है... लो, ३५ गाथा है। यह ३५वीं गाथा है। जिन सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है, जिस स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है,... लो, स्वभाव से परिपूर्ण निश्चल है और स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है। आहाहा! ४७ शक्ति में तो एक-दो शक्तियाँ ऐसी वर्णन की है। अभाव नाम का आत्मा में एक गुण है। अर्थात् कर्मरूप नहीं परिणमना, ऐसा उसका स्वतः गुण है। आता है न ? भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव, (ऐसे) छह बोल आते हैं। अभाव—तीनों काल में भगवान आत्मा कर्म के भावरूप न हो, ऐसा ही उसका गुण है। और अभावअभाव—वह सदा अभावरूप रहे, ऐसा एक अभावअभाव नाम का गुण है। पररूप न हो, ऐसा अभावगुण है। आहाहा! और भाव नाम का गुण है। किसी भी पर्यायरूप वह सदा होता ही है। समझ में आया ? आहाहा! भावगुण लिया है न एक ? भावगुण की पर्याय की बात है, हों! भाव नाम का गुण जीव में है। उसके कारण उसे किसी भी समय भाव की पर्याय भावगुण के कारण हो नहीं, ऐसा नहीं होता। होती ही है। यह तो धारावाही भावगुण के कारण पर्याय होती ही है। अभावगुण के कारण कर्मरूप नहीं होता, ऐसा भी सदा उसका भाव है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भावभाव। यह भाव है, उस उस भाव का भाव रहा करे, वह भाव। वह भावभाव। जो भाव निर्मल स्वयं से है, उस भाव की शक्ति से निर्मल पर्याय होती ही है। और भावभाव—वही निर्मल ऐसा का ऐसा रहा करे, यह भावभाव नाम का गुण है। ऐसी बातें हैं। आहाहा! और अभावअभाव। कर्म के अभावस्वभावरूप है, इसी प्रकार अभावअभाव सदा रहा ही करता है। आहाहा! ऐसा चैतन्यतत्त्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है, जिस स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है, वे सिद्धभगवान देह से रहित हैं, और वचन के विषय से रहित हैं,... आहाहा! कल वह नहीं था? रह गया था। वचन से नहीं कहा जा सकता, यह बात (कलशटीका) १८१ में निकली। सवेरे देखा। प्रज्ञाछैनी। प्रज्ञाछैनी का है न बड़ा? १८१ कलश। फिर सवेरे देखा, हों! जीव के प्रदेशों से सर्वथा अबन्धरूप होकर सम्बन्ध छूट जाये... इसका नाम मोक्ष। जीव-पुद्गल दोनों भिन्न-भिन्न हो जाये, इसका नाम मोक्ष कहा जाता है। यह भिन्न-भिन्न होने का कारण ऐसा कि मोह-राग-द्वेष इत्यादि विभावरूप अशुद्ध परिणति के मिटने से जीव को शुद्धस्वरूप परिणमन। इसका विवरण ऐसा है कि शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मों का क्षय करने का कारण है। आहाहा! शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा... सर्वथा। कथंचित् शुद्ध परिणमन और कथंचित् अशुद्ध परिणमन, ऐसा नहीं है। शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा सकल कर्मों का क्षय करने का कारण है। ऐसा शुद्धत्वपरिणमन सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप है, निर्विकल्परूप है, इसलिए वचन द्वारा कहने का समर्थपना नहीं। कल कहा था न? यहाँ है, वह निकला।

इसलिए इस रूप से कहा जाता है कि... आहाहा! सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप... शुद्ध परिणमनरूप। वह मोक्ष का कारण निर्विकल्परूप है। इसलिए वचन द्वारा कहने का समर्थपना नहीं। लो, ठीक! नाम, निक्षेप इसमें तो ऐसा कहा। नामनय। वचन से कहा जा सकता है। यह अपेक्षित। परन्तु यहाँ (कहते हैं), जिस प्रकार से है, उस प्रकार से कहा नहीं जा सकता। तब क्या कहा जाता है? इसलिए इस रूप कहा जाता है कि जीव को शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण। बस, इतना कहा जाता है। क्या कहा?

फिर से, शुद्धत्वपरिणमन। भगवान आत्मा का परिणमन—शुद्धपर्याय, हों! वह मोक्ष का कारण है। अशुद्ध जो रागादि व्यवहार, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। यह सब विवाद अभी ये उठाते हैं न! व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। अरे! भाई! व्यवहार अशुद्ध है, उससे शुद्ध परिणमन नहीं होता। शुद्धत्व परिणमन सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप है, निर्विकल्परूप है,... अभेद है। वचन द्वारा कहने का समर्थपना नहीं। इसलिए इस रूप कहा जाता है कि जीव को शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण। ज्ञानगुण शुद्धरूप परिणमाता है, इतना कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमाता है स्वयं। गुण परिणमता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। शुद्ध स्वयं परिणमाता है। शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण। वह मोक्ष का कारण है। इतना कहना है। राग नहीं, व्यवहार नहीं। ज्ञानगुण परिणमाता है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? कल रात्रि में बाद में देखा था।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना हुआ, परन्तु इस रीति से। इस रीति से। सर्वथा का तो निषेध करते हैं न? सर्वथा अवक्तव्य हो तो कहे (किस प्रकार)? नामनिक्षेप में आया है। वचन द्वारा कहा जा सकता है। इतना वक्तव्य है। यह वह है, इतना। परन्तु ऐसा निर्विकल्प है। यह कहा न यहाँ तो? निर्विकल्प है। सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप है, इसलिए उसे क्या कहना? इतना कहा जाता है। आहाहा! जीव को शुद्ध स्वरूप के अनुभवरूप परिणमाता है ज्ञानगुण। ज्ञानगुण जीव को शुद्धरूप परिणमाता है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार मोक्ष का कारण और व्यवहार से निश्चय हो, भाई! ऐसा कभी नहीं है। यह पण्डितों को विवाद उठा। आहाहा! तब और कोई ऐसा कहता है, निश्चय है वह वस्तु है या नहीं वह तो ख्याल में आती नहीं, इसलिए व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान, वही उसका साधन निश्चित करो। कहो, ऐसा कहते हैं। आया है, कल उसमें आया है। अखबार (पत्रिका) कल आया है न! निश्चय सम्यग्दर्शन, तो नौवें ग्रैवेयक गया, इतना किया तो भी उसे निश्चय सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। खबर नहीं परन्तु उसे खबर है कि मैं यह क्रिया—शरीर की क्रिया, राग की करता हूँ, वह मेरी है, उसमें से धर्म होगा, ऐसी उसकी खबर है। ऐई! आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं कहा? कि यह ऐसा करते हैं न, परन्तु वह उल्टा पुरुषार्थ करते हैं। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में है।

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी ने पुरुषार्थ किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ किया है न, ऐसा पूछा है। वह उल्टा पुरुषार्थ किया

है। राग और शरीर की क्रिया को अपनी मानकर पड़ा है। भगवान आत्मा रागादि रहित है, ऐसे चैतन्य का उसे पता नहीं। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार ऐसा किया। परन्तु वह तो उसे भान नहीं, ऐसा कहते हैं। इससे निश्चय की खबर नहीं पड़ती, इसलिए व्यवहार से ही उसका प्रेम-वात्सल्य रखना। परन्तु खबर न पड़े वही वहाँ अज्ञान है। यही खबर पड़ती है कि इसे निश्चय नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा ज्ञान शुद्धरूप परिणमे, उसकी खबर न पड़े? वह अन्ध है? आहाहा! आँखें उघड़ गयी, अन्धेरा गया, उसके प्रकाश की उसे खबर न पड़े? आहाहा! लोगों को उस व्यवहार के पक्ष में से कुछ लाभ मनवाना है न! ऐसा नहीं होता, भाई! यह मार्ग नहीं। धन्नालालजी! यह तो शुद्ध चैतन्य भगवान (है)। द्रव्य से शुद्ध, गुण से शुद्ध, उसका परिणमन शुद्ध। ऐसा यहाँ कहना है। अमरचन्दभाई! आहाहा! वह वस्तु शुद्ध है। इसकी शक्तियाँ अनन्त सब शुद्ध है। इसलिए उसके आश्रय से परिणमन जो हो, वह द्रव्य का शुद्धरूप से। ऐसा कहा था न उसमें? द्रव्य का शुद्ध परिणमन। द्रव्य-गुण स्वयं शुद्ध है। आहाहा! उस द्रव्य पर दृष्टि पड़ने से द्रव्य और गुण का शुद्धपना है, वह परिणमन पर्याय में शुद्धपना आता है। आहाहा! वह ज्ञानगुण जीव को शुद्धपने परिणमा है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! यह सब बाहर के क्रियाकाण्ड हो, बाहर का हो, परन्तु वह विकार और राग है। वह जाननेयोग्य है। व्यवहार होता है परन्तु जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

देखो! यहाँ भी आया। जिन सिद्धों के जीव का स्वभाव निश्चल है, जिस स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है,... यह ३७वीं गाथा में लिया है—भव्य-अभव्य। ३५ में तो यह लिया, बाद में ३७ में यह लिया। यह ३५ कही है न? ३७, देखो!

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।

विण्णणामव णिणाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥३७॥

भाव न हो तो यह सब सम्भव नहीं। भाव है। वस्तु सिद्ध। उसमें भव्यपना है, उसमें अभव्यपना है। देखा! (१) द्रव्य द्रव्यरूप से शाश्वत् है, (२) नित्य द्रव्य में पर्यायों का प्रत्येक समय नाश होता है। (३) द्रव्य सर्वदा अभूत पर्यायोंरूप से भाव्य (होनेयोग्य, परिणमनेयोग्य) है। भव्य (अर्थात्) यह भव्य। वह भव्य-अभव्य यह नहीं।

सिद्ध में भी भव्यपना है। वह भव्य जीव यह नहीं। भव्य-अभव्य जीव ही कहलाता है, वह भव्यपना यहाँ नहीं। वह भव्यजीव यहाँ नहीं अब। परन्तु भव्यपना अर्थात् भविष्य की निर्मल पर्याय होने के योग्यतारूप यह है, इस अपेक्षा से इसे भव्य कहा जाता है। वैसे तो सिद्ध में भव्य-अभव्यपना एक भी नहीं है। वह अलग। आहाहा! वीतराग का मार्ग तो देखो! अनेकान्त स्वरूप परमात्मा। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! क्या कहा?

सिद्ध भगवान में भव्यपना, वह भव्य जीव और अभव्य जीव कहलाता है, उस भव्य का गुण अब सिद्ध में नहीं है। क्योंकि वह तो पर्याय की योग्यता थी, वह हो गयी। अब भव्यपना सिद्ध में नहीं। परन्तु यह भव्यपना सिद्ध में है। शुद्ध परिणमन की भविष्य की योग्यता, वह उनमें है। तब वह अस्ति है। ऐसा सिद्ध करना है न? सिद्ध में अभाव नहीं, स्वभाव भावरूप है। देखा! **द्रव्य सदा अभूत पर्यायोंरूप से भाव्य है। (४) द्रव्य सर्वदा भूत पर्यायोंरूप से अभाव्य (-नहीं होनेयोग्य) है।** भूतकाल की अवस्थारूप होने के योग्य वह है ही नहीं। वह तो गयी, हो गयी। आहाहा! अस्ति है, अस्ति है तो ऐसा लागू पड़ता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! असत् भाव हो, उसे वह किस प्रकार लागू पड़े? ऐसा कहते हैं। सिद्ध हैं, वे अभावस्वरूप सर्वथा हो तो यह लागू नहीं पड़े। यह यहाँ लिया है, भव्य-अभव्य। आलाप पद्धति। वहाँ तो ऐसा लिया, अपनेरूप होना, वह भव्य; पररूप न होना, वह अभव्य। ऐसे दो प्रकार हैं।

तीन प्रकार हुए—(१) भव्य-अभव्य जो जीव है, वह सिद्ध में भव्य-अभव्य नहीं। (२) भव्य-अभव्य यहाँ जो है, उसे अपनेयोग्य होने की भविष्य की पर्याय के योग्य वह भव्यपना है और पूर्व की पर्यायरूप न होना, ऐसा अभव्यपना है। (३) अपनेरूप होना, ऐसा भव्यपना है, पररूप नहीं होना, ऐसा अभव्यपना है। वर्तमान की अपेक्षा से। पहला भूत-भविष्य की अपेक्षा से (अलग)। समझ में आया? आहाहा! ऐसी चीज़ है, भाई!

यहाँ भी शुद्ध परिणमन है। वस्तु शुद्ध है, गुण शुद्ध है। कोई शक्ति अशुद्ध है ही नहीं। ऐसा शक्तिवान, उसके ऊपर दृष्टि पड़ने से पर्याय में शुद्ध का परिणमन हो—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! तीनों काल में यह एक

(मोक्ष का कारण) है। ऐसा कहते हैं कि पंचम काल है, इसलिए ज्ञात नहीं होता। अरे! प्रभु! तू यह क्या कहता है? आहाहा! सिद्ध में भी भविष्य की पर्याय निर्मलरूप होने की योग्यतावाला उसका अस्तित्व है। आहाहा! उसका अस्तित्व सिद्ध करना है, हों! और भूत की पर्यायरूप न हो, वैसा उसका अस्तित्व है। आहाहा! ऐसे स्व-रूप से रहना, वह अशून्य है। पर-रूप न होना, वह शून्य है। आहाहा! कैसी बात है वीतराग की, देखो! यह दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में नहीं, स्थानकवासी में (नहीं)। यह तो जिनवर वीतराग परमेश्वर केवली ने कहा हुआ मार्ग, वह सन्त कहते हैं। आहाहा! दिगम्बर मुनि अर्थात् केवलज्ञान के मार्गानुसारी। यह सब मुनि की वाणी है न! पंचास्तिकाय, यह परमात्मप्रकाश, आलाप पद्धति। आहाहा!

मुमुक्षु : यह शून्य-अशून्य समझने से हमको क्या आनन्द आयेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से अभावरूप है और स्व से स्वभावरूप शुद्ध का परिणमन हो, वह सद्भावरूप है और अशुद्धपने का परिणमन नहीं, वह असद्भावरूप है।

मुमुक्षु : हमको आनन्द क्या आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनन्द आया। शुद्धपने परिणमन हुआ, यह आनन्द आया। पररूप नहीं हुआ और दुःखरूप नहीं हुआ। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! वीतरागमार्ग को अभी लोगों ने ऐसा सब बदल डाला है। आहाहा! चोर कोतवाली दण्डे, ऐसा कर डाला है। आहाहा! देखा! यहाँ यह आया वापस।

जिस स्वभाव का सर्वथा अभाव नहीं है, वे सिद्ध भगवान देह से रहित हैं और वचन के विषय से रहित हैं, अर्थात् जिनका स्वभाव वचनों से नहीं कह सकते। एक अपेक्षा से।

मुमुक्षु : अवक्तव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा जाता है न! सर्वथा वक्तव्य नहीं, सर्वथा अवक्तव्य नहीं। कथंचित् वक्तव्य, कथंचित् अवक्तव्य है। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

यहाँ मिथ्यात्व रागादिभावकर शून्य... देखो! आत्मा शून्य है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के दोष से शून्य है। एक चिदानन्दस्वभाव से पूर्ण... आहाहा! है? मिथ्यात्व

रागादिभावकर शून्य... तीसरी लाईन है। एक चिदानन्दस्वभाव... यहाँ तो मुझे एक लेना था। 'चिदानन्दैकस्वभावेन भरितावस्थः' संस्कृत में है। अर्थात्? एक चिदानन्द-स्वभाव से पूर्ण... एकरूप, ऐसा यहाँ कहना है। पर्याय का भेद भी जहाँ नहीं। एक चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वभाव से पूर्ण प्रभु, वह उपादेय है। आहाहा! धर्मी को सम्यग्दर्शन में यह चीज़ उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? बहुत महँगा लगे परन्तु मार्ग यह है, भाई!

चौरासी के अवतार कर-करके यह दुःखी है। आत्मा के आनन्द के भान बिना चौरासी के अवतार (किये)। स्वर्ग में दुःखी, राजा दुःखी, सेठिया दुःखी, सब दुःखी हैं। क्योंकि आत्मा के आनन्द का भाव जहाँ आया नहीं, उससे उल्टे भाव में दुःख में पड़े हैं। आहाहा! यह अरबोंपति, करोड़ोंपति दुःखी हैं बेचारे। आनन्द के भानरहित प्राणी, यहाँ कहते हैं, सब दुःखी हैं। भगवान् आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण भरपूर तत्त्व है। उसका स्वीकार होने पर उसे अतीन्द्रिय आनन्द आवे, वह प्राणी सुखी है। आहाहा! सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।

जिसे भगवान् आनन्दस्वरूप आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न में... ज्ञान और आनन्द दो की मुख्यता से वर्णन है। ज्ञानानन्द, ऐसा आया न? चिदानन्द। वर्णन सब जगह यही आता है। चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द, दो मुख्य। आहाहा! जिसका ज्ञान होने पर आनन्द साथ में हो ही। क्यों? अन्तर में ज्ञान और आनन्द अविनाभावी पड़े हैं। आहाहा! वस्तु में—भगवान् आत्मा में ज्ञान और आनन्द एक साथ बुने हुए अविनाभावरूप से पड़े हैं। आहाहा! ऐसा चिदानन्द भगवान् आत्मा, उसके सन्मुख होकर, उसका स्वीकार हो, तब उसे ज्ञान और आनन्द पर्याय में आये बिना रहते नहीं। आहाहा! यह उसका निश्चय का लक्षण है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? (समयसार) पाँचवीं गाथा में। निज वैभव से (कहूँगा)। कौन सा वैभव? अतीन्द्रिय आनन्द से झरता मेरा अनुभव। आहाहा! आता है? जिसकी मोहरछाप... ऐसा है। अनुभव की मोहरछाप आनन्द का अनुभव, यह उसकी मोहरछाप। अतीन्द्रिय आनन्द झरता आनन्द झरे। आहाहा! जैसे पर्वत में से पानी झरे, वैसे त्रिलोकनाथ पर्वत आनन्द से भरपूर प्रभु, उसके अनुभव में आनन्द झरे—आवे, उस अनुभव की मोहरछाप है। आहाहा! यह पोस्ट में छाप नहीं लगाते? उसका पत्र ले जाने के लिये उसकी छाप होती है न? इसी प्रकार

धर्म के अनुभव की मोहरछाप... आहाहा! क्योंकि धर्मी ऐसा भगवान, उसका कायमी धर्मी ऐसा स्वभाव, वत्थु सहावो, ज्ञान और आनन्द, वह जिसका स्वभाव, उसके स्वीकार करने से पर्याय में ज्ञान और आनन्द आये बिना रहता नहीं। यह उसकी मोहरछाप है। आहाहा! देखो तो सही! समझ में आया? द्रव्य और गुण में ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण है। एक साथ है। उसका अन्तर में स्वीकार होने पर, वह है, ऐसा स्वीकार होने पर पर्याय में ज्ञान और आनन्द (आवे), वह अनुभव की मोहरछाप है, वह सम्यग्दर्शन की मोहरछाप है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। आहाहा!

एक चिदानन्दस्वभाव से पूर्ण... प्रभु परमात्मा है। परमात्मा कहा गया है, अर्थात् विभाव से शून्य स्वभाव से पूर्ण कहा गया है,... आहाहा! वही उपादेय है,... देखा! क्या कहा? स्वभाव से परिपूर्ण, विभाव से शून्य। विभाव से खाली, स्वभाव से भरपूर। आहाहा! ऐसे द्रव्य की प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। भाई! क्या हो?

मुमुक्षु : यह तो सम्यग्दर्शन हुआ, हमारे तो धर्म की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दर्शन क्या है? धर्म का कारण है। धर्म चारित्र है। 'चरित्तं खलु धम्मो।' धर्म का कारण यह सम्यग्दर्शन है। आता है न यह? धर्म तो चारित्र है। स्थिरता, रमणता, आनन्द वह धर्म है, परन्तु उसका कारण? यह सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : हमको धर्म बताओ, सम्यग्दर्शन तो बाद में देखा जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले सम्यग्दर्शन बिना चारित्र आयेगा कहाँ से? आहाहा!

मुमुक्षु : व्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत ले, वह तो आस्रव है, राग है। आहाहा! लोगों को यह अवरोधक है न, पण्डितों को। ललितपुर में अभी यह हुआ न! अरे! प्रभु! वीतराग का विरह पड़ा और लोग अपने सम्प्रदाय के पक्ष से सत्य को उत्थापते हैं, इससे कहीं सत्य का उत्थापन हो जाये, ऐसा है? आहाहा!

वस्तु तो यह है। जब इसे धर्म करना हो तो इसे तो ज्ञानानन्द स्वभाव से भरपूर भगवान के सन्मुख इसे (होना) पड़ेगा। वर्तमान पर्याय को इसके सन्मुख करना पड़ेगा। एक ही सिद्धान्त है। आहाहा! जो पर्याय स्वभाव से विमुख है, राग और पुण्य के सन्मुख

है, उसे राग और पुण्य से शून्य स्वभाव में जोड़ने के लिये उनसे हट जाना पड़ेगा। आहाहा! और जो ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान है, उसके सन्मुख होना पड़ेगा। अर्थात् कि उसका आश्रय लेना पड़ेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन हो या यह हो, है तो यह। क्या हो? इस प्रकार निर्णय करे तो प्रयत्न इस प्रकार से कर सकेगा। वस्तु ऐसी है, ऐसा विकल्प से... नहीं आया अपने? विकल्प से पहले निर्णय करे। अमरचन्द्रभाई! ७३ गाथा चली। पहले विकल्प से निर्णय करे कि वस्तु ऐसी है। पश्चात् उस विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प अनुभव करे। आहाहा! तब वह सत्यार्थरूप से परिणाम। विकल्प से निर्णय (करे), वह भी यथार्थ निर्णय नहीं। आहाहा! परन्तु विकल्प से निर्णय आये बिना रहता नहीं। दूसरे—सर्वज्ञ के अतिरिक्त आत्मायें जगत को कहते हैं, वह सर्वज्ञ का कहा हुआ आत्मा कैसा है? द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? उसे पर से भिन्न करके उसका वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञ कहते हैं, ऐसा निर्णय करने के लिये विकल्प आता है। आहाहा! तथापि उस विकल्प से निर्णय किया, वह निर्णय बराबर नहीं है। अनुभव होकर निर्णय हो, वह निर्णय बराबर है। आहाहा! यह बात निश्चित तो करे, हाँ तो करे।

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में भी आता है न? सविकल्प द्वारा निर्विकल्प... रहस्यपूर्ण चिट्ठी में। अर्थात् कि यह पहला विकल्प ऐसा आता है कि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ—ऐसा आवे। इसके द्वारा निर्विकल्प का अर्थ यह (विकल्प) हुआ, इसलिए इससे होता है, ऐसा नहीं। उसके द्वारा अर्थात् उसे छोड़कर यहाँ होता है। यहाँ से अन्दर गया उसे छोड़कर। द्वारा कहा न? आहाहा! छोड़कर जाये, उस द्वार में खड़ा न रहे। भाई नहीं कहते? राजकोट से जामनगर गये। वह राजकोट छोड़कर गये या राजकोट को रखकर गये? ऐई! यह ऐसा ही होता है। निश्चयमोक्षमार्ग से मोक्ष होता है। उसे छोड़कर? हाँ, वास्तव में तो छोड़कर हुआ है। निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय है, उसका व्यय होकर पूर्ण पर्याय होती है। क्योंकि निश्चयमोक्षमार्ग है, उससे वास्तविक मोक्ष नहीं होता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसा ही होता है न! उसका अभाव होकर होता है न!

द्रव्य का (दृष्टि का) अभाव, वह पर्याय की दृष्टि। पर्याय की दृष्टि का अभाव, वह द्रव्य की दृष्टि... आहाहा! वस्तु तो ऐसी है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष तो द्रव्य से होता है। मोक्षमार्ग है, वह तो पर्याय है। और उस पर्याय का व्यय होकर मोक्ष होता है। तब उसका कारण मुख्य कौन? भगवान द्रव्य। आहाहा! वर्तमान कारणसमय, वह त्रिकाल कारणसमय। वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आहाहा! ललितपुर में अभी यह हुआ है। बीस पण्डित इकट्ठे हुए थे न, वहाँ भाषण दिया है। सोनगढ़ को मूल में से उखाड़कर फेंक दो। पाखण्ड है। अरे! भगवान! किसका कौन उखाड़े? बापू! लक्ष्मीचन्दजी है न? लक्ष्मीचन्दजी। आसाम, गोहाटी... वे ऐसा बोले हैं। मैं वहाँ रहा, देखा। परन्तु वह ... हुआ उसमें बहुत अनुकूल था। परन्तु उसमें से... जड़ में से उखाड़ डालो, पाखण्ड है यह। ऐई! भगवान! कौन उखाड़े? बापू! किसकी पर्याय कौन बदले? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु त्रिलोकनाथ स्थित है। आहाहा! भावरूप, अशून्यरूप। अशून्य—स्वभाव से खाली नहीं, स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! उसके सन्मुख होकर जो परिणति हो, वह परिणति मोक्ष का मार्ग है। बाकी फिर बातें चाहे जो करे। व्यवहार से ऐसा और निमित्त से ऐसा। वह व्यवहार भी अन्दर में निमित्त है। अन्दर का निमित्त है, पहला निमित्त बाहर है। है, निमित्त है। वस्तु नहीं? व्यवहार है, उसके स्थान में हो। परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। निमित्त, निमित्त के स्थान में है, परन्तु निमित्त से यहाँ उपादान का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तुस्थिति है, सेठ! यह सब सेठिया भी सुनते हैं, देखो न! कठिन बात है। इसे जँचे नहीं, इसलिए ऐसा होता है। बहुत खलबलाहट उठाई है ललितपुर में। एक को तो बहुत मारा है। यहाँ रमेश था न? लड़का था। मारा, उसे बहुत मारा। मन्दिर में! अरे! प्रभु! ऐसा नहीं होता। फिर वापस योगफल क्या किया है? कि कानजीस्वामी क्रमबद्ध मानते हैं, इसलिए क्रमबद्ध से हुआ है। अब उसकी टीका क्या करना? ऐसा उसमें लिखा है। अरे! भगवान! बात तो ऐसी ही है। ऐसा लिखा है। उस रमेश को मारा, बहुत मारा मन्दिर में। अकालमृत्यु नहीं, यह कहे। देखो! गोम्मटसार में है। आस्रव अधिकार में।

आयु हो उतना ही रहता है। उसे कोई बचा नहीं सकता, मार नहीं सकता। नहीं माना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कथनमात्र। भगवती आराधना में है। अकालमृत्यु व्यवहार से है, ऐसा मानना चाहिए। इसका अर्थ—कर्म की स्थिति घटती है, इस अपेक्षा से कहा जाता है। बाकी सत्य तो उसी समय में (शरीर) छूटने का है। तीन काल, तीन लोक में यह बात बदले, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसमें बेचारे को मारा। बाद में सात दिन रखनेवाले थे। अन्तिम दिन में छोड़ दिया। क्या करे? बड़ा तूफान हो गया। जवान लड़कों ने मारा। उन लोगों ने उश्केरणी करके कि इसका सिर फोड़ो और मारो। अररर! ऐसा होता है? चाहे जैसा व्यक्ति हो कोई, जैनशासन का शत्रु हो तो भी उसे मारने के परिणाम हों? इन्द्र नहीं थे उस समय? इन्द्र के समय विरोधमार्ग नहीं था? इन्द्र ने क्यों किसी को नहीं मारा? ऐसा नहीं होता। यह तो सब आत्मायें हैं। तत्त्वेषु मैत्री। सभी प्राणियों के प्रति मैत्री रखना चाहिए। आहाहा! फिर उसका योगफल कहा। टीका नहीं करना अब। क्योंकि कानजीस्वामी क्रमबद्ध मानते हैं तो क्रमबद्ध हुआ है। ऐई! अरे! भगवान! ऐसा नहीं होता, बापू! भाई! जैनदर्शन को कलंक लगता है। दूसरे लोग देखें तो ऐसा होता है कि ऐसा यह? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि चिदानन्द एक स्वभाव पूर्ण परमात्मा **विभाव से शून्य, स्वभाव से पूर्ण कहा गया है, वही उपादेय है,...** कब? आहाहा! विभाव से लक्ष्य छोड़कर और त्रिकाली स्वभाव के परिणामन में उपादेयरूप से परिणामे, उसे यह आत्मा उपादेय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? विभाव को छोड़कर, छोड़कर—यह नास्ति से बात है, वास्तव में तो छोड़ना भी नहीं है। विभाव के नाशकर्ता का नाम इसे है, परमार्थ से नहीं। आया है न? आहाहा! परन्तु कथन की पद्धति क्या आवे? राग के नाश का कर्ता नाममात्र कथन है। क्यों? अस्ति स्वभाव पर जाकर वहाँ स्थिर होता है, तब वह राग उत्पन्न नहीं होता। इसलिए इसने नाश किया, ऐसा कथनमात्र से है। आहाहा! स्वयं भगवान स्वरूप में स्थिर होता है, ध्यान में लीन होता है, तब राग की उत्पत्ति नहीं होती। यहाँ जितना लीन हुआ उतनी। इतना राग का नाश किया, ऐसा नाम कथन से है। आहाहा! परमार्थ से ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

णमो अरिहंताणं । लो ! कर्मरूपी अरि को नाश किया । नहीं, नहीं, हों ! कर्म जड़ तो नहीं परन्तु भावकर्म को नाश किया, यह भी नहीं । बोला तो यह जाता है । भाई ! यह शब्द की शैली (ऐसी है) । आहाहा ! भावकर्म भी उसने घात किये, द्रव्यकर्म तो जड़ है, वह तो उस समय कर्म का अकर्मरूप परिणमना उससे हुआ है । परन्तु यहाँ जो अशुद्ध की उत्पत्ति नहीं हुई, वह शुद्धता में स्थिर होने से नहीं हुई, इसलिए इसने अशुद्धता का नाश किया—ऐसा कथनमात्र आता है । आहाहा ! ऐसी बातें हैं । वस्तु तो सत्य यह है । बैठे, न बैठे । इसे संख्या की कोई आवश्यकता नहीं है कि अधिक संख्या हो तो यह सत्य । उसमें क्या है ? आहाहा !

वही उपादेय है,... क्या ? जो परिपूर्ण स्वभाव भगवान आत्मा है, राग से शून्य है, उस शून्यपने का लक्ष्य छोड़ देना, कहते हैं । यह वस्तु जो त्रिकाल भरपूर है, अनुभूति में उसका आदर करना । वह उपादेय है । समझ में आया ? उपादेय है, यह धार रखना अलग चीज़ है और उपादेयरूप से परिणमना, वह अलग चीज़ है । आहाहा ! समझ में आया ? इसलिए जहाँ विभाव से हटकर निर्मल परिणति में त्रिकाली उपादेय किया, उसे वह उपादेय हुआ । अमरचन्दभाई ! ऐसी बात है, भाई ! क्या हो ?

मुमुक्षु : साहेब ! आपने तो कहा था, निर्मल....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल परिणति द्वारा इसका आदर किया । तब ही उसे उपादेय कहा जाता है । उपादेय धार रखना है ? यह वस्तु जो त्रिकाल है, उसका परिणति में आदर किया, उसे उपादेय हुआ । अमरचन्दभाई ! आहाहा ! ऐसी वस्तु की स्थिति है । परमात्मप्रकाश में सर्वत्र यही आता है । समझ में आया ? आहाहा ! अन्तिम योगफल यह लावे । उपादेयरूप से, अर्थात् उस समय की निर्मल परिणति द्वारा उसका आदर हुआ, उसे उपादेय हुआ । आहाहा ! ऐसा है । यह ५५ (गाथा) हुई ।

तात्पर्य आया न ? 'शून्यश्चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थ' देखा ! 'भरितावस्थ' अवस्था नहीं । 'भरितावस्थ' निश्चय भरा हुआ ही है, ऐसा । अवस्थ अर्थात् यहाँ पर्याय की बात नहीं । संस्कृत में है न ! 'प्रतिपादितः परमात्मा स एवोपादेय इति तात्पर्यार्थः' लो । आहाहा !

गाथा - ५६

तदनन्तरं द्रव्यगुणपर्यायनिरूपणमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं कथयति। तद्यथा -

५६) अप्पा जणियउ केण ण वि अप्पेँ जणियउ ण कोइ।
दव्व-सहावेँ णिच्चु मुणि पज्जउ विणसइ होइ॥५६॥
आत्मा जनितः केन नापि आत्मना जनितं न किमपि।
द्रव्यस्वभावेन नित्यं मन्यस्व पर्यायः विनश्यति भवति॥५६॥

आत्मा न जनितः केनापि आत्मना कर्तृभूतेन जनितं न किमपि, द्रव्यस्वभावेन नित्य-
मात्मानं मन्यस्व जानीहि। पर्यायो विनश्यति भवति चेति। तथाहि। संसारिजीवः शुद्धात्मसंवित्य-
भावेनोपार्जितेन कर्मणा यद्यपि व्यवहारेण जन्यते स्वयं च शुद्धात्मसंवित्तिच्युतः सन् कर्माणि
जनयति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण कर्मकर्तृभूतेन नरनारकादिपर्यायेण न जन्यते स्वयं
च कर्मनोकर्मादिकं न जनयतीति। आत्मा पुनर्न केवलं शुद्धनिश्चयनयेन व्यवहारेणापि न च
जन्यते न च जनयति तेन कारणेन द्रव्यार्थिकनयेन नित्यो भवति, पर्यायार्थिकनयेनोत्पद्यते
विनश्यति चेति। अत्राह शिष्यः। मुक्तात्मनः कथमुत्पादव्ययाविति। परिहारमाह। आगम-
प्रसिद्धयागुरुलघुकगुणहानिवृद्ध्यपेक्षया, अथवा येनोत्पादादिरूपेण ज्ञेयं वस्तु परिणमति तेन
परिच्छित्याकारेण ज्ञानपरिणत्यपेक्षया। अथवा मुक्तौ संसारपर्यायविनाशः सिद्धपर्यायोत्पादः
शुद्धजीवद्रव्यापेक्षया धौव्यश्च सिद्धानामुत्पादव्ययौ ज्ञातव्याविति। अत्र तदेव सिद्धस्वरूप-
मुपादेयमिति भावार्थः॥५६॥

ऐसे जिसमें तीन प्रकार की आत्मा का कथन है, ऐसे पहले महाधिकार में जो
ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारनय से लोकलोकव्यापक कहा गया, वही परमात्मा निश्चयनय
से असंख्यातप्रदेशी है, तो भी अपनी देह के प्रमाण रहता है, इस व्याख्यान की मुख्यता
से छह दोहा-सूत्र कहे गये। आगे द्रव्य, गुण, पर्याय के कथन की मुख्यता से तीन दोहे
कहते हैं -

नहिं होता उत्पन्न किसी से नहिं कुछ भी उत्पन्न करे।

द्रव्यरूप से नित्य लखो पर्यायरूप से नश्वर॥५६॥

अन्वयार्थ :- [आत्मा] यह आत्मा [केन अपि] किसी से भी [न जनितं] उत्पन्न
नहीं हुआ, [आत्मना] और इस आत्मा से [किमपि] कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ,
[द्रव्यस्वभावेन] द्रव्यस्वभावकर [नित्यं मन्यस्व] नित्य जानो, [पर्यायः विनश्यति भवति]
पर्यायभाव से विनाशीक है।

भावार्थ :- यह संसारी-जीव यद्यपि व्यवहारनयकर शुद्धात्मज्ञान के अभाव से उपार्जन किये ज्ञानावरणादि शुभाशुभ कर्मों के निमित्त से नर-नारकादि पर्यायों से उत्पन्न होता है, और विनसता है, और आप भी शुद्धात्मज्ञान से रहित हुआ कर्मों को उपजाता (बाँधता) है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप शुद्ध ही है, कर्मों से उत्पन्न हुई नर-नारकादि पर्यायरूप नहीं होता, और आप भी कर्म-नोकर्मादिक को नहीं उपजाता और व्यवहार से भी न जन्मता है, न किसी से विनाश को प्राप्त होता है, न किसी को उपजाता है, कारणकार्य से रहित है अर्थात् कारण उपजानेवाले को कहते हैं। कार्य उपजनेवाले को कहते हैं। सो ये दोनों भाव वस्तु में नहीं हैं, इससे द्रव्यार्थिकनयकर जीव नित्य है, और पर्यायार्थिकनयकर उत्पन्न होता है, तथा विनाश को प्राप्त होता है। यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है, कि संसारी जीवों के तो नर-नारकी आदि पर्यायों की अपेक्षा उत्पत्ति और मरण प्रत्यक्ष दिखता है, परन्तु सिद्धों के उत्पाद, व्यय, किस तरह हो सकता है? क्योंकि उनके विभाव-पर्याय नहीं है, स्वभाव-पर्याय ही है, और वे सदा अखंड अविनश्वर ही हैं। इसका समाधान यह है-कि जैसा उत्पन्न होना, मरना, चारों गतियों में संसारी जीवों के है, वैसा तो उन सिद्धों के नहीं है, वे अविनाशी हैं, परन्तु शास्त्रों में प्रसिद्ध अगुरुलघु गुण की परिणतिरूप अर्थपर्याय है, वह समय-समय में आविर्भाव-तिरोभावरूप होती है। अर्थात् समय में पूर्वपरिणति का व्यय होता है और आगे की पर्याय का आविर्भाव (उत्पाद) होता है। इस अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद व्यय जानना, अन्य संसारी-जीवों की तरह नहीं है। सिद्धों के एक तो अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद व्यय कहा है। अर्थपर्याय में षट्गुणी हानि और वृद्धि होती है। (१) अनंतभाग-वृद्धि, (२) असंख्यातभाग-वृद्धि, (३) संख्यातभाग-वृद्धि, (४) संख्यातगुण-वृद्धि, (५) असंख्यातगुण-वृद्धि, (६) अनंतगुण-वृद्धि। (१) अनंत-भागहानि, (२) असंख्यातभागहानि, (३) संख्यातभागहानि, (४) असंख्यात-गुणहानि, (५) संख्यातगुणहानि, (६) अनंतगुणहानि। ये षट्गुणी हानि-वृद्धि के नाम कहे हैं। इनका स्वरूप तो केवली के गम्य है, सो इस षट्गुणी हानि-वृद्धि की अपेक्षा सिद्धों के उत्पाद-व्यय कहा जाता है। अथवा समस्त ज्ञेयपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणामते हैं, सो सब पदार्थ सिद्धों के ज्ञान-गोचर हैं। ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है, सो जब ज्ञेय-पदार्थ में उत्पाद-व्यय हुआ, तब ज्ञान में सब प्रतिभासित हुआ, इसलिये ज्ञान की परिणति की अपेक्षा उत्पाद-व्यय जानना। अथवा जब सिद्ध हुए, तब संसार-पर्याय का विनाश हुआ, सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ, तथा द्रव्य स्वभाव से सदा ध्रुव ही हैं। सिद्धों के जन्म, जरा, मरण नहीं हैं, सदा अविनाशी हैं। सिद्ध का स्वरूप सब उपाधियों से रहित है, वही उपादेय है, यह भावार्थ जानना।॥५६॥

गाथा - ५६ पर प्रवचन

ऐसे जिसमें तीन प्रकार की आत्मा का कथन है, ऐसे पहले महाअधिकार में जो ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारनय से लोकलोकव्यापक कहा गया, वही परमात्मा निश्चयनय से असंख्यातप्रदेशी है, तो भी अपनी देह के प्रमाण रहता है, इस व्याख्या की मुख्यता से छह दोहा-सूत्र कहे गये। आ गया न कल ? आगे... अब। आगे का शब्द क्या लिया, यह यहाँ देखा। 'तदनन्तरं' इतना शब्द है। 'तदनन्तरं' वरना बहुत जगह ऊर्ध्व आता है। ऊर्ध्व अर्थात् अब बाद में। अर्थात् मैंने इसलिए देखा। 'तदनन्तरं' शब्द है। है न ? 'तदनन्तरं द्रव्यगुणपर्यायनिरूपण' ऐसा आया। दूसरी जगह ऊर्ध्व—अब बाद में। आगे द्रव्य, गुण, पर्याय के कथन की मुख्यता से तीन दोहे कहते हैं। लो।

(५६) अप्पा जणियउ केण ण वि अप्पे जणियउ ण कोइ ।

दव्व-सहावें णिच्चु मुणि पज्जउ विणसइ होइ ॥५६ ॥

अन्वयार्थ :- यह आत्मा किसी से भी उत्पन्न नहीं हुआ,... भगवान सत्स्वरूप, वह किसी से उत्पन्न नहीं हुआ। और इस आत्मा से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ,... उसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया। उसने किसी को उत्पन्न नहीं किया। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, उसने दूसरे द्रव्य को उत्पन्न नहीं किया। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ, द्रव्यस्वभावकर नित्य जानो,... इस प्रकार वस्तु के स्वभाव से तो नित्य है। 'पर्यायः विनश्यति भवति' पर्यायभाव से विनाशीक है। आहाहा! वस्तुरूप से नित्य है। किसी ने उसे उत्पन्न किया नहीं, उससे कोई द्रव्य उत्पन्न हुआ नहीं। ऐसा वह नित्य है, पर्याय विनष्ट है। अपनी पर्याय विनष्ट है। पर को विनष्ट करता है, पर को उपजाता है, यह नहीं और पर को विनाश करता है, यह नहीं। पर से उपजता नहीं तथा पर को उपजाता नहीं, पर का नाश करता नहीं, अपनी पर्याय का नाश होता है, ऐसा उसका स्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा! नित्य जानो, पर्यायभाव से विनाशीक है। पर्याय से वह नाश पाता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण ५, शुक्रवार
दिनांक-१६-०७-१९७६, गाथा-५६ - ५७, प्रवचन-३६

यह संसारी जीव व्यवहारनयकर यद्यपि... यद्यपि व्यवहारनयकर शुद्धात्मज्ञान के अभाव से उपार्जन किये ज्ञानावरणादि शुभाशुभ कर्मों के निमित्त से नर-नारकादि पर्यायों से उत्पन्न होता है,... शुद्धात्मा के भान बिना उपार्जित जो कर्म, उनके कारण से व्यवहारनय से नरकगति आदि में उपजता है। नारकादि पर्यायों से उत्पन्न होता है और विनशता है... एक गति में उपजे और दूसरी गति में जाने पर उसका नाश हो अथवा गति में भी समय-समय पर उत्पाद-व्यय हुआ करता है, गति में। और आप भी शुद्धात्मज्ञान से रहित हुआ कर्मों को उपजाता (बाँधता) है,... ऐसा कहते हैं। स्वयं कर्म के निमित्त से उपजता है और स्वयं कर्म को उपार्जित करता है, ऐसा कहना है। शुद्धात्मज्ञान से रहित हुआ कर्मों को उपजाता (बाँधता) है,... शुभाशुभभाव।

तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप शुद्ध है,... आहाहा! शक्ति—उसका स्वभाव, द्रव्यस्वरूप, वह तो अत्यन्त शुद्ध है। आहाहा! कर्मों से उत्पन्न हुई नर-नारकादि पर्यायरूप नहीं होता,... शक्तिरूप जो वस्तु है, इन चार गतिरूप वह वस्तु उपजती नहीं है। वस्तु तो द्रव्यस्वभाव शुद्ध चैतन्यघन है। आहाहा! वह दृष्टि का विषय है। अकेला शुद्ध शक्तिमात्र पवित्र भगवान परमानन्द परमपारिणामिकस्वभावस्वरूप, वह तो नरकगति आदि में उत्पन्न भी नहीं होता। है ?

आप भी कर्म-नोकर्मादिक को नहीं उपजाता... स्वयं नहीं उत्पन्न होता और स्वयं कर्म को उपजाता नहीं। शुद्ध वस्तु जो द्रव्यस्वभाव है, वह तो कर्म को उपजाता भी नहीं और कर्म की पर्यायरूप उपजता भी नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ जो वस्तु है, वह वास्तव में सिद्धपदस्वरूप है, वह उपादेय है। आहाहा! व्यवहार से भी न जन्मता है,... क्या कहा ? शक्तिरूप द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चैतन्यघन, वह व्यवहार से भी जन्मता नहीं। न किसी से विनाश को प्राप्त होता है... किसी से नाश नहीं पाता। न किसी को उपजता है, कारणकार्य से रहित है... वस्तु जो शुद्ध है, शुद्ध चैतन्य, वह किसी से उपजता नहीं और किसी को उपजाता नहीं; पर के कारणरूप होता नहीं और पर के कार्यरूप होता

नहीं, कारणकार्यरहित द्रव्यस्वरूप है। समझ में आया ? कारणकार्य से रहित वस्तु है।

कारण उपजानेवाले को कहते हैं। कार्य उपजनेवाले को कहते हैं। सो वे दोनों भाव वस्तु में नहीं है, ... शुद्ध चैतन्यघन द्रव्यस्वभाव में तो यह है नहीं। यह तो द्रव्यस्वभाव में कारण-कार्य नहीं है, ऐसा कहा, भाई! तब शक्ति में कहा, अकार्यकारणशक्ति। यह वस्तु है, वह अकार्यकारण है, उसका वह गुण है, उसकी पर्याय में भी उस अकार्यकारणरूप का —शक्ति का तो परिणमन है। समझ में आया ? यहाँ तो अकेल द्रव्य ही लिया है। द्रव्य स्वयं कारण नहीं और कार्य नहीं। पर्याय को उत्पन्न करे और पर्याय से उत्पन्न हो। राग और गति आदि को उत्पन्न करे और कर्म को उपार्जित करे तथा कर्म से गति आदि में उपजे, परन्तु वह पर्याय से; वस्तुस्वरूप है, वह नहीं कारण, नहीं वह किसी का कार्य। यहाँ वस्तु के स्वरूप का वर्णन है।

उस कारणकार्यशक्ति में अकार्यकारण जो है, उस पर्याय में भी पर का कारण और पर का कार्य नहीं है। क्योंकि गुण है, उनका परिणमन होता है न! अकार्यकारण नाम का गुण आत्मा में है। उसका परिणमन भी राग को नहीं उत्पन्न करता और राग से वह पर्याय उपजती भी नहीं। निर्मल (पर्याय)—निर्मल पर्याय राग कारण से उपजती नहीं और राग के कार्य को निर्मल पर्याय करती नहीं। समझ में आया ? ऐसा अकार्यकारणगुण, उसे कितने ही इस द्रव्य में से द्रव्य वहाँ लेते हैं। ऐसा कहते हैं कि द्रव्य की व्याख्या है। द्रव्य कारण-कार्य नहीं है। यहाँ है, ऐसा वहाँ नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो द्रव्य कारण-कार्य नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। पर्याय में उपजे और पर्याय को उपजावे इतना सिद्ध करना है।

और ४७ शक्ति में तो भगवान आत्मा अकार्यकारण स्वभावशक्ति है, परन्तु उस शक्ति का कार्य होता है न ? परिणमन होता है न ? वह परिणमन राग का कार्य नहीं और राग का कारण नहीं। राग को उपजाता नहीं, राग से अकार्यकारण की निर्मल पर्याय उपजती नहीं। समझ में आया ? यहाँ द्रव्य में लिया, वैसा वहाँ अकेले द्रव्य में ले लेवे तो मिलान नहीं खाता। ऐसा पण्डित लेते हैं। अकार्यकारणशक्ति ऐसा द्रव्य शब्द वहाँ पड़ा है। ऐसा कहते हैं, वे कहते हैं। मिथ्या बात है। समझ में आया ?

वस्तु आत्मा—भगवान आत्मा है, उसमें अकार्यकारण नाम की शक्ति है—गुण

है। उसका परिणामन जो है, वह भी अकार्यकारणरूप है, ऐसा सिद्ध करना है, वहाँ; और शक्ति के वर्णन में मलिन परिणाम उसकी पर्याय है, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध, क्रमसर। क्रम—अक्रम—पर्याय से क्रम और गुण से अक्रम। इस क्रम में तो निर्मल परिणति की बात है, वहाँ मलिन की बात नहीं है। शक्ति निर्मल है न, इसलिए उसकी परिणति निर्मल की ही वहाँ व्याख्या है। राग भले हो, परन्तु उस राग का ज्ञान है, उस परिणति को वहाँ लिया। यहाँ तो द्रव्य को कारण-कार्य नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ?

सो... है न ? दोनों भाव वस्तु में... वस्तु अर्थात् द्रव्य। इससे द्रव्यार्थिकनयकर जीव नित्य है,... लो ! द्रव्यदृष्टि से उसे देखे तो नित्य वस्तु है। वह किसी से उपजता भी नहीं, वह किसी को उपजाता भी नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार से भी नहीं जन्मता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी जन्म धारण नहीं करता। द्रव्य व्यवहार से क्या जन्म धारण करे ? द्रव्य है, उसे व्यवहार से कहाँ जन्म है ? पर्याय को व्यवहार से जन्म है। समझ में आया ? यह तो यहाँ सिद्ध करना है। पर्याय से नारकी आदि है और पर्याय को नारकी आदि को उपजाता है। वस्तु जो है, वह कहीं किसी से उपजती भी नहीं, किसी को उपजाती भी नहीं। आहा ! समझ में आया ?

पर्यायार्थिकनयकर उत्पन्न होता है,... लो, है ? यहाँ यह बात लेनी है। पर्याय में उत्पन्न-व्यय है, द्रव्य में उत्पन्न-व्यय नहीं। द्रव्य है, वह ध्रुव है, एकरूप स्वभाव। वास्तव में तो... आहाहा ! उसकी पर्याय को भी वह द्रव्य नहीं उपजाता। अमरचन्द्रभाई ! ऐ... ध्रुव जो है, वह तो उसकी अपनी पर्याय को भी नहीं उपजाता। आहाहा ! तथा उस पर्याय का नाश नहीं करता। द्रव्य तो द्रव्य त्रिकाल है। आहाहा ! उसकी पर्याय जो है, वह उपजती है और विनशती है अथवा पर्याय है, वह पर से उपजती है—विकार और विकार को उपजाती है, पर्याय। आहाहा !

अब शिष्य को प्रश्न हुआ। उपने यह कहा परन्तु सिद्ध में किस प्रकार यह लागू पड़ेगा ? सिद्ध की पर्याय तो निर्मल हो गयी है। द्रव्य भी निर्मल और पर्याय भी निर्मल।

उसे पर्यायार्थिकनय से उपजना-विनशना सिद्ध को किस प्रकार लागू पड़ेगा ? ऐसा प्रश्न करता है। समझ में आया ? आहाहा ! संसारी जीवों के तो नर-नारक आदि पर्यायों की अपेक्षा उत्पत्ति और मरण प्रत्यक्ष दिखता है, परन्तु सिद्धों के उत्पाद-व्यय किस तरह हो सकता है ? यह प्रश्न है। सिद्ध में उत्पाद-व्यय किस प्रकार लेना ? संसारी के लिये तो ठीक। संसार की पर्याय को उपजावे और उस पर्याय को व्यय करे अथवा उपजे और पर को—रागादि को उपजावे, परन्तु सिद्ध को क्या है पर्यायनय से ? तुमने तो ऐसा सिद्ध किया कि पर्यायनय से प्रत्येक आत्मा में उत्पाद और व्यय है, तो सिद्ध को उत्पाद-व्यय किस प्रकार है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? सिद्धों के उत्पाद-व्यय किस तरह हो सकता है ? क्योंकि उनके विभाव-पर्याय नहीं है, ... चार गति की पर्याय है नहीं। स्वभाव-पर्याय ही है और वे सदा अखण्ड अविनश्वर ही हैं। स्वभावपर्याय सदा अखण्ड—अविनश्वर है।

इसका समाधान यह है कि जैसा उत्पन्न होना, मरना चारों गतियों में संसारी जीवों के है, वैसा तो उन सिद्धों के नहीं है, ... अब सिद्ध में उत्पाद-व्यय सिद्ध करते हैं। वे तुम्हारे कहते थे न, सेठ ! दाढ़ीवाले, नहीं। 'डेढिया'। सिद्ध में भी पर्याय ? क्या कहा ? पीछे पड़ी है ? कुछ खबर नहीं होती। सिद्ध में भी अभी पर्याय ? छोड़ती नहीं ? पीछा नहीं छोड़ती ? सिद्ध में भी पर्याय पीछा नहीं छोड़ती ? कुछ खबर नहीं होती। यहाँ यह प्रश्न है कि संसारी जीव को तुम उत्पाद-व्यय कहो तो बराबर है। सिद्ध तो पूर्ण स्वरूप हो गये, विभाव तो है नहीं, अकेली स्वभावपर्याय प्रगट हो गयी है, उसे तुम उत्पाद-व्यय किस प्रकार लागू करते हो ? तुमने उसे उत्पाद-व्यय कहा। पर्यायनय से प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय कहा तो सिद्ध में उत्पाद-व्यय किस प्रकार ? आहाहा ! समझ में आया ? तो कहते हैं, सुन !

जैसा उत्पन्न होना, मरना चारों गतियों में संसारी जीवों के है, वैसा तो उन सिद्धों के नहीं है, वे अविनाशी हैं, परन्तु शास्त्रों में प्रसिद्ध अगुरुलघुगुण की परिणतिरूप अर्थपर्याय है, ... सिद्ध को भी अगुरुलघु की अर्थ पर्याय समय-समय में है। वह समय-समय में आविर्भाव-तिरोभावरूप होती है। देखा ? समय-समय में उत्पन्न और व्यय। एक समय में उत्पन्न और व्यय वहाँ तो होता है। षड्गुणहानिवृद्धि है न ! एक ही समय

में षड्गुणहानिवृद्धि है। पहले समय में उत्पन्न हो और दूसरे समय में व्यय हो, यह और बाद में (बात)। परन्तु यह तो एक समय में हानि और वृद्धि। सिद्ध की केवलज्ञान की पर्याय में भी षड्गुणहानिवृद्धि है। एक समय में हानि-वृद्धि। ऐसा ही पर्याय का स्वभाव भगवान ने देखा है। यह कहेंगे। तिरोभावरूप होती है।

समय-समय में पूर्वपरिणति का व्यय होता है और आगे की पर्याय का आविर्भाव (उत्पाद) होता है। इस अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद-व्यय जानना,... एक बात। सिद्ध को अगुरुलघु की अर्थपर्याय की अपेक्षा से उत्पाद-व्यय जानना। एक बोल यह लिया। अभी दूसरे बोल लेंगे। अन्य संसारीजीवों की तरह नहीं है। जैसे संसारी को नरकगति आदि उत्पन्न होती है और स्वयं राग को उपजावे, ऐसा नहीं। परन्तु अर्थपर्याय की अपेक्षा से... आहाहा! समय-समय में उत्पाद-व्यय अर्थात् हानि-वृद्धि। वह उत्पाद-व्यय ऐसा नहीं, परन्तु एक समय में हानि-वृद्धि हो, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा!

सिद्धों के एक तो अर्थपर्याय की अपेक्षा उत्पाद-व्यय जानना कहा है। अर्थपर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि होती है। देखा? समय-समय में। १. अनन्तभागवृद्धि। यह सूक्ष्म केवलज्ञानगम्य बात है। केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त भागवृद्धि-अनन्त भाग हानि, ऐसा हुआ करता है। पर्याय तो है वह है। १. अनन्तभागवृद्धि। २. असंख्यातभागवृद्धि। ३. संख्यातभागवृद्धि। ४. संख्यातगुणवृद्धि। ५. असंख्यातगुणवृद्धि। ६. अनन्तगुणवृद्धि। इसी तरह १. अनन्तभागहानि, २. असंख्यातभागहानि, ३. संख्यातभागहानि, ४. संख्यात-गुणहानि, ५. असंख्यातगुणहानि, ६. अनन्तगुणहानि। ये षड्गुणहानिवृद्धि के नाम कहे हैं। इनका स्वरूप तो केवली के गम्य है,... सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी एक पर्याय में, एक पर्याय में एक समय में षड्गुणहानिवृद्धि वह तो स्वभाव है। भगवान जानते हैं।

मुमुक्षु : श्रुतकेवली भी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाने तो केवली में क्या बाकी रह गया? यह सब जाना जाये तो उसमें बाकी क्या रहा जानने का?

मुमुक्षु : परोक्षरूप से जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह नहीं।

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह नहीं, यह नहीं। यह तो पंचास्तिकाय में आया है न! अमृतचन्द्राचार्य की संस्कृत टीका में। आगमगम्य है, वहाँ ऐसा लिया है। है न? उस वस्तु का कोई स्वभाव है ऐसा कोई। एक समय की केवलज्ञान की पर्याय तो ऐसी की ऐसी रही, उसमें कहीं जानना कम-ज्यादा होता नहीं, परन्तु उस पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि (होती है)। एक समय में षड्गुणहानि और षड्गुणवृद्धि। यह तो कुछ (बात है)!

मुमुक्षु : आगमगम्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : आगमगम्य अर्थात् शास्त्र जाने। सिद्धान्त आगम से माननेयोग्य है, ऐसा कहना है। तुम्हें अनुभव में यह नहीं बैठ सकेगा। पंचास्तिकाय में है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से तो ऐसा है, एक जगह ऐसा आता है कि यदि सब श्रुतज्ञान में ज्ञात हो तो केवलज्ञान में जानने का अचिन्त्य और अपूर्व क्या रहा! आता है। आहाहा! ... न ज्ञात हो, यह तो केवलीगम्य है, ऐसा यहाँ कहते हैं। जैसे श्रुतज्ञान परोक्ष है तो सब जाने तो यह भी परोक्ष है (उसे भी जाने), ऐसा नहीं है। परोक्ष भी उसके ख्याल में सब बात आती है। यह ख्याल में आवे, ऐसी बात ही नहीं है। सूक्ष्म बात है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ही कोई पर्याय का स्वभाव है। वह एक ही समय में अनन्तभागवृद्धि, असंख्यभागवृद्धि, संख्यभागवृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि, असंख्यगुणवृद्धि, संख्यगुणवृद्धि, और एक समय में असंख्यभागहानि, संख्यभागहानि, अनन्तभागहानि और संख्यभागवृद्धि, असंख्यभागवृद्धि, अनन्तभागवृद्धि। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस प्रकार ही कहकर छोड़ दिया है। इसका अर्थ यह है कि इस पर्याय का ऐसा सामर्थ्य कोई केवलज्ञानगम्य ही है। साधारण को यह बात नहीं बैठ सकती। ऐसा अचिन्त्य केवलज्ञान का माहात्म्य है, ऐसा कहना है। समझ में आया? यह तर्क से नहीं बैठे, ऐसा यह कहते हैं। गम्भीरता बताते हैं। ऐसा कोई पर्याय में... समय एक और षड्गुणहानि उस समय में और उस समय में षड्भागवृद्धि। षड्गुणहानिवृद्धि। ओहोहो!

मुमुक्षु : वृद्धि का अर्थ क्या और हानि का अर्थ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कम हो। हानि में कम हो और वृद्धि में बढ़े।

मुमुक्षु : केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, अविभागप्रतिच्छेद हैं, उतने हैं। जरा सूक्ष्म बात है। केवलज्ञान की पर्याय तो जितनी है, उतनी ही है। उसमें हीनादिक हो, ऐसा नहीं। यह बात, बापू! ऐसी है। केवलज्ञान को कुछ रखोगे या नहीं उसके लिये? या सब इसमें ज्ञात हो जाएगा? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष नहीं।

मुमुक्षु : इसके लिये परोक्ष...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। यह नहीं। ऐसा भी नहीं। इसे परोक्ष, उसे प्रत्यक्षपना रखा, ऐसा भी नहीं। यह कोई अचिन्त्य स्वभाव है, भाई!

केवलज्ञान की एक (समय की) पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानने की अपनी पर्याय जानते हुए ज्ञात होता है। इतनी तो ताकत उसकी समय-समय में! उस पर्याय में हीनाधिक हो, उस प्रकार की जो व्यक्त, उसमें नहीं। परन्तु उस पर्याय का ऐसा कोई स्वभाव है, इसलिए केवली ही जानते हैं। उनके लिये बात बाकी रखी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : केवली ही जाने, इतना अपन जानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली जाने, ऐसा तू जाने, ऐसा मान। आहाहा!

मुमुक्षु : परोक्ष और प्रत्यक्ष...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह नहीं। नहीं रही। किसने कहा? यह तो इनकार किया न! यह उसे परोक्ष आ जाए, ऐसा भी नहीं। उसे प्रत्यक्ष हो, ऐसा भी नहीं। उसे वह कोई स्वभाव केवलज्ञान में उस पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि (होती है) ऐसा ही पर्याय का स्वभाव उन सर्वज्ञ को ही ज्ञानगम्य है। उनके लिये बाकी रखा है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होवे तो पर से सिद्ध हो, उसे आगमगम्य कहा। पंचास्तिकाय में है न वह ! कितनी गाथा में है ? कितने में है ? कहीं है न ? पंचास्तिकाय। यही पद सामने आया। यह पद और यह लाईन। देखो ! है ? 'पर्यायास्त्वगुरुलघुगुणहानिवृद्धि-निर्वृत्ताः शुद्धाः, सूत्रोपात्तास्तु' पाठ तुरन्त सामने यह आया। निकलते हुए किस जगह होगा ? सोलहवीं गाथा में आया, अन्तिम शब्द। समझ में आया ? यही शब्द सामने आया, पाठ निकलने पर। कुदरत सामने है। यही शब्द वापस। सामने देखो ! 'शुद्धाः, सूत्रोपात्तास्तु' है ? 'सूत्रोपात्तास्तु' नर, नारकी में है, वह दूसरी बात है। 'सूत्रोपात्तास्तु' आगमगम्य है, ऐसा है। यहाँ तो आया। 'शुद्धाः, सूत्रोपात्तास्तु' इतना। आहाहा ! आगमगम्य है। आगमगम्य अर्थात् ? श्रुतज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। श्रुतज्ञान में ऐसा ज्ञात होता है कि यह केवलज्ञानगम्य है। श्रुतज्ञान में ऐसा ज्ञात होता है कि यह केवलज्ञान जानता है, ऐसा। ऐसा अर्थ है। आहाहा ! द्रव्य की लीला उसकी है न ! भाई ! यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वह कोई दूसरे ने देखा नहीं। आहाहा !

पर्याय का दरबार सूक्ष्म। प्रत्येक पर्याय वापस। केवलज्ञान की पर्याय, अनन्त आनन्द की पर्याय, अनन्त वीर्य की पर्याय, सब पूर्ण हो गयी है। अनन्त ईश्वरता की पर्याय, अनन्त स्वच्छता की पर्याय, अनन्त कर्म की पर्याय, कर्ता, कर्म गुण है न, उनकी पर्याय वहाँ पूर्ण हो गयी है। तथापि उस एक-एक पर्याय में, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में एक-एक समय में हानि और वृद्धि एक ही समय में। पहले समय में हानि और दूसरे समय में वृद्धि, ऐसा भी नहीं है, उसने जरा स्पष्टीकरण किया है। दीपचन्दजी (ने) चिद्विलास में। पहली पर्याय जाती है—व्यय और बाद में हो उत्पाद, ऐसा। जरा मिलाया है। षड्गुणहानि में ऐसा लेना। यह तो कोई अचिन्त्य स्वभाव, जो केवलज्ञान में ही ज्ञात हो। आहाहा ! श्रुतज्ञान में परोक्ष से भी बात बाकी रखी। श्रुतज्ञान में परोक्ष में सब ज्ञात हो। अन्तर प्रत्यक्ष और परोक्ष इतना ही है, बाकी है सब, परन्तु यह नहीं। यह उसे केवलज्ञानगम्य है, ऐसा श्रुत में जाने। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। आ गया ? षड्गुण का हो गया।

इनका स्वरूप केवली के गम्य है,... लो, ठीक ! है न ? स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे।

टीका में इतना है। 'आगमप्रसिद्ध्यागुरुलघुकगुणहानिवृद्धयपेक्षया' संस्कृत में इतना है। उन्होंने केवलीगम्य का विशेष स्पष्टीकरण किया। इस षड्गुणहानिवृद्धि की अपेक्षा सिद्धों के उत्पाद-व्यय कहा जाता है। एक बात तो यह। अथवा... अब दूसरे प्रकार से। समस्त ज्ञेयपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणामते हैं,... प्रत्येक पदार्थ उत्पाद-व्ययरूप सदा परिणामते हैं। सो सब पदार्थ सिद्धों के ज्ञान-गोचर हैं। ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है,... जैसी ज्ञेय में षड्गुणहानिवृद्धि होती है, षड्गुणहानि नहीं परन्तु उत्पाद-व्यय होता है, ऐसा ही उत्पाद-व्यय यहाँ ज्ञान में ज्ञात होता है। ज्ञेयाकार जो उत्पाद-व्यय भिन्न-भिन्न वहाँ होते हैं, इसलिए यहाँ भी भिन्न-भिन्न उत्पाद-व्यय होता है। पहले समय में जो जाना था, वहाँ होता है ऐसा, वह वापस जहाँ बदला वहाँ तो दूसरे समय में दूसरा जाना। भले ऐसा का ऐसा परन्तु दूसरे प्रकार से जाना। जैसा वहाँ हुआ वैसा जाना। समझ में आया? वह ज्ञेय के पलटने की अपेक्षा से भी ज्ञान उत्पाद-व्ययरूप पलटता है, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! सर्वज्ञस्वभाव क्या! आहाहा!

मुमुक्षु : ... सब छनावट...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह छनावट तो केवलज्ञानी जाने, ऐसा कहते हैं। एक जगह आता है, हों! ऐसा कि श्रुतज्ञान में भी सब ज्ञात हो तो केवलज्ञान में उसकी क्या विशेषता? आता है, आता है एक जगह। आहाहा! एक समय की केवलज्ञान पर्याय तीन काल को (जाने)... उसमें नहीं, उसमें हानिवृद्धि हो, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान की पर्याय है तो घट जाए, कम ज्ञान हो और विशेष हो—ऐसा नहीं। केवलज्ञान की पर्याय तो पूर्ण है, वह उतनी और उतनी ही रहती है, परन्तु उस पर्याय में ऐसा षड्गुणहानिवृद्धि का स्वभाव है, वह केवलज्ञानगम्य है। आहाहा! श्रुतज्ञान में सब ज्ञात हो जाए तो केवलज्ञान... उस केवलज्ञान की अचिन्त्य महिमा है कि उसे वही जाने। यह द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या है न! वह पर्याय तो बस, केवलीगम्य है। आहाहा! इतनी महिमावन्त है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कोई पर्याय का स्वभाव महिमावन्त है। उसी समय में हानि, उसी समय में वृद्धि। एक समय में हानि और दूसरे समय में वृद्धि होवे तब तो... आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो वर्तमान उत्पाद में हानि और वृद्धि एक समय में। समझ में आया ? यह तो अचिन्त्य स्वभाव है, भाई ! आहाहा ! यह सर्वज्ञ केवली परमात्मा को वह गम्य है। इतना माहात्म्य तो कर। श्रुतज्ञान में सब आ जाए (तो केवलज्ञान में बाकी क्या रहे ?)

मुमुक्षु : अव्यक्त गुण का परिणमन सिद्ध भगवान को किस प्रकार से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो परिणमन है, वह तो सदा ही है, परन्तु उसकी यहाँ बात नहीं है, उसकी बात नहीं है। उस एक समय की पर्याय में, प्रत्येक गुण की एक समय की पर्याय में द्रव्यत्वगुण, प्रमेयत्वगुण, अगुरुलघु... क्या कहलाता है ? ज्ञान, दर्शन, चारित्र इत्यादि की पर्याय। वह तो प्रत्येक की एक समय की पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि एक ही समय में। यह तो अचिन्त्य बात है न ! आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा गम्भीर समुद्र है। पर्याय में एक समय की पूर्ण पर्याय में उसी समय में षड्गुणरूप से हानि, अनन्त गुणरूप से हानि और अनन्त भागरूप से हानि-वृद्धि। अनन्त गुणवृद्धि और अनन्त गुण हानि। आहाहा ! ऐसा ही कोई उसका स्वरूप है। केवलीगम्य है। परमात्मा, उसका माहात्म्य रख। आहाहा ! एक बात यह कही।

दूसरी, ज्ञेय जो है, वे समय-समय में पलटते हैं। भविष्य की पर्याय वर्तमान हुई, वर्तमान की पर्याय भूत में गयी, क्योंकि वहाँ होती है न ? इस प्रकार वापस यहाँ ज्ञान परिणमता है। समझ में आया ? इस प्रकार भी उसका उत्पाद-व्यय सिद्ध किया। दूसरे बोल में। समस्त ज्ञेयपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप परिणमते हैं, सो सब पदार्थ सिद्धों के ज्ञानगोचर हैं। ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है, ... वह जैसा ज्ञेय पलटता है, वैसी परिणति यहाँ होती है। स्वयं से, हों ! उसके कारण नहीं। समझ में आया ? सामने द्रव्य में...

मुमुक्षु : इसमें लिया है, ध्रुव...

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव तो साथ में ले लिया है। यह तो ध्रुव साथ में लिया है। यह तो एक न्याय से गुण परिणमता है, ऐसा आता है। पंचाध्यायी में लिया है। इस अपेक्षा से लिया है। ऐसा कि ध्रुव है... पर्याय है, वह आती है और जाती है, इतना होता है न,

इतना गुण में भी पर्यायनय से परिणमन है। इस अपेक्षा से, हों! यह पंचाध्यायी में है, है, खबर है। आहाहा! यह तो खजाना बड़ा है, भाई!

मुमुक्षु : सबको बाँट दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे और कौन ले! तुम तो सर्राफ हो। पैसे देते हो सबको। आहाहा!

यहाँ तो सिद्ध में उत्पाद-व्यय कैसे है? वे तो अविनाशी हैं। अविनाशी अर्थात् पर्याय तो ऐसी की ऐसी समान हुआ ही करती है। उसमें उत्पाद-व्यय पर्याय हो ऐसा नहीं है, परन्तु उनकी पर्याय अविनाशी ऐसी की ऐसी हुआ ही करती है, इसलिए उसे कूटस्थ कहा है। पंचास्तिकाय में (कहा है)। केवलज्ञान की पर्याय को कूटस्थ कहा है। है तो परिणमन, परन्तु ऐसी की ऐसी रहती है न, इसलिए उस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है। किस अपेक्षा से है, यह संस्कृत में पाठ है। केवलज्ञान की पर्याय से कूटस्थ कहा है। है तो परिणमन। कूटस्थ का अर्थ (यह कि) ऐसी की ऐसी रहती है, उस अपेक्षा से कूटस्थ।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में उसे नित्य कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न और कूटस्थ कहा, इसलिए नित्य हो गया। इस अपेक्षा से नित्य कहा जाता है। इस अपेक्षा से, हों! आहाहा!

एक तो अपने समय की पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि के कारण भी सिद्ध को उत्पाद-व्यय कहे जाते हैं। दूसरे प्रकार से, ज्ञेय में उत्पाद-व्यय भिन्न-भिन्न उसकी भूतकाल की पर्याय... भविष्य की पर्याय वर्तमान में होती है, वर्तमान है वह भूत में जाती है; वर्तमान है, वह भूत में जाती है; भविष्य की पर्याय वर्तमान होती है। ऐसा वहाँ ज्ञेय में होता है! ऐसा यहाँ ज्ञान में परिणमन होता है। समझ में आया? केवलज्ञान भी... सामान्य जो वर्तमान पर्याय है, वह गयी; दूसरे समय गयी और दूसरे समय में जो भविष्य की थी, वह आयी। इतना हुआ न? इस प्रकार से सिद्ध जानते हैं, तो इस अपेक्षा से उसमें उत्पाद-व्यय कहने में आता है। वह स्वयं के कारण से, हों! वह कहीं पर के कारण से नहीं। समझ में आया? वह तो द्रव्य-गुण-पर्याय की सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! परमात्मा की...

ज्ञेयाकार ज्ञान की परिणति है, सो जब ज्ञेय-पदार्थ में उत्पाद-व्यय हुआ,... देखा? उत्पाद-व्यय हुआ। तब ज्ञान में सब प्रतिभासित हुआ, इसलिए ज्ञान की परिणति की अपेक्षा उत्पाद-व्यय जानना। ज्ञेय की परिणति की अपेक्षा से ज्ञान परिणमा, इस अपेक्षा से उसे उत्पाद-व्यय कहने में आता है। आहाहा! दो बातें हुई।

तीसरी बात, सिद्ध में उत्पाद-व्यय को सिद्ध करने की तीन पद्धतियाँ। सिद्ध की पर्याय ऐसी की ऐसी अविनाशीरूप से रहती होने पर भी... अविनाशी अर्थात्? पर्याय तो बदलती है परन्तु उसका स्वरूप ऐसा है कि ऐसा का ऐसा दूसरे समय में, ऐसा का ऐसा तीसरे समय में, ऐसा का ऐसा चौथे समय में (रहता है)। ऐसा होने पर भी उसमें अगुरुलघु की अपेक्षा से षड्गुणहानिवृद्धि की अपेक्षा से पर्याय में उत्पाद-व्यय। ज्ञेय में समय-समय में बदलाव होता है, इस अपेक्षा से यहाँ अपने में भी बदलाव होता है, इस अपेक्षा से भी उसे उत्पाद-व्यय कहा जाता है। दो (बातें हुई)। अब तीसरा। सिद्ध को उत्पाद-व्यय सिद्ध करने में अब तीसरी बात। आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसा है। भाषा कहीं बहुत ऐसी नहीं है। आहाहा!

अथवा जब सिद्ध हुए, तब संसार-पर्याय का विनाश हुआ, सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ,... लो। इस अपेक्षा से भी उत्पाद-व्यय कहा। संसारपर्याय का व्यय, सिद्धपर्याय का उत्पाद। इस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय कहा। एक ही समय है न!

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस समय। सिद्ध के पहले समय में। पश्चात् बाद का कुछ नहीं। बाद की पर्याय भी एक समय में व्यय और बाद की पर्याय उत्पाद होती है। परन्तु यहाँ तो स्थूलरूप से संसारपर्याय का व्यय, सिद्धपर्याय का उत्पाद। इस अपेक्षा से भी उत्पाद-व्यय लागू पड़ते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का बापू! कहीं है नहीं! और उसमें भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। उन्होंने केवली का मार्ग खड़ा रखा है। आहाहा!

जब सिद्ध हुए, तब संसार-पर्याय का विनाश हुआ, सिद्धपर्याय का उत्पाद हुआ तथा द्रव्यस्वभाव से सदा ध्रुव ही हैं। आहाहा! सिद्धों के जन्म, जरा, मरण नहीं है,... आहाहा! वे तो सदा अविनाशी हैं। जन्म-मरण की अपेक्षा से, हों! सिद्ध का

स्वरूप सब उपाधियों से रहित है, वही उपादेय है। आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह भगवान आत्मा ही उपादेय है। समझ में आया? यह भावार्थ है। है न अन्दर?

मुमुक्षु : षड्गुणहानिवृद्धि और अगुरुलघु यह दोनों एक ही हैं या अलग-अलग अपेक्षा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकसाथ। अपेक्षा भिन्न। तीन (अपेक्षाएँ हुईं)। एक अर्थपर्याय अगुरुलघु और एक ज्ञेय परिणमे, वैसे परिणमे, वह ज्ञान का परिणमन और एक संसार का नाश तथा सिद्ध की उत्पत्ति। ऐसे तीन। तीन हैं। यह षड्गुणहानि पहले बोल में गया, पहले बोल में गया। दूसरा बोल षड्गुणहानि का नहीं। अगुरुलघु षड्गुणहानिवृद्धि एक ही बोल में आया। आहाहा! यह षड्गुणहानिवृद्धि तो अगुरुलघु का स्वरूप बताया। है तो एक ही समय। षड्गुणहानिवृद्धि समय-समय में होती है। यह अगुरुलघुगुण के कारण (होती है)। यह उत्पाद-व्यय का एक प्रकार। दूसरा, ज्ञेय परिणति की अपेक्षा से ज्ञेय पलटते हैं, वैसा यहाँ पलटन होता है, इस अपेक्षा से भी उत्पाद-व्यय सिद्ध को है और तीसरा, संसार का नाश, भगवान सिद्धरूप से उत्पन्न हुए। ऐसा एक प्रकार का उत्पाद-व्यय। दूसरे समय में भी जो उत्पाद है, दूसरे समय में व्यय होता है और नयी उत्पन्न होती है। सिद्ध में भी सदा केवलज्ञान की पर्याय उत्पाद-व्यय हुआ करती है। आहाहा! समुद्र है भाई यह तो! वस्तु स्वभाव समुद्र है, महासमुद्र। पर्याय समुद्र, द्रव्य-गुण की तो बात क्या करना!! ऐसा कहते हैं। पर्याय की गम्भीरता समुद्र बड़ा! उसके द्रव्य-गुण की तो बात क्या करना! पर्याय का इतना माहात्म्य है कि जो केवलज्ञानगम्य व्याख्या कर डाली। आहाहा!

यह सिद्धस्वरूप समस्त उपाधि से रहित है। यह सिद्ध कहो या यह सिद्ध कहो। समझ में आया? जैसे कहा न उसमें कि केवली के गुण का स्तवन कैसे कहलाता है? तब कहा, गुण अधिक ऐसा तेरा आत्मा, उसे तू अनुभव (करे), वह केवली की स्तुति है। मूल तो यह कहना है। केवलज्ञान की स्तुति किसे कहना? पूछा ऐसा। ३१ गाथा। समयसार। केवलज्ञानी की सच्ची स्तुति किसे कहना? तब कहा, सच्ची उसे कहना कि भगवान आत्मा एक पर्याय से अधिक अर्थात् भिन्न, ऐसा जो अनुभव करना, उसका नाम केवली की स्तुति कही जाती है। केवली अर्थात् केवल आत्मा अकेला। आहाहा! समझ में आया? यह ५६ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा - ५७

अथ द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं प्रतिपादयति -

५७) तं परियाणहि दव्वु तुहुं जं गुण-पज्जय-जुत्तु।
सह-भुव जाणहि ताहं गुण कम-भुव पज्जउ वुत्तु।।५७।।
तं परिजानाहि द्रव्यं त्वं यत् गुणपर्याययुक्तम्।
सहभुवः जानीहि तेषां गुणाः क्रमभुवः पर्यायाः उक्ताः।।५७।।

तं परियाणहि दव्वु तुहुं जं गुणपज्जयजुत्तु तत्परि समन्ताज्जानीहि द्रव्यं त्वम्। तत्किम्। यद्गुणपर्याययुक्तं, गुणपर्यायस्य स्वरूपं कथयति। सहभुव जाणहि ताहं गुण कमभुव पज्जउ वुत्तु सहभुवो जानीहि तेषां द्रव्याणां गुणाः, क्रमभुवः पर्याया उक्ता भणिता इति। तद्यथा। गुणपर्यायवद् द्रव्यं ज्ञातव्यम्। इदानीं तस्य द्रव्यस्य गुणपर्यायाः कथ्यन्ते। सहभुवो गुणाः, क्रमभुवः पर्यायाः, इदमेकं तावत्सामान्यलक्षणम्। अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, इति द्वितीयं च। यथा जीवस्य ज्ञानादयः पुद्गलस्य वर्णादयश्चेति। ते च प्रत्येकं द्विविधाः स्वभाव-विभावभेदेनेति। तथाहि। जीवस्य तावत्कथ्यन्ते। सिद्धत्वादयः स्वभावपर्यायाः केवलज्ञानादयः स्वभावगुणा असाधारणा इति। अगुरुलघुकाः स्वभावगुणास्तेषामेव गुणानां षड्भानिवृद्धिरूप-स्वभावपर्यायाश्च सर्वद्रव्यसाधारणाः। तस्यैव जीवस्य मतिज्ञानादिविभावगुणा नरनारकादि-विभावपर्यायाश्च इति। इदानीं पुद्गलस्य कथ्यन्ते। केवलपरमाणुरूपेणावस्थानं स्वभावपर्यायः वर्णान्तरादिरूपेण परिणमनं वा। तस्मिन्नेव परमाणौ वर्णादयः स्वभावगुणा इति, द्वयणुकादिरूप-स्कन्धरूपविभावपर्यायास्तेष्वेव द्वयणुकादिस्कन्धेषु वर्णादयो विभावगुणा इति भावार्थः। धर्माधर्माकाशकालानां स्वभावगुणपर्यायास्ते च यथावसरं कथ्यन्ते। विभावपर्यायास्तूपचारेण यथा घटाकाशमित्यादि। अत्र शुद्धगुणपर्यायसहितः शुद्धजीव एवोपादेय इति भावार्थः।।५७।।

आगे द्रव्य, गुण, पर्यायका स्वरूप कहते हैं -

जो है गुण पर्याय सहित वह द्रव्य यही परिज्ञान करो।

गुण हैं नित्य तथा सहभावी पर्यायें क्रम भावी हैं।।५७।।

अन्वयार्थ :- [यत्] जो [गुणपर्याययुक्तं] गुण और पर्यायोंकर सहित है, [तत्] उसको [त्वं] हे प्रभाकरभट्ट, तू [द्रव्यं] द्रव्य [परिजानिहि] जान, [सहभुवः] जो सदाकाल पाये जावें, नित्यरूप हों, वे तो [तेषां गुणाः] उन द्रव्यों के गुण हैं, [क्रमभुवः] और जो

द्रव्य की अनेकरूप परिणति क्रम से हों अर्थात् अनित्यपनेरूप समय-समय उपजे, विनशे, नानास्वरूप हों वह [पर्यायाः] पर्याय [उक्ताः] कही जाती हैं।।

भावार्थ :- जो द्रव्य होता है, वह गुणपर्यायकर सहित होता है। यही कथन तत्त्वार्थसूत्र में कहा है 'गुणपर्यायवद्रव्यं'। अब गुणपर्यायका स्वरूप कहते हैं - 'सहभुवो गुणाः क्रमभुवः पर्यायाः' यह नयचक्र ग्रंथ का वचन है, अथवा 'अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः' इनका अर्थ ऐसा है, कि गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं, द्रव्य में हमेशा एकरूप नित्यरूप पाये जाते हैं, और पर्याय नानारूप होती हैं, जो परिणति पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती, समय-समय में उत्पाद व्ययरूप होता है, इसलिये पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है। अब इसका विस्तार कहते हैं - जीव द्रव्य के ज्ञान आदि अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, आदि अनंत गुण हैं, और पुद्गल-द्रव्य के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, इत्यादि अनंतगुण हैं, सो ये गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं, अन्वयी हैं, सदा नित्य हैं, कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते। तथा पर्याय के दो भेद हैं - एक तो स्वभाव दूसरी विभाव। जीव के सिद्धत्वादि स्वभाव-पर्याय हैं, और केवलज्ञानादि स्वभाव-गुण हैं। ये तो जीव में ही पाये जाते हैं, अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते। तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, ये स्वभावगुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। अगुरुलघु गुण का परिणमन षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप है। यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में हैं, कोई द्रव्य षट्गुणी हानि-वृद्धि बिना नहीं है, यही अर्थ-पर्याय कही जाती हैं, वह शुद्ध पर्याय है। यह शुद्ध पर्याय संसारीजीवों के सब अजीव-पदार्थों के तथा सिद्धों के पायी जाती है, और सिद्धपर्याय तथा केवलज्ञानादि गुण सिद्धों के ही पाया जाता है, दूसरों के नहीं। संसारी-जीवों के मतिज्ञानादि विभावगुण और नर-नारकी आदि विभावपर्याय ये संसारी-जीवों के पायी जाती हैं। ये तो जीव-द्रव्य के गुण-पर्याय कहे और पुद्गल के परमाणुरूप तो द्रव्य तथा वर्ण आदि स्वभावगुण और एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप होना, ये विभावगुण व्यंजन-पर्याय तथा एक परमाणु में जो तीन इत्यादि अनेक परमाणु मिलकर स्कंधरूप होना, ये विभावद्रव्य व्यंजन-पर्याय हैं। द्रव्यगुणादि स्कंध में जो वर्ण आदि हैं, वे विभावगुण कहे जाते हैं, और वर्ण से वर्णान्तर होना, रस से रसान्तर होना, गंध से अन्य गंध होना, यह विभाव-पर्याय हैं। परमाणु शुद्ध द्रव्य में एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और शीत उष्ण में से एक तथा रूखे-चिकने में

से एक, ऐसे दो स्पर्श, इस तरह पाँच गुण तो मुख्य हैं, इनको आदि से अस्तित्वादि अनंतगुण हैं, वे स्वभाव-गुण कहे जाते हैं, और परमाणु का जो आकार वह स्वभावद्रव्य व्यंजन-पर्याय है, तथा वर्णादि गुणरूप परिणमन वह स्वभावगुण व्यंजन-पर्याय है। जीव और पुद्गल इन दोनों में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं, तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन चारों में अस्तित्वादि स्वभाव-गुण ही हैं, और अर्थपर्याय षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप स्वभाव-पर्याय सभी के हैं। धर्मादि के चार पदार्थों के विभावगुण-पर्याय नहीं हैं। आकाश के घटाकाश मठाकाश इत्यादि की जो कहावत है, वह उपचारमात्र है। ये षट्द्रव्यों के गुण-पर्याय कहे गये हैं। इन षट् द्रव्यों में जो शुद्ध गुण, शुद्ध पर्याय सहित जो शुद्ध जीव द्रव्य है, वही उपादेय है-आराधने योग्य है।॥५७॥

गाथा - ५७ पर प्रवचन

आगे द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप कहते हैं :- ५७ (गाथा) ।

(५७) तं परियाणहि दव्वु तुहुँ जं गुण-पज्जय-जुत्तु ।

सह-भुव जाणहि ताहुँ गुण कम-भुव पज्जउ वुत्तु ॥५७॥

अन्वयार्थ :- जो गुण और पर्यायोंकर सहित है, उसको हे प्रभाकरभट्ट! तू द्रव्य जान,... द्रव्य की व्याख्या। गुण और पर्यायसहित, उसे द्रव्य कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायरहित का द्रव्य जान ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यहाँ तो द्रव्य को पर से अत्यन्त भिन्न द्रव्य लेना है। 'पर्यायविजुत्तं दव्वं' अर्थात्? पर्यायरहित द्रव्य नहीं। पर से भिन्न करने की अपेक्षा से बात है। अपने में और पर्यायरहित द्रव्य है, वह अलग। यह तो दोनों में वापस भेद डालना है। यहाँ तो गुण-पर्यायसहित द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करना है। गुण और पर्यायवाला द्रव्य है। आहाहा! और वह गुण-पर्यायवाला द्रव्य पर के कारण से नहीं है, ऐसा। अपने गुण और पर्याय के कारण से द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा!

गुण और समय-समय में होती पर्याय, उस गुण-पर्यायसहित द्रव्य है। अर्थात् उसकी पर्याय पर के कारण से उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। वह द्रव्य ही अपने गुण-

पर्यायसहितवाला है। समझ में आया, कहता हूँ यह ? क्षण-क्षण में पर्याय जो होती है, वह गुण की और उस गुण-पर्यायसहित द्रव्य है अर्थात् कि पर्याय की उत्पत्तिवाला, गुणवाला वह द्रव्य है। उसकी पर्याय को कोई दूसरा उपजावे, (ऐसा नहीं है)। और उसकी पर्याय को स्वयं ही गुण की पर्याय होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सोनी सोने को घड़ता है या नहीं घड़ता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनी सोना का क्या घड़े ? गहना सोने से होता है, सोनी से नहीं। कहा नहीं (समयसार) ३७२ गाथा में ? मिट्टी से घड़ा होता है, कुम्हार से नहीं। सोनी से गहना नहीं होता। दागीना, दागीना कहते हैं न ? जेवरात। उसकी पर्याय स्वयं से होती है, सोनी से नहीं। आहाहा! यह तो ३७२ में कहा नहीं ? कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं।

मुमुक्षु : वह भले न हो, गुरु से तो ज्ञान होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं किसी से। देखो! मिट्टी अपने स्वभाव को उल्लंघन नहीं करती है, इसलिए कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं; मिट्टी ही कुम्हार के स्वभाव को नहीं स्पर्श करती हुई... स्पर्श किये बिना अपने स्वभाव से कुम्भभाव से उपजती है। आहाहा! कहो।

मुमुक्षु : कुम्हार भले न हो, परन्तु गुरु बिना ज्ञान नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! तदनुसार सब ले लेना। कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं। इसी तरह स्त्री रोटी की करनेवाली है ही नहीं। इसी तरह चित्रकार चित्र का करनेवाला है ही नहीं।

मुमुक्षु : कागज का लेखन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कागज का लिखनेवाला वह है ही नहीं। उसकी पर्याय उससे हुई है, पर से नहीं हुई।

मुमुक्षु : सब मंजूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक रखो। यह आवे। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। इस आत्मा के गुरु बिना ज्ञान नहीं। भगवान जगतपिता परम-आत्मा, उसके बिना इसकी पर्याय

नहीं। पिता बिना पर्याय नहीं। स्वयं धर्मपिता आत्मा है। उसकी पर्याय उसके धर्मपिता की। पर के बिना होती है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! इसीलिए लोगों को लगता है न।

मुमुक्षु : आपका सब रखो, हमारी तो एक बात है, गुरु बिना ज्ञान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु तो उसे कहा है इष्टोपदेश में। तूने तुझे समझाया, इसलिए तू तेरा गुरु! ऐसा कहा है। इष्टोपदेश में है। तूने तुझे समझाया न कि मैं द्रव्य हूँ, शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ; इसलिए तू तेरा गुरु।

मुमुक्षु : कानपुर से इसलिए आये हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कानपुर से समझते हैं। आहाहा! विवाद ही यह सब उठे हैं न! उसने कहा न कि निमित्त से होता नहीं। एक केशुभाई है, वढवाण में। दशाश्रीमाली। उसे दूसरे ने कहा कि निमित्त से होता नहीं, (ऐसा कहते हो तो) तुम वहाँ किसलिए सुनने जाते हो? भाई! निमित्त से होता नहीं, यह हमारा दृढ़ होता है, वह हमारे लिये है। हम निमित्त के लिये नहीं जाते।

मुमुक्षु : दृढ़ता तो होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह स्वयं से होती है। ऐसी बातें गजब। आहाहा! लोगों को मुश्किल पड़े ऐसी है। लोग मजाक करते हैं। यह पढ़ा है तुमने? नहीं पढ़ा होगा। 'जैन सन्देश'। कैलाशचन्द्रजी ने लिखा है। घोर निमित्त का साधन करते हैं और मानते नहीं। घोर उपादान का करने को साधन तो बनाते हैं और इनकार करते हैं। अरे! प्रभु! यही कहा न उसमें भाई ने! अबुद्धस्य बोधनार्थं ज्ञानी व्यवहार से कहते हैं और वह पकड़ता है कि तुमने कहा न व्यवहार से। इसलिए... आहाहा! उससे हम समझते हैं या नहीं? अरे! भाई! और तुम भी व्यवहार समझाने को वाणी का आश्रय लेते हो या नहीं? पुस्तक का आश्रय लेते हो या नहीं? ऐसा वह बोलता है। भाई! ऐसा नहीं बोला जाता। ऐसा नहीं होता। ऐसे तर्क नहीं होते। हम पूछते हैं और तुम उत्तर देते हो। तब तुमने निमित्त का सहारा नहीं लिया हमें उत्तर देने में? अरे! प्रभु! ऐसा नहीं कहा जाता। समझ में आया? आहाहा!

मोटी आवाज में हमने कहा है। नहीं आता ? प्रवचनसार अन्तिम गाथा (कलश)। मोटी आवाज में हमने कहा, वह सब स्वाहा हो गया। तू समझ तो कहा गया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वापस ऐसा कहे, हमने कुछ कहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमने कुछ कहा नहीं। आहाहा! ओहोहो! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। यहाँ यह कहते हैं, गुण-पर्यायवाला द्रव्य। अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अपने कार्यवाला द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। पर्यायवाला अर्थात् (इसका अर्थ यह)। उसके कार्य के लिये दूसरा होता है, ऐसा नहीं। दूसरी चीज़ भले हो। विशेष कहा जाएगा...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण ६, शनिवार
दिनांक-१७-०७-१९७६, गाथा-५७, ५८, प्रवचन-३७

परमात्मप्रकाश गाथा ५७। द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या।

भावार्थ :- जो द्रव्य होता है, वह गुणपर्यायकर सहित होता है। कोई भी चीज़ है, (वह) उसके गुण और पर्यायसहित ही होती है। लो! प्रत्येक द्रव्य उसके गुण, पर्यायसहित ही होता है। दूसरा उसकी पर्याय किस प्रकार करे? प्रत्येक क्षण की बात है न? प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायसहित है। प्रत्येक समय। इससे दूसरा पदार्थ उसकी पर्याय को करे, (ऐसा है नहीं)। है (पर्याय) सहित उसे दूसरा क्या करे?

मुमुक्षु : अनन्त शक्ति उसमें होती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त शक्ति किसमें? अपने में या पर के कारण? यह कलश में आया है। ऐसी एक शक्ति लो कि पर का कर सके। अन्दर कलश में है। ऐसी शक्ति है ही नहीं। आहाहा!

पहला सिद्धान्त यह। प्रत्येक द्रव्य गुणपर्यायकर सहित होता है। आहाहा! प्रत्येक समय में वह-वह द्रव्य अपने गुण, पर्यायसहित है। आहाहा! इतना सिद्धान्त है। उसे दूसरा द्रव्य आवे तो पर्याय हो (ऐसा नहीं है)। गुण, पर्यायसहित तो है। आहाहा! दो कारण कहे हैं न? वह तो दूसरा कारण तो उपचारिक जानने के लिये कहा है। वास्तविक तो प्रत्येक पदार्थ-प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण वर्तमान अपने गुण और कार्यसहित है। पर्याय अर्थात् कार्य। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य गुण और कार्यसहित है। पर्यायसहित कहो या कार्यसहित कहो। तो उसके कार्य के लिये दूसरे द्रव्य की आवश्यकता है, ऐसा उसमें है नहीं। आहाहा! एक बात।

यही कथन तत्त्वार्थसूत्र में कहा है, 'गुणपर्यायवद्द्रव्यं'। देखा? गुण और पर्यायवाला, वह द्रव्य। उसके गुण और पर्यायवाला द्रव्य। आहाहा! ऐसे सिद्धान्त हैं न! अब गुणपर्याय का स्वरूप कहते हैं.... 'सहभुवो गुणाः क्रमभुवः पर्यायाः' यह नयचक्र ग्रन्थ का कथन है, अथवा 'अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः' व्यतिरेक (अर्थात्) भिन्न हो वह पर्याय। इनका अर्थ ऐसा है कि गुण तो सदा द्रव्य से सहभावी हैं,.... यह

व्याख्या बराबर नहीं। गुण को जो सहभावी कहा है, वह द्रव्य के साथ है, इसलिए सहभावी कहा है, ऐसा नहीं। क्योंकि द्रव्य के साथ गुण भी है और द्रव्य के साथ पर्याय भी है। इसलिए द्रव्य के साथ गुण रहे, तो उसे सहभावी कहना, तो यह अतिव्याप्ति दोष हो जाता है। क्योंकि पर्याय भी साथ (रहती है)। पंचाध्यायी में है। पंचाध्यायी में। भाई! यह बात पहले हो गयी है।

द्रव्य से सहभावी हैं, द्रव्य में हमेशा एकरूप नित्य पाये जाते हैं,.... ऐसी व्याख्या नहीं है। गुण उसे कहते हैं कि प्रत्येक गुण सहभावी-साथ में गुण होता है। क्या कहा? चन्दुभाई! द्रव्य के साथ हो, ऐसा नहीं। गुण प्रत्येक साथ में ही होता है। पर्याय साथ में नहीं होती, क्रमसर (होती है)। ऐसी इसकी व्याख्या है।

मुमुक्षु :गुण के साथ लागू होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण के साथ गुण है। द्रव्य के साथ गुण है, इसलिए सहभावी—ऐसा नहीं। सहभावी गुण कहा है। गुण, गुण के साथ एकसाथ होते हैं। उसका अर्थ यह है कि वस्तु है, उसमें गुण जो है, वह प्रत्येक गुण ऐसे साथ में है। एकसाथ। गुण, गुण के साथ सहभावी है। गुण, द्रव्य के साथ सहभावी है—ऐसा नहीं। समझ में आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : सब समान लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लगता है समान? पूरब-पश्चिम का अन्तर (पड़ता है)। द्रव्य के साथ रहे तो गुण कहो तो पर्याय भी द्रव्य के साथ रहती है। उसका लक्षण यथार्थ नहीं हुआ। यहाँ तो ऐसी बात है। वाणियावाड नहीं यहाँ। आहाहा! द्रव्य के साथ गुण रहे, इसलिए सहभावी। तो द्रव्य के साथ पर्याय भी सदा रहती है। यह लक्षण अतिव्याप्ति हो गया। यह वास्तविक लक्षण नहीं हुआ। धन्नालालजी! यह बात पंचाध्यायी में ली है। यह तो उस दिन पढ़ा तब (कहा था)।

‘सहभुवो’ का अर्थ यह नहीं। गुण, द्रव्य के साथ रहते हैं, इसलिए ‘सहभुवो’, ऐसा नहीं है। गुण, गुण के साथ रहते हैं; इसलिए ‘सहभुवो’। आहाहा! लक्षण और स्वरूप ऐसा होना चाहिए न कि जिसमें समुचितपना खड़ा हो, यथार्थरूप से। आहाहा!

मुमुक्षु : गुण, गुण के साथ रहते हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण, गुण के साथ (रहते हैं) । और इसलिए... देखो !

‘सहभुवो गुणाः’ है ? ‘क्रमभुवः पर्यायाः’ अर्थात् पर्याय सब एकसाथ नहीं होती । क्रमसर पर्याय होती है । गुण एकसाथ होते हैं । गुण, गुण एकसाथ होते हैं । पर्याय एकसाथ नहीं होती, क्रमभावी (होती है) । आहाहा ! समझमें आया ? यह वीतरागदर्शन का द्रव्यानुयोग तत्त्व इस प्रकार से है । दूसरे प्रकार से माने तो वस्तु की स्थिति पलट जाती है । द्रव्य में गुण जो है, वह एकसाथ ऐसे गुण का विस्तार है । गुण, गुण के साथ एकसाथ है । इसलिए उन्हें सहभावी कहा है । गुण, द्रव्य के साथ है ; इसलिए सहभावी कहा है—ऐसा नहीं है । समझ में आया ? और पर्याय को क्रमभावी कहा है । वह ऐसे जब गुण एकसाथ है, पर्याय एकसाथ नहीं । क्रमसर, क्रमभावी, क्रमबद्ध है । ऐसा है । उसकी मश्करी करती हैं ।

ललितपुर में हुआ न ? मारा है । ऐसा कि, क्रमबद्ध होनेवाला कानजीस्वामी का मत है तो क्रमबद्ध है, ऐसा मान लेना, उसकी टीका करना नहीं । अरेरे ! ऐसा अखबार में आया है । भाई का पत्र बेचारे का आ गया । रमेशभाई, वह जरा कड़क भाषा लिखी थी । स्वाध्यायमन्दिरवाले नपुंसक हैं । कुछ सामने नहीं कहा । यह फिर कल पत्र आया । मेरी भूल हो गयी, मैंने आवेश में लिख दिया । किसी के सामने पढ़ना, यह कुछ काम है ? सहन कर लेना । माफी आयी है । कल पत्र आया है । मेरी भूल हो गयी । मैंने स्वाध्याय मण्डल को नपुंसक कहा । मारा और सामने कोई मदद में नहीं रहा न ! कुछ किया नहीं इसलिए । यह तो किसे कहना ? बापू ! आहाहा !

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर एक के बाद एक, एक के बाद एक, वह वह होनेवाली, वह-वह होती है । तो क्रमसर कहलाता है । आड़ी-टेढ़ी होती नहीं । आहाहा ! पर्याय का ऐसा स्वरूप है और गुण का ऐसा स्वरूप है कि सब एकसाथ रहे । ऐसी द्रव्य के गुण की और द्रव्य के पर्याय की व्याख्या है । आहाहा ! यह तो पहले मुद्दे की रकम है । समझ में आया ?

मुमुक्षु : परन्तु क्रमबद्ध पर्याय तो आपकी ही है न !

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी है ? लोग ऐसा कहते हैं। इन्होंने निकाली है न। यहाँ से निकली है न, इसलिए (कहते हैं)। यह तो पहले जब (संवत्) २०१३ में निकले थे, तब बनारस में एक गृहस्थ के यहाँ आहार करने जाते थे। झबेरी है न? कोई गृहस्थ है। उसके यहाँ बड़ी प्रतिमा जवाहरात की थी। चोरी हो गयी और वापस आ गयी। वहाँ दर्शन करने, आहार करने जाते थे। सब साथ में थे। फूलचन्दजी, कैलाशचन्दजी। कहा, वस्तु क्रमबद्ध है। फूलचन्दजी कहे, यदि क्रमबद्ध न हो तो वैशेषिकमत हो जाता है, इसलिए बराबर है।

यहाँ विद्वत परिषद के समय क्रमबद्ध की बड़ी चर्चा हुई थी। जगनमोहनलालजी कहे, क्रमबद्ध नहीं। क्योंकि वे सब दूसरे तरह से पढ़े हुए न, और लालबहादुर ने तब क्रमबद्ध स्वीकार किया था। तब स्वीकार किया था। है न? तब स्वीकार किया था। अब वापस बादल गया। यथार्थपना बदले? पर्याय बदले। मार्ग तो यह है। यह कहीं किसी के घर का है? सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा ही वस्तु का स्वरूप देखा है, वैसा कहा है। जाना और देखा, वैसा कहा। आहाहा! द्रव्य, गुण, पर्याय की तीन की व्याख्या बराबर समझना चाहिए। तो सब झगड़ा निकल जाये। दूसरे से होता है और इससे होता है और आड़ी-टेढ़ी होती है, यह सब झगड़ा निकल जाये। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह किस प्रकार निकल जाये, सब समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! द्रव्य है, उसका जिस ज्ञान करना हो तो द्रव्य में जितने गुण है, वे सब एकसाथ रहते हैं। आड़े-टेढ़े नहीं, एक के बाद एक नहीं। कि पहले ज्ञान और फिर दर्शन और फिर (चारित्र... ऐसा नहीं है)। एकसाथ ऐसे हैं, इसलिए उसे सहभावी कहते हैं। पर्याय को क्रमभावी कहते हैं। कोई पर्याय एकसाथ अनन्त नहीं होती। प्रत्येक गुण की एक पर्याय, ऐसी अनन्त होती है। परन्तु एक गुण की पर्याय एकसाथ दो, तीन, चार साथ में हो ऐसा नहीं होता। क्रमसर होती है। समझ में आया? आहाहा! यह एक व्याख्या समझे तो इससे होता है और इससे नहीं होता और कैसे कहा, इसका स्पष्टीकरण आ जाता है। आहाहा!

कल आया है। दो कारण से, दो सामग्री से द्रव्य का कार्य होता है। परन्तु यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है, भाई! प्रत्येक समय पर्याय क्रमसर होती है और

उसमें निमित्त भी सामने चीज़ होती ही है। होती है, इसलिए हुई है, ऐसा नहीं। यह बड़ा अन्तर। समझ में आया? धर्मास्तिकाय है, इसलिए जीव गति करता है, ऐसा है? तो धर्मास्ति तो त्रिकाल है तो गति त्रिकाल करते ही रहना चाहिए।

मुमुक्षु : तब तो गति ही किया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि गति करने के काल में वह क्रमसर में गति होने की पर्याय होती है, तब धर्मास्ति है, उसे निमित्त से, आरोप से कहा जाता है। आहाहा! यह तो वास्तविक तत्त्व की दृष्टि का स्वरूप है। द्रव्य, गुण, पर्याय के ज्ञान में गड़बड़ उठी तो यह सब गड़बड़ उठी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमें द्रव्य, गुण, पर्याय से क्या मतलब है? धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म, वह पर्याय है, तो किससे होती है? द्रव्य, गुण से होती है। उसका इसे निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? धर्म पर्याय है। करना है न इसे? धर्म करना है न? तब इसका अर्थ हुआ कि इसकी पर्याय में धर्म नहीं है। पर्याय में नहीं, द्रव्य-गुण में है। यदि इसकी पर्याय में हो तो करना है; यह (अधर्म) है, उसे टालना है और नया करना है—ऐसा हो नहीं। आहाहा! इसलिए जिसे धर्म करना है, यह प्रश्न उठे, वहाँ उसे पर्याय में धर्म होता है, वह पर्याय क्रमवर्ती है। गुण और द्रव्य त्रिकाल है, उसके आश्रय से होता है। आहाहा! बात तो बहुत सादी है परन्तु अब.... गम्भीर है। आहाहा!

द्रव्य से सहभावी.... ऐसा नहीं लेना। **द्रव्य से सहभावी....** ऐसा नहीं लेना। द्रव्य में गुण सदा होते हैं, इतना। परन्तु सहभावी जो शब्द है, वह गुण और गुण के साथ सहभावी है। समझ में आया? अन्तर कहाँ पड़ा है? द्रव्य के साथ रहे, वह गुण (—ऐसा कहो तो) द्रव्य के साथ पर्याय सदा रहती है। कब पर्याय नहीं? विशिष्टता तो यह है कि एक समय में ऐसे अक्रम गुण हैं। गुण, गुण के साथ अक्रम कहो या साथ में कहो और पर्याय क्रम है। क्रम है तो ऐसा है। एक के बाद एक, एक के बाद एक.... धारावाही.... छहों द्रव्यों का परिणमन धारावाही चलता है। एक समय भी वहाँ विश्राम नहीं। आहाहा! यह परिणति अपने से होती है। इसलिए प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि उसकी उत्पत्ति का

वह काल है। पर्याय की उत्पत्ति का वह क्षण है, इसलिए उत्पत्ति हुई है। अमरचन्द्रभाई! निमित्त आया, इसलिए हुई है (—ऐसा नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु :समझ जाना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या समझे? यह तो ज्ञान करने के लिये है, परन्तु यह आया तो होता है, इसलिए यह नहीं है। समझ में आया? निमित्त में भी उसके क्रमसर पर्याय होती है या नहीं उसे भी? उसका भी उपादान है या नहीं? वह तो इसकी अपेक्षा से निमित्त है। निमित्त के उपादान की पर्याय भी क्रमसर उसमें होती है। आहाहा! भगवान् आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उस क्षण में पर्याय होनेवाली वह हुई। उसका काल वह था। उस समय वहाँ दर्शनमोह का अभाव हुआ, उसका भी क्रमबद्ध में अभाव होने की पर्याय का उसका काल था। आहाहा! समझ में आया? गजब मार्ग, भाई! वीतराग सर्वज्ञदर्शन विश्वदर्शन है। वह विश्वधर्म प्रेरक कहते हैं, ऐसा यह नहीं है। वे विद्यानन्दजी और वे सुशील (कहते हैं)। विश्वधर्म प्रेरक। विश्वधर्म तो यह जैनधर्म है। वास्तविक स्वरूप है, वह तो जैनधर्म है। आहाहा! जैनधर्म कहो या विश्वधर्म इस प्रकार से। दूसरे कहते हैं और मिलाकर विश्वधर्म है, ऐसा नहीं। आहाहा! जगत की द्रव्य, गुण, पर्याय की स्थिति ऐसी है, यह जैनदर्शन में ही है। समझ में आया? उसकी जिसे स्वीकृति हुई, उसे विश्वदर्शन हुआ। विश्व का पदार्थ जो आत्मा या जड़, उसका यहाँ दर्शन होने पर जड़ इसमें नहीं, यह भी साथ में प्रतीति आ गयी। समझ में आया? आहाहा!

क्रमसर में पर्याय क्रम से हुई, वह पर्याय सम्यग्दर्शन को आधार तो द्रव्य था। वहाँ आश्रय द्रव्य का था। उस द्रव्य में क्रमसर हुई। समझ में आया? ऐसी पर्याय का निर्णय करे, उसकी तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाती है और पर्याय स्वयं से होती है। ऐसी बात है जरा। बात झगड़े से पार पड़े, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, निश्चय की बात करते हो और व्यवहार के साधन द्वारा निश्चय को सिद्ध करना चाहते हो। अरे रे! यह क्या है? भाई! कोई भी बात कहनी हो तो वाणी द्वारा आवे। वाणी जड़ है। द्रव्य के साथ रहे, वे गुण नहीं, परन्तु गुण के साथ रहे, वह गुण। यह बोले कौन? यह तो वाणी। तुमने ऐसा वहाँ वाणी का आश्रय लिया या नहीं कहने में? भाई! ऐसा नहीं है। वाणी भी

उसके क्रमकाल में वाणी निकलती है। उसका भी पर्याय का क्रम है, वहाँ वह वाणी हुई है। आत्मा ने की नहीं है। आहाहा! क्या हो ?

‘सहभुवो’ द्रव्य में हमेशा एकरूप नित्यरूप पाये जाते हैं.... यह तो और दूसरी साधारण बात है। और पर्याय नानारूप होती हैं,.... अनेकरूप होती है। जो परिणति पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती,.... यह क्रम सिद्ध करते हैं। गुण तो एक समय में सब साथ में होते हैं। और पर्याय एक समय में हुई। पहले समय में नहीं थी। वह दूसरे समय में नहीं रहे। आहाहा! अरे! समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है,.... लो। किस द्रव्य में किस समय में उत्पाद-व्यय नहीं ? वह तो अपना स्वभाव है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव। उत्पादरूपी कार्य किस द्रव्य में किसी समय में हुए बिना रहता है ? आहाहा! समझ में आया ? यह तो निमित्तपना जो मानता न हो, निमित्त से होता है, ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त ही नहीं है, ऐसा मानता हो, उसे बताया है। परन्तु निमित्त से होता है, वह यहाँ बताना नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

पर्याय एक के बाद एक (होती है)। एक के बाद एक अर्थात्। समय-समय में उत्पाद.... लो। पहले समय में थी, वह दूसरे समय में नहीं होती,.... लो। समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है.... आहाहा! इसलिए पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है। इस कारण पर्याय को क्रमवर्ती (कहा जाता है)। साधारण शब्द नहीं है, हों! पूरे तीन काल-तीन लोक के द्रव्य की समय-समय की पर्याय क्रमसर है। सम्यग्दृष्टि द्रव्य को जहाँ अवलम्बता है, फिर पर्याय क्रमसर होनेवाली, वह होती ही है। उसे—पर्याय को भी करता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? पर्याय, पर्याय को उस समय में करती है। द्रव्य भी पर्याय को करता नहीं। यह तो आया। ३२० गाथा। आहाहा! क्रमसर पर्याय, पर्याय को करती है, उसमें द्रव्य का कहाँ काम है ? समझ में आया ? मार्ग वीतराग का... भाई!

मुमुक्षु : पर्याय, पर्याय को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, पर्याय को करे। द्रव्य नहीं। द्रव्य तो ध्रुव है। परिणति हो... एक समय की पर्याय में षट्कारक परिणमन है। द्रव्य-गुण की अपेक्षा बिना। क्या कहा ? प्रत्येक द्रव्य की जिस समय की क्रमवर्ती पर्याय (होती है), उस एक समय की पर्याय में षट्कारकपना—पर्याय, पर्याय को करती है; पर्याय, पर्याय का कर्म; पर्याय का

साधन पर्याय। वह पर्याय, हों! वह की वह। पर्याय का अपादान उससे हुई, उसके आधार से हुई, वहाँ की वहाँ रही। यह षट्कारक एक समय की पर्याय में स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध षट्कारक है। द्रव्य-गुण के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं। क्रमवर्ती क्रम से वर्तती होती है, ऐसा कहा न? होती है, इसका अर्थ क्या हुआ? द्रव्य करता है, गुण करता है, ऐसा नहीं आया।

मुमुक्षु : पर्यायार्थिकनय से करता है, ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायार्थिकनय से करता है। वह तो पर्याय, पर्याय को करती है। वह तो यह हुआ। यह तो पर्यायार्थिक भेद से जब कथन करे तब कहे। क्योंकि एक समय की पर्याय जो होती है, वहाँ की वहाँ। होती है वहाँ से। इतनी भेद की अपेक्षा लेकर द्रव्य पर्याय को करे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु वस्तुस्थिति देखें तो पर्याय, पर्याय को करती है; द्रव्य, पर्याय को करता नहीं। क्योंकि पर्याय का क्रमवर्ती होने का स्वभाव है। पर्याय का क्रमवर्ती होने का स्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु द्रव्य, पर्याय को करे, इसमें क्या दोष आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक सत् को दूसरे सत् की अपेक्षा है ही नहीं। सत् तो स्वयं सत् अहेतुक होता है।

मुमुक्षु : द्रव्य-पर्याय में भी... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो बात चलती है। पर्याय सत् है। वह अहेतुक है। कोई हेतु नहीं। है, उसे हेतु क्या? आहाहा! ऐसा स्पष्टीकरण दिगम्बर सन्तों ने ही किया है। उन्होंने जैनधर्म और अनादि सत् है, उसे टिकाये रखा है। आहाहा!

देखो न! इतनी व्याख्या बाँधी। गुणपर्यायवत् द्रव्यम्। उसमें तो सब आया। प्रत्येक द्रव्य, उसके गुण और उसके कार्यसहित होता है। अब उसके कार्य के लिये दूसरा कारण (होगा)? समझ में आया? कोई एक सूत्र भी निर्णय करना चाहिए न इसे? कि प्रत्येक द्रव्य, गुण-पर्यायसहित है। ऐसा आया न? गुण और पर्याय अर्थात् कार्य। प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय में अपने कार्य और गुणसहित है। अपने कार्य और गुणसहित है। आहाहा! पर के कार्य और निमित्तसहित है, ऐसा यहाँ नहीं आया। आहाहा!

मुमुक्षु : तो फिर दो कारण से कार्य होता है, ऐसा नहीं कहना ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कथन तो ज्ञान करने के लिये है । कारण दो है ही नहीं, एक ही कारण है । मोक्ष का मार्ग एक ही है । मार्ग कहो या कारण कहो । दो मोक्ष के मार्ग (नहीं है) । मार्ग दो कहो या कारण दो कहो, वे हैं ही नहीं । ऐसी बात है । आहाहा ! वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ अब इसे...

प्रत्येक द्रव्य, परमाणु वह भी गुण-पर्यायसहित है । आहाहा ! प्रत्येक परमाणु उस-उस समय में स्वयं गुण और पर्यायसहित है । आहाहा ! कायम रही हुई शक्ति और कार्यरूपदशा, उससहित द्रव्य है । आहाहा ! चन्दुभाई ! ऐसा मार्ग है, भाई ! कहो, पानी छानना वह आत्मा नहीं कर सकता, ऐसी यहाँ तो बात है ।

मुमुक्षु : कौन करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमाणु की पर्याय, उसमें क्रमसर उस प्रकार की पर्याय होने के काल में होती है । निश्चय, वह सत्य है और व्यवहार है, वह उपचार के कथन हैं । आहाहा ! वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा भी कहा है, निश्चय है, वह यथार्थ है और व्यवहार कहता है, उसकी श्रद्धा छोड़ना । है सही उसकी चीज़, परन्तु श्रद्धा छोड़ना, ऐसा कहा । नहीं ? अन्तिम सातवें में । ओहोहो !

टोडरमलजी ने तो बहुत सरस किया । उसमें भी सातवाँ अध्याय और उसमें भी निश्चय-व्यवहाराभास का भाग... गजब काम ! (संवत्) १९८४ में जब... पढ़ा था १९८२ में, मोक्षमार्गप्रकाशक । १९८२ । ५० वर्ष हुए । समयसार (संवत्) १९७८ में (हाथ आया) । ५४ वर्ष हुए । समयसार १९७८ । पंचाध्यायी, मोक्षमार्गप्रकाशक, पुरुषार्थसिद्धिउपाय यह सब १९८२ (में पढ़े) । १९८२ में यह पढ़ते हुए, खाना-पीना कहीं सुहावे नहीं । उसके वाँचन की धुन (लगी) । राजकोट । पहले मिला था भाई के पास से । लाखाणी... लाखाणी । दामोदर चत्रभुज से मिला था । कमरे पर । यह हीराभाई सामने रहते हैं न ? उनके सामने वहाँ कमरा नहीं ? राजकोट । निवास में थे न हीराभाई ? रहते हैं ? वहीं के वहीं रहते हैं ? सामने कमरा । वहाँ पुस्तकें रहती थी । यह १९८२ की बात है । पचास वर्ष हुए परन्तु हमें तो मानो कल हुआ हो, ऐसा लगता है । चत्रभुजभाई

थे, बुजुर्ग। मैंने कहा, मोक्षमार्ग (प्रकाशक) चाहिए। दामोदरभाई.... खड़े रहे। सीढ़ी है न? सीढ़ी, चढ़ने की। वह ऐसी पुस्तक है। ऐसे नहीं। परन्तु एक-एक शब्द सातवें अध्याय का... ओहोहो! यह तो निचोड़ कर डाला है। फिर साथ में रखते नहीं थे। १९८४ में लिख लिया। सातवाँ (अधिकार) लिख लिया। आहाहा! वस्तु तो वस्तु यह है, बापू! यह किसी के धर की है? आहाहा!

तू भी आत्मा है। ठीक! तू भी गुण-पर्यायसहित है। प्रत्येक समय में तू गुण-पर्यायसहित है। अब तेरी पर्याय के कार्य के लिये पर के सहित की आवश्यकता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपचारिक कारण, खोटा कारण है। व्यवहार कारण, वह अयथार्थ कारण है। उसकी श्रद्धा छोड़ना। आहाहा! यह एक ही सिद्धान्त वीतराग का। द्रव्य, वह गुण-पर्यायसहित है। आहाहा! किस समय में वह गुण-पर्यायरहित होगा? आहाहा! कि जो पर्याय पर के कारण हो? वह कार्य और गुण, कार्यसहित तो है। गुण, कारण है; पर्याय, कार्य है। उसके कारण-कार्यसहित तो वह द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व के टुकड़े कर डालने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भाई! बात तो ऐसी है। आहाहा!

गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं,.... यह नहीं। पर्याय क्रमवर्ती कहा जाता है। अब इसका विस्तार कहते हैं। जीवद्रव्य के ज्ञान आदि अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य.... अनन्त गुण एक समय में है। जीवद्रव्य में एक समय में अनन्त गुण हैं। है न? और पुद्गलद्रव्य के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, इत्यादि अनन्त गुण हैं,.... पुद्गल के, एक परमाणु में। आहाहा! सो ये गुण तो द्रव्य में सहभावी हैं,.... यह इन्होंने व्याख्या कर डाली। परन्तु वह गुण, गुण में सहभावी है। टीका में यह शब्द नहीं हैं। नहीं। न्याय से मिलना चाहिए न वापस। परमाणु में—द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण इत्यादि अनन्त गुण हैं,.... गुण तो है। अन्वयी हैं, सदा नित्य हैं, कभी द्रव्य से तन्मयपना नहीं छोड़ते।

इस अपेक्षा से अर्थ किया है। द्रव्य से गुण पृथक् नहीं पड़ते, इतना। सहभावी का अर्थ गुण, गुण के साथ है।

तथा पर्याय के दो भेद हैं—एक तो स्वभाव, दूसरी विभाव। आहाहा! जीव के सिद्धत्वादि स्वभाव-पर्याय हैं,.... लो। सिद्ध आदि है न, वह स्वभाव पर्याय है और केवलज्ञानादि स्वभाव-गुण हैं। उसे गुण गिना है, अपेक्षा से। केवलज्ञान को, हों! और अन्तर के गुण हैं, वे स्वभाव गुण हैं, त्रिकाल है। अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाते।

अस्तित्व,... मौजूदगीपना, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, ये स्वभावगुण सब द्रव्यों में पाये जाते हैं। सब द्रव्यों में यह गुण है। आहाहा! अगुरुलघुगुण का परिणमन षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप है। पर्याय लेनी है न। यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में हैं,.... लो, यह सूक्ष्म आया। छहों द्रव्यों में अगुरुलघु की षट्गुण हानि-वृद्धि की पर्याय (होती है)। अगुरुलघु एक प्रतिजीवी गुण है। एक अगुरुलघु अनुजीवी गुण है और उस-अगुरुलघु की पर्याय में षट्गुण की हानिवृद्धिपना (होता है), ऐसा प्रत्येक गुण की पर्याय में षट्गुण की हानिवृद्धिपना है। 'सर्वविशुद्ध' में तो यह लिया है न? 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' में। अगुरुलघुगुण के कारण उत्पाद-व्यय है। इसलिए वहाँ (लिया है), बस। षट्गुण हानि... सर्वविशुद्ध में आया है। उसके कारण से परिणमन है। आता है। है, वह सब आ गया है। अगुरुलघु के कारण पर्याय है। बस, इतना वहाँ है।

यह स्वभावपर्याय सभी द्रव्यों में है, कोई द्रव्य षट्गुणी हानि-वृद्धि बिना नहीं है, यही अर्थपर्याय कही जाती है,.... लो! वह शुद्ध पर्याय है। यह शुद्ध पर्याय संसारीजीवों के सब अजीव पदार्थों के तथा सिद्धों के पायी जाती है,.... अभव्य जीव के गुण की पर्याय में भी षट्गुणी शुद्ध है। मिथ्यादर्शन की पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि है न, वह शुद्ध है, ऐसा कहना है। आगमगम्य है। क्या कहा यह? मिथ्यात्व की पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय, प्रत्येक पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धिवाली शुद्धपर्याय है। वस्तु ऐसी है। गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर....

यह शुद्धपर्याय संसारी जीवों के,.... है न? सब अजीव पदार्थों के तथा सिद्धों के पायी जाती है,.... लो। सिद्धपर्याय तथा केवलज्ञानादि गुण सिद्धों के ही पाया जाता है, दूसरों के नहीं। संसारी जीवों के मतिज्ञानादि विभावगुण.... उसे गुण कहा।

है तो पर्याय। केवलज्ञान को गुण कहा, वैसे मतिज्ञान को गुण कहा है। है वह पर्याय, परन्तु उसे गुण कहा है। अवगुण टलकर हुई, इसलिए गुण कहा है। अवगुण की पर्याय टलकर हुई, इसलिए गुण (कहा है)। है तो पर्याय।

मुमुक्षु : यह सबको लागू पड़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको लागू पड़े। आहाहा!

मतिज्ञानादि विभावगुण और नर-नारकी आदि विभावपर्याय ये संसारी-जीवों के पायी जाती है। ये तो जीव-द्रव्य के गुण-पर्याय कहे और पुद्गल के परमाणुरूप जो द्रव्य तथा वर्ण आदि स्वभावगुण.... यहाँ अब पर्याय की बात है। एक वर्ण से दूसरे वर्णरूप होना,.... यह पर्याय। स्वाभाविक पर्याय, हों! विभाव शब्द है, वह खोटा है। विभाव शब्द पड़ा है, वह खोटा है। एक वर्ण दूसरे वर्णरूप होना स्वभावगुणपर्याय है। आहाहा! यह व्यंजन भी खोटा है। स्वभावगुणपर्याय चाहिए, बस इतना। व्यंजन है, उसका काम नहीं। गुणपर्याय की बात है न यहाँ। यह द्रव्यपर्याय की व्याख्या नहीं। द्रव्यपर्याय की व्याख्या हो तो व्यंजन कहलाये। यह तो गुणपर्याय की (व्याख्या है)। यह तब व्याख्यान हो गये हैं। तब यह सब कहा गया है। परमात्मप्रकाश का वाँचन हो गया। कहा है वहाँ।

एक परमाणु में दो-तीन इत्यादि अनेक परमाणु मिलकर स्कन्धरूप होना, ये विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है। यह बराबर है। अधिक रजकण इकट्ठे होकर जो विभावपर्याय हो, उसे विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय कहते हैं। आहा! यह भी गुण-पर्यायसहित ही द्रव्य होता है, विभाव के समय भी। आहाहा! समझ में आया? विभाव के समय दूसरी चीज़ का आश्रय, वह विभाव, यह यहाँ नहीं लेना। इस विभावपर्याय के काल में यह पर्याय और गुणसहित ही परमाणु है। आहाहा! उस-उस काल में अनन्त रजकण स्कन्ध ऐसी विभाविक द्रव्य व्यंजनपर्यायसहित ही द्रव्य है। पर के कारण नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म गम्भीर बात है, भाई! वीतरागदर्शन....

द्वयणुकादि स्कन्ध में जो वर्ण आदि है, वे विभावगुण कहे जाते हैं,.... स्कन्ध है न इकट्ठा, इसलिए विभाव। वर्ण से वर्णान्तर होना, रस से रसान्तर होना, गन्ध से अन्य गन्ध होना, यह विभाव-पर्याय है। स्कन्ध में, हों! स्कन्ध में। आहाहा! परमाणु शुद्ध

द्रव्य में एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और शीत-उष्ण में से एक तथा रूखे-चिकने में से एक, ऐसे दो स्पर्श, इस तरह पाँच गुण तो मुख्य हैं, इनको आदि से अस्तित्वादि अनन्त गुण हैं, वे स्वभाव-गुण कहे जाते हैं,.... लो। एक परमाणु में अस्तित्व आदि अनन्त स्वभाव गुण कहने में आते हैं। और परमाणु का जो आकार, वह स्वभावद्रव्य व्यंजन-पर्याय है। विस्तार बहुत लिया है। वह गुण कहे।

एक परमाणु वर्ण आदि से रसान्तर हो, वह तो गुणपर्याय में आया। समझ में आया? परन्तु स्कन्ध में हो तो वह विभावपर्याय में आया। और एक परमाणु में आकार वह स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है। स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय। अकेला है न? वर्णादि गुणरूप परिणमन स्वभावगुण.... पर्याय इतना लेना। वर्णादि गुणरूप परिणमन, वह स्वभावगुणपर्याय, ऐसा लेना। व्यंजन नहीं लेना। वर्णादि गुणरूप परिणमन। बस, यहाँ तो गुण का परिणमन। स्वभावगुण। गुण का लेना है न। द्रव्य नहीं लेना। द्रव्य हो तो व्यंजन आवे। समझ में आया? यह तब पढ़ा था, तब सब कहा था। चिह्न कराये थे। क्या कहा यह?

एक परमाणु के रंग, गन्ध, रसगुण का परिणमन वह स्वभावगुणपर्याय है। अकेला है न। ज्यादा इकट्ठे होकर हो तो विभावगुणपर्याय। आहाहा! कितना याद रखना? यह तो साधारण... चौदह पूर्व याद रखते हैं न। आहाहा! बारह अंग एक क्षण में रचे, ऐसी सामर्थ्य जीव की। गणधर का जीव भगवान की वाणी सुनकर फिर (रचना करे)। आहाहा! मुनि पहले हो जाये, हों! फिर वाणी निकले। फिर शास्त्र रचे। बारह अंग, चौदह पूर्व। उसमें क्या? बारह अंग में भी स्थूल कथन है। सूक्ष्म कथन तो अन्दर गम्भीर रह गया है। आहाहा! इसलिए कहा है, उससे कुछ विपरीत है, ऐसा नहीं। कहा है, उसमें सूक्ष्मता अनन्त है। ऐसा है। समझ में आया? इसलिए कुछ दूसरे प्रकार से होगा और, ऐसा नहीं है। सूक्ष्मपना उसमें अनन्त है। आहाहा! स्थूलरूप से कहा, इसलिए कोई दूसरी चीज़ विपरीत है, ऐसा नहीं है। कहा हुआ स्थूल है, इसलिए उसमें रहे हुए सत्य की सूक्ष्मता अपार रही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक-एक वाक्य वीतराग के गम्भीर हैं।

जीव और पुद्गल इन दोनों में तो स्वभाव और विभाव दोनों हैं,.... दो है न

उसमें ? तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन चारों में अस्तित्वादि स्वभावगुण ही हैं, और अर्थपर्याय षट्गुणी हानि-वृद्धिरूप स्वभावपर्याय सभी के हैं। उसमें विभाव नहीं, ऐसा कहना है। चार द्रव्य में विभाव नहीं। धर्मादि चार, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल (इन) चार पदार्थों के विभावगुणपर्याय नहीं हैं। आहाहा! बहुत अच्छा स्पष्ट किया है। द्रव्य, गुण और पर्याय का यथार्थ ज्ञान हो न, तो इसे कारण-कार्य के झगड़े उड़ जायें। समझ में आया ? उस-उस समय में गुण, पर्यायसहित का द्रव्य है। भले विभावपर्यायसहित (हो)। गुण स्वभाव और पर्याय विभाव, उस सहित का द्रव्य उस-उस काल में वह स्वयं से ही है। आहाहा! समझ में आया ? वह गुण और पर्यायसहित ही द्रव्य स्वयं से ही समय-समय में है। विभाव के समय भी स्वयं से ही है। आहाहा!

आकाश के घटाकाश मटाकाश इत्यादि को जो कहावत है,.... यह तो उपचार है। आकाश तो आकाश है। उसमें घटाकाश (अर्थात्) घट जितना रहे, वह घटाकाश। परन्तु इससे आकाश घटाकाश कहीं अलग नहीं पड़ गया। वह उपचारमात्र है, ऐसा कहना है। आकाश में यह घटाकाश, यह पटाकाश, ऐसा जो कहना, वह उपचारमात्र है। आकाश तो आकाश ही है। उसे पर के कारण उपाधि हुई घटाकाश और मटाकाश - ऐसा नहीं है, ऐसा कहना है। उसके कारण विभाव हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा कहना है। आहाहा!

ये षट्द्रव्यों के गुण-पर्याय कहे गये हैं। लो। इन षट्द्रव्यों में जो शुद्धगुण—शुद्धपर्याय सहित जो शुद्ध जीवद्रव्य.... लो, शुद्धगुण और शुद्धपर्यायसहित जो शुद्ध जीवद्रव्य, वही उपादेय है। योगफल यह है। भगवान शुद्ध गुण, शुद्ध द्रव्य, पर्याय शुद्ध। परिणति के काल में वह उपादेय है। उपादेय होने के काल में वह उपादेय है। आहाहा! समझ में आया ? द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध, ऐसा जिसे दृष्टि में परिणमन हुआ, उसे वह उपादेय है।

मुमुक्षु : शुद्ध पर्यायसहित उपादेय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय है न वह। निर्मल पर्याय। अन्दर में होती है न। शुद्ध

पर्याय में द्रव्य-गुण की शुद्धता उपादेय होती है न। आहाहा! यह क्या कहा? शुद्ध पर्याय जो निर्मल है, उसमें यह द्रव्य, गुण और शुद्ध पर्याय उपादेयरूप से परिणमती है। शुद्ध पर्याय भी उपादेयरूप से शुद्ध परिणमन में होती है। अभेदरूप से। आहाहा! ऐसी व्याख्या! बाहर की सिरपच्ची में पड़े, उन्हें यह सूझ नहीं आती। फिर दृष्टि में गड़बड़ उठे।

आराधने योग्य है। लो। शुद्ध द्रव्य, गुण और पर्याय सेवनयोग्य है। आहाहा! सेवन तो पर्याय में होता है, परन्तु पर्याय का ध्येय द्रव्य, गुण है, इससे उसे आराधा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह जो शुद्ध पर्याय यहाँ लिखी है, वह प्रगटवाली?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल। निर्मल प्रगट। वह स्वयं प्रगट है, तब शुद्ध पर्याय उपादेय होती है न। क्या कहा यह? निर्मल पर्याय उपादेयरूप से परिणमे, तब उसे शुद्ध कहा जाये न। आहाहा! द्रव्य और गुण शुद्ध है, उसका आश्रय लेकर जो परिणति हुई, तब उसे शुद्धपर्याय द्रव्य-गुण उपादेय कहने में आये हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग। इसमें वाद-विवाद में चढ़ा डालकर... अरे! लोगों को बेचारों को मुश्किल से बाहर आया, वहाँ झगड़े खड़े किये।

५७वीं गाथा में द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या आयी। आहाहा! द्रव्य उसे कहते हैं कि गुण-पर्यायसहित हो। आहाहा! अब, कितनी ही पर्यायें मतिज्ञानादि विभावगुण हों, केवलज्ञान आदि.... गुण कहा परन्तु पर्याय है, स्वभावपर्याय होती है, और परमाणु द्रव्य, गुण, पर्याय शुद्ध होती है। उसकी व्यंजनपर्याय शुद्ध है, अर्थपर्याय अगुरुलघु शुद्ध है। दो परमाणु से लेकर स्कन्ध में उसकी विभाविक व्यंजनपर्याय अशुद्ध है। उसमें षड्गुण हानि-वृद्धि पर्याय, वह शुद्ध है। इसी प्रकार अभव्य आदि जीव में गुण शुद्ध है, पर्याय, वह अशुद्ध विभावरूप होने पर भी, उसकी पर्याय में अगुरुलघु की शुद्धता अनन्त है। आहाहा! समझ में आया? विभावपर्याय भले हो, परन्तु उसमें षड्गुण हानि-वृद्धि की पर्यायें (शुद्ध है)। आहाहा! गजब है! यह अर्थपर्याय तो शुद्ध ही है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग, कहा श्री सीमन्धरनाथ।' आहाहा!

गाथा - ५८

अथ जीवस्य विशेषेण द्रव्यगुणपर्यायान् कथयति -

५८) अप्पा बुज्झाहि दव्वु तुहँ गुण पुणु दंसणु णाणु।
पज्जय चउ-गइ-भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु॥५८॥
आत्मानं बुध्यस्व द्रव्यं त्वं गुणौ पुनः दर्शनं ज्ञानम्।
पर्यायन् चतुर्गतिभावान् तनुं कर्मविनिर्मितान् जानीहि॥५८॥

अप्पा बुज्झाहि दव्वु तुहँ आत्मानं द्रव्यं बुध्यस्व जानीहि त्वम्। गुण पुणु दंसणु णाणु गुणौ पुनर्दर्शनं ज्ञानं च। पज्जय चउगइभाव तणु कम्मविणिम्मिय जाणु तस्यैव जीवस्य पर्यायंश्चतुर्गतिभावान् परिणामान् तनुं शरीरं च। कथंभूतान् तान्। कर्मविनिर्मितान् जानीहीति। इतो विशेषः शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं द्रव्यं जानीहि। तस्यैवात्मनः सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं गुण इति। तत्र ज्ञानमष्टविधं केवलज्ञानं सकलमखण्डं शुद्धमिति शेषं सप्तकं खण्डज्ञानमशुद्धमिति। तत्र सप्तकमध्ये मत्यादिचतुष्टयं सम्यग्ज्ञानं कुमत्यादित्रयं मिथ्याज्ञानमिति। दर्शनचतुष्टयमध्ये केवलदर्शनं सकलमखण्डं शुद्धमिति चक्षुरादित्रयं विकलमशुद्धमिति। किं च। गुणास्त्रिविधा भवन्ति। केचन साधारणाः, केचनासाधारणाः, केचन साधारणासाधारणा इति जीवस्य तावदुच्यन्ते। अस्तित्वं वस्तुत्वं प्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयः साधारणाः, ज्ञानसुखादयः स्वजातौ साधारणा अपि विजातौ पुनरसाधारणाः। अमूर्तित्वं पुद्गलद्रव्यं प्रत्यसाधारणमाकाशादिकं प्रति साधारणं। प्रदेशत्वं पुनः कालद्रव्यं प्रति पुद्गलपरमाणुद्रव्यं च प्रत्यसाधारणं शेषद्रव्यं प्रति साधारणमिति संक्षेपव्याख्यानम्। एवं शेषद्रव्याणामपि यथासंभवं ज्ञातव्यमिति भावार्थः॥५८॥

आगे जीव के विशेषपनेकर द्रव्य-गुणपर्याय कहते हैं -

आत्मा को तुम द्रव्य लखो अरु दर्शन ज्ञान लखो गुणरूप।
चार गति के भाव और तन कर्मजन्य पर्याय लखो॥५८॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य! [त्वं] तू [आत्मानं] आत्मा को तो [द्रव्यं] द्रव्य [बुध्यस्व] जान, [पुनः] और [दर्शनं ज्ञानम्] दर्शन ज्ञान को [गुणौ] गुण जान, [चतुर्गतिभावान् तनुं] चार गतियों के भाव तथा शरीर को [कर्मविनिर्मितान्] कर्मजनित [पर्यायान्] विभाव-पर्याय [जानीहि] समझ।

भावार्थ :- इसका विशेष व्याख्यान करते हैं - शुद्धनिश्चयनयकर शुद्ध, बुद्ध, अखंड, स्वभाव, आत्मा को तू द्रव्य जान, चेतनपने के सामान्य स्वभाव को दर्शन जान, और विशेषता से जानपना उसको ज्ञान समझ। ये दर्शन ज्ञान आत्मा के निज गुण है, उनमें से ज्ञान के आठ भेद हैं, उनमें केवलज्ञान तो पूर्ण है, अखंड है, शुद्ध है, तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान तो सम्यक्ज्ञान और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन मिथ्या ज्ञान, ये केवल की अपेक्षा सातों ही खंडित हैं, अखंड, और सर्वथा शुद्ध नहीं है, अशुद्धता सहित हैं, इसलिये परमात्मा में एक केवलज्ञान ही है। पुद्गल में अमूर्तगुण नहीं पाये जाते, इस कारण पाँचों की अपेक्षा साधारण, पुद्गल की अपेक्षा असाधारण। प्रदेशगुण काल के बिना पाँच द्रव्यों में पाया जाता है, इसलिये पाँच की अपेक्षा यह प्रदेशगुण साधारण है, और काल में न पाने से स्वकाल की अपेक्षा असाधारण है। पुद्गल-द्रव्य में मूर्तिकगुण असाधारण है, इसी में पाया जाता है, अन्य में नहीं और अस्तित्वादि गुण इसमें पाये जाता हैं, तथा अन्य में भी, इसलिये साधारणगुण हैं। चेतनपना पुद्गल में सर्वथा नहीं पाया जाता। पुद्गल-परमाणु को द्रव्य कहते हैं। स्पर्श, रस, गंध, वर्णस्वरूप जो मूर्ति वह पुद्गल का विशेषगुण है। अन्य सब द्रव्यों में जो उनका स्वरूप हैं, वह द्रव्य है, और अस्तित्वादि गुण, तथा स्वभाव परिणति पर्याय है। जीव और पुद्गल के बिना अन्य चार द्रव्यों में विभाव-गुण और विभाव-पर्याय नहीं है, तथा जीव पुद्गल में स्वभाव-विभाव दोनों हैं। उनमें से सिद्धों में तो स्वभाव ही है, और संसारी में विभाव की मुख्यता है। पुद्गल परमाणु में स्वभाव ही है, और स्कंध विभाव ही है। इस तरह छहों द्रव्यों का संक्षेप से व्याख्यान जानना॥५८॥

गाथा - ५८ पर प्रवचन

आगे जीव के विशेषपनेकर द्रव्य-गुण-पर्याय कहते हैं :- ५८।

(५८) अप्पा बुज्झहि दव्वु तुहुँ गुण पुणु दंसणु णाणु।

पज्जय चउ-गइ भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु ॥५८॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य! तू आत्मा को तो द्रव्य जान,... पुनश्च एक ओर कहते ऐसा हैं कि वाणी से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यह पहले आ गया है। दिव्यध्वनि से

और महामुनि के उपदेश से भी उस वाणी से जीव ज्ञात नहीं होता। यहाँ कहते हैं, हे जीव! जान, ऐसा कहते हैं। जिस अपेक्षा से बात (हो, वह अपेक्षा समझनी चाहिए)। वहाँ पहले कहा, वेद और मौनी। दो आया था न? वेद अर्थात् दिव्यध्वनि। मुनि—उत्कृष्ट मुनियों की वाणी से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यहाँ कहते हैं कि हे शिष्य! मैं कहता हूँ, उसे जान। समझ में आया? परलक्ष्यी ज्ञान में यह जानने की बात करते हैं। स्वलक्ष्यी ज्ञान में तो इससे ज्ञान होगा नहीं। आहाहा! यह विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण ७, रविवार
दिनांक-१८-०७-१९७६, गाथा-५८, ५९, प्रवचन-३८

५८ गाथा । परमात्मप्रकाश । आगे जीव के विशेषपनेकर द्रव्य-गुण-पर्याय कहते हैं :- जीव के खास गुण क्या ? द्रव्य क्या ? और पर्याय क्या ? इसकी व्याख्या मुख्य है ।

(५८) अप्या बुद्धिहि दव्वु तुहुं गुण पुणु दंसणु णाणु ।

पज्जय चउ-गइ भाव तणु कम्म-विणिम्मिय जाणु ॥५८ ॥

अन्वयार्थ :— द्रव्य जान ! हे शिष्य ! तू आत्मा को तो द्रव्य जान,.... इसकी व्याख्या करेंगे । दर्शन ज्ञान को गुण जान, चार गतियों के भाव तथा शरीर को कर्मजनित विभाव-पर्याय समझ ।

भावार्थ :— इसका विशेष व्याख्यान करते हैं - शुद्धनिश्चयनयकर.... भगवान् आत्मा सम्यग्दर्शन का जो विषय, वह शुद्धनिश्चयनयकर शुद्ध, बुद्ध,.... एक की व्याख्या अखण्ड की है । मूल तो एक स्वभाव है । शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव । है संस्कृत में । 'शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं द्रव्यं जानीहि' यह एक का अर्थ अखण्ड किया है । परन्तु अखण्ड तो केवलज्ञान में आयेगा न ! पर्याय में अखण्ड आयेगा । इसलिए इसे एक स्वभाव लेना । क्या कहा ? शुद्ध निश्चय से भगवान् आत्मा अत्यन्त शुद्ध है । बुद्ध—ज्ञान का पिण्ड है और एक स्वभाव है । वस्तु है, उसका एक स्वभाव है । पर्याय में अनेक भेद है । समझ में आया ? जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो उपादेय करनेयोग्य चीज है, वह तो शुद्ध से शुद्ध निश्चयनय से अर्थात् कि सम्यक् श्रुतज्ञान की दृष्टि से—ज्ञान से देखें तो वह शुद्ध प्रभु है । बुद्ध है । बुद्ध अर्थात् ज्ञानस्वरूप ही है वह तो । त्रिकाली, हों ! त्रिकाली । और एक स्वभावी है । समझ में आया ? आहाहा ! अखण्ड, स्वभाव, आत्मा को तू द्रव्य जान,.... आहाहा ! उसे तो आत्मा को द्रव्य—द्रव्य—वस्तु जान । शुद्ध, बुद्ध और एक स्वभावरूप वस्तु, उसे तू आत्मा जान । आहाहा !

चेतनपने के सामान्य स्वभाव को दर्शन-जान,.... क्या कहते हैं ? अब उसके गुण की व्याख्या करते हैं । पहले द्रव्य की कही । द्रव्य अर्थात् वस्तु । चेतनपने के सामान्य स्वभाव को दर्शन.... देखना-दर्शन उपयोग । चेतनपने के सामान्य स्वभाव को दर्शन

ज्ञान, और विशेषता से जानपना उसको ज्ञान समझ। समझ में आया ? ये दर्शन ज्ञान आत्मा के निज गुण है,.... देखना सामान्य और विशेष। सामान्य अर्थात् दर्शन और विशेष अर्थात् ज्ञान। वह आत्मा के त्रिकाल निज गुण हैं। वस्तु जैसे शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव त्रिकाल है। उसी प्रकार यह दर्शन, ज्ञान आत्मा के निज गुण त्रिकाल एकरूप है। आहाहा!

उनमें से ज्ञान के आठ भेद हैं,.... अब यह पर्याय की बात लेते हैं। उनमें केवलज्ञान तो पूर्ण है, अखण्ड शुद्ध है,.... वहाँ आया अखण्ड। 'केवलज्ञानं सकलमखण्डं शुद्धम्' ऐसा शब्द है। केवलज्ञान है... आहाहा! वह पूर्ण है। सकल है न? सकल है, इस शब्द में। पूर्ण है, अखण्ड है, शुद्ध है। पर्याय, हों! केवलज्ञान की पर्याय, वह अखण्ड है, शुद्ध है, पूर्ण है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान... यह चार ज्ञान की जो पर्याय, वह तो सम्यग्ज्ञान... है सम्यग्ज्ञान। विभावज्ञान—इन चार को विभावज्ञान कहा। केवलज्ञान को स्वभावज्ञान कहा। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन मिथ्या ज्ञान, ये केवल की अपेक्षा सातों ही खण्डित हैं,.... आहाहा! मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान (ये) केवलज्ञान के अखण्ड की अपेक्षा से ये चारों ज्ञान खण्ड है। समझ में आया ? केवलज्ञान अखण्ड है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। त्रिकाली द्रव्य, वह आश्रय करनेयोग्य है।

वस्तु जो है ऐसे ध्रुव शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव, वह उपादेय है। उसमें उसके कारण सम्यग्दर्शन होता है। यह केवलज्ञान साध्यरूप से उपादेय सही। ध्येयरूप से उपादेय नहीं। समझ में आया ? केवलज्ञान उपेय है न, उपेय ? इस अपेक्षा से—साध्य की अपेक्षा से उपादेय है। और ध्येय की अपेक्षा से तो त्रिकाली द्रव्य ही उपादेय है। अखण्ड ज्ञान वस्तु शुद्ध चैतन्य। ये सातों ज्ञान—चार ज्ञान सम्यक् और तीन अज्ञान—सातों ही खण्डित है। अखण्ड नहीं। और सर्वथा शुद्ध नहीं है,.... मतिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान भी सर्वथा शुद्ध नहीं। केवलज्ञान सर्वथा शुद्ध है। आहाहा!

अशुद्धता सहित हैं,.... मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, वह भी अशुद्धतासहित खण्डित है। आहाहा! इसलिए परमात्मा में एक केवलज्ञान ही है। परमात्मा में तो एक केवलज्ञान

ही है। क्योंकि वे (सात) खण्डित है, ऐसा वह नहीं है। अखण्ड ज्ञान केवलज्ञान। एक त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से पूर्ण आश्रय हो गया तो पूर्ण पर्याय केवलज्ञान अखण्ड प्रगट हुई। समझ में आया ?

पुद्गल में अमूर्तगुण नहीं पाये जाते,... है ? उन्होंने अधिक नहीं डाला। वरना यहाँ तो पाठ में जरा यह है। 'गुणास्त्रिविधा भवन्ति' गुण तीन प्रकार के हैं, इतना शब्द अधिक है संस्कृत में। गुण तीन प्रकार के हैं। साधारण, असाधारण, साधारण-असाधारण। संस्कृत में है। दूसरी लाईन है। ऊपर दूसरी लाईन। 'गुणास्त्रिविधा भवन्ति' यह शब्द न डालकर सीधा स्पष्टीकरण किया इन्होंने—टीकाकार ने (अर्थकार ने)। पुद्गल में अमूर्तगुण नहीं पाये जाते,... परमाणु में अमूर्तपना नहीं। इस कारण पाँचों की अपेक्षा साधारण,... अमूर्तपना पुद्गल के अतिरिक्त पाँच द्रव्य की अपेक्षा से साधारण है। समझ में आया ? पुद्गल के अतिरिक्त अमूर्तपना पाँच द्रव्यों में साधारण है—सर्वत्र है। पुद्गल की अपेक्षा असाधारण। पुद्गल में अमूर्तपना नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रदेशगुण काल के बिना पाँच द्रव्यों में पाया जाता है, इसलिए पाँच की अपेक्षा यह प्रदेशगुण साधारण है,... क्या कहा यह ? प्रदेशगुण की अपेक्षा से काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्यों में साधारण है। सबको प्रदेश है। समझ में आया ? और काल में न पाने से काल की अपेक्षा असाधारण है। प्रदेशगुण इसमें नहीं। काल में नहीं। पाँच में है, इसलिए साधारण। इसमें असाधारण, इसलिए नहीं।

पुद्गलद्रव्य में मूर्तिकगुण असाधारण है,... लो ! पुद्गलद्रव्य में मूर्तिकपना असाधारण है। अर्थात् ? इसमें ही है, दूसरे में है नहीं। इसी में पाया जाता है,... देखा ! स्पष्टीकरण किया है। अन्य में नहीं... मूर्तिकपना तो एक पुद्गल में ही है, अन्यत्र है नहीं। अस्तित्वादि गुण इसमें भी पाये जाते हैं,... पुद्गलद्रव्य में भी अस्तित्वगुण आदि पाये जाते हैं,... अस्तित्व, वस्तुत्व आता है न ? अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु, साधारण इतना है अन्दर। यह तो अपने आता है, जैन (सिद्धान्त) प्रवेशिका में।

अस्तित्व, वस्तुत्व, लो ! प्रमेयत्व—किसी भी ज्ञान का विषय हो, ऐसा गुण है। अगुरुलघुत्व आदि साधारण है। सब द्रव्य में है। छहों द्रव्य में वह है। यह तो जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतन्त्र है, ऐसा सिद्ध करना है। जिस

द्रव्य में जो गुण है, वह दूसरे में नहीं, इस अपेक्षा से उसे (असाधारण कहा है)। यहाँ सबमें है, उसे साधारण कहा और दूसरे में नहीं, उसे असाधारण कहा। आहाहा! और प्रत्येक गुण की शक्ति स्वयं से स्वतन्त्र है। आहाहा! साधारणरूप से।

चेतनपना पुद्गल में सर्वथा नहीं पाया जाता। परमाणु में चेतनपना है नहीं। तथापि सचेत शरीर कहते हैं न? सचेत वनस्पति नहीं आती?

मुमुक्षु : शरीर कभी सचेत होता है? वह तो पुद्गल का....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से कथन है। सचेतन शरीर, सचेतन वनस्पति। समझ में आया?

चेतनपना पुद्गल में सर्वथा नहीं पाया जाता। ऐसा कहना सचेत शरीर, सचेत वनस्पति। ऐसा कहते हैं या नहीं? यह सचेत वनस्पति। यह तो निमित्त से है। पुद्गल परमाणु तो अत्यन्त चेतनरूप से है ही नहीं। चेतनपने का अंश भी जरा नहीं। और कहलाता है सचेतन, यह बड़ा विवाद है। सचेत शरीर कहा है। आहाहा! सचेत वनस्पति कही है। सचेत और अचेत वनस्पति के दो भेद नहीं? वह तो अपेक्षा से बात है। शरीर जो है, वह तो अचेतन ही है। वनस्पति का शरीर हो, एकेन्द्रिय का शरीर तो अत्यन्त अचेतन ही है। वह तो साथ में जीव है, ऐसा करके सचेतन का उपचार करके कथन किया है। समझ में आया?

पुद्गल-परमाणु को द्रव्य कहते हैं। अब पुद्गल की बात लेते हैं। पुद्गल-परमाणु को द्रव्य कहते हैं। जीव को कहा था न पहले द्रव्य? अब यह पुद्गल को लेते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णस्वरूप जो मूर्ति वह पुद्गल का विशेषगुण है। स्पर्शपना, रसपना, गन्धपना, रंगपना यह मूर्तिक, यह विषय के गुण हैं। अन्य सब द्रव्यों में जो उनका स्वरूप है, वह द्रव्य है.... सब द्रव्यों में जो उनका स्वरूप है, वह द्रव्य है। दूसरे सबको। और अस्तित्वादि गुण,.... सब द्रव्यों में जो अस्तित्व, वस्तुत्व आदि उनके गुण हैं और स्वभावपरिणति पर्याय है। आहाहा! पुद्गल के अतिरिक्त। जीव, पुद्गल के अतिरिक्त। जिसकी स्वभावपरिणति है न, इस अपेक्षा से पर्याय है।

जीव और पुद्गल के बिना अन्य चार द्रव्यों में विभाव गुण.... देखा! जीव और पुद्गल बिना चार द्रव्यों में विभाव गुण और विभाव-पर्याय नहीं है, तथा जीव-पुद्गल

में स्वभाव-विभाव दोनों हैं। स्वभावरूप परिणमन और विभावरूप परिणमन, ऐसा अपना स्वरूप ही है। उनमें से सिद्धों में तो स्वभाव ही है, ... लो! सिद्ध में तो अकेला स्वभाव है। वहाँ विभाव नहीं। और संसारी में विभाव की मुख्यता है। स्वभाव भी प्रगट हुआ होता है, परन्तु विभाव की मुख्यता है।

पुद्गल परमाणु में स्वभाव ही है, ... क्या कहा? एक परमाणु में विभाव नहीं, ऐसा कहना है। एक परमाणु है, वह तो पुद्गल स्वभाव ही है। दो-तीन-चार इकट्ठे हों तो उसे विभाव कहा जाता है। एक परमाणु में विभाव नहीं। एक परमाणु तो स्वभाव ही है। उसमें कोई निमित्त की अपेक्षा नहीं है, विभावपना नहीं है। वास्तव में तो स्वाभाविक द्रव्य उसे कहते हैं। और स्कन्ध विभाव ही है। देखा! दो परमाणु से लेकर अनन्त रजकण विभाव है। वह विभाव परमाणु में नहीं है। और स्कन्ध विभाव है, वह स्वभाव नहीं है। विभाव है इतना। दो इकट्ठे होकर हुए न ऐसे? इकट्ठे का अर्थ (यह कि) है तो दोनों अन्दर पृथक्-पृथक् परन्तु एक-दूसरे को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। स्कन्ध में भी परमाणु तो स्वयंसिद्ध काम करता है। परन्तु इतना अन्तर है कि एक परमाणु पृथक् हो, वह स्वाभाविक पर्याय है, और वह परमाणु स्कन्ध में हो, तब विभाविकपर्याय है। उसकी भिन्न, हों! स्वतन्त्र। क्या कहा, समझ में आया?

यह प्रश्न उठा था। एक परमाणु है वह स्वाभाविक पर्याय है परन्तु दूसरे स्कन्ध में जुड़ता है, इसलिए उसे विभाव होता है। तब ऐसा कि वह विभाव उसमें पर के कारण है, ऐसा नहीं है। स्कन्ध में भी परमाणु विभावरूप स्वयं से है। समझ में आया? वहाँ यह बड़ा प्रश्न उठा था। यहाँ तो बहुत प्रश्न आये हैं न! अकेला परमाणु पृथक्, उसे स्वभाव कहना और वह परमाणु स्कन्ध में जुड़ता है, इस कारण से विभाव कहना। परन्तु वह विभाव सबके कारण से है, ऐसा नहीं है। एक-एक परमाणु की विभाव पर्याय वहाँ स्वतन्त्र है। समझ में आया इसमें? स्कन्ध में है, इसलिए पर के कारण परमाणु का विभाव है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाषा।

स्कन्ध के सम्बन्ध में परमाणु हो, वह परमाणु स्वयं से विभावरूप परिणमित हैं।

समझ में आया ? और स्कन्ध में भी अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावपना विभावपना आदि भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है। इसलिए परमाणु में विभावपना स्कन्ध की अपेक्षा से आया, इसलिए पर की अपेक्षा से आया, ऐसा नहीं है। उस समय के परमाणु का स्वभाव ही विभावरूप से परिणमा है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान ने कहे हुए वास्तविक द्रव्य-गुण और पर्याय किस प्रकार से है, इसकी यह व्याख्या है। सर्वज्ञ भगवान ने छह द्रव्य कहे, उनके गुण कहे, उनकी पर्याय कही। वह किस प्रकार उसका अस्तित्व है, इसकी यह व्याख्या है। आहाहा!

परमाणु में स्कन्ध में है, तब विभावरूप हुआ है अथवा स्थूल स्कन्ध में परमाणु है, वह परमाणु स्थूलरूप हुआ है। इसलिए ऐसा कहते हैं, वह स्थूल है, इसलिए स्थूलरूप हुआ है। ऐसा नहीं है। उसरूप स्थूलपने का होने का स्वभाव उसका उस समय का अपने कारण से है। आहाहा! यह सब प्रश्न निमित्त-उपादान के झगड़े में बहुत प्रश्न आये थे। वह देसाई लाया था। जेतपुरवाला नहीं ? कैसा ? शान्तिलाल देसाई। वहाँ से उस ओर से (लाया था)। देखो! उसमें जुड़े, तब उसके कारण विभाव हुआ है न ? अकेला परमाणु कैसे विभावरूप नहीं ? इसलिए पर के कारण विभावरूप हुआ है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह गाथा है न पंचास्तिकाय की ?

मुमुक्षु : ६२ गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ६२ है, वह नहीं। ८१, ८१। स्कन्ध में भी परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, पर के कारण नहीं। आहाहा! भले विभावपने परिणमा, परन्तु वह अपने से स्वतन्त्र अवस्था से विभावपने परिणमा है। समझ में आया ? वास्तव में तो स्कन्ध में परमाणु स्थूलरूप में परिणमा है। परमाणु भिन्न है, तब सूक्ष्मरूप है। स्कन्ध में है, तब स्थूलपने स्वयं से परिणमा है। परमाणु स्थूल हुआ; इसलिए लोग ऐसा कहते हैं कि पर के कारण स्थूल हुआ। ऐसा नहीं है। उस समय स्वयं अपने से स्थूल हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर के कारण क्या हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने प्रश्न रखा था उस ओर से। ऐसा कहते हैं वे लोग। स्थूल में परमाणु सूक्ष्म रहा नहीं। इसका अर्थ क्या हुआ ? स्थूल के सम्बन्ध से वह स्थूल हुआ।

निमित्त से स्थूल हुआ, ऐसा सिद्ध करना है वहाँ (परन्तु) ऐसा नहीं है। वह परमाणु स्वयं स्कन्ध में स्थूल में रहा है, वह अपनी स्वतन्त्र स्थूलतारूप से परिणमा है। आहाहा! स्वतन्त्र स्थूल है। स्थूलवाले हैं, इसलिए स्थूल हुआ, उनके कारण हुआ—ऐसा नहीं है। यह बहुत सूक्ष्म बात है। मूल वस्तु को उपादान की स्थूलता स्वयं से हुई है वहाँ। आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है।

जैसा है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय जान, ऐसा कहा है न यहाँ तो? आहाहा! तो परमाणु स्कन्ध में भी स्थूल हुआ है, वह स्वयं ही अपने से स्थूल हुआ है। निमित्त का सम्बन्ध है, इसलिए स्थूल हुआ है, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया इसमें? यह तो बहुत सूक्ष्म, भाई! परमाणु, परमाणु स्थूल में अपनी उस समय की स्थूलता की पर्याय उसे हुई है। आहाहा! स्थूल (मोटा) हो गया होगा? अकेला हो तो सूक्ष्म रहे और यहाँ स्थूल हुआ। उस स्थूल की पर्यायरूप परिणमने की अपनी योग्यता से परिणमा है। दूसरी चीज़ तो साथ में निमित्त है, उसे क्या है? आहाहा! बड़ा विवाद इसके कारण था। लो!

पुद्गल के बिना अन्य चार द्रव्यों में विभाव-गुण और विभाव-पर्याय नहीं है,... है? जीव-पुद्गल में स्वभाव-विभाव दोनों है। उनमें से सिद्धों में तो स्वभाव ही है, और संसारी में विभाव की मुख्यता है। पुद्गल परमाणु में स्वभाव ही है, और स्कन्ध विभाव ही है। उस समय की पर्याय की विभावपने परिणमने की योग्यता उसकी है। समझ में आया? स्कन्ध के विभाव के सम्बन्ध में आया, इसलिए उसके कारण यहाँ विभावपने-स्थूलपने परिणमा, ऐसा नहीं है। चन्दुभाई! बड़ा प्रश्न है यह निमित्त-उपादानवाले का।

मुमुक्षु : यह था इसलिए हुआ या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। प्रश्न लाये थे तब उस ओर से। क्या कहलाता है वह देश? बिहार? बिहार। उस ओर से लाये थे।

मुमुक्षु : स्थूल

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे निमित्त सिद्ध करना है न? निमित्त से होता है, यह सिद्ध करना है न। क्या कहा, समझ में आया? यह है इसमें परमाणु यहाँ है। पृथक् था तब

सूक्ष्म था। यहाँ स्थूल हुआ। देखो! इसके सम्बन्ध के कारण स्थूल हुआ या नहीं? निमित्त के कारण स्थूल हुआ या नहीं?

मुमुक्षु : परन्तु अपने उपादान से न हो, इसमें निमित्त क्या कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। उस समय परमाणु अपनी स्थूलपने की परिणति से परिणमित हुआ। आहाहा! इसमें बड़ा सिद्धान्त है। एक परमाणु है, वह पृथक् सूक्ष्म रहा। यहाँ आया तब स्थूल हो गया? तो वह स्कन्ध के कारण स्थूल हुआ न? उसकी पर्याय में स्थूलपना होना, उस समय का स्वयं का स्वभाव है। आहाहा! देवीलालजी! प्रत्येक के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतन्त्र है। पर के कारण नहीं। यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं। स्कन्ध में विभाव ही है।

इस तरह छहों द्रव्यों का संक्षेप से व्याख्यान जानना। लो! इस प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय, तीन की व्याख्या इस प्रकार जानना।

गाथा - ५९

जीवकर्मणोरनादिसंबन्धं कथयति -

५९) जीवहँ कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण।
कम्मँ जीउ वि जणियउ णवि दोहिँ वि आइ ण जेण॥५९॥

जीवानां कर्माणि अनादीनि जीव जनितं कर्म न तेन।

कर्मणा जीवोऽपि जनितः नैव द्वयोरपि आदिः न येन॥५९॥

जीवहं कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण जीवानां कर्मणामनादिसंबन्धो भवति हे जीव जनितं कर्म न तेन जीवेन। कम्मँ जीउ वि जणियउ णवि दोहिँ वि आइ ण जेण कर्मणा कर्तृभूतेन। जीवोऽपि जनितो न द्वयोरप्यादिर्न येन कारणेनेति। इतो विशेषः। जीवकर्मणाम-नादिसंबन्धः पर्यायसंतानेन बीजवृक्षवद्वयवहारनयेन संबन्धः कर्म तावत्तिष्ठति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावेन जीवेन न तु जनितं कर्म तथाविधजीवोऽपि स्वशुद्धात्मसंवित्यभावोपार्जितेन कर्मणा नरनारकादिरूपेण न जनितः कर्मात्मेति च द्वयोरनादित्वादिति। अत्रानादिजीवकर्मणो-स्संबन्धव्याख्यानेन सदा मुक्तः सदा शिवः कोऽप्यस्तीति निराकृतमिति भावार्थः॥ तथा चोक्तम् - 'मुक्तश्चेत्प्राग्भवे बद्धो नो बद्धो मोचनं वृथा। अबद्धो मोचनं नैव मुञ्चेरर्थो निरर्थकः। अनादितो हि मुक्तश्चेत्पश्चाद्बन्धः कथं भवेत्। बन्धनं मोचनं नो चेन्मुञ्चेरर्थो निरर्थकः॥'॥५९॥

ऐसे तीन प्रकार की आत्मा का है कथन जिसमें ऐसे पहले महाधिकार में द्रव्य-गुण पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से सातवें स्थल में तीन दोहा-सूत्र कहे। आगे आदर करने योग्य अतीन्द्रिय सुख से तन्मयी जो निर्विकल्पभाव उसकी प्राप्ति के लिए शुद्ध गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं। इनमें पहले चार दोहो में अनादि कर्मसम्बन्ध का व्याख्यान और पिछले चार दोहों में कर्म के फल का व्याख्यान इस प्रकार आठ दोहों का रहस्य है, उसमें प्रथम ही जीव और कर्म का अनादिकाल का सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं -

जीव नहीं उत्पन्न करे कर्मों को, कर्म न जीवों को।

जीव कर्म दोनों अनादि के हैं-ऐसा हे जीव! लखो॥५९॥

अन्वयार्थ :- [हे जीव] हे आत्मा [जीवानां] जीवों के [कर्माणि] कर्म [अनादीनि]

अनादि काल से हैं, अर्थात् जीव कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है, [तेन] उस जीव ने [कर्म] कर्म [न जनितं] नहीं उत्पन्न किये, [कर्मणा अपि] ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी [जीवः] यह जीव [नैव जनितः] नहीं उपजाया, [येन] क्योंकि [द्वयोःअपि] जीव कर्म इन दोनों का ही [आदिः न] आदि नहीं है, दोनों ही अनादि के हैं।

भावार्थ :- यद्यपि जीव व्यवहारनय से पर्यायों के समूह की अपेक्षा नये-नये कर्म समय-समय बाँधता है, नये-नये उपार्जन करता है, जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है, उसी तरह पहले बीजरूप कर्मों से देह धारता है, देह में नये-नये कर्मों को विस्तारता है, यह तो बीज से वृक्ष हुआ। इसी प्रकार जन्म-सन्तान चली जाती है। परन्तु शुद्धनिश्चयनय से विचारा जावे, तो जीव निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाव ही है। जीव ने ये कर्म न तो उत्पन्न किये, और यह जीव भी इन कर्मों ने नहीं पैदा किया। जीव भी अनादि का है, ये पुद्गलस्कंध भी अनादि के हैं, जीव और कर्म नये नहीं है, जीव अनादि का कर्मों से बँधा है। और कर्मों के क्षय से मुक्त होता है। इस व्याख्यान से जो कोई ऐसा कहते हैं, कि आत्मा सदा मुक्त है, कर्मों से रहित है, उनका निराकरण (खंडन) किया। ये वृथा कहते हैं, ऐसा तात्पर्य है। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है - 'मुक्तश्चेत्' इत्यादि। इसका अर्थ यह है, कि जो यह जीव पहले बँधा हुआ हो, तभी 'मुक्त' ऐसा कथन संभवता है, और पहले बँधा ही नहीं तो फिर 'मुक्त' ऐसा कहना किस तरह ठीक हो सकता। मुक्त तो छूटे हुए का नाम है, सो जब बँधा ही नहीं, तो फिर 'छूटा' किस तरह कहा जा सकता है। जो अबंध है, उसको छूटा कहना ठीक नहीं। जो बिना बंध मुक्ति मानते हैं, उनका कथन निरर्थक है। जो यह अनादि का मुक्त ही हो, तो पीछे बंध कैसे सम्भव हो सकता है। बंध होवे तभी मोचन छूटकारा हो सके। जो बंध न हो तो मुक्त कहना निरर्थक है।॥५९॥

गाथा - ५९ पर प्रवचन

ऐसे जीन प्रकार की आत्मा का है कथन जिसमें.... बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। तीन प्रकार का कथन चला है। ऐसे पहले महाधिकार में द्रव्य-गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से सातवें स्थल में तीन दोहा-सूत्र कहे। आगे आदर करनेयोग्य अतीन्द्रिय सुख से तन्मयी.... आहाहा! जो निर्विकल्पभाव उसकी प्राप्ति के लिये, शुद्ध

गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं.... आदर करनेयोग्य अतीन्द्रिय सुख से तन्मयी जो निर्विकल्पभाव.... आहाहा! इसकी प्राप्ति के लिये शुद्ध गुण-पर्याय के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं। इनमें पहले चार दोहों में अनादि कर्मसम्बन्ध का व्याख्यान.... चार दोहों में अनादि कर्मसम्बन्ध का व्याख्यान और पिछले चार दोहों में कर्म के फल का व्याख्यान, इस प्रकार आठ दोहों का रहस्य है, उसमें प्रथम ही जीव और कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं। ५९।

(५९) जीवहँ कम्मु अणाइ जिय जणियउ कम्मु ण तेण।

कम्मँ जीउ वि जणियउ णवि दोहिँ वि आइ ण जेण ॥५९ ॥

हे आत्मा! जीवों के कर्म अनादिकाल से हैं, अर्थात् जीव कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है, उस जीव ने कर्म नहीं उत्पन्न किये, ... यह बात कहते हैं। कर्म जीव ने उत्पन्न किये नहीं। कर्म, कर्म से हुए हैं। जीव, जीव से रहा है; कर्म, कर्म से रहे हैं— ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? कर्म नहीं उत्पन्न किये, ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी यह जीव नहीं उपजाया,.... इस कर्म ने जीव की कोई पर्याय उपजायी नहीं और जीव ने कर्म की पर्याय उपजायी नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! उस-उस काल में कर्म की पर्यायरूप परिणामते परमाणु स्वयं से उपजे हैं और जीव भी इस ओर विभाव आदिरूप स्वयं से उपजे हैं, कर्म के कारण नहीं।

मुमुक्षु : कर्मशास्त्र सब खोटे पड़ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मशास्त्र में निमित्तपने का ज्ञान कराया है। ज्ञानावरणी ज्ञान को रोके, यह शब्द है उसकी ध्वनि। ज्ञानावरणी। ज्ञान को आवरण करनेवाला ज्ञानावरणी। यह तो निमित्त से कथन है। यह यहाँ कहते हैं।

ज्ञानावरणी की पर्याय जीव ने उपजायी नहीं और जीव की ज्ञान की पर्याय हीन या विभावरूप परिणामन, वह कर्म ने उपजाया नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? निगोद में भी कर्म के रजकणों की जो-जो पर्याय है, वह जीव ने नहीं की और जीव की जो वहाँ दशा विभाव आदि पर्याय है, वह कर्म ने नहीं की। आहाहा! कर्म से होता है... कर्म से होता है... यह विवाद है न सब अभी? यह प्रश्न चला था न वहाँ? ज्ञान में कमी-बेसी अर्थात् हीनाधिक होता है, वह अपनी योग्यता से होता है, ऐसा

कानजीस्वामी कहते हैं। महाराज! ज्ञानावरणी से नहीं, ऐसा कहते हैं। ज्ञानावरणी की पर्याय जीव ने उपजायी नहीं और ज्ञान की हीन दशा का योग्यता आदि का परिणमन कर्म ने उपजाया नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ज्ञानावरणी कर्म के अभाव से तो केवलज्ञान होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके अभाव से नहीं होता। उसके अभाव से, ज्ञानावरणी के अभाव से अकर्मरूपी पर्याय होती है। यह चर्चित किया था भाई ने—फूलचन्दजी ने। ज्ञानावरणी के नाश से केवल(ज्ञान) हो या ज्ञानावरणी के अभाव से अकर्मरूप पर्याय कर्म में हो? बड़ा उपादान-निमित्त का झगड़ा खड़ा है। आहाहा! एकान्त से है... एकान्त से है... ऐसा कहे। निमित्त से भी होता है। ज्ञानावरणी से भी कुछ अन्दर हीन-अधिक दशा होती है। ज्ञानावरणी का निमित्त है तो हीन है, हट जाये तो अधिक हो, यह बात ऐसी नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ?

प्रत्येक समय में निगोद में भी जो कर्म की पर्यायरूप वहाँ परिणमित पुद्गल हैं, उसे जीव ने किये नहीं और जीव में जो ज्ञान की हीनदशारूप परिणमन है, निगोद को अक्षर के अनन्तवें भाग (ज्ञान है), वह कर्म ने किया नहीं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया ? भाषा तो सादी है परन्तु अब जरा... यह प्रश्न (संवत्) १९८४ में उठा था। वीरजीभाई के साथ। ऐसा कि निगोद में जो कर्म है, उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव परमाणु के हैं, उनकी संख्या, उसका रस, उसकी प्रकृति, उसकी स्थिति, वह तो उसमें स्वयं से है। अब जीव में उस ही प्रमाण स्वयं से वह के वही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की स्थिति है। वह उसके कारण नहीं है। समझ में आया ? ज्ञान की हीनदशारूप होना, वह कर्म के कारण नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कर्म से ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खोटी बात है। बड़ा विवाद यह आया था न तब वर्णीजी के साथ। उसमें लिखा है। है न वह पुस्तक कुछ उसमें ? किसमें है ? वह तो प्रकाशित हो गयी है। प्रश्न :—‘रतनचन्द मुख्त्यार, सहारनपुर’ कानजीस्वामी यह कहते हैं कि महाराज ! ज्ञानावरणी कर्म कुछ नहीं करता। अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी-बेसी होती है। हीनाधिकपना। महाराज ! ज्ञान में कमी होती है, अपनी वजह से होती है, अपनी

योग्यता से होती है। कानजीस्वामी यह कहते हैं। ज्ञानावरणीकर्म कुछ नहीं करता। महाराज! क्या यह ठीक है? (संवत्) २०१३ के वर्ष की बात है। १९ वर्ष (हुए)।

उत्तर :—‘क्षुल्लक वर्णीजी—यह ठीक है, आप ही समझो। कैसे ठीक है? ठीक नहीं है। कोई भी कहे चाहे, हम तो कहते हैं अंगधारी कहे तो भी ठीक नहीं।’ भाई चेतनजी साथ में थे। केवली कहे तो भी ठीक नहीं, ऐसा कहा था। वह यहाँ सिद्ध करते हैं।

निगोद के जीव की भी जो अनन्त गुण की पर्याय हीनरूप हुई, वह कर्म ने नहीं की और कर्म की पर्याय आत्मा ने नहीं की। आहाहा! यह बड़ा सवाल उठा था वहाँ। फिर वहाँ लाये थे, कलकत्ता, गजराजजी के घर। गजराजजी के यहाँ आहार किया था न, वहाँ सेठ—साहूजी लाये। इसरी से पत्र आया है। इस प्रमाण कर्म के कारण यदि आत्मा में हीन अवस्था न हो तो किसके कारण (होती है)? वह स्वभाव हो जाता है। (हमने) कहा, वहाँ उत्तर दे दिया है। उठो। गजराजजी के घर में आहार था तब। मंजिल पर, हों!

स्वयं के कारण ही पर्याय हुई है। कर्म भले हो। निमित्तरूप हो। परन्तु इससे उससे हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ६२ गाथा का (आधार) दिया था तब। पंचास्तिकाय। विकारी परिणमन जीव का निगोद से लेकर प्रत्येक जीव को अपने षट्कारक से वह पर्याय विकाररूप परिणमती है। द्रव्य-गुण के कारण नहीं, परकारक के कारण से नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! बाद में बड़ा विवाद उठा। आहाहा! स्वभाव हो जायेगा। वह स्वभाव ही है। उस प्रकार की पर्याय का स्वभाव है। स्वस्य भवनं स्वभाव। है? आता है अर्थ में—टीका में। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, हों! क्या कहा?

जीव कर्म का अनादि काल का सम्बन्ध है, उस जीव ने कर्म नहीं उत्पन्न किये,.... कर्म की पर्याय कर्म से हुई है वहाँ। ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी यह जीव नहीं उपजाया, क्योंकि जीव कर्म इन दोनों का ही आदि नहीं है, दोनों ही अनादि के हैं। आहाहा! है? कर्म नहीं उत्पन्न किये, ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी यह जीव नहीं उपजाया,.... जीव अर्थात् उसकी जो पर्याय है, वह कर्म ने उपजायी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। एकान्त होता है, ऐसा कहते हैं। अरे! एकान्त, सम्यक् एकान्त ही है, सुन न!

उस-उस समय की विकारी पर्याय का उसे स्वयं से विभावरूप से वह उत्पन्न होने का उसका क्षण है। वह उसका अपना ही काल है; पर के कारण नहीं। समझ में आया? एक तो मानो उसमें गोम्मटसार में ऐसा आवे। ज्ञानावरणीकर्म शब्द आवे और ज्ञान को आवरण करनेवाला आया, इसलिए वहाँ निमित्त प्रधानता हो गयी। निश्चय में ऐसा आवे कि विकार के परिणाम का स्वामी पुद्गल है और पुद्गल से वे हुए हैं। जौ से जौ होते हैं। ६८ गाथा (समयसार)। पुद्गल से पुद्गल के परिणाम वे विकारी हुए हैं। वहाँ ऐसा आया और गोम्मटसार में ऐसा आया। अमरचन्द्रभाई! किस अपेक्षा? वहाँ आया है वह तो निमित्त का कथन है। ज्ञान की दशा अपनेरूप से उस समय में हीनरूप परिणमे, वह भावघाति स्वयं (परिणमते हैं)। तब उसको (कर्म को) निमित्त कहा जाता है, परन्तु निमित्त से यहाँ हीन हुई है और हीन हुई है; इसलिए वहाँ ज्ञानावरणी बँधता है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का क्या करे? द्रव्य को न करे, पर्याय को करे न?

यह जीव नहीं उपजाया,... इसका अर्थ जीव की पर्याय। यहाँ शब्द आया न यह? क्या कहा? जीव ने कर्म नहीं उत्पन्न किये, ज्ञानावरणादि कर्मों ने भी यह जीव नहीं उपजाया,.... जीव नहीं उपजाया,.... अर्थात्? उसकी वर्तमान पर्याय जो है, उसे कर्म ने नहीं उपजाया। आहाहा! विकार का परिणमन स्वयं एक समय का स्वतन्त्र स्वयं से है, ऐसा जिसे न जँचे, उसे द्रव्य जो पर्याय के पीछे पूरा अव्यक्त है, गुप्त है, वह स्वतन्त्र उसे नहीं जँचेगा। जो प्रगट पर्याय है, वह स्वतन्त्र है, विकाररूप से भी स्वतन्त्र है, ऐसा जिसे न जँचे, उसे विकार के पीछे भगवान आत्मा अखण्ड शुद्ध, पूर्ण शुद्ध स्वतन्त्र है, यह बात उसे नहीं बैठती। समझ में आया? यह अधिकार यह लिया है यहाँ कि अनादि कर्म का सम्बन्ध होने पर भी कर्म की समय-समय में जो पर्याय यहाँ होती है, उसे आत्मा नहीं करता और आत्मा में समय-समय में जो हीन आदि पर्याय होती है, उसे कर्म नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? कहो, चेतनजी? ऐसा है या नहीं इसमें? जीव को करता नहीं, ऐसा कहा है इन्होंने। पर्याय को नहीं करता, ऐसा कहाँ कहा है?

यह जीव नहीं उपजाया, क्योंकि जीव कर्म इन दोनों का ही आदि नहीं है, दोनों ही अनादि के हैं। कर्म की पर्याय कर्मरूप हुई है। जीव की पर्याय अपनेरूप हीन आदि हुई है, बस! ऐसा कि कर्म में क्षयोपशम हो तो ज्ञान में क्षयोपशम हो न? इनकार करते हैं। नहीं? दोनों भिन्न हैं। ज्ञानावरणी का क्षयोपशम, वह जीव ने किया नहीं और इसमें यहाँ क्षयोपशम की पर्याय जीव में हुई, वह क्षयोपशम ज्ञानावरणी ने किया नहीं। आहाहा! थोड़ी बात में स्वतन्त्रता की सिद्धि है। वस्तु का स्वरूप इस प्रकार से है। कल कहा था, नहीं? गुणपर्ययवत्द्रव्यं। प्रत्येक समय में वह अपने गुण और पर्यायवाला द्रव्य है। पर के कारण नहीं। समझ में आया? चाहे जिस समय में निगोद में हो। इसीलिए तो यहाँ कहा, ऐसा कहा नहीं गोम्मटसार में, पण्डितजी? भावकर्म पहुरा। कर्म बहुत जोरवाला है, इसलिए निगोदपना छोड़ता नहीं, ऐसा नहीं कहा। अपने भावकलंक की प्रचुरता है। वह कर्म के कारण नहीं। ऐसी वस्तु। द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान अभी घट गया है। बड़ा विवाद उठा। पण्डितों के झगड़े। अरे! भाई! यह झगड़े टालने के अवसर में यह क्या आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : काल काल में रह गया। ऐसा कि हुण्डावसर्पिणी काल है न, ऐसा भाई कहते हैं।

भावार्थ :- यद्यपि जीव व्यवहारनय से पर्यायों के समूह की अपेक्षा नये-नये कर्म समय-समय बाँधता है, नये-नये उपार्जन करता है,.... कर्म की पर्याय। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है, उसी तरह पहले बीजरूप कर्म से देह धारता है, देह में नये-नये कर्मों को विस्तारता है, यह तो बीज से वृक्ष हुआ। निमित्त का सम्बन्ध कहते हैं। व्यवहारनय से पर्यायों के समूह की अपेक्षा नये-नये कर्म समय-समय बाँधता है,.... जीव बाँधता है, ऐसा कहते हैं (वह) निमित्त की अपेक्षा से (बात है)। नये-नये उपार्जन करता है, जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है, उसी तरह पहले बीजरूप कर्मों से देह धारता है, देह में नये-नये कर्मों को विस्तारता है,.... नये-नये विकार करता है। यह तो बीज से वृक्ष हुआ। इसी प्रकार जन्म-सन्तान चली जाती है। अनादि से। कर्म की उत्पत्ति की सन्तान और विकार की उत्पत्ति की सन्तान, ऐसा

प्रवाह चलता जाता है। एक-दूसरे के कारण नहीं। अपने-अपने कारण से यह प्रवाह चलता जाता है। आहाहा!

परन्तु शुद्धनिश्चयनय से विचारा जावे,... आहाहा! तो जीव निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाव ही है। आहाहा! यह हीनपना उपजना और कर्म का उपजना, वह सब आत्मा में नहीं है। हीनपने उपजना, उसमें कर्मपना नहीं, परन्तु हीनपने उपजना, वह त्रिकाल में नहीं, ऐसा कहते हैं। हीनपने विकारी आदि में उपजना, वह कर्म के कारण नहीं है और हीनपना उपजना वह त्रिकाल में नहीं है। वह पर्याय में हीनपने उपजने की स्वतन्त्रता से परिणमता है, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? थोड़े अन्तर से इसमें बड़ा अन्तर होता है। वह कहे कि निमित्त हो तो होता है। यह कहते हैं कि निमित्त के काल में निमित्त में होता है और उसके काल में स्वयं से होता है। आहाहा! बड़ा अन्तर।

यहाँ चर्चा चली। पंचाध्यायी में कोई भूल हो तो मुझे सुधार कराओ। ऐसा कहा। फिर कहा, भूल देखो तुम्हारी। छठवें गुणस्थान में तुमने बुद्धिपूर्वक राग कहा। सातवें में अबुद्धिपूर्वक कहा। ऐसा नहीं, कहा। छठवें में बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों प्रकार है। यहाँ सुधारा, फिर सुधारा था। उन्होंने बनायी है न, टीका बनायी है। हमारे सबके निमित्तप्रधान ही पठन है। तत्प्रमाण हमने लिखा। ऐसा नहीं, भाई!

किसी द्रव्य की कोई पर्याय पर के कारण हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। उस पर्याय का स्वकाल स्वयं है तो स्वयं से ही होती है। चाहे तो विकाररूप हो, चाहे तो अविकाररूप हो, चाहे तो खण्ड ज्ञानरूप हो, चाहे तो अखण्ड ज्ञानरूप हो। समझ में आया? चाहे तो विभावरूप हो। चार ज्ञान को विभाव कहा है। केवलज्ञान को स्वभाव कहा है। तीन दर्शन को विभाव कहा है। चक्षु, अचक्षु, अवधि। केवलदर्शन को स्वभाव कहा है। वह हो, उस-उस समय में स्वयं से है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसा है। आहाहा!

वे गाते हैं न वह स्थानकवासी? 'कर्म से राजा कर्म से रंक, कर्म ने डाला आडा अंक।' ऐसी स्तुति बोले न पहले? वह तो बाहर के संयोग जो मिलते हैं, उसमें कर्म का निमित्त है। वह भी निमित्त है। संयोग, उस निमित्त के कारण से आता है, ऐसा भी नहीं है। सातावेदनीय के उदय के कारण यहाँ पैसे आते हैं, वह तो एक निमित्त का कथन है।

पैसे का आना स्वतन्त्र उपादान के कारण से वह पर्याय ऐसे आती है। सातावेदनीय दूसरे कर्म की अवस्था है, और पैसा आता है, वह दूसरे पदार्थ की अवस्था है। इसलिए पुण्य से पैसा मिले, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! वह पैसे के परमाणु उस समय उस पर्याय का वहाँ आने का था, इसलिए आये हैं। समझ में आया? उसे पूर्व के पुण्य का उदय था तो आये, यह तो निमित्त कौन था, यह बतलाने के लिये। कौन चीज़ उसमें निमित्त हो? इतना।

कहते हैं कि ऐसी विकारी पर्याय सन्तान हीनाधिक की अवस्था स्वयं से है, कर्म की पर्याय में कर्म का हीन-अधिक स्थिति का परिणमना, वह उससे है। परन्तु शुद्धनिश्चयनय से विचारा जावे, तो जीव निर्मल ज्ञानदर्शनस्वभाव ही है। आहाहा! हीनपने होना या विभावपने होना, वह उसका—त्रिकाल का स्वरूप नहीं। पर्याय का स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। पर्याय में हीनाधिक और विभावरूप की योग्यता से हो, परन्तु वस्तु के स्वभाव में वह नहीं है। आहाहा! निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव। चार ज्ञान आदि अशुद्ध और खण्ड ज्ञान, है स्वयं से वहाँ, पर्याय की पर्यायता (योग्यता), परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखो, ऐसा अब यहाँ तो कहते हैं। वस्तु की भिन्नता... आहाहा! वह तो निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभावी है, वहाँ दृष्टि करनेयोग्य है। खण्ड-खण्ड की पर्याय स्वाभाविक भले स्वयं से स्वतन्त्र वह पर्याय हो। परन्तु तो भी दृष्टि का विषय जो है, वहाँ दृष्टि देनेयोग्य है। पर्याय पर दृष्टि देने योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। पर्याय की स्वतन्त्रता आत्मा की पर्याय में निगोद से लेकर स्वतन्त्र वह-वह पर्याय स्वयं से हुई है, तथापि उस पर्याय की स्वतन्त्रता की योग्यता पर दृष्टि लेना नहीं है, ऐसा कहते हैं। है, उसे जाननेयोग्य है। बस। अब आदरनेयोग्य क्या है? समझ में आया? आहाहा! ...थोड़े में भी...

शुद्धनिश्चयनय से विचारा जावे,... वस्तु को, तो जीव निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव ही है। जीव ने ये कर्म न तो उत्पन्न किये, और यह जीव भी इन कर्मों ने नहीं पैदा किया। आहाहा! जीव भी अनादि का है, ये पुद्गलस्कन्ध भी अनादि के हैं, जीव और कर्म नये नहीं है,... नये नहीं, अनादि के हैं दोनों।

मुमुक्षु : घात कब से हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का घात अपनी पर्याय, वह अपने में अनादि की है।

मुमुक्षु : जीव में राग कब से हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का है। कहा, यह तो पहले बात हो गयी, नहीं ? राग अनादि का स्वयं से हुआ है। कर्म की पर्याय भी अनादि की उससे हुई है। अब इतना जानकर करना क्या ? यह रहता है।

जीव ने ये कर्म न तो उत्पन्न किये, और यह जीव भी इन कर्मों ने नहीं पैदा किया। जीव भी अनादि का है, ये पुद्गलस्कन्ध भी अनादि के हैं, जीव और कर्म नये नहीं हैं, जीव अनादि का कर्मों से बँधा है। और कर्मों के क्षय से मुक्त होता है। यह निमित्त से कथन है। इस व्याख्यान से जो कोई ऐसा कहते हैं, कि आत्मा सदा मुक्त है, कर्मों से रहित है, उनका निराकरण (खण्डन) किया। यह इसलिए कहा है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण ९, मंगलवार
दिनांक-२०-०७-१९७६, गाथा-५९ से ६१, प्रवचन-३९

५९ गाथा। जीव भी अनादि का है,.... यहाँ से। है पीछे? पुद्गलस्कन्ध भी अनादि के हैं,.... कर्म स्कन्ध आत्मा के साथ अनादि का है। जीव और कर्म नये नहीं है,.... जीव नया हुआ नहीं। तथा कर्म नये हुए नहीं। जीव भी अनादि और कर्म का स्कन्ध भी अनादि है। जीव अनादि का कर्मों से बँधा है। और कर्मों के क्षय से मुक्त होता है। इस व्याख्यान से जो कोई ऐसा कहते हैं, कि आत्मा सदा मुक्त है,.... इसका यहाँ निषेध किया है। सदा मुक्त कहते हैं न? सदा मुक्त ही है। सदाशिव। ऐसा नहीं है। वस्तु स्वभाव वस्तु सदा मुक्त है। परन्तु पर्याय में कर्म का सम्बन्ध बन्ध अनादि से है। कर्मों से रहित है,.... ऐसा जो कहते हैं, उनका निराकरण (खण्डन) किया। खण्डन किया। ये वृथा कहते हैं, कि ऐसा तात्पर्य है।

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है—‘मुक्तश्चेत्’ जो यह जीव पहले बँधा हुआ हो, तभी मुक्त ऐसा कथन सम्भवता है, और पहले बँधा ही नहीं तो फिर मुक्त, ऐसा कहना किस तरह ठीक हो सकता। जेल में पड़ा ही नहीं कोई मनुष्य, उसे कहे कि तू छूटा। यह तो अपमान है। द्रव्यसंग्रह में आता है। यह छूटा। छूटा, परन्तु जेल में था ही कब? जेल में हो, वह छूटा कहलाये। इसी प्रकार आत्मा पर्याय में बन्धन हो तो छूटा कहलाये। परन्तु बन्धन ही नहीं, उसे छूटा कहना। वस्तु है, वह बन्धन नहीं। पर्याय की बात है। वस्तु है, वह तो अबन्ध त्रिकाल है। आत्मा पदार्थ है वस्तुरूप से, वह तो मुक्तस्वरूप ही, अनादि से मोक्षस्वरूप ही है। समझ में आया? परन्तु पर्याय में बन्धन राग की एकता का सम्बन्ध है तो उस बन्धन से मुक्त होता है। बन्धन हो ही नहीं तो मुक्त होता है, ऐसा पर्याय में रहता नहीं।

मुक्त तो छूटे हुए का नाम है, सो जब बँधा ही नहीं, तो फिर छूटा किस तरह कहा जा सकता है। जो अबन्ध है, उसको छूटा कहना ठीक नहीं। जो बिना बन्ध मुक्ति मानते हैं.... वहाँ बिना चाहिए। विभाव शब्द पड़ा है न? विभाव शब्द नहीं चाहिए जो बिना बन्ध मुक्ति मानते हैं, उनका कथन निरर्थक है। पर्याय में मलिनता ही नहीं और

उसे निर्मल हुआ कहना, यह बात उचित नहीं है। पर्याय में मलिनता है। पर्याय में बन्धन है, पर्याय में बन्धन है। वह बन्धन न हो तो मुक्तपना भी नहीं हो सकता। निश्चय से, द्रव्य से बन्धन नहीं, द्रव्य में बन्धन नहीं। द्रव्य तो अबन्धस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में बन्धस्वरूप है तो मुक्त हो सकता है।

जो बिना बन्ध मुक्ति मानते हैं, उनका कथन निरर्थक है। जो यह अनादि का मुक्त ही हो, तो पीछे बन्ध कैसे सम्भव हो सकता है। अनादि का पर्याय में मुक्त हो तो उसे बन्ध कैसे सम्भवे? अनादि का पर्याय से शुद्ध ही है, ऐसा यदि कहो तो अशुद्धता का नाश और शुद्धता की स्थिति सिद्ध नहीं होती। पर्याय में भी अनादि (शुद्ध हो)... द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, परन्तु पर्याय में यदि अशुद्धता न हो, तो अशुद्धता संसार न हो तो उसका मुक्ति-उसका छूटना भी नहीं हो सकता। आहाहा! बन्ध होवे तभी मोचन छुटकारा हो सके। छूटना ऐसा शब्द है तो इसका अर्थ पहले बन्ध है। जो बन्ध न हो तो मुक्त कहना निरर्थक है। लो! आहाहा! सदाशिव मानते हैं न? बात सच्ची एक न्याय से। वस्तु सदाशिव है। परन्तु पर्याय अपेक्षा से सदाशिव हो तो पर्याय टालना, शुद्धता होना, वह कुछ रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय—अवस्था में राग का सम्बन्ध है। वह बन्ध है—भावबन्ध। और उसका—राग का छूटना, वह भावमुक्ति, पर्याय में मुक्ति (हुई) पर्याय में मुक्ति। मोक्ष है, वह पर्याय है न? मोक्ष है, वह कोई द्रव्य नहीं। आहाहा! मोक्ष है, वह भी आत्मद्रव्य का एक भेद है। पर्यायरूपी भेद है। त्रिकाली चीज़ नहीं। समझ में आया? इसलिए मोक्ष का वेश लिया था। आस्रव का वेश, पुण्य-पाप का वेश, इसी तरह मोक्ष भी एक पर्याय वेश है। शाश्वत् चीज़ नहीं। आहाहा! यह शाश्वत् की चीज़ है, उसे बन्धन न हो तो छुटकारा कहना, यह नहीं हो सकता। यह ५९ गाथा कही। न्याय समझ में आता है इसमें? वस्तु सदाशिव है, उसके बदले पर्याय से सदाशिव मानता है, यह बड़ी भूल है, ऐसा कहते हैं।

गाथा - ६०

अथ व्यवहारनयेन जीवः पुण्यपापरूपो भवतीति प्रतिपादयति -

६०) एहु ववहारें जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु।

बहुविह-भावेँ परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु॥६०॥

एष व्यवहारेण जीवः हेतुं लब्ध्वा कर्म।

बहुविधभावेन परिणमति तेन एव धर्मः अधर्मः॥६०॥

एहु ववहारें जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु एष प्रत्यक्षीभूतो जीवो व्यवहारनयेन हेतुं लब्ध्वा। किम्। कर्मेति। बहुविहभावेँ परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु बहुविधभावेन विकल्पज्ञानेन परिणमति तेनैव कारणेन धर्मोऽधर्मश्च भवतीति। तद्यथा। एष जीवः शुद्धनिश्चयेन वीतराग-चिदानन्दैकस्वभावोऽपि पश्चाद्बहुवहारेण वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनाभावेनोपार्जितं शुभाशुभं कर्म हेतुं लब्ध्वा पुण्यरूपः पापरूपश्च भवति। अत्र यद्यपि व्यवहारेण पुण्यपापरूपो भवति तथापि परमात्मानुभूत्यविनाभूतवीतरागसम्यग्दर्शनचारित्रबहिर्द्रव्येच्छानिरोधलक्षण-तपश्चरणरूपा या तु निश्चयचतुर्विधाराधना तस्या भावनाकाले साक्षादुपादेयभूतवीतराग-परमानन्दैकरूपो मोक्षसुखाभिन्नत्वात् शुद्धजीव उपादेय इति तात्पर्यार्थः॥६०॥

आगे व्यवहारनय से यह जीव पुण्य-पापरूप होता है, ऐसा कहते हैं -

कर्मरूप साधन पाकर यह जीव अनेकों भाव करे।

धर्म-अधर्मरूप होता है - ऐसा नय व्यवहार कहे॥६०॥

अन्वयार्थ :- [एष जीवः] यह जीव [व्यवहारेण] व्यवहारनयकर [कर्म हेतुं] कर्मरूप करण को [लब्ध्वा] पा करके [बहुविधभावेन] अनेक विकल्परूप [परिणमित] परिणमता है। [तेन एव] इसी से [धर्मः अधर्मः] पुण्य और पापरूप होता है।

भावार्थ :- यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर वीतराग चिदानन्द स्वभाव है, तो भी व्यवहारनयकर वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से रागादिरूप परिणमने से उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों के कारण को पाकर पुण्यी तथा पापी होता है। यद्यपि यह व्यवहारनयकर पुण्य-पापरूप है, तो भी परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी जो वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और बाह्य पदार्थों में इच्छा के रोकनेरूप तप, ये चार

निश्चयआराधना हैं, उनकी भावना के समय साक्षात् उपादेयरूप वीतराग परमानन्द जो मोक्ष का सुख उससे अभिन्न आनंदमयी ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, अन्य सब हेय हैं॥६०॥

गाथा - ६० पर प्रवचन

आगे व्यवहारनय से यह जीव पुण्य-पापरूप होता है, ऐसा कहते हैं:— लो!

(६०) एहु ववहारैँ जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु।
बहुविह-भावेँ परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु ॥६० ॥

धर्म अर्थात् पुण्य और अधर्म अर्थात् पाप। यहाँ यह शब्द है। धर्म-अधर्म है न शब्द? धर्म अर्थात् पुण्य, अधर्म अर्थात् पाप। व्यवहारनय से यह जीव पुण्य-पापरूप होता है,... पर्याय में पुण्य-पाप की मलिन अवस्थारूप होता है, परन्तु स्वभाव में नहीं। वस्तु कभी मलिन हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु तो सदा पवित्र त्रिकाल है। परन्तु व्यवहारनय से पर्यायदृष्टि से वर्तमान में पुण्य-पापरूप होता है,... आहाहा! ऐसा कहते हैं:—

अन्वयार्थ :- यह जीव व्यवहारनयकर कर्मरूप कारण को.... 'कर्म हेतुं' है न? 'कर्म हेतुं लब्ध्वा' कर्मरूप (निमित्त) कारण को पा करके अनेक विकल्परूप परिणमता है। आहाहा! पर्याय में है। उसके अस्तित्व में है। बन्ध और राग और पुण्य तथा पाप उसकी पर्याय में है। अनेक विकल्परूप परिणमता है। इसी पुण्य और पापरूप होता है।

भावार्थ :- यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर वीतराग चिदानन्दस्वभाव है,... लो! इसका असली त्रिकाली स्वभाव शुद्ध निश्चयनय से देखें तो वीतराग चिदानन्दस्वभाव है। उसका स्वभाव तो वीतराग चिदानन्दस्वभाव, वीतराग ज्ञानानन्दस्वभाव, वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। वीतरागस्वरूप त्रिकाल न हो तो वीतराग की पर्याय कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आती है? इसी प्रकार चिदानन्दस्वरूप न हो तो ज्ञान के आनन्द की दशा पूर्ण कहाँ से आयेगी? आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति ही है।

आहाहा! वस्तु वीतरागस्वरूप ही है। दूसरी भाषा से कहें तो वह अकषायस्वरूप ही है। अर्थात् कि चारित्रस्वरूप है। अर्थात् कि वीतरागस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया ?

वीतराग चिदानन्दस्वभाव है, तो भी व्यवहारनयकर वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से.... परन्तु वर्तमान में उसे वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान का अभाव है। आहाहा! पर्याय में वीतराग निर्विकल्प स्व-अपने से प्रत्यक्ष वेदन में ज्ञान का अभाव है। आहाहा! इसलिए पर्याय में रागादिरूप परिणामने से उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों के.... इसलिए पर्याय में रागादिरूप परिणामने से। लो! शुभ-अशुभकर्म, उसके कारण से पाकर पुण्यी तथा पापी होता है। आहाहा! समझ में आया ?

वास्तव में पुण्य और पाप नौ तत्त्व में ज्ञायकतत्त्व से भिन्न है। नौ है न? तो पुण्य और पाप ज्ञायकतत्त्व से भिन्न है। परन्तु पर्याय में है, ऐसा सिद्ध करना है। त्रिकाली ज्ञायकतत्त्व वस्तु वीतरागस्वरूप, उससे पुण्य-पाप के भाव, वह तत्त्व ही भिन्न है, तथापि पर्याय में है। आहाहा! सर्वविशुद्ध में नहीं कहा वहाँ? 'धम्माधम्मं' जीव का भाव है। सर्वविशुद्ध (ज्ञान अधिकार, समयसार) में पीछे। पुण्य-पाप के भाव इसके हैं। पर्याय में। सर्वविशुद्ध में है।

गाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।

धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥४०४॥

धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप भी आत्मा में है, ऐसा भगवान कहते हैं। है? ४०४।

सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वांगगत सब सूत्र जो ।

धर्माधरम, दीक्षा सब हि, बुध पुरुष माने ज्ञान को ॥४०४॥

लो! आहाहा! है? बुध पुरुष (अर्थात् ज्ञानीजन) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि,... ज्ञान की पर्याय में जो सम्यग्दृष्टि, वह आत्मा की सम्यग्दृष्टि। (ज्ञान को ही) संयम,... यह आत्मा का ज्ञान, वही संयमरूप कहा है। अंगपूर्वगत ज्ञान, वह भी उसकी पर्याय है। अंगपूर्वगत ज्ञान की, ज्ञान की पर्याय है। आत्मा की। और धर्म-अधर्म (पुण्य-पाप) तथा दीक्षा... यह भी आत्मा के हैं, आत्मा में हैं। प्रव्रज्या भी आत्मा में है और पुण्य-पाप भी आत्मा में है। समझ में आया ? धर्म-अधर्म शब्द प्रयोग किया है। ऐसा यहाँ यह

शब्द प्रयोग किया है। देखो! 'धम्मु अहम्मु'। इसलिए कितने ही कहते हैं न कि तुम पुण्य को पुण्य कहते हो और अधर्म कहते हो, परन्तु इसमें धर्म कहा है। इसका अर्थ है कि जिसे आत्मा आनन्द का अनुभव हुआ है निश्चयधर्म, उसे पुण्य परिणाम के व्यवहारधर्म का आरोप देकर व्यवहारधर्म कहा है। समझ में आया? जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु वीतरागभाव से जागकर वीतरागभावरूप दशा हुई है, वह वास्तविक धर्म है। परन्तु उसके साथ पुण्यभाव है, उसे व्यवहारधर्म का आरोप दिया जाता है। है नहीं। उसे व्यवहारनय से कहते हैं, ऐसा यह है। यह विवाद करते हैं।

वह था न एक कलकत्तावाला या दिल्लीवाला नहीं? पण्डित। बौना-बौना वृद्ध। नहीं था एक कलकत्ता का? तुम पुण्य को अधर्म नहीं कहो। बौना था। भिण्ड का रहनेवाला बौना था। वृद्ध। है न ख्याल। बहुत दिन यहाँ रहे थे। नाम सब भूल जाते हैं। तुम्हारे हिन्दी थे।

मुमुक्षु : सूरजपाल तो नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूरजपाल नहीं।

मुमुक्षु : जमनलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : जमनलाल। बस, वह जमनलाल। जमनलाल बौना था। वह जमनलाल कहते थे यहाँ। पुण्य को अधर्म न कहो।

मुमुक्षु : अनात्म धर्म ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनात्म नहीं, इसमें कहा न उसमें। आत्मावलोकन (में)। श्रावक को लिया है धर्म-अधर्म गाथा। बारम्बार वीतराग कहना... वीतराग कहना... आता है न? मुहु... मुहु... वीतराग। आत्मावलोकन की गाथा आती है न? दीपचन्द्रजी की। वहाँ ऐसा कहा है। कि श्रावक को धर्म-अधर्म दो होते हैं। श्लोक है। है उसमें। है न, खबर है। धर्म, जितनी निर्मल परिणति सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुई, वह धर्म और जितना रागादि है, वह अधर्म। यह श्लोक है। बताया था आत्मावलोकन। आहाहा!

मुमुक्षु : जमनलाल यहाँ आये थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आये थे। बहुत दिन रहे थे। परन्तु व्यवहार की बात। विपरीतता

नहीं निकले। ऐसा कहे, कुछ न कुछ है इसमें। धूल में भी नहीं। शुभभाव, वह अधर्म है। स्पष्ट बात है। आहाहा!

निर्मलानन्द प्रभु... भाव हो सही। शुभभाव होता है। अशुभ भी होता है ज्ञानी को। परन्तु वह है अधर्म। धर्म तो आत्मा वीतरागमूर्ति के आश्रय से जितनी परिणति स्व के आश्रय से प्रगट करे, उतनी परिणति, वह धर्म है। आहाहा! और पराश्रय से जितना भाव (हो, वह) सब अधर्म है। फिर उसके दो भाग करना, वह तो शुभ को पुण्य कहे और अशुभ को पाप कहे। आहाहा! बहुत झगड़ा।

मुमुक्षु : पुण्य की मिठास है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिठास-मिठास। राग है, भाई! जिसे मोक्ष अधिकार में तो विषकुम्भ कहा है। विषकुम्भ—जहर, घड़ा। यहाँ समयसार। समयसार मोक्ष अधिकार (में) विषकुम्भ (कहा है)। क्योंकि भगवान अमृत का सागर है। उसके आश्रय से जो अमृतदशा हो, उससे पर आश्रय से जितना भाव (हो), वह सब जहर (भाव है)। स्वभाव का आश्रय नहीं। स्वभाव के आश्रय से तो अमृत होता है। पर के आश्रय से अमृत से विरुद्ध वह जहर (होता है)। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि **पुण्यी तथा पापी होता है**। धर्म और अधर्म। पर्याय में जीव अपनी योग्यता से पुण्य-पापरूप होता है। समझ में आया? दोपहर में ऐसा आता है कि पुण्य-पाप के भाव, वे पुद्गल का कर्म है। पुद्गल परिणाम है, वे पुद्गल के परिणाम हैं। यह तो त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि में नहीं, इस अपेक्षा से। पुद्गल के कारण से पुद्गलपरिणाम होते हैं। पुद्गलपरिणाम अर्थात् पुण्य-पापभाव। राग—प्रशस्त राग आदि भाव, वह सब पुद्गल का कार्य है। पुद्गल व्यापक है, कर्ता है और वह शुभभाव, उस कर्ता का कर्म है। वह किस अपेक्षा से? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी जहाँ दृष्टि और स्वीकार हुआ, तब उसका कर्म तो निर्मल वीतरागी पर्याय, वह उसका कर्म है। व्यापक स्वभाव होकर निर्विकारी अवस्था उसका व्याप्य होती है। यह गिनकर विकार के परिणाम पुद्गल का व्याप्य है, ऐसा.... ऐसा है। विवाद करे तो भाई (सुलझाव नहीं आता)। जिस अपेक्षा से जहाँ कहा, उस अपेक्षा से उसे समझना चाहिए। समझ में आया?

वहाँ तो ऐसा कहा। सर्वविशुद्ध, नहीं कहा ४०४ (गाथा, समयसार) ? धर्म और अधर्म, वह ज्ञान है, आत्मा है—ऐसा कहा है। ऐई! क्या कहा ? ज्ञान अर्थात् आत्मा। वह सम्यग्दर्शन है, वह चारित्र है, वह प्रव्रज्या है। वह पुण्य और पाप है। समझ में आया ? उसकी पर्याय में उससे हुआ है, यह सिद्ध करने के लिये वह ज्ञान का पुण्य-पाप है, आत्मा के पुण्य-पाप हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा! यहाँ छोड़ देने का, छोड़ने का। स्वभाव में नहीं। अर्थात् वस्तु है, उसका विकास हो, तब तो निर्मल परिणाम हो। उसका विकास हो तो मलिन हो ? इस अपेक्षा से वहाँ मलिन परिणाम को पुद्गल का विकास और पुद्गल का कार्य कहा है। चैतन्य का विकास वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? वस्तु चैतन्यसूर्य ज्ञानसूर्य प्रकाश में आवे तो वह तो ज्ञान और आनन्द की दशा का प्रकाश आवे। राग का प्रकाश आवे उसमें ? इस अपेक्षा से उसे राग का कार्य पुद्गल का गिनकर छुड़ा दिया है। आहाहा! समझ में आया ?

यह जीव शुद्ध निश्चयनयकर... आहाहा! भगवान आत्मा **वीतराग चिदानन्द स्वभाव है,**... जिसका त्रिकाल वीतराग ज्ञानानन्दस्वभाव। शुद्ध निश्चय, शाश्वत् का असली तत्त्व की दृष्टि से देखें तो वह तो वीतराग चिदानन्दस्वभाव है। समझ में आया ? कि जो सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन है पर्याय, परन्तु उसका विषय है, वह वीतराग चिदानन्दस्वभाव। आहाहा! ऐसा होने पर भी, **व्यवहारनयकर...** देखा! निश्चय से तो वीतराग चिदानन्दस्वरूप प्रभु है। परन्तु पर्याय में व्यवहारनयकर। व्यवहार से बन्ध है और व्यवहार से मुक्ति है। मोक्ष भी व्यवहार से है। पर्याय का मोक्ष।

मुमुक्षु : व्यवहार अर्थात् झूठ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल की अपेक्षा से झूठ, वर्तमान की अपेक्षा से इतना सत्य। ऐसा है। सद्भूतव्यवहार है न! रागादि है, वह असद्भूतव्यवहार है। और मोक्ष की पर्याय है केवलज्ञानादि, वह सद्भूतव्यवहार है। उसमें पर्याय में सत्... सत्... सत्... है। ऐसी निर्मल वीतरागी पर्याय, परन्तु वह सब व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! पर्याय का विषय है। त्रिकाली भगवान है शुद्ध निश्चयनय का विषय अथवा भूतार्थ, भूतार्थ त्रिकाल वस्तु है वह यह। वीतराग चिदानन्दस्वभाव भूतार्थ का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है। उसके आश्रय से मुक्ति होती है, वह पर्याय है, वह व्यवहार है। आहाहा!

परमार्थवचनिका में कहा नहीं ? बनारसीदास, परमार्थवचनिका । द्रव्य, वह निश्चय है और मोक्ष का मार्ग, वह व्यवहार है । निश्चयमोक्षमार्ग, हों ! है न ? परमार्थवचनिका । मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार, निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार । पर्याय है न ? है ? शुद्ध द्रव्य अक्रियारूप, वह निश्चय । ऐसा किसने किया ? समझ में आया ? देखो ! यह बनारसीदास ।

मुमुक्षु : आचार्य का कथन है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली का कथन है । कहा नहीं अन्तिम ? अन्तिम कहा, देखो ! आहाहा ! वचनातीत, इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत ऐसे विचार बहुत थोड़े लिखना । जो ज्ञाता है तो थोड़ा लिखा हुआ बहुत समझेगा । अज्ञानी होगा वह यह चिट्ठी सुनेगा सही । समझेगा नहीं । यह वचनिका यथायोग्य सुमतिप्रमाण केवली वचनानुसार है । यथायोग्य सुमतिप्रमाण... मेरी शक्ति प्रमाण केवली वचनानुसार है । जो जीव यह सुनेगा, समझेगा, श्रद्धा करेगा भाग्य अनुसार कल्याणकारी होगी । भाग्य अर्थात् पुरुषार्थ । आहाहा ! यहाँ तो यह कहना है । केवली वचन अनुसार । स्वयं कहते हैं कि यह केवली वचनानुसार है । आहाहा !

व्यवहारनयकर वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के अभाव से रागादिरूप परिणामने से उपार्जन किये शुभ-अशुभकर्मों के कारण को पाकर पुण्यी तथा पापी होता है । यद्यपि यह व्यवहारनयकर पुण्य-पापरूप है, तो भी परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी जो वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और बाह्य पदार्थों में इच्छा के रोकनेरूप तप, ये चार निश्चय आराधना है, ... आहाहा ! उनकी भावना के समय साक्षात् उपादेयरूप वीतराग परमानन्द जो मोक्ष का सुख... यह पुण्य-पाप आदरणीय नहीं, ऐसा कहना है । जब आत्मा परमात्मा की अनुभूति परमस्वरूप का अनुभव करे और उसमें तन्मय हो । अनुभूति से तन्मयी... परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी... यह तो क्यों अटका था इतना ? कि परमात्मा में तन्मय नहीं । परमात्मा की अनुभूति से तन्मय । ऐसा । द्रव्य में तन्मय नहीं । उसकी अनुभूति में । आहाहा ! परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी... आहाहा ! क्या ? वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र... आहाहा ! यह आत्मा का स्वभाव, उसकी अनुभूति से तन्मय । कौन ? कि यह सब सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र । आहाहा !

बाह्य पदार्थों में इच्छा के रोकनेरूप तप, ये चार निश्चय आराधना हैं,... आहाहा! यह चार निश्चय सेवनयोग्य है। आराधना। यह देव की आराधना। देव और देवी की आराधना नहीं करते? यह भगवान आत्मा देव है, उसकी यह चार प्रकार की आराधना है। आहाहा! उनकी भावना के समय... अन्तर की अनुभूति के भावना के काल में, अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की तथा तप की इच्छानिरोध की परिणति के काल में... आहाहा! उसे साक्षात् उपादेयरूप... है। अन्तर में लीन हुआ, उसे वह उपादेय है, ऐसा कहते हैं। कौन? त्रिकाली वस्तु। आहाहा!

त्रिकाली वीतरागस्वरूप जो कहा। वीतराग चिदानन्दस्वभाव, उसे अन्तर की अनुभूति के काल में वह उपादेय है, ऐसा कहते हैं। ऐसे उपादेय नहीं। उपादेयरूप से परिणमा है, उसे उपादेय है। आहाहा! पुण्य-पापरूप होने पर भी त्रिकाली वीतराग स्वभाव की आराधना के काल में... आहाहा! वह आत्मा त्रिकाली है, वह उपादेय है। पुण्य-पाप नहीं। पुण्य-पाप, वे हेय हैं। हेय यहाँ नहीं कहा। समझ में आया? पहले आ गया है। पुण्य-पाप के भाव जिसे उपादेय है, उसे वीतराग चिदानन्दस्वभाव हेय है। आहाहा! कैसी बात! आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो! ऐसे उपादेय है और हेय है, अर्थात् क्या कहते हैं? पुण्य-पाप हेय है, भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप उपादेय है। अर्थात् क्या? उसकी परिणति में, अनुभूति में जब रहता है, तब उसे उस काल में आत्मा उपादेय है। उपादेयरूप परिणमा है, तब उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! उस समय उसे पुण्य-पाप के भाव उपादेय में नहीं। बाहर रह गये, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावना के समय साक्षात् उपादेयरूप वीतराग... आहाहा! आत्मा वीतराग सहजानन्द प्रभु उपादेय है, ऐसा जिसने धारणा में धारा था। तब उसे साक्षात् उपादेय नहीं। है? भावना के समय साक्षात् उपादेयरूप... आहाहा! वीतराग चिदानन्द प्रभु, उस ओर की ढलती शुद्ध परिणति, उस परिणति के काल में वह आत्मा साक्षात् उपादेय हुआ। उसे उपादेय है। आहाहा! ऐसी बात है, देखो! आहाहा! समझ में आया? शुद्ध वीतराग चिदानन्दस्वभाव की अनुभूति, ऐसा है न?

परमात्मा की अनुभूति से तन्मयी... कौन? वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र,...

आहाहा! उसके साथ एकरूप है। सम्यग्दर्शन, वह वीतराग है। आहाहा! लोग कहते हैं न सम्यग्दर्शन सराग है। अरे! भाई! यह बात नहीं। वह तो चारित्र के दोषसहित का समकित वर्णन करते समय ऐसा कहते हैं। समकित सराग है ही नहीं। सम्यग्दर्शन तो वीतराग पर्याय है। आहाहा! ऐसा कि चौथे गुणस्थान में सराग समकित होता है, ऐसा कहते हैं। वीतराग समकित तो सातवें-आठवें (गुणस्थान में) होता है। ऐसा नहीं है, भाई! विकासचन्द्रजी तो यही लिखते हैं बारम्बार।

मुमुक्षु : यह तो सब भूले हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब भूले हैं। टोडरमल भूले, बनारसीदास भूले। तुम भी भूले हो। चौथे गुणस्थान में निश्चय समकित? (ऐसा माननेवाले) भूले हैं (ऐसा वे कहते हैं)।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय है। क्योंकि वीतराग चिदानन्दस्वरूप जो त्रिकाल, उसके सन्मुख होकर आश्रय होकर, जो दृष्टि प्रगट हुई, वह वीतराग परिणति ही है। आहाहा! समझ में आया? अनन्तानुबन्धी गयी, परन्तु यहाँ तो वीतरागस्वरूप है। वीतराग चिदानन्दस्वरूप ही है। उसका आश्रय लेकर जो दशा हो, वह वीतरागस्वरूप ही होती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! वापस वह तप कब कहा? परमात्मा की अनुभूति में तन्मय। उस काल में उसे वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप है। लो! यह अपवास-बपवास, वह तप नहीं।

परमात्मा... यह तो पहली व्याख्या कह गये। वीतराग चिदानन्दस्वभाव। वह परमात्मा की अनुभूति, उसे अनुसरकर होती दशा, उसके साथ तन्मय अनुभूति के साथ वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और वीतराग परिणति की उग्रता दशा, वह तप। आहाहा! उस परमात्मा की अनुभूति के साथ यह तन्मय है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है न! भगवान परमात्मा अर्थात् आत्मा वीतराग ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञान, आनन्द और चारित्र सब इकट्ठा आ गया। वीतराग ज्ञानानन्दस्वरूप ऐसा जो परमात्मा अर्थात् आत्मा, उसे अनुसरकर सन्मुख की जो अनुभूति (होती है), उस अनुभूति के काल में, त्रिकाली भाव-स्वभाव की भावना के काल में दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप उस काल में तन्मय है, तब उस काल में वह आत्मा उपादेय है। आहाहा!

समझ में आया ? दृष्टि में, ज्ञान में, स्थिरता में यह लिया है। यह अनुभूति पर्याय है। त्रिकाली आत्मा—परमात्मा, वह द्रव्य है। वह अनुभूति के साथ एकमेक रहा है वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी स्थिरता, वीतरागी तप... आहाहा! यह चार आराधना है। आहाहा! इसमें कहीं राग का नहीं आया। पुण्य-पाप है, इसके सही, ऐसा पहले कहा। परन्तु पुण्य-पाप का आराधन, आराधना में मदद करे, वह पुण्य-पाप, पुण्य का भाव, ऐसा नहीं आया। गजब!

उनकी भावना के समय... निश्चय आराधना जो है। आराधना चार प्रकार की तो है न? दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप। इससे यहाँ चार बोल आराधना के डाले हैं। आहाहा! ओहोहो! व्यवहारनयकर पुण्य-पापरूप है। आहाहा! तथापि जब स्वभाव-परमात्मा वीतराग चिदानन्दस्वभाव ऐसा परमात्मा, जिसकी सन्मुख की अनुभूति, उस अनुभूति में तन्मय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप, ये चारों ही आराधना तन्मय साथ में है। आहाहा! चारों का आराधन अनुभूति के साथ में है। **उनकी भावना के समय...** वस्तु त्रिकाली भगवान की भावना अर्थात् एकाग्रता। उसके समय साक्षात् उपादेयरूप वीतराग परमानन्द जो मोक्ष का सुख... आहाहा! उससे अभिन्न आनन्दमयी ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,... लो! साक्षात् उपादेय (वीतराग परमानन्द) जो मोक्ष का सुख उससे अभिन्न आनन्दमयी ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है,... आहाहा! अन्य सब हेय हैं। लो, आ गया यह। पाइ है न? 'मोक्षसुखाभितत्वात् शुद्ध जीव उपादेय इति तात्पर्यार्थः' लो! फिर हेय कहा, वह इसमें से निकाला है। ओहोहो! यह ६० (गाथा) हुई।

गाथा - ६१

अथ तानि पुनः कर्माण्यष्टौ भवन्तीति कथयति -

६१) ते पुणु जीवहं जोइया अट्ट वि कम्म हवंति।

जेहिं जि झंपिय जीव णवि अप्प-सहाउ लहंति॥६१॥

तानि पुनः जीवानां योगिन् अष्टौ अपि कर्माणि भवन्ति।

यैः एव झंपिताः जीवाः नैव आत्मस्वभावं लभन्ते॥६१॥

ते पुणु जीवहं जोइया अट्ट वि कम्म हवंति तानि पुनर्जीवानां हे योगिन्नष्टावेव कर्माणि भवन्ति। जेहिं जि झंपिय जीव णवि अप्पसहाउ लहंति यैरेव कर्मभिर्झंपिताः जीवा नैवात्मस्वभावं लभन्ते इति। तद्यथा-ज्ञानावरणादिभेदेन कर्माण्यष्टावेव भवन्ति यैर्झंपिताः सन्तो जीवाः सम्यक्त्वाद्यष्टविधस्वकीयस्वभावं न लभन्ते। तथा हि - 'सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं। अगुरुगलहुगं अव्वाबाहं अट्टगुणा हुंति सिद्धाणं॥' शुद्धात्मादिपदार्थविषये विपरीता-भिनिवेशरहितः परिणामः क्षायिकसम्यक्त्वमिति भण्यते। जगत्रयकालत्रयवर्तिपदार्थयुगपद्विशेष-परिच्छित्तिरूपं केवलज्ञानं भण्यते तत्रैव सामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शनं भण्यते। तत्रैव केवलज्ञानविषये अनन्तपरिच्छित्तिशक्तिरूपमनन्तवीर्यं भण्यते। अतीन्द्रियज्ञानविषयं सूक्ष्मत्वं भण्यते। एकजीवावगाहप्रदेशे अनन्तजीवावगाहदानसामर्थ्यमवगाहनत्वं भण्यते। एकान्तेन गुरुलघुत्वस्याभावरूपेण अगुरुलघुत्वं भण्यते। वेदनीयकर्मोदयजनितसमस्तबाधारहितत्वा-दव्याबाधगुणश्चेति। इदं सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं संसारावस्थायां किमपि केनापि कर्मणा प्रच्छादितं तिष्ठति यथा तथा कथ्यते। सम्यक्त्वं मिथ्यात्वकर्मणा प्रच्छादितं, केवलज्ञानं केवलज्ञानावरणेन झंपितं, केवलदर्शनं केवलदर्शनावरणेन झंपितम्, अनन्तवीर्यं वीर्यान्तारयेण प्रच्छादितं, सूक्ष्मत्वमायुष्कर्मणा प्रच्छादितम्। कस्मादिति चेत्। विवक्षितायुः कर्मोदयेन भवान्तरे प्राप्ते सत्यतीन्द्रियज्ञानविषयं सूक्ष्मत्वं त्यक्त्वा पश्चादिन्द्रियज्ञानविषयो भवतीत्यर्थः। अवगाहनत्वं शरीरनामकर्मोदयेन प्रच्छादितं, सिद्धावस्थायोग्यं विशिष्टागुरुलघुत्वं नामकर्मोदयेन प्रच्छादितम्। गुरुत्वशब्देनोच्चगोत्रजनितं महत्त्वं भण्यते, लघुत्वशब्देन नीचगोत्रजनितं तुच्छत्वमिति, तदुभयकारणभूतेन गोत्रकर्मोदयेन विशिष्टागुरुलघुत्वं प्रच्छाद्यत इति। अव्याबाधगुणत्वं वेदनीयकर्मोदयेनेति संक्षेपेणाष्टगुणानां कर्मभिराच्छादनं ज्ञातव्यमिति। तदेव गुणाष्टकं मुक्तावस्थायां स्वकीयस्वकीयकर्मप्रच्छादनाभावे व्यक्तं भवतीति संक्षेपेणाष्टगुणाः कथिताः। विशेषेण पुनरमूर्तत्वनिर्नामगोत्रादयः साधारणासाधारण-रूपानन्तगुणाः यथासंभव-भागमाविरोधेन ज्ञातव्या इति। अत्र सम्यक्त्वादिशुद्धगुणस्वरूपः शुद्धात्मैवोपादेय इति भावार्थः॥६१॥

आगे कहते हैं, वे कर्म आठ हैं, जिनसे संसारी जीव बँधे हैं, कहते—श्रीगुरु अपने शिष्य मुनि से कहते हैं, कि -

हे योगी! फिर आठ कर्म ही होते हैं उन कर्मों से।

ढँके हुए ये जीव स्वयं के आठ गुणों को नहीं पाते॥६१॥

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, [तानि पुनः कर्माणि] वे फिर कर्म [जीवानां अष्टौ अपि] जीवों के आठ ही [भवन्ति] होते हैं, [यैः एव झंपिताः] जिन कर्मों से ही आच्छादित (ढँके हुए) [जीवाः] ये जीवकर [आत्मस्वभावं] अपने सम्यक्त्वादि आठ गुणरूप स्वभाव को [नैव लभन्ते] नहीं पाते।

भावार्थ :- अब उन्हीं आठ गुणों का व्याख्यान करते हैं 'सम्मत्त' इत्यादि— इसका अर्थ ऐसा है, कि शुद्ध आत्मादि पदार्थों में विपरीत श्रद्धान रहित जो परिणाम उसको क्षायिक -सम्यक्त्व कहते हैं, तीन लोक तीन काल के पदार्थों को एक ही समय में विशेषरूप सबको जानें, वह केवलज्ञान है, सब पदार्थों को केवलदृष्टि से एक ही समय में देखे, वह केवलदर्शन है। उसी केवलज्ञान में अनंतज्ञायक (जानने की) शक्ति वह अनंतवीर्य है, अतीन्द्रियज्ञान से अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थों को जानना, आप चार ज्ञान के धारियों से न जाना जावे वह सूक्ष्मत्व हैं, एक जीव के अवगाह क्षेत्र में (जगह में) अनंते जीव समा जावें, ऐसी अवकाश देने की सामर्थ्य वह अवगाहनागुण है, सर्वथा गुरुता और लघुता का अभाव अर्थात् न गुरु न लघु - उसे अगुरुलघु कहते हैं, और वेदनीयकर्म के उदय के अभाव से उत्पन्न हुआ समस्त बाधा रहित जो निराबाधगुण उसे अव्याबाध कहते हैं। ये सम्यक्त्वादि आठ गुण जो सिद्धों के हैं, वे संसारावस्था में किस किस कर्म से ढँके हुए हैं, इसे कहते हैं - सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्वनाम दर्शनमोहनीयकर्म से आच्छादित है, केवलज्ञानावरण से केवलज्ञान ढका हुआ है, केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन ढका है, वीर्यान्तरायकर्म से अनंतवीर्य ढका है, आयुःकर्म से सूक्ष्मत्वगुण ढका है, क्योंकि आयुकर्म उदय से जब जीव परभव को जाता है, वहाँ इन्द्रियज्ञान का धारक होता है, अतीन्द्रियज्ञान का अभाव होता है, इस कारण कुछ एक स्थूल वस्तुओं को तो जानता है, सूक्ष्म को नहीं जानता, शरीरनामकर्म के उदय से अवगाहनगुण आच्छादित है, सिद्धावस्था के योग्य विशेषरूप अगुरुलघुगुण नामकर्म के उदय से अथवा गोत्रकर्म के उदय से ढक गया है, क्योंकि गोत्रकर्म के उदय से जब जीव नीच

गोत्र पाया, तब उसमें तुच्छ या लघु कहलाया, और उच्च गोत्र में बड़ा अर्थात् गुरु कहलाया और वेदनीयकर्म के उदय से अव्याबाध गुण ढक गया, क्योंकि उसके उदय साता-असातारूप सांसारिक सुख-दुःखका भोक्ता हुआ। इस प्रकार आठ गुण आठ कर्मों से ढक गये, इसलिये यह जीव संसार में भ्रमा। जब कर्म का आवरण मिट जाता है, तब सिद्धपद में ये आठ गुण प्रकट होते हैं। यह संक्षेप से आठ गुणों का कथन किया। विशेषता से अमूर्तत्व निर्नामगोत्रादिक अनंतगुण यथासम्भव शास्त्र-प्रमाण से जानने। तात्पर्य यह है, कि सम्यक्त्वादि निज शुद्ध गुणस्वरूप जो शुद्धात्मा है, वही उपादेय है॥६१॥

गाथा - ६१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं, वे कर्म आठ हैं, जिनसे संसारी जीव बंधे हैं, कहते — श्री गुरु अपने शिष्य मुनि से कहते हैं, कि— हे योगी,...

(६१) ते पुणु जीवहँ जोड़या अट्टु वि कम्म हवंति ।

जेहिँ जि झंपिय जीव णवि अप्प-सहाउ लहंति ॥६१ ॥

श्रीगुरु शिष्य को कहते हैं, हे योगी, ... मुनि ! वे फिर कर्म जीवों के आठ ही होते हैं, ... आठ प्रकार के कर्म हैं । जिन कर्मों से ही आच्छादित ये जीवकर अपने सम्यक्त्वादि आठ गुणरूप स्वभाव को नहीं पाते । कर्म के निमित्त अर्थात् भावकर्म से आच्छादित । निमित्त से बात है । व्यवहारनय से । बाकी आठ गुण समकित आदि, उसके विरुद्ध भाव के भाव से ढँका हुआ है । आहाहा ! जीवकर अपने सम्यक्त्वादि आठ गुणरूप स्वभाव को नहीं पाते ।

भावार्थ:— अब उन्हीं आठ गुणों का व्याख्यान करते हैं । लो ! सम्मत्त इत्यादि— इसका अर्थ ऐसा है कि शुद्ध आत्मादि पदार्थों में विपरीत श्रद्धान रहित... शुद्ध भगवान् आत्मा आदि पदार्थ लिये हैं । 'जीवानां' वहाँ तो ऐसा है । जीव को एक क्षण... शुद्ध आत्मादि पदार्थों में... है न ? है अन्दर । शुद्ध आत्मादि पदार्थों में... आदि शब्द है न ? ऐसे शुद्धात्मा आदि । ऐसा । शुद्ध आत्मादि पदार्थों में विपरीत श्रद्धान रहित जो परिणाम उसको क्षायिकसम्यक्त्व कहते हैं, ... आहाहा ! यह गृहस्थाश्रम में भी हो सकता है ।

श्रेणिक राजा को क्षायिक समकित था। इसमें क्या है ? वस्तु है न ? योगसार में आता है, नहीं ? दो गाथायें। आत्मा में लीन गृहस्थी। आती है गाथा। गृहस्थाश्रम में भी आत्मा में लीन है, वह मोक्ष जाता है।

मुमुक्षु : गृह काम करते....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। दो गाथायें हैं। गृह काम करते हुए भी है आत्मा में लीन। हेयाहेय का ज्ञान। वे कहे, गृहस्थाश्रम में (शुद्धोपयोग) नहीं होता। वह तो गृहस्थाश्रम में मुनिपने का जो शुद्धोपयोग है, वह नहीं होता। यह तो उसे होता है। आहाहा! आत्मा का ध्यान, आनन्द का ध्यान, वह श्रावक को, समकित को होता है। आहाहा!

शुद्ध आत्मादि पदार्थों में विपरीत श्रद्धान रहित जो परिणाम उसको क्षायिकसम्यक्त्व कहते हैं, तीन लोक तीन काल के पदार्थों को एक ही समय में विशेषरूप सबको जाने, वह केवलज्ञान है,... यहाँ सिद्ध के गुण वर्णन करने हैं न ? वे वर्तमान में आच्छादित है, ऐसा कहते हैं। सब पदार्थों को केवलदृष्टि से एक ही समय में देखे, वह केवलदर्शन है। केवलदृष्टि है सामान्य। 'सामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शन भण्यते।' इतना है। है न ? संस्कृत टीका में। सब पदार्थों को केवलदृष्टि से एक ही समय में देखे, वह केवलदर्शन है। उसी केवलज्ञान में अनन्त ज्ञायक (जानने की) शक्ति, वह अनन्त वीर्य है,... अनन्त ज्ञायक (जानने की) शक्ति.... आहाहा! यह अनन्त वीर्य।

अतीन्द्रिय ज्ञान से अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थों को जानना... अतीन्द्रिय ज्ञान से अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थों को जानना, आप चार ज्ञान के धारियों से न जाना जावे, वह सूक्ष्मत्व हैं,... यह सूक्ष्म की व्याख्या की। अतीन्द्रिय ज्ञान से अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थों को जानना,... जो सूक्ष्मत्व, आप चार ज्ञान के धारियों से न जाना जावे,... आहाहा! एक जीव के अवगाह क्षेत्र में (जगह में).... एक आत्मा है, इसके क्षेत्र में-अवगाह क्षेत्र में अनन्त जीव समा जावें, ऐसी अवकाश देने की सामर्थ्य वह अवगाहनागुण है,... आत्मा में यह लिया। आत्मा में अवगाहगुण एक है कि जहाँ है, वहाँ अनन्त जीव रहे, ऐसा अवगाह गुण है। समझ में आया ?

सर्वथा गुरुता और लघुता का अभाव अर्थात् न गुरु, न लघु—उसे अगुरु-लघु कहते हैं,... वह लिया है सूक्ष्मत्व, वह नामकर्म के अभाव का। सूक्ष्मत्व। और अवगाहन आयुष्यकर्म के अभाव का। इस प्रकार से लिया है। आयुष्यकर्म के अभाव का। और यह गुरु-लघुता, वह गोत्रकर्म के अभाव का। है न? और वेदनीय कर्म के उदय के अभाव से उत्पन्न हुआ समस्त बाधा रहित जो निराबाध गुण... यह चार अघाति के लिये हैं। सूक्ष्मत्व जो अतीन्द्रिय ज्ञान से जाना जा सकता है, जो चार ज्ञान के धनी भी जिसे जान नहीं सकते, ऐसा सूक्ष्मत्वगुण नामकर्म के अभाव से अमूर्तपना सूक्ष्म प्रगट हुआ, वह नामकर्म के अभाव से। और अवगाहनागुण को आयुष्यकर्म के अभाव से, ऐसा लिया। आहाहा! जहाँ भगवान स्वयं है, वहाँ अनन्त जीव को अवगाह दे, ऐसा उसका स्वभाव है। इस प्रकार लिया है। अवगाहगुण यहाँ आकाश में आयुष्य के अभाव की बात की है। अक्षय स्थिति कहते हैं न? इस प्रकार से लिया है। समझ में आया इसमें? ... लिया है। 'आयुर्कर्म उदय से...' ऐसा लिया है। शरीरनामकर्म के उदय से अवगाहनगुण आच्छादित है,... ऐसा लिया है, वहाँ अन्दर। सूक्ष्मत्व में आयुर्कर्म का अभाव लिया। अर्थ में लिया है, देखो! और नामकर्म के अभाव में अवगाहगुण, ऐसा लिया है। आहाहा! अन्दर है पीछे। है अन्दर?

आयुर्कर्म के सूक्ष्मत्वगुण ढका है,... पीछे है। नामकर्म, ऐसा लिया। आयुर्कर्म उदय से जब जीव परभव को जाता है, वहाँ इन्द्रियज्ञान का धारक होता है, अतीन्द्रिय ज्ञान का अभाव होता है, इस कारण कुछ एक स्थूल वस्तुओं को तो जानता है, सूक्ष्म को नहीं जानता,... ऐसे आयुष्य की अपेक्षा ली है। और शरीरनामकर्म के उदय से अवगाहगुण आच्छादित है,... ऐसा लिया। इसका स्पष्टीकरण किया। अपेक्षा से बात है। आहाहा! गुरु-लघु नहीं। वेदनीयकर्म के उदय के अभाव से उत्पन्न हुआ समस्त बाधा रहित जो निराबाधगुण, उसे अव्याबाध कहते हैं। ये सम्यक्त्वादि आठ गुण जो सिद्धों के हैं, वे संसारावस्था में किस किस कर्म से ढँके हुए हैं, इसे कहते हैं—लो! इसे विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण १०, बुधवार
दिनांक-२१-०७-१९७६, गाथा-६१ से ६३, प्रवचन-४०

सम्यक्त्वादि आठ गुण जो सिद्धों के हैं... है ? वे संसारावस्था में किस-किस कर्म से ढँके हुए हैं, इसे कहते हैं—सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्व नाम दर्शनमोहनीयकर्म से आच्छादित हैं,... बराबर है ? शब्द तो ऐसा है। समकितमोहनीय सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्व नाम दर्शनमोहनीयकर्म... यह निमित्त से कथन है। निमित्त का कथन है। बहुत संक्षिप्त। वास्तव में तो मिथ्यात्व के परिणाम से समकित ढँका हुआ है। अपने विपरीत अभिप्राय से समकित ढँका हुआ है। उसे कर्म का निमित्त कहा जाता है। उसमें सब वजन है न लोगों का। देखो! कर्म से ढँका है। कर्म जड़ है, निमित्त है, उससे वहाँ कार्य होता है परन्तु इसका अर्थ वहाँ किया है, १६वीं गाथा में, प्रवचनसार। द्रव्य और भावघातिकर्म दो प्रकार के हैं, ऐसा वहाँ लिया है। यह घाति द्रव्य है, वह कर्म है और भावघाति स्वयं अपने से घात करता है, वह भावघाति। समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं हुई, उसे ढँका किसने है ? विपरीत मान्यता ने। वह उपादान उसका स्वयं का है। तब कर्म का निमित्त संक्षिप्त भाषा करने के लिये समकित को मिथ्यात्व कर्म ने ढँका, ऐसा संक्षिप्त करने के लिये लिखा है। वास्तव में तो अपनी विपरीत मान्यता के कारण वह समकित उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए ढँका है, उसे दर्शनमोह का निमित्त है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा !

केवलज्ञानावरण से केवलज्ञान ढँका हुआ है,... लो ! ठीक ! केवलज्ञानावरणी तो जड़ है और आत्मा के ज्ञान की पर्याय को वह जड़ परद्रव्य ढँके ? शब्द तो ऐसा है। ज्ञान की पर्याय में हीनरूप परिणमन की योग्यता, वह स्वयं की है। वह भावघाति है। तब केवलज्ञानावरणी को निमित्त कहा गया है। ऐसी लम्बी बातें। निमित्त-उपादान का झगड़ा बड़ा, तो भी उपादान-निमित्त के दोहे में तो निमित्त हार गया। आता है ? उपादान-निमित्त। नहीं ? ४७ दोहे। ४७ दोहे हैं न ! वहाँ तो निमित्त हार गया।

यहाँ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी ऐसा है। ओहो ! केवलज्ञानावरणी की शक्ति केवलज्ञान ढँके, उत्पन्न होने न दे। यह निमित्त के कथन हैं। स्वद्रव्य की पर्याय को

परद्रव्य ढाँके ? परद्रव्य को वह पर्याय स्पर्श भी नहीं करती। केवलज्ञानावरणी की पर्याय जो जड़ की है, उसे ज्ञान की हीनदशा स्पर्श भी नहीं करती। ऐसे केवलज्ञानावरणी... यहाँ पर्याय को स्पर्श नहीं करता। परद्रव्य है। अपनी हीनदशा के परिणामने के भावघाति में केवलज्ञानावरणी निमित्त कहा जाता है। इसी प्रकार केवलदर्शनावरणी से केवलदर्शन ढँकता है। इस प्रकार ऐसा लेना। आहाहा!

वीर्यान्तरायकर्म से अनन्त वीर्य ढँका है,... उस भावरूप से तो स्वयं ही वीर्य को हीन किया है, तब उसे वीर्यान्तराय को निमित्त कहा जाता है। आयुकर्म से सूक्ष्मत्वगुण ढँका है,... लो! अपनी योग्यता से ही हीनदशा हुई है, तब आयुकर्म का उसमें निमित्त है, वह सूक्ष्मगुण ढँका है। क्योंकि आयुकर्म उदय से जब जीव परभव को जाता है, वहाँ इन्द्रियज्ञान का धारक होता है,... इन्द्रियज्ञान का धारण है न? अतीन्द्रियज्ञान का अभाव है। इस कारण कुछ एक स्थूल वस्तुओं को तो जानता है, सूक्ष्म को नहीं जानता,... इस अपेक्षा से आयुष्य में उसे डाला है।

शरीरनामकर्म के उदय से अवगाहनगुण आच्छादित है,... लो, नामकर्म। सिद्धावस्था के योग्य विशेषरूप अगुरुलघुगुण नामकर्म के उदय से अथवा गोत्रकर्म के उदय से ढँक गया है, क्योंकि गोत्रकर्म के उदय से जब जीव नीच गोत्र पाया, तब उसमें तुच्छ या लघु कहलाया, और उच्च गोत्र में बड़ा अर्थात् गुरु कहलाया... कर्म निमित्त, अपनी योग्यता नीच गोत्र में (जन्म होने की)। आता है न गोम्मटसार में? सन्तानक्रम में जिसमें विपरीतता मिथ्यात्व है। सन्तानक्रम में उसमें अवतरित होना, उसे नीच गोत्र कहते हैं। उसमें अपनी योग्यता से ही वहाँ अवतरित हुआ है। गोत्रकर्म तो निमित्त कहा जाता है। यह सब विवाद यहाँ उठा निमित्त का। कर्म की शैली में ऐसा कहा जाता है और स्वभाव में भी ऐसा अपने। १५ में ऐसा आया न? पुद्गल परिणाम को पुद्गल परिणाम कर्ता है। राग-द्वेष का कर्ता कर्म है, वहाँ ऐसा आया। कहो, समयसार में ऐसा आया, गोम्मटसार में ऐसा आया। अब करे क्या वह बेचारा?

गोम्मटसार में, अपनी हीन पर्याय के काल में निमित्त कौन है, यह बतलाया है। समयसार में, स्वभाव-शक्ति-गुण कोई राग करने का नहीं; इसलिए गुण का धारक ऐसा गुणी, उसका व्याप्यपना स्वभाव का होता है। व्यापक स्वभाव और व्याप्त पर्याय निर्मल

व्याप्त स्वभावपर्याय होती है। उसे विकारी पर्याय व्याप्य नहीं, ऐसा निकाल डालने के लिये स्वभाव का शरण लेकर जिसे स्वभाव की पर्याय प्रगट हुई, वह उसका व्याप्य है। समझ में आया? व्याप्य अर्थात् कार्य। उसका राग का कार्य उसका (स्वभाव का) कार्य नहीं, ऐसा सिद्ध किया है। क्योंकि आत्मा में ऐसा कोई गुण नहीं। शक्तियाँ अनन्त हैं, साधारण-असाधारण गुण आत्मा में अनन्त हैं। समझ में आया? आयेगा अभी। साधारण अर्थात् अस्ति आदि ऐसे गुण भी आत्मा में अनन्त हैं और असाधारण ज्ञानादि कि जो असाधारण अपने में ही है और दूसरे में नहीं, ऐसे आत्मा में असाधारण गुण भी अनन्त हैं। साधारण भी अनन्त हैं, (असाधारण भी) अनन्त हैं। उसका हीन आदि का कार्य गुण स्वयं करता है। समझ में आया? उसे निमित्त से किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। ऐसा है।

मुमुक्षु : उसमें लिखा हो, उससे अलग अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है, वह किस नय का कथन है, यह जानना चाहिए न? प्रत्येक गाथा का शब्दार्थ करके और किस नय का कथन है, आगम का क्या है? अन्यमत का इसमें क्या है? और तात्पर्य क्या है? ऐसे एक गाथा में पाँच बोल से अर्थ करना चाहिए। समझ में आया? यह शब्द है। अब यह किस नय का कथन है, वह जानना चाहिए न? यह व्यवहारनय... व्यवहारनय का कथन है यह तो। समझ में आया?

वेदनीयकर्म के उदय से अव्याबाध गुण ढँक गया, क्योंकि उसके उदय साता-असातारूप सांसारिक सुख-दुःख का भोक्ता हुआ। आहाहा! दुःख की कल्पना का भोक्ता, वह साता-असाता में निमित्त से है। है तो अपनी योग्यता से सुख-दुःख की वेदना। आहाहा! इस प्रकार आठ गुण आठ कर्मों से ढँक गये,... यह असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। आहाहा! इसलिए यह जीव संसार में भ्रमा। आहाहा! गोम्मटसार में कहा न? निगोद को भावकलंक पहुरा। वह स्वयं प्रचुर भावकलंक से निगोद में रहा है। कर्म के कारण रहा है, (ऐसा नहीं है)। वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य क्या करे?

मुमुक्षु : गोम्मटसार में तो एक जगह आया, दूसरी जगह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक जगह आया, उसका सिद्धान्त आया न? पण्डितजी!

मुमुक्षु : एक के ऊपर लक्ष्य जाये किसका ? दूसरे पर उसका जब....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल आशय न जाने तो क्या हो ? भाई यह कहते थे । देवकीनन्दन । सब पण्डितों की हमारी निमित्तप्रधान पढ़ाई है, ऐसा कहते थे । यह गुरुगम मिला नहीं, संस्कार नहीं और स्वच्छन्द से पढ़े, वह कहीं शास्त्र आगम का पार नहीं आता, ऐसा ।

मुमुक्षु : समझानेवाले....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझानेवाले ईश्वरकर्तावाले । जैसे जगत का उपादान जगत है । निमित्त ईश्वर है, ऐसा वे कहते हैं । इसी प्रकार यह कर्म निमित्त है । ईश्वरकर्ता माननेवालों के निकट सीखे काशी में । आहाहा ! यह बात ऐसी है । और उपादान-निमित्त में तो दोहों में डाला है सब कि अपने से होता है । ४७ दोहे ।

मुमुक्षु :टीकाकार ने... नहीं निमित्त से कहा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब वह अजितप्रसाद (ऐसा कहता है), निमित्त से जो कहा है, उसमें उपादान-निमित्त में, उसका बराबर है । उपादान कहा वह उटपटांग है । कहो फिर । सिद्ध करना है उपादान । अपनी दृष्टि में बैठा नहीं, इसलिए कहे, उपादान का लेख—उत्तर है, वह उटपटांग है । भैया भगवतीदास का । और भगवतीदास ऐसा कहते हैं कि तुम मध्यस्थ से आगम प्रमाण देखना । है इसमें ? अन्तिम गाथा है । आगम प्रमाण देखो तो यह वस्तु ऐसे सिद्ध होगी । यह उपादान में है । श्लोक है वह भूल गये । आगम प्रमाण ।

मुमुक्षु : साख जिनागम सौ मिले....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साख । 'साख जिनागम सौ मिले तो न करजो खेद ।' हमने कहा उसकी जिनागम से साख मिलेगी, ऐसा कहते हैं । अब उन्हें खोटा सिद्ध करते हैं । क्या हो ? परन्तु परद्रव्य की पर्याय स्वतन्त्र उससे होती है, द्रव्य उस-उस काल में उसकी उत्पत्ति का काल है, जन्मक्षण है—ऐसा पाठ है । प्रवचनसार में १०२ गाथा । प्रत्येक द्रव्य की उस-उस समय की हीन-अधिक, विपरीत या अविपरीत वह पर्याय उत्पन्न होने का उसका काल है । और इससे स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा कहा, छहों द्रव्य को पर्याय की काललब्धि है । छहों द्रव्यों को वह-वह पर्याय उस काल में प्राप्त हो,

ऐसी काललब्धि है। आहाहा! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा है। और स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में (ऐसा कहा), भगवान ने जो देखा, तत्प्रमाण वहाँ सामने, उस काल में, उस प्रसंग में, उस निमित्त से, उस क्षेत्र में उसी प्रकार से होगा। आहाहा! उसमें उसकी पर्याय स्वतन्त्र उससे, उस काल में होती है। निमित्त भले हो। निमित्त से होती है, ऐसा नहीं है। निमित्त, वह अपना कार्य करे या पर का करे?

मुमुक्षु : बड़े लोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल करे। बड़ा कौन? आहाहा!

आठ गुण आठ कर्मों से ढँक गये, इसलिए यह जीव संसार में भ्रमा। जब कर्म का आवरण मिट जाता है,... यह निमित्त से कथन है न? स्वयं जब भावकर्म का नाश करता है तो द्रव्यकर्म का नाश होने की योग्यता ही उसकी होती है। उसके क्रम में द्रव्यकर्म को अकर्म होने की अवस्था की योग्यता ही उसके समय की होती है। यहाँ आत्मा स्वभाव का आश्रय लेकर दशा का हीन भाव नाश करे अर्थात् कि हीन उत्पन्न न हो। यहाँ स्वभाव के आश्रय से, उग्र पुरुषार्थ से स्व का आश्रय किया, इसलिए उसके प्रमाण में हीन दशा या विपरीत दशा उत्पन्न नहीं होती। उसका इसने नाश किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें सब।

यह संक्षेप से आठ गुणों का कथन किया। विशेषता से अमूर्तत्व, निर्नाम-गोत्रादिक... ऐसे गुण भी अनन्त हैं, ऐसा कहते हैं। अमूर्तत्व, निर्नामगोत्रादिक... साधारण-असाधारणरूप दो शब्द पड़े रहे हैं इसमें। अर्थ में नहीं हैं। टीका में है। क्या कहा? विशेषता से अमूर्तत्व, निर्नामगोत्रादिक साधारण-असाधारणरूप अनन्त गुण... ऐसा लेना। आहाहा! जीव में साधारण भी अनन्त गुण हैं। साधारण छह लिये हैं ऐसे। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि। सामान्य रीति से। परन्तु है अनन्त। और असाधारण ज्ञान, दर्शन आदि लिये हैं परन्तु हैं असाधारण भी अनन्त। आहाहा! एक-एक आत्मा में यह आठ गुण तो लिये पर्यायरूप से, परन्तु ऐसे अनन्त गुण साधारण और अनन्त गुण असाधारण एक समय में आत्मा में हैं। आहाहा! समझ में आया? लिखा है?

विशेषता से... अर्थात् आठ गुण तो कहे। परन्तु खास विशेष से देखें तो प्रत्येक

जीव में अमूर्तत्व निर्नामगोत्रादिक.... यह गुण है ऐसा। साधारण-असाधारणरूप अनन्त गुण यथासम्भव शास्त्र-प्रमाण से जानने। लो! आहाहा! निगोद का जीव, अँगुल के असंख्य भाग में एक शरीर में अनन्त जीव और एक शरीर अँगुल के असंख्य भाग में। उसमें अनन्त जीव, उसमें एक जीव में साधारण और असाधारण गुण अनन्त हैं। आहाहा! उसे कोई क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। बड़ा क्षेत्र हो तो अधिक गुण। आहाहा! एक जीव में यह आठ गुण तो कहे ढँके हुए, परन्तु इसके अतिरिक्त अनन्त गुण हैं, कहते हैं। साधारण और असाधारण। आहाहा! ऐसे गुण का समुद्र है भगवान। अरूपी भगवान अनन्त-अनन्त गुण का सागर—समुद्र है। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि भी सामान्यगुण अनन्त गुण का समुद्र और असाधारण आत्मा (में) ज्ञानादि, धर्मास्ति में गति (हेतुत्व) आदि ऐसे अनन्त गुण साधारण-असाधारण है।

तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वादि निज शुद्ध गुणस्वरूप जो शुद्धात्मा है,... लो! समकित आदि। निज शुद्ध गुणस्वरूप जो शुद्धात्मा है,... त्रिकाल। वही उपादेय है। आहाहा! अथवा समकिति आदि निर्मल पर्याय जो है, ऐसा जो शुद्धात्मा, वह उपादेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यक्त्व आदि तो गुण हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण भी लिये जाते हैं और पर्याय भी कहा जाता है उन्हें। पर्याय को गुण भी कहते हैं। भगवान को आठ गुण प्रगट हुए। वे पर्याय हैं। गुण प्रगट नहीं होते। गुण तो त्रिकाली रहते हैं। प्रगट होती है, आवृत्त होती है, वह पर्याय है। गुण तो त्रिकाल एकरूप है। त्रिकाल। आहाहा! गुण प्रगट नहीं होते, गुण आवृत्त नहीं होते। गुण तो अनादि-अनन्त ऐसे के ऐसे हैं। पर्याय में आवरण अपनी अशुद्धता के कारण से। पर्याय में उत्पत्ति (भी पर्याय के कारण से)। केवलज्ञान भी गुण नहीं, पर्याय है।

मुमुक्षु : सिद्ध को आठ गुण प्रगट होते हैं। ऐसा कहाँ से आप लाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं कि समकित को तुम पर्याय कैसे कहते हो ? एक क्षुल्लक का प्रश्न आया था। सूर्यसिंह, सूर्यसिंह क्षुल्लक थे कोई। अभी हैं या नहीं ? मुम्बई गये तब थे वहाँ मन्दिर में। वह कौन सा मन्दिर कहलाता है ?

मुमुक्षु : भूलेश्वर ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भूलेश्वर का। वहाँ अन्दर थे। परन्तु कुछ बोले नहीं। अखबार (पत्रिका) में आया था उनका विरुद्ध का। ऐसा कि तुम समकित को पर्याय कहते हो। सिद्धान्त में तो उसे गुण कहा है। विचारकर लिखो। अखबार में आया था। यह कोई तत्त्व का मूल अभ्यास नहीं होता (और) क्रियाकाण्ड में चढ़ गये बाहर में। यह त्याग, यह करना, यह करना। मूल वस्तु की खबर नहीं होती। मूल वस्तु की भूमिका नहीं होती और वृक्ष रोप दिया। समकित बिना (चारित्र) वृक्ष नहीं होता, आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। आता है। आहाहा! वस्तु की स्थिति की मर्यादा कितनी! त्रिकाली है उसकी जहाँ दृष्टि हुई नहीं, उसे फिर व्रत आदि के वृक्ष कहाँ से उगे उसे? उसे चारित्र आया कहाँ से? समझ में आया? यह तो ऐसा मार्ग है, भाई! लोग ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़ ने यह नया मार्ग निकाला है। परन्तु यह क्या कहते हैं? अनादि का यह स्वरूप है।

मुमुक्षु : सम्यक्त्व को आच्छादित करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : किस नय से? यह तो कहा। पहले इसमें ही आया है। प्रत्येक सूत्र का पाँच (प्रकार से) अर्थ करना। इसमें आ नहीं गया पहले? पहली गाथा में आ गया है।

और निरंजन ज्ञानमयी परमात्म द्रव्य आदरनेयोग्य है, उपादेय है, यह भावार्थ है, इसी तरह शब्द,... शब्द पहला। फिर नय, मत, आगम, भावार्थ व्याख्यान के अवसर पर सब जान लेना। है? यह पहले से कह गये हैं। पहली गाथा का अन्तिम अर्थ। पहली गाथा का अन्तिम। एकदम अन्तिम, अन्तिम। पहली गाथा पूर्ण होने पर... पहली गाथा है न? एक गाथा। उसमें नौवाँ पृष्ठ है। इसमें सातवाँ होगा। निकला? एक-एक गाथा में और एक-एक शब्द में पहले उसका शब्दार्थ करना, फिर किस नय का वाक्य है, ऐसा करना, फिर आगमपक्ष क्या कहता है, ऐसा कहना, अन्यमत इसमें क्या कहता है, ऐसा कहना और इसका भावार्थ (कहना)। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्यमत के शास्त्रों का अभ्यास चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे ऐसा कि अन्यमत की अपेक्षा से इसमें क्या कहा ? अन्यमत के अपेक्षा से इसमें क्या कहा है कि ईश्वरनय से कर्ता मानते हैं और इसमें कर्ता नहीं, ऐसा। आत्मा स्वयं कर्ता है, ऐसा। आगम का अर्थ स्वयं कर्ता है, अन्यमत का अर्थ यह कि स्वयं कर्ता नहीं, ईश्वरकर्ता है, उसका यहाँ निषेध किया है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : बहुत लम्बा-लम्बा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाई ने संक्षिप्त लिखा है न? पण्डितजी ने नहीं? पंचास्तिकाय में लिखा है या नहीं? कि लम्बा-लम्बा करने में तो ऐसा होता है कि अपनी हीन दशा स्वयं करे, तब कर्म निमित्त होता है, इसलिए व्यवहार से कहने में आया। इतना लम्बा करने की अपेक्षा संक्षिप्त कहा है। है न, पंचास्तिकाय में है। पंचास्तिकाय में है। आहाहा! बहुत बात तो बाहर आ गयी है, भाई! आहाहा! यह ६१ गाथा हुई।

गाथा - ६२

अथ विषयकषायसक्तानां जीवानां ये कर्मपरमाणवः संबद्धा भवन्ति तत्कर्मैति कथयति-

६२) विसय-कसायहिं रंगियहं ते अणुया लग्गंति।

जीव-पएसेहं मोहियहं ते जिण कम्म भणंति॥६२॥

विषयकषायैः रञ्जितानां ये अणवः लग्गन्ति।

जीवप्रदेशेषु मोहितानां तान् जिनाः कर्म भणन्ति॥६२॥

विसयकसायहिं रंगियहं जे अणुया लग्गंति विषयकषायै रंगितानां रक्तानां ये परमाणवो लग्गा भवन्ति। जीवपएसिहिं मोहियहं ते जिण कम्म भणंति। केषु लग्गा भवन्ति। जीवप्रदेशेषु। केषाम्। मोहितानां जीवानाम्। तान् कर्मस्कन्धान् जिनाः कर्मैति कथयन्ति। तथाहि। शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणैर्विषयकषायै रक्तानां स्वसंवित्यभावोपार्जितमोहकर्मोदयपरिणतानां च जीवानां कर्मवर्गणायोग्यस्कन्धास्तैलग्गक्षितानां मलपर्यायवदष्टविधज्ञानावरणादिकर्मरूपेण परिणमन्तीत्यर्थः। अत्र य एव विषयकषायकाले कर्मोपार्जनं करोति स एव परमात्मा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिकाले साक्षादुपादेयो भवतीति तात्पर्यार्थः॥६२॥ इति कर्मस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

आगे विषय-कषायों में लीन जीवों के जो कर्मपरमाणुओं के समूह बँधते हैं, वे कर्म कहे जाते हैं, ऐसा कहते हैं -

विषय-कषायों से रञ्जित जीवों के आत्म-प्रदेशों में।

जो परमाणु बँधते हैं, उनको जिनदेव कर्म कहते॥६२॥

अन्वयार्थ :- [विषयकषायैः] विषय-कषायों से [रञ्जितानां] रागी [मोहितानां] मोही जीवों के [जीवप्रदेशेषु] जीव के प्रदेशों में [ये अणवः] जो परमाणु [लग्गंति] लगते हैं, बँधते हैं, [तान्] उन परमाणुओं के स्कंधों (समूहों) को [जिनाः] जिनेन्द्रदेव [कर्म] कर्म [भणंति] कहते हैं।

भावार्थ :- शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न जो विषयकषाय उनसे रँगे हुए आत्मज्ञान के अभाव से उपार्जन किये हुए मोहकर्म के उदयकर परिणत हुए, ऐसे रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीवों के कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कंध हैं, वे ज्ञानावरणादि

आठ प्रकार कर्मरूप होकर परिणमते हैं। जैसे तेल से शरीर चिकना होता है, और धूलि लगकर मैलरूप होके परिणमती है, वैसे ही रागी, द्वेषी, मोही, जीवों के विषय-कषाय-दशा में पुद्गलवर्गणा कर्मरूप होके परिणमती हैं। जो कर्मों का उपार्जन करते हैं, वही जब वीतराग निर्विकल्पसमाधि के समय कर्मों का क्षय करते हैं, तब आराधने योग्य हैं, यह तात्पर्य हुआ।।६२।।

गाथा - ६२ पर प्रवचन

६२। आगे विषय-कषायों में लीन जीवों के जो कर्मपरमाणुओं के समूह बँधते हैं, वे कर्म कहे जाते हैं,... ऐसा यह सिद्ध करते हैं। ६२।

(६२) विसय-कसायहिँ रंगियहँ ते अणुया लग्गंति।

जीव-पएसेहँ मोहियहँ ते जिण कम्म भणंति ॥६२ ॥

विषय-कषायों से रागी मोही जीवों के... लो! अपने आप, ऐसा कहा यह तो। विषय-कषाय के राग और मिथ्यात्व में जो रंगा हुआ जीव है। देखा! उसके जीव के प्रदेशों में जो परमाणु लगते हैं, बँधते हैं,... देखा! यहाँ विषय-कषाय में रंगा हुआ जीव है, वहाँ ऐसा नहीं कहा कर्म के कारण रंगा हुआ जीव। वह स्वयं अपने विषय-कषाय के भाव से रंगा हुआ जीव, उस काल में कर्म (से बँधता है)। यह तो निमित्तमात्र है। कर्म के उपादान के कारण वहाँ कर्म परमाणु बँधते हैं। समझ में आया ?

पहले ऐसा कहा था कि कर्म के कारण यहाँ गुण ढँकते हैं। वहाँ ऐसा कहना है, स्वयं जब योग्यता से हीनदशा और विपरीतरूप परिणमता है, तब कर्म निमित्त कहने में आते हैं। यहाँ ऐसा कहा कि कर्म बँधते हैं, वे अपने कारण से। परन्तु उसमें जीव के विषय-कषाय का रंग जो है, वह निमित्त है। उसके कारण बँधते हैं, इसका अर्थ वह तो निमित्त है। परमाणु उसकी स्वयं की योग्यता से बँधते हैं। आत्मा विषय-कषाय से रंगा, इसलिए कर्म बाँधे, ऐसा नहीं है। जड़ को कौन बाँधे ? आहाहा!

उन परमाणुओं के स्कन्धों को (समूहों को) जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं। लो! कर्म किसे कहते हैं, उसकी व्याख्या। जीव अपने विकार और मिथ्यात्व आदि के

भावरूप हो... आहाहा! देखो! वहाँ ऐसा कहा। कर्म से होता है, ऐसा वहाँ नहीं लिया। जीव स्वयं विषय-कषाय के मोहरूप परिणमे, तब कर्म बँधते हैं। वे कर्म के रजकण कर्मरूप होते हैं, उन्हें जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं। इन कर्म ने आच्छादन, पहले कहा, वह निमित्त से कहा है। समझ में आया? यह भी निमित्त से है। कर्म से आच्छादन हुआ, यह कहा निमित्त से और कर्म बँधे, वह विषय-कषाय के परिणाम के कारण, वह भी निमित्त से कथन है। समझ में आया? आहाहा! आगम की कथनी तो देखो! दिगम्बर आचार्यों की। सत्य प्रवाह। अनादि का सत्य है, वैसा है, उसमें से उल्टा निकाले।

परमाणुओं को कर्मरूप होने की अवस्था थी, (इसलिए) वे कर्म हुए हैं। यह राग-द्वेष परिणाम है, इसलिए उस काल में हुए हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ भी ऐसा कहा था कि कर्म के कारण ढँका, अर्थात् स्वयं उल्टी पर्यायरूप परिणामा, तब कर्म से ढँका— ऐसा कहा। यहाँ भी कर्मरूप परिणति शक्तिवाले परमाणुओं को कर्म क्यों कहा? यहाँ विषय में रंगा हुआ जीव निमित्तरूप है, उसे परमाणु हुए, इस प्रकार उसे कर्म कहते हैं। यहाँ राग और विकाररूप जीव परिणामा, इसलिए कर्म को कर्मरूप होना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! उन परमाणुओं के स्कन्धों (समूहों) को जिनेन्द्रदेव कर्म कहते हैं।

भावार्थ:—शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न... क्या कहते हैं? विषय-कषाय के परिणाम मिथ्यात्व के क्या चीज़ हैं? कहते हैं कि **शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न...** जो आत्मा का अनुभव निर्मल होना चाहिए, उससे वे विपरीत भाव हैं। अनुभूति करे तो वह स्वयं स्वतन्त्र है और अनुभूति से विपरीत करे तो भी वह स्वयं स्वतन्त्र है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा नहीं कहा कि कर्म के कारण से वहाँ विषय-कषाय के परिणाम हैं। क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : इसने नहीं कहा, दूसरे शास्त्र में कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा, निमित्त के कथन हैं।

यहाँ तो ऐसा कहा, **शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न...** ऐसा। आहाहा! कर्म के कारण से विषय-कषाय है, ऐसा नहीं कहना। यह विषय-कषाय का परिणामन हुआ,

वह शुद्ध अनुभूति से विपरीत है। वह शुद्ध अनुभूति स्वयं उससे भिन्न विपरीत है, बस। आहाहा! कैसी शैली से बात की है! आहाहा! विषय-कषाय के परिणाम मिथ्यात्व आदि के, उसका कारण क्या कहते हैं? वह शुद्ध अनुभूति से विपरीत है। स्वयं शुद्ध अनुभूति होना चाहिए, उससे विपरीत है। उसे कर्म के कारण से यह हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कैसी शैली है, देखो तो सही! आहाहा! स्वतन्त्रता। आहाहा! शुद्ध अनुभव होना चाहिए। वस्तु है आनन्द का नाथ प्रभु, उसका शुद्ध अनुभव होना चाहिए। उससे विपरीत कषाय का परिणाम करता है। वह न करके यह करता है। समझ में आया? आहाहा!

पाठ क्या है? देखा! 'विषयकषायैः रञ्जितानां' रंगे हुए हैं। ओहोहो! कर्म के कारण रंगा है, ऐसा नहीं। आहाहा! इसलिए यहाँ कर्म को ऐसा किया... ऐसा किया... उसके सामने सीधे यह गाथा रखी। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है। जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ (वह समझना)। ऐसी बात कहीं है नहीं। ऐसा सत्य का प्रवाह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर भी कहते हैं।...

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर भी कहते हैं... उसमें सत्य नहीं है। सूक्ष्म बात, बापू! दुःख हो। विपरीत दृष्टि से बाद में यह शास्त्र कल्पित किये-रचे हैं। जिसमें एक वस्त्र का धागा रखे, मुनिपना माने, (वह) निगोद में जाये, यह वाणी वीतराग की। और यह वाणी मुनि को दस-दस कपड़े हों, दस-दस रजोणा हों... आहाहा! यह वाणी वीतराग की नहीं। भगवती सूत्र में (पाठ) है। बड़ा भगवती सूत्र है। सोलह हजार श्लोक का। सवा लाख की टीका है। सत्रह बारह पढ़ा है। साधु आहार लेने जाये और वहाँ से उसे दस पात्र मिले तो ले। दस कपड़े मिले तो ले। आचार्य को नौ दे और एक स्वयं रखे। अरे! यह वह कहीं मार्ग है! यह वे लेख किसके हैं?

क्योंकि वस्त्र का एक धागा रखे और मुनिपना माने तो नौ तत्त्व की विरुद्ध श्रद्धा है। नौ तत्त्व की। क्योंकि वस्त्र रखने का भाव है, वह तो तीव्र आस्रव है। उसे संवर बहुत अल्प होता है। यह तो सम्यग्दर्शन की बात है। तब इस तीव्र आस्रव के समय

उसने मुनिपना स्थापित किया तो संवर की भूल, आस्रव की भूल, उससे कर्म बँधते हैं उसकी भूल, जीव का आश्रय कितना लेना, उसकी भूल और छठवें गुणस्थान में संयोग में कितनी चीज़ रहे? छठवें गुणस्थान में संयोग में कितनी रहे, उसकी भूल। उसे वस्त्रादि का संयोग हो, यह अजीव का संयोग, उसमें भी भूल। यह आचार्यों ने एकदम नहीं कहा कि वस्त्र रखे, वह निगोद में जाये। यह ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की स्थिति वर्णन की है। आहाहा!

शैली देखो न इस गाथा में! उसमें ऐसा कहा कि कर्म ने गुण को ढँका। तो यहाँ से एकदम गाथा शुरू की। आहाहा! स्वयं अपने विपरीत विषय और कषाय के भाव से परिणमता है, इसलिए वह निर्मल अनुभूति को प्राप्त नहीं होता। इसका अर्थ हुआ न? आहाहा! समझ में आया? स्वयं ही विषय और कषाय के मैलरूप राग में रंगता है, इसलिए वह शुद्ध अनुभूति को नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : पोते अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव स्वयं आत्मा। स्वयं। आहाहा! यह तो शैली है इनकी? विषय-कषाय शब्द पड़ा है तो उससे अनुभूति से विपरीत है। यह इनकी शैली है। जयसेनाचार्य की टीका की शैली। आहाहा! (समयसार, गाथा) ६९-७० में ऐसा कहा न? कर्ता-कर्म की शुरुआत में। उदासीन अवस्था ज्ञाता-दृष्टा की अवस्था को छोड़कर। छोड़कर अर्थात् कुछ थी और छोड़ी नहीं। आहाहा! जो जानने और देखने की दशा, उदास अवस्था छोड़कर, राग का-पुण्य का भाव का कर्ता होता है। ऐसा है न? ६९-७० में आया? आहाहा! इसका अर्थ कि सुल्टी अवस्था को छोड़कर उल्टी अवस्था करता है। कर्म के कारण करता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

भावार्थ:—शुद्ध आत्मा की अनुभूति से भिन्न... आहाहा! जो विषयकषाय उनसे रंगे हुए आत्मज्ञान के अभाव से... आहाहा! उपार्जन किये हुए मोहकर्म के उदयकर परिणत हुए,.... आहाहा! ऐसे रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीवों के कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कन्ध हैं,...

मुमुक्षु : भावार्थ में तो कर्म आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसलिए हुआ न, निमित्त है न!

उपार्जन किये हुए मोहकर्म के उदयकर परिणत हुए,.... यह तो अर्थ आया। अपने से परिणत न हुआ तो कर्म के निमित्त के उदय में परिणत हुआ। जुड़ गया। आत्मा में अनुभूति से जुड़ना चाहिए, आत्मज्ञान में आत्मा के अन्दर में ज्ञान करना चाहिए, वह न करके उदय के निमित्त के अनुसार परिणम गया। तो स्वयं अपने कारण से (परिणमा है)। आहाहा! आत्मज्ञान के अभाव से उपार्जन किये हुए,.... विषय-कषाय से उत्पन्न हुए मोहकर्म। उसके उदयकर परिणत हुए... उसके निमित्त में जुड़ गया। ऐसे रागी, द्वेषी, मोही, संसारी जीवों के कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गलस्कन्ध हैं, वे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मरूप होकर परिणमते हैं। आहाहा!

जैसे तेल से... लो! समयसार का आया। तेल से शरीर चिकना होता है, और धूल लगकर मैलरूप होके परिणमती है, वैसे ही रागी, द्वेषी, मोही जीवों के विषय-कषायदशा में पुद्गलवर्गणा कर्मरूप होके परिणमती हैं। बस। आहाहा! जो कर्मों का उपार्जन करते हैं,.... वही परमात्मा... है? यह परमात्मा शब्द नहीं होता। वही परमात्मा, ऐसा लेना। टीका में है। उपार्जन करते हैं,.... सुधारा है नये में? नये में सुधारा है। नये में सुधारा है? वही परमात्मा जब वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय... अन्तर्दृष्टि से समाधि में स्थिर होता है तब, कर्मों का क्षय करते हैं,.... आहाहा! तब वह कर्मों का क्षय करता है। तब आराधनेयोग्य हैं,.... उस काल में वह आराधनेयोग्य है। आहाहा! अपनी अनुभूति में स्थिर होता हुआ, अपने को उपादेयरूप से जानता हुआ कर्म का क्षय करे, उस समय उपादेयरूप है। उस समय अर्थात् आराधना के काल में आराधना योग्य है। आहाहा!

विषय-कषाय में रंगा हुआ जीव, उसका निमित्त और कर्मरूप होना जड़ में। अब यहाँ कहते हैं कि जब वीतरागपने परिणमे अनुभूति में, आराधना के समय में स्वयं उपादेयरूप से, उसी काल में कर्म का क्षय होता है। लो! विषय-कषाय के काल में कर्म बँधते हैं। वे उसके कारण से। इसी प्रकार वीतराग परिणति के स्वभाव में स्थिर होता हुआ, वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय स्थिर होता हुआ, तब कर्म का क्षय होता है। तब कर्म अपने आप टल जायेंगे। आहाहा! विषय-कषाय के समय कर्म अपने कारण

से बँधते हैं। आनन्द के अनुभव के काल में उस समय स्वरूप का आराधन है, तब उस काल में कर्म क्षय होते हैं। लो! यह भी निमित्त का कथन है।

आराधना के समय में चैतन्य के अनुभव में आराधता है, इसलिए कर्म को क्षय होना पड़ा, ऐसा नहीं है। उस काल में कर्म की अकर्म अवस्था होने के योग्य थी, वह हुई है। ऐसी बातें! वह परमात्मा को जो विषय-कषाय से रंगा हुआ और अनुभूति से भिन्न परिणाम को करता हुआ, उस काल में कर्म के योग्य वर्गणा कर्म बँधते हैं, उस परमात्मा को... आहाहा! अन्तर के निर्विकल्प समाधि के समय में स्वरूप का आराधन होता है, वहाँ कर्म का क्षय होता है। लो! तब उसे विषय-कषाय के परिणमन में कर्मरूपी व्यंजन कर्म बँधते हैं। और अनुभूति के अनुभव के काल में उन कर्मों का क्षय होता है। आहाहा! यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध की व्याख्या। समझ में आया?

क्षय करते हैं,... भाषा ऐसी आवे, लो! आनन्द के अनुभव में विषय-कषाय के परिणाम से रहित, स्व विषय और स्व का आश्रय लेकर जो अनुभव में निर्विकल्प समाधि के काल में जो स्व उपादेयरूप से आराधता है, उस काल में... आहाहा! जो विषय-कषाय के काल में कर्म बँधते हैं, आनन्द के काल में कर्मों का क्षय होता है, ऐसी भाषा ली है। आहाहा! यह कर्म बाँधते हैं, ऐसा कहना और यहाँ कर्म क्षय करते हैं, ऐसा कहना, यह सब निमित्त के कथन हैं। आहाहा! वस्तु को वस्तुरूप से रख, भाई! तेरी कल्पना से वस्तु को विपरीत न कर। आहाहा! वस्तु को वस्तुरूप से रख। अपनी बाँधी हुई कल्पना से वस्तु को सिद्ध करने जा, ऐसा नहीं होता। समझ में आया?

गाथा - ६३

अथापीन्द्रियचित्तसमस्तविभावचतुर्गतिसंतापाः शुद्धनिश्चयनयेन कर्मजनिता इत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रं कथयन्ति -

६३) पंच वि इंदिय अण्णु मणु अण्णु वि सयल-विभाव।
जीवहं कम्मइं जणिय जिय अण्णु वि चउगइ-ताव॥६३॥
पञ्चापि इन्द्रियाणि अन्यत् मनः अन्यदपि सकलविभावः।
जीवानां कर्मणा जनिताः जीव अन्यदपि चतुर्गतितापाः॥६३॥

पंच वि इंदिय अण्णु मणु अण्णु वि सयलविभाव पञ्चेन्द्रियाणि अन्यन्मनः अन्यदपि पुनरपि समस्तविभावः। जीवहं कम्मइं जणिय जिय अण्णु वि चउगइताव एते जीवानां कर्मणा जनिता हे जीव, न केवलमेते अन्यदपि पुनरपि चतुर्गतिसंतापास्ते कर्मजीनता इति। तद्यथा। अतीन्द्रियात् शुद्धात्मनो यानि विपरीतानि पञ्चेन्द्रियाणि, शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितात्मनो यद् विपरीत-मनेकसंकल्पविकल्पजालरूपं मनः, ये च शुद्धात्मतत्त्वानुभूतेर्विलक्षणाः समस्तविभावपर्यायाः, वीतरागपरमानन्दसुखामृतप्रतिकूलाः समस्तचतुर्गतिसंतापाः दुःखदाहाश्चेति सर्वेऽप्येते अशुद्ध-निश्चयनयेन स्वसंवेद्याभावोपार्जितेन कर्मणा निर्मिता जीवानामिति। अत्र परमात्मद्रव्यात्प्रतिकूलं यत्पञ्चेन्द्रियादिसमस्तविकल्पजालं तद्धेयं तद्विपरीतं स्वशुद्धात्मतत्त्वं पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषादि-समस्तविकल्परहितं परमसमाधिकाले साक्षादुपादेयमिति भावार्थः॥६३॥

इस प्रकार कर्मस्वरूप के कथन की मुख्यता से चार दोहे कहे। आगे पाँच इन्द्रिय, मन, समस्त विभाव और चार गति के दुःख, ये सब शुद्ध निश्चयनयकर कर्म से उपजे हैं, जीव के नहीं हैं, यह अभिप्राय मन में रखकर दोहा-सूत्र कहते हैं -

पाँचों इन्द्रिय भिन्न और हैं भिन्न समस्त विकार समूह।
चतुर्गति दुख कर्मजन्य हैं, ये भी भिन्न जीव से हैं॥६३॥

अन्वयार्थ :- [पञ्चापि] पाँचों ही [इन्द्रियाणि] इन्द्रियाँ [अन्यत्] भिन्न हैं, [मनः] मन [अपि] और [सकलविभावः] रागादि सब विभाव परिणाम [अन्यत्] अन्य हैं, [चतुर्गतितापाः अपि] तथा चारों गतियों के दुःख भी [अन्यत्] अन्य हैं, [जीव] हे

जीव, ये सब [जीवानां] जीवों के [कर्मणा] कर्मकर [जनिताः] उपजे हैं, जीव से भित हैं, ऐसा जान।

भावार्थ :- इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से विपरीत जो स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ, शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित आत्मा से विपरीत अनेक संकल्प-विकल्पसमूह रूप जो मन और शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति से भिन्न जो राग, द्वेष, मोहादिरूप सब विभाव ये सब आत्मा से जुदे हैं, तथा वीतराग परमानन्दसुखरूप अमृत से पराङ्मुख जो समस्त चतुर्गति के महान दुःखदायी दुःख वे सब जीवपदार्थ से भिन्न हैं। ये सभी अशुद्धनिश्चयनयकर आत्म-ज्ञान के अभाव से उपार्जन किये हुए कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए हैं। इसलिये ये सब अपने नहीं हैं, कर्मजनित हैं। यहाँ पर परमात्म-द्रव्य से विपरीत जो पाँचों इन्द्रियों को आदि लेकर सब विकल्प-जाल हैं, वे तो त्यागने योग्य हैं, उससे विपरीत पाँचों इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा को आदि लेकर सब विकल्प-जालों से रहित अपना शुद्धात्मतत्त्व वही परमसमाधि के समय साक्षात् उपादेय है। यह तात्पर्य जानना।।६३।।

गाथा - ६३ पर प्रवचन

इस प्रकार कर्मस्वरूप के कथन की मुख्यता से चार दोहे कहे। लो! आगे पाँच इन्द्रिय, मन, समस्त विभाव और चार गति के दुःख, ये सब शुद्ध निश्चयनय कर्म से उपजे हैं,... स्वभाव से उपजे नहीं, तो वह कर्म से उपजे, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है न। स्वभाव की दृष्टि में... आहाहा! क्योंकि स्वभाव वस्तु स्वयं जो है, वह तो अनन्त शक्ति, अनन्त स्वभाव का—गुण का पवित्र का पिण्ड है, इसलिए पवित्र है। उस पवित्र आत्मा में विकार, पवित्र आत्मा की शक्ति से अपवित्र कैसे हो? पवित्र भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ पवित्र है। वह द्रव्य और गुण, वे सब पवित्र हैं। वह पवित्र भगवान स्वयं अपवित्ररूप किस प्रकार परिणमित हो? उसमें पवित्रपना पड़ा है, वह अपवित्ररूप कैसे हो? समझ में आया? इसलिए अपवित्र पर्याय में होता है, वह कर्म के निमित्त के संग से होता है। स्व का संग नहीं।

आहाहा! वीतराग की कथा बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

जीव के नहीं है,.... वह जीव का स्वभाव नहीं, ऐसा कहना है। विकाररूप होना, वह जीव का स्वभाव नहीं। जीव ऐसा नहीं। जीव तो पवित्र है, ऐसा कहते हैं। वस्तु और उसकी शक्तियाँ, उसके गुण भले अनन्त हों, परन्तु वह सब पवित्र है। पवित्र से अपवित्रता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? जीव के नहीं है,.... वह अपवित्रता उत्पन्न हो, वह जीव की नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अभिप्राय मन में रखकर दोहा-सूत्र कहते हैं— ६३।

(६३) पंच वि इन्द्रिय अण्णु मणु अण्णु वि सयल-विभाव।

जीवहँ कम्मइँ जणिय जिय अण्णु वि चउगइ-ताव ॥६३ ॥

अन्वयार्थः—पाँचों ही इन्द्रियाँ भिन्न हैं, मन (भिन्न) और रागादि सब विभाव परिणाम अन्य हैं,.... इन्द्रिय भिन्न, मन भिन्न, पाँचों इन्द्रिय के रागादि भाव भिन्न तथा चारों गतियों के दुःख भी अन्य हैं,.... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, आहाहा! इन चारों गति का दुःख, वह स्वभाव से भिन्न है। आहाहा! परमात्मा का वर्णन है न! परमात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप, पवित्रस्वरूप, पवित्रता की मूर्ति प्रभु, वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसे यहाँ चार गति के दुःख, विषय-कषाय के भाव, मन और इन्द्रियाँ ये सब, इससे भिन्न है—भगवान परमात्मस्वरूप से भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार, गाथा) ७५ में यह आया था। भगवान आत्मा स्वतन्त्ररूप से करे तो वह तो पवित्रता को करे। पवित्रता उसका कर्तापना और वह उसका कार्य। अपवित्रता उसमें कहाँ थी, उस अपवित्रता का कर्ता वह हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह अपवित्रता, वह कर्म का परिणाम है। आहाहा! यह गुणी और गुण, ऐसा भगवान, उसका यह परिणाम नहीं। समझ में आया?

जीवों के कर्मकर उपजे हैं,.... अर्थात् कि जीव के स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुए। आहाहा! भगवान परमानन्दस्वरूप, पवित्रस्वरूप, चिदानन्दस्वरूप, सुखस्वरूप, उससे मन, इन्द्रिय, चार गति के दुःख और विभाव, उसमें से कैसे हो? आहाहा! उससे भिन्न हैं। समझ में आया?

भावार्थ:—इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से विपरीत... भाषा देखो अब। इन्द्रियाँ हैं क्या? ऐसा कहते हैं। भगवान तो इन्द्रियरहित शुद्धात्मा हैं। आहाहा! अणीन्द्रिय भगवान आत्मा। इन्द्रिय की व्याख्या करते हैं। अणीन्द्रिय ऐसा भगवान, उससे विपरीत इन्द्रिय। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से विपरीत जो स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ,... आहाहा! यह जयसेनाचार्य की टीका में ऐसी शैली लेते हैं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण ११, गुरुवार
दिनांक-२२-०७-१९७६, गाथा-६३-६४, प्रवचन-४१

परमात्मप्रकाश । ६३ गाथा । परमात्मा जीव स्वयं परमात्मस्वरूप ही है । उसे जीव कहते हैं । अकेला ज्ञायकस्वभाव पवित्र अनन्त स्वभाव का स्वरूप, वह आत्मा, उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं । धर्मी जीव को ऐसे आत्मा का स्वीकार होता है । क्योंकि वह आत्मा ऐसा है । कैसा है ? इन्द्रियरहित शुद्धात्मा । वह तो इन्द्रियरहित शुद्धात्मा है । आहाहा ! इन्द्रियसहितपना कर्म के संयोग से है । वस्तु के स्वभाव में इन्द्रिय का संयोग नहीं है ।

भावार्थ:—इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा... त्रिकाली शुद्धस्वरूप पवित्र आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं । इन्द्रिय रहित शुद्धात्मा से विपरीत जो स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ,... यह आत्मा के स्वभाव से विपरीत है । इन्द्रियरहित शुद्धात्मा पवित्र स्वरूप, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं और धर्मी की दृष्टि में वह आत्मा होता है । समझ में आया ? जो स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ,... यह सब कर्म के कारण से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा कहते हैं । वस्तु का स्वभाव यह नहीं है ।

शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित... मन से रहित कहना है । है भगवान आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं कि शुभ-अशुभ जो संकल्प-विकल्प है, उससे रहित, उसे आत्मा कहते हैं । समझ में आया ? क्योंकि आस्रवतत्त्व, वह ज्ञायकतत्त्व से भिन्न है । और आस्रवतत्त्व से ज्ञायकतत्त्व भिन्न है; ज्ञायकतत्त्व से आस्रवतत्त्व भिन्न । ऐसा जो ज्ञायकतत्त्व, उससे विपरीत शुभाशुभ संकल्प-विकल्प, उनसे रहित आत्मा है । आहाहा ! उनसे विपरीत अनेक संकल्प-विकल्प... शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित आत्मा से विपरीत अनेक संकल्प-विकल्पसमूह रूप जो मन... यह भगवान आत्मा से भिन्न है । इसलिए आत्मा और इन्द्रिय एक नहीं है । अणीन्द्रिय भगवान आत्मा और इन्द्रिय एक नहीं है, ऐसा अमनस्वरूप आत्मा, यह मन और आत्मा एक नहीं है । आहाहा ! परमात्मा की व्याख्या है न ? परमात्मस्वरूप है आत्मा ।

और शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति से भिन्न... तीसरी बात । इन्द्रिय से रहित, मन से रहित । अब शुद्धात्मतत्त्व का जो अनुभव, शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र, उसकी जो

अनुभूति, उससे भिन्न। राग, द्वेष, मोहादिरूप सब विभाव... आहाहा! भगवान् आत्मा की अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! ऐसा कहा, देखा! आत्मा से भिन्न, ऐसा नहीं कहकर आत्मा जब अनुभूति में आया, तब उसे अनुभूति से भिन्न यह मोह है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसी बात है। शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति, भगवान् पूर्ण परमात्मस्वरूप ही है। उसे अनुसरकर सन्मुख होकर अनुभूति हो, तब शुद्धात्मा उसके अनुभव में आया। ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी अनुभूति से भिन्न राग-द्वेष-मोह उससे भिन्न है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी शुद्धात्मानुभूति ऐसा आत्मा, अनुभूति से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा और तब उसे आत्मा कहते हैं। उसके सन्मुख होकर अनुभूति में आत्मा ज्ञात हुआ, वह अनुभूति से व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आदि, वे अनुभूति से भिन्न हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! ऐसा स्वरूप ही यह है।

चैतन्यबिम्ब प्रभु अनन्त-अनन्त साधारण-असाधारण शक्तियों का समूह, साधारण-असाधारण गुण—यह शक्ति कहो, गुण कहो, शक्तिवान् की यह शक्तियाँ हैं। ऐसी अनन्त शक्तियाँ साधारण और असाधारण, उनका जो स्वरूप, वह आत्मा। उसका जब अनुभव हुआ, उसे अनुसरकर अनुभूति (हुई), ऐसी जो शुद्धात्मा की अनुभूति से राग भिन्न रह जाता है। यह आया था अपने, समयसार में ५० से ५५, ५१ से नहीं? अनुभूति से भिन्न। आता है? अजीव अधिकार। आहाहा!

आत्मा से भिन्न न कहकर, आत्मा अनुभूति में आया, तब उसे आत्मा ज्ञात हुआ—ऐसी जो आत्मा की अनुभूति, उससे मोह-राग-द्वेष से भिन्न है। आहाहा! कहो, समझ में आया? स्वभाव-सन्मुख की निश्चय अनुभूति, उस अनुभूतिस्वरूप भगवान् आत्मा, वह पुण्य-पाप के विकल्प जो हैं, उनसे वह भिन्न है। अब उनसे भिन्न है, उससे अनुभूति प्राप्त हो? यह बात डालते हैं अन्दर। समझ में आया? यह चैतन्य अनुभूति से प्राप्त है। अनुभूति में उसे आत्मा आया, तब यह आत्मा इसे ज्ञात हुआ। तब आत्मा है, ऐसा अनुभव हुआ। आहाहा! ऐसी अनुभूतिस्वरूप भगवान् आत्मा, उससे सब संकल्प-विकल्प भिन्न हैं। आहाहा!

राग, द्वेष, मोहादिरूप सब विभाव ये सब आत्मा से जुड़े हैं,... आहाहा! अरे! ऐसा आत्मा कौन है? कैसा है? उसे इसने दृष्टि में लिया नहीं। ऐसा आत्मा है। समझ

में आया ? इन्द्रिय से रहित, मन से रहित, शुभ-अशुभ संकल्प-विकल्प से रहित, ऐसा जो आत्मा, वह दृष्टि का विषय और दृष्टि में वह आता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर की यह बातें। इसने कभी अन्तर में स्वरूप क्या है, उसका प्रयोग अनुभूति से किया नहीं। आहाहा!

तथा... तीन बातें तो की। इन्द्रिय, मन और संकल्प-विकल्प। अब चार गति। आहाहा! वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत से... आहाहा! भगवान आत्मा वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत ध्रुव है। आहाहा! चार गति वर्णन करनी है न? आहाहा! वीतराग परमानन्द सुखरूप... वीतरागी परमानन्द, वह सुखरूप। आहाहा! ऐसा जो अमृत। भगवान आत्मा। वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत से पराङ्मुख जो समस्त चतुर्गति के महान दुःखदायी दुःख... आहाहा! यह चारों गति के दुःख हैं। स्वर्ग में भी दुःख है। राग का दुःख है। आहाहा! यह समस्त चतुर्गति के महान दुःखदायी... आहाहा! स्वर्ग का भी महान दुःख है, ऐसा कहते हैं। आहा! नौवें ग्रैवेयक में ३१ सागर, द्रव्यलिंगी मुनि समकित से रहित वहाँ जाये। कहते हैं कि वह तो दुःख में है। वह दुःख में उत्पन्न हुआ है और दुःख को भोगता है। भगवान आत्मा उस दुःख से रहित है। आहाहा! वह तो वीतराग परमानन्द सुख की अमृत की मूर्ति है। ऐसा आत्मा दृष्टि का विषय, अनुभूति का विषय, अनुभव का विषय कहो। आहाहा! वर्तमान जो अनुभव, उसका विषय यह आत्मा है। ऐसे आत्मा के अनुभूति से, अमृत से चार गति के दुःख... आहाहा! वे भी महान दुःखदायी, ऐसी भाषा है। यह स्वर्ग का भी महान दुःख, ऐसा कहा। यह सब सेठाई के सुख कहते हैं न! करोड़पति और अरबोंपति। कहते हैं कि महादुःखी है।

मुमुक्षु : परन्तु निमित्त का....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप ऐसा है। कहे क्या ? आहाहा! कहो, समझ में आया ? कहो, सेठ! आहाहा! क्योंकि लक्ष्मी की ओर लक्ष्य जाता है, तब राग होता है। राग है, वह दुःख है। आहाहा! भगवान की ओर लक्ष्य जाता है, तब वीतरागता उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! स्वयं चैतन्यस्वरूप है। वीतरागी परमानन्द के सुखामृत से भरपूर है, उसके ऊपर लक्ष्य जाता है, तब सुखी होता है। यहाँ

(पर के) ऊपर जाये, तब दुःखी होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चाहे तो यह पैसे के ऊपर लक्ष्य जाये या स्त्री, शरीर सुन्दर उसका रूपवान (शरीर) उसके ऊपर लक्ष्य जाये, वह सब दुःख है। आहाहा! विषय-वासना, कहते हैं कि वह दुःख है। आहाहा! जिसे दुनिया मजा मानती है। समझ में आया? यहाँ उसे दुःख कहते हैं। देखो! चारों गतियाँ ली हैं, हों! मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यचगति तो ठीक परन्तु मनुष्यगति की सेठाई और देवगति के सुख, वे सब दुःख हैं। कहो, हीरालालजी! यह सब पैसेवाले हैं। कुचामण। यह पीछे बैठे हैं वे। अस्सी हजार दिये न इन्होंने दो वर्ष पहले। सत्साहित्य के लिये। अस्सी हजार दिये। ये पैसेवाले हैं। पैसेवाले अर्थात् दुःखी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो गरीब सुखी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब सुखी। गरीब अर्थात्? राग बिना का प्राणी—आत्मा, वह सुखी। आहाहा!

यहाँ तो चार गति के महान दुःख शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! 'वीतराग-परमानन्दसुखामृतप्रतिकूलाः समस्तचतुर्गतिसंतापाः दुःखदाह' ऐसा शब्द है, लो! 'दुःखदाह' है न शब्द? इसका अर्थ महान कर डाला है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है और चार गति के भाव सब दुःखदायी है, दुःखदाह है। आहाहा! छहढाला में नहीं आया? 'राग आग दाह दहे सदा...' चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग। आहाहा! 'राग आग दाह रहे सदा, तातै समामृत सेईये।' आहाहा! राग में दाह-दुःख की जलन है। इसलिए भगवान आत्मा वह राग से रहित है, उसकी सेवना करना। समामृत, कहा न यह अमृत? वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत... वहाँ यह लिया है। 'समामृत सेईये।' भगवान आत्मा समता का, अमृत का सागर। समता का पिण्ड वीतरागपिण्ड। अतीन्द्रिय अमृत का सागर। 'तातै समामृत सेईये।' वीतरागभाव से आत्मा की सेवा करना। आहाहा! चाहे तो लक्ष्मी में दान का भाव हो, वह भी राग है। वह भी दाह है, जलन है, ऐसा कहते हैं। उसे रखने का और सम्हालने का भाव, वह तो दुःखदायी दाह है। दुःखदाह, ऐसा लिया, देखा! आहाहा! दुःख की दाह—जलन है, कहते हैं। अज्ञानी उसे सुख मानता है, यही महामिथ्यात्व और पाप है। आहाहा! शरीर की सुन्दरता, लक्ष्मी की विविधता, करोड़ों-अरबों, वह जिसे आकर्षण लगे, उसका

आकर्षण लगे, वे सब दुःखी हैं। भगवान का आकर्षण जिसे नहीं। आहाहा! उसे यह परपदार्थ की अनुकूलता देखकर मन आकर्षित हो जाता है, वहाँ खिंच जाता है... आहाहा! यह दुःख है।

मुमुक्षु : ऐसे मनुष्य का तो लोग जयकार बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल के तो पागल जयकारा बोले। उसमें क्या ? वह पागल है। आहाहा! आनन्द का नाथ भूलकर पर में आकर्षण होकर विविधता की विचित्रता के प्रेम में खिंचना... आहाहा! वह दुःख की दाह में खिंच गया है, कहते हैं। समझ में आया ? वहाँ आकर्षण हो गया है। पैसे का। आहाहा! हीरे के (गहने)। एक-एक हीरा करोड़ का, ऐसे करोड़ों हीरा के वे निकलें, क्या कहलाते हैं ? कलश। कलश... कलश। हीरा के कलश। ऐसा जहाँ (देखे)... आहाहा! आकर्षण हो। कहते हैं कि वह दुःखदाह है। अमरचन्द्रभाई! आहाहा! यह चैतन्य के हीरा का उसे आकर्षण नहीं हुआ। हीरालालजी! आहाहा!

भगवान सुखामृत का सागर, उसका उसे आकर्षण दृष्टि में नहीं हुआ और इस आकर्षण में खिंच गया, वह दुःखदाह में जल गया है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है कि उस दुःखदाह से भगवान भिन्न है। आहाहा! समझ में आया ? वीतराग परमानन्द सुखरूप... आहाहा! अमृत बहाया है। परमात्मा स्वयं अमृत का निधान है। सुखामृत का निधान है। उसका दृष्टि में आकर्षण होना चाहिए। आहाहा! दृष्टि में वहाँ खिंचाव होना चाहिए। ऐसा होने पर भी बाहर की चीजों की अनुकूलता में खिंच जाये, वह दुःख के दावानल में सुलग गया है।

समस्त चतुर्गति के महान दुःखदायी... ओहोहो! चक्रवर्ती नहीं। वासुदेव, बलदेव, इन्द्रों के चतुर्गति के महान दुःखदायी, चारों गति में महान दुःखदायी। दुःखदाह है। कहीं ऐसा नहीं कहा कि मनुष्य में, स्वर्ग में कुछ ठीक है। आहाहा! भगवान अमृतस्वरूप भगवान आत्मा से विरुद्ध भाव सब दुःखदायी है। आहाहा! वह चतुर्गति के महान दुःखदायी। देखा ? दुःखदायी-दुःखदाता। 'दायी' है न ? वह दुःखदाता है। आहाहा! वह शुभ-अशुभ की वृत्ति उठती है, वह सब दुःखदायी है। आहाहा! वह दुःख का दातार है। भगवान अमृतसागर स्वरूप से वह दुःख की दातार दशा अत्यन्त भिन्न है।

स्वरूप में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को इसे दृष्टि में लेना चाहिए। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसे इसे अनुभूति में लेना चाहिए। आहाहा! पर्याय की अनुभूति में इस आत्मा को खींचना चाहिए। आहाहा! अनुभूति में ऐसा आत्मा समीप में लेना चाहिए। जो राग में दूर है प्रभु। आहाहा! चार गति के दुःखदायी दशा से प्रभु दूर है अथवा उससे वह दुःखदायी दशा दूर-भिन्न है। आहाहा! उसे आनन्द की दशा द्वारा आत्मा को समीप में लेना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

लोगों को यह ऐसा लगता है कि यह तो सब निश्चय है। परन्तु निश्चय, वह सत्य है। वह ही परम सत्य है। व्यवहारादि विकल्प, वे तो दुःखदायी हैं। आहाहा! अब दुःखदायी को साधन बनाकर सुख होगा? शास्त्र में तो कथन आते हैं। यह तो कहा न? निमित्त हस्तावलम्ब जानकर शास्त्र में बहुत कहा, परन्तु उसका फल संसार है। (समयसार) ११वीं गाथा। आहाहा! आचार्यों ने आत्मा को खुल्ला करके रखा है। आहाहा! कन्या को दहेज नहीं देते? वस्त्र—कपड़े देते हैं न? पाँच—दस हजार वहाँ रखे। कुटुम्ब देखने आवे। दहेज। दहेज कहते हैं तुम्हारे? पाँच—दस हजार का दे न कन्या को? क्या कहलाता है तुम्हारे? करियावर—दहेज। वह सब परिवार को बतावे। पटिया बिछावे और इतनी साड़ियाँ, इतनी चाँदी, इतना सोना, इतने पंखे। सब देखने आवे। यह तो दृष्टान्त है।

भगवान ने आत्मा को खुल्ला करके दहेज निकाला है। आहाहा! अरे! देखने तो आ तू एक बार! अनन्त वीतरागी परम सुखामृत का सागर प्रभु, उसे अनुभूति में ले, उसे देख। आहाहा! भगवान ने खुल्ला रखा है, बापू! ऐसा तू है। आहाहा! तुझे मोक्ष में विदा करना है। उसका साधन यह है। आनन्द के नाथ को देख। उसका आदर कर। आहाहा! इसलिए यह निश्चय लोगों को ऐसा लगे। परन्तु बापू! वस्तु यह है, प्रभु! आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है न! इसलिए गाथा में परमात्मस्वरूप आत्मा, वह परमात्मा वह इनसे भिन्न है, ऐसा बताते हैं। आहाहा! मन से भिन्न, इन्द्रियों से भिन्न, संकल्प-विकल्प से भिन्न और चार गति के दुःखदायी भाव से भिन्न। आहाहा! लो! यह सब सुखी कहते हैं न? चिमनभाई! यह सब तुम्हारे पैसेवाले को सुखी कहते हैं। बँगला घर में रखे, बनावे। आहाहा! भाई! तेरा बँगला तो अन्तर आनन्द का सागर है, वहाँ बस न।

आहाहा! वहाँ वास्तु कर। कभी अनन्त काल में आनन्द के सागर में तूने वास्तु नहीं किया। दुःखदायी भाव में वास्तु करके (दुःखी होता है)। आहाहा! यह लाख, दो लाख के मकान बनावे, दो-चार लाख के। उसका वास्तु होता है, सेठिया, परिवार, सगे-सम्बन्धी परिचितों को आमन्त्रण दे, एकत्रित होकर दो सौ-पाँच सौ लोग हों और फिर उसमें देखो... आहाहा! यह मेसूर और (पकवान) उड़ते हों।

मुमुक्षु : यह सब दुःख है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ कहते हैं। चार गति की जितनी यह क्रियायें यह हो, वह सब दुःखदायी है। उसे तू मजा माने, वह तेरा भ्रम है। आहाहा! जो दुःखदायी है, उसे सुख है, मजा है—यह मान्यता मिथ्यात्व है। तूने आत्मा को नहीं माना। भगवान् अमृत का सागर, वहाँ आनन्द है, उसे तूने नहीं जाना, नहीं माना। जिसमें आनन्द नहीं, उसमें आनन्द माना, उस दुःख से तो भगवान् भिन्न है न! आहाहा! ऐसा वीतराग का स्वरूप है। यह तो परमात्मप्रकाश है। हर गाथा में परमात्मा-आत्मा कैसा है, उसका वर्णन करते हैं। आहाहा!

वे सब जीव पदार्थ से भिन्न हैं। है ? मन, इन्द्रिय, संकल्प और विकल्प तथा चार गति के दुःख... आहाहा! भगवान् आनन्दस्वरूप प्रभु अनुभूति में ज्ञात हो, ऐसा प्रभु, उस अनुभूति से ये सब भाव भिन्न रह जाते हैं। आहाहा! उसमें नहीं, उसका उसे श्रद्धा और ज्ञान ऐसा होता है। इसमें यह हूँ और यह नहीं अर्थात् उसमें दूसरे तत्त्व यह नहीं, ऐसा उसमें ज्ञान होकर श्रद्धा हो जाती है। आहाहा! समझ में आया ?

देखो न! अभी यहाँ तीन लोग ३५-३५ वर्ष के जवान रिक्शा में जा रहे थे। रिक्शा में। उसमें बस आयी, बस। रिक्शा के ऊपर चढ़ गयी। तीन तो मर गये। ३५-३५ वर्ष के जवान। यहाँ तो दूसरा कहना है। यह कच्चरघाण का जो दुःख भासित होता है। इसकी अपेक्षा मिथ्यात्व के दुःख में कच्चरघाण हो जाता है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया ? यह पर में सुख है, चार गति में सुख है, यह दुःखदायी में सुख है, ऐसी मान्यता से कच्चरघाण हो जाता है। यह कुचल जाता है। उसकी इसे खबर नहीं। बाहर का यह होता है तो चिल्लाहट मचाता है।

अभी यहाँ एक कुम्हार का लड़का मर गया। जवान लड़का था बेचारा। साईकिल

में ऐसे जा रहा था। उस ओर है न वह नहर है। इसलिए वह तिरने गया जरा। बस में आ गया। वहीं का वहीं मर गया। जवान लड़का। अभी ही यहाँ (बनाव बन गया)। यह नहर है वहाँ। उसका बाप आया। मुझे मुर्दा बताओ। खोज करे। मस्तिष्क ऐसा हो गया उसके पिता का। मेरे लड़के को ले जाने दो, मेरे लड़के को—मुर्दे को। मुझे दे दो। यह पागल, वह पागल। किसका पुत्र और किसकी माँ? वह यहाँ कच्चरघाण (हो गया)। दिशा को जाते हैं न? उसके ऊपर खून बहुत दिन तक रहा। बाद में सूख गया। वहाँ आगे लड़का कुचल गया। जवान लड़का कुम्हार का। उसका पिता आकर कहे, मुर्दा दे नहीं झट। पुलिस आयी। जाँच की। किस जगह कैसे हुआ? इसकी भूल है या उसकी भूल है। ऐसे गति की या ऐसे था? जाँच करे न? उसकी जो गति है, वह बीच में से ऐसे जाना चाहिए और ऐसे से ऐसे जाना चाहिए, ऐसे जाँच करते थे। उसका बाप कहे, मुझे मेरा लड़का दो। मुझे मेरा लड़का दो। अरे! कहाँ पुत्र, बापू! सब पागलपन है। पागल है।

मेरा नाथ अन्दर आत्मा है, उसे स्वीकारने से जो प्रजा हो, वह उसकी प्रजा है। समझ में आया? सुख का सागर अनुभूति से ज्ञात हो ऐसा, वह अनुभूति इसकी प्रजा, वह इसकी प्रजा है। आहाहा! रागादि की प्रजा, वह भी इसकी नहीं। आहाहा! तो फिर स्त्री-पुत्र बाहर के कहीं रहे। आहाहा! उन्हें और इसे क्या सम्बन्ध है? उनके कारण से आये और उनके कारण से चले जाते हैं। आहाहा!

ये सभी अशुद्धनिश्चयनयकर... अब यह कहते हैं। यह कैसे हुए तब वे सब? कि अशुद्धनिश्चयनयकर आत्मा-ज्ञान के अभाव से... देखा! भगवान आत्मा जो परमानन्द सुखामृत सागर प्रभु, उसका ज्ञान नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान के अभाव से और अशुद्ध निश्चयनय से। ऐसा। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, परमात्मस्वरूप के ज्ञान बिना, वह आत्मज्ञान अर्थात् यह। आत्मा ऐसा जो है सुख-दुःख से रहित, विकल्प से रहित, मन से रहित, ऐसा जो आत्मा है, उसके ज्ञान से रहित। ऐसे अशुद्ध निश्चयनय से उपार्जन किये हुए कर्मों से... आहाहा! समझ में आया?

अशुद्धनिश्चयनयकर आत्म-ज्ञान के अभाव से उपार्जन किये हुए कर्मों से जीव के उत्पन्न हुए हैं। यह सब जीव को उत्पन्न यह होता है। मन, इन्द्रिय, चार गति के

दुःख और... वे आत्मवस्तु के ज्ञान के अभाव से अशुद्ध निश्चयनय से जो विकारभाव किया, उससे कर्म बँधे और इस कारण से यह सब चीजें मिली। आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए ये सब अपने नहीं हैं,...** वे तो आत्मज्ञान के अभाव से वास्तविक स्वरूप के भान बिना अशुद्ध निश्चयनय से पर्याय में जो विकारी दशा हुई, उससे हुए कर्म, उससे हुआ यह संयोग। संकल्प-विकल्प चार गति आदि, वे आत्मा से भिन्न हैं। आहाहा! क्योंकि आत्मज्ञान के अभाव से उपार्जित भाव का फल आत्मा से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा जो वस्तु पूर्ण आनन्द परमात्मा, उसके ज्ञान में, उसका ज्ञान, आत्मज्ञान, हों! पर्याय का ज्ञान, वह नहीं। आत्मा पूरा आत्मा। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, ऐसा आत्मा, इसका ज्ञान। पर्याय का ज्ञान नहीं, यह तो ऐसे आत्मद्रव्य का ज्ञान। आहाहा! यह देखो! परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। परमात्मा तू भिन्न है, बापू! आहाहा! उसे हम आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना वह आत्मदर्शन, आत्मवस्तु के ज्ञान बिना पर्याय अर्थात् राग का ज्ञान किया, शास्त्र का (ज्ञान किया)... आहाहा! ऐसा कहते हैं। ऐसा जो आत्मा वस्तु है, पूर्णानन्द प्रभु परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। उसकी शक्ति और उसका स्वभाव तो परमात्मा ही है। ऐसे परमात्मा के ज्ञान बिना अशुद्ध निश्चय से उपार्जित कर्मों के यह सब संयोग है, कहते हैं। इन्द्रिय, मन, संकल्प और विकल्प... आहाहा!

इसलिए ये सब अपने नहीं हैं,... आहाहा! इन्द्रिय, मन, संकल्प-विकल्प व्यवहार... आहाहा! और चार गति **अपने नहीं हैं,...** आहाहा! **कर्मजनित हैं।** अपने आत्मज्ञान से नहीं, इसलिए वे कर्मजनित हैं, ऐसा। आहाहा! **यहाँ पर परमात्मद्रव्य से विपरीत...** भगवान् आत्मा, जो दृष्टि का विषय परमात्मा पूर्ण स्वरूप, सम्यग्दर्शन का विषय जो भूतार्थ पूर्णानन्द प्रभु। भूतार्थ कहा न ११वीं गाथा में। विद्यमान पदार्थ त्रिकाल भूतार्थ वस्तु। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अनन्त चतुष्टय से भरपूर तत्त्व, ऐसा जो परमात्मा, उसके द्रव्य से परमात्मद्रव्य लिया, देखा! उससे विपरीत। **जो पाँचों इन्द्रियों को आदि लेकर सब विकल्प-जाल हैं,...** आहाहा! वे तो त्यागने योग्य हैं,... चाहे तो संकल्प-विकल्प हो या चार गति हो, वह सब त्यागनेयोग्य है। लो! यह तो कहते हैं कि

मनुष्यगति मिली, तब इसे मोक्ष का साधन हुआ। गति तो आत्मा में है नहीं, ऐसा कहा। है नहीं, उससे लाभ होगा? उसमें हो, उससे लाभ होता है। आहाहा! उसमें तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति पड़ी है तो उससे लाभ होगा। गति से, मनुष्यगति। मनुष्यगति देखो...

एक पण्डित आया था। कुचामन का। नहीं? पण्डित नहीं था? बहुत वर्ष पहले। घासीलालजी। कलकत्ता रहते हैं। अब है या नहीं, खबर नहीं। आये थे। ऐसा है। मनुष्यपना, वह लाभ का कारण। मनुष्यगति हुई, तब इसे सुनने का मिला और धर्म हुआ। क्या हो? यहाँ तो कहते हैं कि जिस वस्तु से भिन्न है, उससे लाभ होगा? गति से मनुष्यपना मिला, आहाहा! अरे! सुनने को मिला, यह विकल्प हुआ, इससे लाभ होगा?

पाँचों इन्द्रियों को आदि लेकर सब विकल्प-जाल हैं,... आहाहा! शान्ति का सागर निर्विकल्प प्रभु से यह सब विकल्प जाल भिन्न है। आहाहा! वे तो त्यागने योग्य हैं, उससे विपरीत पाँचों इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा को आदि लेकर सब विकल्प-जालों से रहित अपना शुद्धात्मतत्त्व... देखा! अपना शुद्धात्मतत्त्व... भगवान का आत्मा, वह नहीं। अपना शुद्धात्मतत्त्व, वही परमसमाधि के समय साक्षात् उपादेय है। आहाहा! गजब करते हैं न कुछ! उसकी ओर झुका है, एकाग्र हुआ है, उस काल में उसे वह आत्मा उपादेय है। आहाहा! उस काल में उसे रागादि हेय हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश की शैली में प्रत्येक में यह लेते हैं। उस काल में उपादेय, उस काल में प्रतीति में आया। आया, तब कहना न, ऐसा कहते हैं।

ऐसा जो भगवान इन्द्रियरहित, विकल्प से रहित, मन से रहित, चार गति के दुःख से रहित, उसे विकल्प-जालों से रहित अपना शुद्धात्मतत्त्व, वही परमसमाधि (शान्ति) के... आहाहा! विकल्प बिना की निर्विकल्प शान्ति। विकल्प है, वह दुःख है और निर्विकल्प वह शान्ति है। निर्विकल्प समाधि के समय। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति के समय—उस समय उपादेय हुआ। आहाहा! यह उपादेय है और यह हेय है, यह जाननेमात्र में रहे, वह वस्तु नहीं, कहते हैं। उपादेयरूप होकर जिस दशा में उस दशा के काल में वह उपादेय है। आहाहा! कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है। भाषा कुछ देखी नहीं। भाव गम्भीर, भाषा सादी है। सादा आत्मा, सादी भाषा। आहाहा!

साक्षात् उपादेय है। देखा! साक्षात् अर्थात् अनुभव में आया, ऐसा पहले धारणा

में था कि यह उपादेय है और यह हेय है। यह तो साक्षात् अनुभव के काल में साक्षात् उपादेय हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन के काल में सम्यग्ज्ञान और अनुभव में (उपादेय) होता है। साक्षात् अर्थात् है, ऐसा उपादेय हो गया। आहाहा! समझ में आया? टीका कितनी गम्भीर है! आहाहा! प्रवृत्ति के प्रेमियों को यह बात कठिन पड़े। समझ में आया? आहाहा! ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... मैंने नहीं किया? वे ऐसा कहते हैं। तुम निवृत्ति-निवृत्ति की बातें करते हो, परन्तु इसमें ऐसे-ऐसे बड़े मकान बनाकर (रहते हैं)। ऐसा कहते हैं। कौन करे, भाई! उस काल में वह यह उत्पन्न परमाणु की पर्याय का जन्मक्षण है, वहाँ उत्पन्न होती है। किसी से होता नहीं। आहाहा! करे और फिर होता नहीं, ऐसा कहे वापस। कौन करे? भाई! तू ऐसा न देख।

यह साक्षात् कहा न? अर्थात् कि अनुभव के काल में परम शान्ति की समाधि में दृष्टि में आया, उस काल में उसे उपादेय है। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति; राग में अशान्ति और दुःख था। वह निर्विकल्प सुख की समाधि, निर्विकल्प आनन्द की समाधि के काल में भगवान् निर्विकल्प पूर्ण स्वरूप, वह उपादेय हुआ। आहाहा! उसका आश्रय किया और उसके सन्मुख हुआ, तब उसे उपादेय हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह तात्पर्य जानना। लो! भावार्थ कहा न? पाँच बोल। गाथा हो, उसका शब्दार्थ करना, नयार्थ करना, आगमार्थ करना, अन्यमत का अर्थ इसमें क्या निषेध हुआ और इसका तात्पर्याय—सार। यह सार—तात्पर्य है। आहाहा! भाव, अर्थ और तात्पर्य यह है।

गाथा - ६४

अथ सांसारिकसमस्तसुखदुःखानि शुद्धनिश्चयनयेन जीवानां कर्म जनयतीति निरूपयति-

६४) दुःखु वि सुखु वि बहु-विहउ जीवहं कम्मु जणेइ।

अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउं भणेइ॥६४॥

दुःखमपि सुखमपि बहुविधं जीवानां कर्म जनयति।

आत्मा पश्यति मनुते परं निश्चयः एवं भणति॥६४॥

दुःखु वि सुखु वि बहुविहउ जीवहं कम्मु जणेइ दुःखमपि सुखमपि। कथंभूतम्। बहुविधं जीवानां कर्म जनयति। अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउं भणेइ आत्मा पुनः पश्यति जानाति परं नियमेन निश्चयनयः एवं ब्रुवते इति। तथाहि-अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिक-वीतरागसौख्यात् प्रतिकूलं सांसारिकसुखदुःखं यद्यप्यशुद्धनिश्चयनयेन जीवजनितं तथापि शुद्धनिश्चयेन कर्मजनितं भवति। आत्मा पुनर्वीतरागनिर्विकल्पसमाधिस्थः सन् वस्तु वस्तुस्वरूपेण पश्यति जानाति च न च रागादिकं करोति। अत्र पारमार्थिकसुखाद्विपरीतं सांसारिकसुखदुःख-विकल्पजालं हेयमिति तात्पर्यार्थः॥६४॥

आगे संसार के सब सुख-दुःख शुद्ध निश्चयनय से शुभ-अशुभ कर्मोंकर उत्पन्न होते हैं, और कर्मों को ही उपजाते हैं, जीव के नहीं है, ऐसा कहते हैं -

विविध भाँति का सुख दुख सब ही कर्मों से उत्पन्न हुआ।

आत्मा केवल ज्ञाता दृष्टा-ऐसा निश्चय नय कहता॥६४॥

अन्वयार्थ :- [जीवानां] जीवों के [बहुविधं] अनेक तरह के [दुःखमपि सुखं] अपि दुःख और सुख दोनों ही [कर्म] कर्म ही [जनयति] उपजाता है। [आत्मा] और आत्मा [पश्यति] उपयोगमयी होने से देखता है, [परं मनुते] और केवल जानता है, [एवं] इस प्रकार [निश्चयः] निश्चयनय [भणति] कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान् ने ऐसा कहा है।

भावार्थ :- आकुलता रहित पारमार्थिक वीतराग सुख से पराङ्मुख (उलटा) जो संसार के सुख-दुःख यद्यपि अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है, तो भी शुद्ध निश्चयनयकर जीव ने उपजाये नहीं हैं, इसलिये जीव के नहीं हैं, कर्म-संयोगकर उत्पन्न

हुए हैं और आत्मा तो वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर हुआ वस्तु को वस्तु के स्वरूप देखता है, जानता है, रागादिकरूप नहीं होता, उपयोगरूप है, ज्ञाता द्रष्टा है, परम आनंदरूप है। यहाँ पारमार्थिक सुख से उलटा जो इन्द्रियजनित संसार का सुख-दुःख आदि विकल्प समूह है वह त्यागने योग्य है, ऐसा भगवान् ने कहा है, यह तात्पर्य है॥६४॥

गाथा - ६४ पर प्रवचन

आगे संसार के सब सुख-दुःख शुद्ध निश्चयनय से शुभ-अशुभ कर्मोत्पन्न होते हैं,.... संसार के सब सुख-दुःख, कल्पना के। यह शुद्धनिश्चयनय से शुभ-अशुभ कर्मोत्पन्न होते हैं, और कर्मों को ही उपजाते हैं,.... आहाहा! कर्मों से उत्पन्न हुए हैं और वे कर्म को उपजाते हैं। समझ में आया? संसार के जितने सुख-दुःख (होते हैं), वे सब शुद्धनिश्चय से शुभ-अशुभकर्मों से हुए हैं और वे कर्मों को उपजाते हैं। संसार के सुख-दुःख कर्मों को उपजाते हैं। संसार के सुख-दुःख कर्म से हुए हैं और सुख-दुःख कर्म को उपजाते हैं। आहाहा!

जीव के नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? संसार के सर्व सुख-दुःख कर्म से हुए और वे कर्म को उपजाते हैं। जीव से उपजाते हैं और जीव ने उपार्जित किये हैं, ऐसा नहीं है। जीव उसे कहते हैं कि परमात्मस्वरूप वह (जीव है)। आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान् आत्मा से यह सुख-दुःखादि उत्पन्न हुए नहीं और उसने सुख-दुःख उत्पन्न किये नहीं। आहाहा! कर्म से यह हुए और कर्म को उपार्जित किया है। आहाहा! ६४।

(६४) दुक्खु वि सुक्खु वि बहु-विहउ जीवहँ कम्म जणेइ।

अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउँ भणेइ॥६४॥

आहाहा! जीवों के अनेक तरह के दुःख और सुख... यह कल्पना के सुख, हों! संसार के। यह कर्म ही उपजाता है और आत्मा उपयोगमयी होने से... भगवान् तो जाननेवाला-देखनेवाला है। उपयोगस्वरूप जाननेवाला-देखनेवाला ज्ञाता-दृष्टा प्रभु है। वह उपयोगमयी होने से देखता है... देखता है कि यह होता है। आहाहा! कर्म से हुए,

ऐसा देखता है और उससे कर्म बँधते हैं, ऐसा देखता है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से भगवान आत्मा कर्म से उत्पन्न हुए सुख-दुःख को जानता है और सुख-दुःख की कल्पना से कर्म बँधे, उसे यह भगवान जानता है। उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें!

वह तो उपयोगमयी... है, कहते हैं। 'पश्यंति' है न? 'पश्यंति' है वह तो। आहाहा! 'देक्खइ' यह 'देक्खइ' का 'पश्यंति' किया। पाठ में 'देक्खइ' है। देखता है वह 'पश्यंति' 'मुणइ' 'मनुते', वह जानता है। आहाहा! है? 'पश्यंति' अर्थात् देखता है और 'मनुते' अर्थात् जानता है। परम 'मनुते' केवल जानता है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। देखे और जाने, उसे आत्मा कहते हैं। वह कर्म से हुए सुख-दुःख और कल्पनायें और उनसे हुए कर्म, उसे भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि उन्हें जानता और देखता है। आहाहा! है? 'पश्यति मनुते परं' 'मुणइ पर' आहाहा!

इस प्रकार निश्चयनय कहता है,.... वास्तविक दृष्टि ऐसा कहती है। निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है। लो! भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव जिनवरदेव ने निश्चय से ऐसा कहा है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण १२, शुक्रवार
दिनांक-२३-०७-१९७६, गाथा-६४-६५-१, प्रवचन-४२

भावार्थः—आकुलतारहित पारमार्थिक वीतराग सुख से पराडमुख... आत्मा का सुख तो ऐसा है कि आकुलतारहित, रागरहित अर्थात् परमार्थ से वीतराग सुख। वीतराग सुखस्वरूप भगवान आत्मा से पराडमुख उल्टा संसार का सुख-दुःख। विषय-वासना, भोग आदि के दुःख में कल्पना, वह सब पारमार्थिक आत्मा के सुख से उल्टी दशा है। परमार्थ से आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी जो पर्याय में परमानन्द प्रगट होना, उससे उल्टा इन्द्रिय के विषय सुख या दुःख, वे सब यद्यपि अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है,... है तो इसकी पर्याय में अशुद्ध निश्चय से। संसार के विषय-कषाय के भाव हैं तो जीव की पर्याय में, अशुद्ध निश्चय से। स्वभाव की अपेक्षा से, निकल जाते हैं, इसलिए पुद्गल। परन्तु होते हैं इसकी पर्याय में, इसलिए अशुद्ध निश्चय से जीव के हैं, ऐसा कहा जाता है। जीव सम्बन्धी... आया न? अशुद्ध निश्चयनयकर जीव सम्बन्धी है,... इसकी पर्याय में हुआ न? विषय-कषाय के राग दुःख की कल्पना या सुख की कल्पना, वह इसकी पर्याय में है न?

तो भी शुद्ध निश्चयनयकर जीव ने उपजाये नहीं हैं,... वस्तुस्वरूप जो है त्रिकाली, उसने तो इन सुख-दुःख को उत्पन्न किया नहीं। आहाहा! अशुद्ध निश्चयनय से जीव सम्बन्धी उपार्जन किये कहे जाते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली, उस वस्तु ने तो इन्हें उत्पन्न किया नहीं। द्रव्यस्वभाव है, उससे उत्पन्न हुए नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव तो आनन्द और ज्ञायक है। चैतन्य चिन्तामणि रत्न प्रभु, उससे संसार के सुख-दुःख की कल्पना हुई नहीं। समझ में आया?

इसलिए जीव के नहीं हैं,... अशुद्ध से जीव सम्बन्धी; शुद्ध से जीव सम्बन्धी नहीं। आहाहा! अस्ति-नास्ति। मलिननय की दृष्टि से देखे तो विषय-कषाय के भाव सुख-दुःख, वह जीवपर्याय के सम्बन्ध में है और जीव सम्बन्धी पर्यायदृष्टि से है, वस्तुदृष्टि से देखें तो इसमें है नहीं। जीव के नहीं हैं, कर्म-संयोगकर उत्पन्न हुए हैं और आत्मा तो वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर हुआ (आत्मा) वस्तु को वस्तु के स्वरूप

देखता है,... उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागनिर्विकल्प शान्ति, समाधि पर्याय। पर्याय में वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर हुआ (आत्मा) वस्तु को वस्तु के स्वरूप देखता है,... आहाहा! यह सुख-दुःख की कल्पना भी वीतराग स्वरूप में रहने से, वीतरागनिर्विकल्प समाधि में स्थिर होने से वह रागादि को जानता है। संसार के सुख-दुःख की कल्पना। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जाननेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है, यह उसका स्वभाव है। थोड़ा राग करना, यह इसका स्वभाव नहीं।

जानता है, रागादिकरूप नहीं होता,... स्वभाव-सन्मुख की वीतरागी शान्ति में स्थिर होकर यदि आत्मा को देखे तो राग को करता नहीं, रागरूप होता नहीं, रागरूप होता नहीं। आहाहा! उपयोगरूप है... भगवान तो जानने के उपयोगरूप है। वस्तु, जो वस्तु भगवान आत्मा, वह तो उपयोगरूप है, वह इस रागरूप होता नहीं। वस्तु है, वह रागरूप होती नहीं। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा है,... प्रभु तो ज्ञाता—जाननेवाला और देखनेवाला है। राग हो, उसे भी जाननेवाला-देखनेवाला है। समझ में आया ?

परम आनन्दरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा तो परम अतीन्द्रिय सुखस्वरूप, आनन्दरूप है। वह राग के भाव को कैसे करे और कैसे भोगे ? वह तो जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह तो परमात्मप्रकाश है न ? यह (आत्मा) स्वयं परमात्मस्वरूप ही है।

यह परमात्मस्वरूप आनन्द को—अपने आनन्द को करे, परन्तु सुख-दुःख की कल्पना के, विषय के सुख को कैसे करे ? आहाहा! जिसकी दृष्टि, भगवान आनन्दस्वरूप है, उसमें जिसकी दृष्टि पड़ी है, वह तो आनन्द की दशा को करे। संसार के सुख-दुःख की कल्पना को जाने। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ पारमार्थिक सुख से उल्टा... भगवान आत्मा का जो आनन्द, सुख, परमात्मा का आनन्द, सुख, उससे उल्टा जो इन्द्रियजनित संसार का सुख-दुःख... आहाहा! संसार की प्रतिकूलता-अनुकूलता में राग-द्वेष और अनुकूल-प्रतिकूल होना। आदि विकल्प

समूह है, वह त्यागने योग्य है,... आहाहा! यह संसार के विषयसुख में रागादि हों, वह छोड़नेयोग्य है, वह आदरनेयोग्य नहीं। परमानन्दस्वरूप भगवान् आत्मा की आनन्दपर्याय प्रगट हो, वह आदरनेयोग्य है। रागादिभाव, वे आदरनेयोग्य नहीं। **ऐसा भगवान् ने कहा है, यह तात्पर्य है।** तात्पर्य है न? टीका में तो इतना है, **हेयमिति तात्पर्यार्थः** ' ऐसा। यह हेय है और परमार्थ सुख, आत्मा के आनन्द का सुख, वह उपादेय है। आहाहा!

कितना धीर... कितनी इसे बाहर से दृष्टि समेटनी पड़े, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। स्वभाव-सन्मुख में अनन्त पुरुषार्थ है। ऐसे अनन्त पुरुषार्थ के आनन्द के समक्ष कहते हैं कि यह विषय के सुख की कल्पनायें, विकल्प सब छोड़नेयोग्य है। जहर के प्याले हैं। आहाहा! शरीर की सुन्दरता, कोमलता, इन्द्रियों की पुष्टि, उसमें होता जो सुख का विकल्प,... आहाहा! वह छोड़नेयोग्य है। पाँच इन्द्रियाँ, सुन्दर कोमलता, अनुकूलता, आहार की अनुकूलता में शरीर की पुष्टि आदि से उत्पन्न होती इन्द्रियजनित कल्पना, वह जहर है, दुःख है। भगवान् परमानन्द के आश्रय से जो सुख और आनन्द होता है, उसके समक्ष वह जहर है, वह छोड़नेयोग्य है। **ऐसा भगवान् ने कहा है, यह (इसका) तात्पर्य है।** इन्द्रिय के सुखों का आकर्षण हो, परसन्मुख की उन्मुखता का झुकाव (हो), वे सब विकल्प जहर और दुःख है। भगवान् आनन्दस्वरूप की सन्मुखता का झुकाव हो, वह आनन्दस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

छह खण्ड के राजा चक्रवर्ती, छियानवें हजार स्त्रियाँ, एक स्त्रीरत्न की तो हजार देव सेवा करे, ऐसा शरीर और सामग्री सब उत्कृष्ट, परन्तु उस ओर का प्रेम, (वह) जहर है। भगवान् आनन्दस्वरूप प्रभु का आदर छोड़कर ऐसे आदर में जाना, वह जहर का प्याला पीता है। इसलिए उस अमृतस्वरूप भगवान् के सन्मुख देखकर आनन्द को प्रगट करके, इस विकल्प को हेय करनेयोग्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मोक्ष का पुरुषार्थ है। स्वभाव-सन्मुख का मोक्ष का पुरुषार्थ; भोग की ओर का, वह काम का पुरुषार्थ; पैसे कमाने की ओर का, वह अर्थ का पुरुषार्थ है। यह सब (काम और अर्थ) जहरीला पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु : इन सबका पुरुषार्थ तो करता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ करता है, जहर का। जहर पीता है। आहाहा! होड़ करता है। दूसरा ऐसा करे तो उससे मैं अधिक करूँ, राग। पुरुषार्थ करके राग से पैसा प्राप्त करूँ, विषय की सामग्री (भोगना),... आहाहा! स्त्री आदि को प्रसन्न करूँ, उनसे प्रसन्न होऊँ। आहाहा! अमृत का नाथ प्रभु वहाँ राग में रुल जाता है। अमृत का सागर भगवान, वह राग में रुल जाता है। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न ? स्वयं परमात्मस्वरूप का प्रकाश करना, आनन्द की दशा प्रगट करना, वह सुखरूप है। आहाहा!

यह ६४ (गाथा पूरी) हुई। ६५ (गाथा)।

गाथा - ६५

अथ निश्चयेन बन्धमोक्षी कर्म करोतीति प्रतिपादयति -

६५) बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणेइ।
अप्पा किंपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणेइ॥६५॥
बन्धमपि मोक्षमपि सकलं जीव जीवानां कर्म जनयति।
आत्मा किमपि करोति नैव निश्चय एवं भणति॥६५॥

बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहं कम्मु जणेइ बन्धमपि मोक्षमपि समस्तं हे जीव जीवानां कर्म कर्तृ जनयति अप्पा किंपि किंचि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउं भणेइ आत्मा किमपि न करोति बन्धमोक्षस्वरूपं निश्चय एवं भणति। तद्यथा। अनुपचारितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यबन्धं तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावबन्धं तथा नयद्वयेन द्रव्यभावमोक्षमपि यद्यपि जीवः करोति तथापि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेन शुद्धनिश्चयनयेन न करोत्येवं भणति। कोऽसौ। निश्चय इति। अत्र य एव शुद्धनिश्चयेन बन्धमोक्षौ न करोति स एव शुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः॥६५॥

आगे निश्चयनयकर बन्ध और मोक्ष कर्मजनित ही है, कर्म के योग से बन्ध और कर्म के वियोग से मोक्ष है, ऐसा कहते हैं -

कर्म जीव को बन्ध करें अरु मोक्ष जीव का वही करें।
निश्चयनय का कथन यही है आत्मा इनको नहीं करे॥६५॥

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव [बंधमपि] बंध को [मोक्षमपि] और मोक्ष को [सकलं] सबको [जीवानां] जीवों के [कर्म] कर्म ही [जनयति] करता है, [आत्मा] आत्मा [किमपि] कुछ भी [नैव करोति] नहीं करता, [निश्चयः] निश्चयनय [एवं] ऐसा [भणति] कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान् ने ऐसा कहा है।

भावार्थ :- अनादि काल की संबंधवाली अयथार्थस्वरूप अनुपचारितासद्भूत-व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मबंध और अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म के बंध को तथा दोनों नयों से द्रव्यकर्म भावकर्म की मुक्ति को यद्यपि जीव करता है, तो भी शुद्धपारिणामिक परमभाव के ग्रहण करनेवाले शुद्धनिश्चयनय से नहीं करता है, बंध और मोक्ष से रहित है, ऐसा भगवान् ने कहा है। यहाँ जो शुद्धनिश्चयनयकर बंध और मोक्ष का कर्ता नहीं, वही शुद्धात्मा आराधने योग्य है॥६५॥

गाथा - ६५ पर प्रवचन

निश्चयनयकर बन्ध और मोक्ष कर्मजनित ही है, कर्म के योग से बन्ध और कर्म के वियोग से मोक्ष है, ऐसा कहते हैं... एकदम द्रव्यस्वभाव, उसमें बन्धन है, वह पर्यायनय से है और मुक्ति है, वह पर्यायनय से है। अर्थात् कर्म से बन्धन और कर्म के छूटने से मुक्ति, ऐसा कहा। आहाहा! चढ़ती जायेगी गाथा, हों! ६८, ६८ तक ले जायेंगे।

(६५) बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणोइ ।

अप्पा किंपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणोइ ॥६५ ॥

आहाहा! निश्चय ऐसा कहता है। हे जीव बंध को और मोक्ष को... भावबन्ध और द्रव्यबन्ध, भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष, सबको जीवों के कर्म ही... आहाहा! करता है, आत्मा कुछ भी नहीं करता,... द्रव्यस्वभाव, वह क्या करे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्यायनय से बन्ध है और पर्यायनय से मुक्ति है। आहाहा! वस्तु को बन्ध-मोक्ष कहाँ है? आहाहा! मोक्ष को सबको जीवों के कर्म ही करता है,... पर्यायबुद्धि से होता है, वह कर्म से होता है, ऐसा कहा। और पर्याय में निर्मलता होती है, वह भी कर्म के अभावरूप हुई, इसलिए पर्याय में मुक्ति भी कर्म ने की, ऐसा कहा।

भगवान आत्मा एक आनन्द का दल है, चिद्रूप है। चिद्रूपरूप ज्ञान जिसका स्वरूप है। अकेला ज्ञानकन्द है। वह पर्याय में क्या करे? ऐसा कहते हैं। पर्याय में राग को और पर्याय में राग के अभाव को वह पर्यायनय से करे, कर्म करे—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्तवादी की यहाँ बात नहीं। निमित्तवादी को दोनों अच्छे, बात सच्ची। भाई! किस अपेक्षा से बात है? बापू! द्रव्यस्वभाव है, वह पर्याय को करता नहीं, राग की पर्याय को करता नहीं और मोक्ष की पर्याय को द्रव्य करता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! बन्ध-मोक्ष तो पर्याय में है, जीव में—द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! बन्ध और मोक्ष दोनों व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाल है, वह निश्चय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परमात्मा की लीला है, स्वयं की, हों! आहाहा! अज्ञानभाव से पर्याय में कर्म उत्पन्न करे और ज्ञानभाव से पर्याय में मुक्ति हो,

यह सब पर्याय में होता है, अर्थात् कर्म अशुद्धता करता है और कर्म छूटे तो मुक्ति हो, ऐसा अशुद्धनिश्चयनय का कथन है। आहाहा!

कुछ भी नहीं करता,... भगवान आत्मा कुछ नहीं करता। वस्तु है, वह क्या करे? आहाहा! उसकी—परमात्मा की दृष्टि करानी है। परमात्मस्वरूप भगवान है। अरे! भाई! यह बात बैठे, वह तो अलौकिक बातें हैं। बैठती है पर्याय में परन्तु वह पर्याय, द्रव्य यह मैं, (ऐसा मानती है)। परिपूर्ण भगवान बन्ध को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं, ऐसी वस्तु ध्रुव धातु। आहाहा! ऐसी दृष्टि कराने को बन्ध और मोक्ष कर्म करता है, पर्याय से होते हैं अर्थात् कर्म से होते हैं, ऐसा। भगवान द्रव्य से होता नहीं अर्थात् द्रव्य से होता नहीं। आहाहा! अरे! **निश्चयनय ऐसा कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है।**

भावार्थ:—अनादि काल की सम्बन्धवाली... भाषा देखो! अनादि काल की सम्बन्धवाली अयथार्थस्वरूप... अयथार्थस्वरूप अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से... अयथार्थस्वरूप, अभूतार्थस्वरूप। आहाहा! अनुपचरित अर्थात् कि कर्म और राग नजदीक है न ऐसे? अनुपचरित, परन्तु असद्भूत (अर्थात्) आत्मा में वह है नहीं। ऐसा व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मबन्ध और अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म के बन्ध को... दोनों लिये। अयथार्थस्वरूप, अभूतार्थस्वरूप व्यवहार। अनुपचरित नजदीक के सम्बन्ध से असद्भूतव्यवहारनय से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म बन्धन करे। आहाहा! **अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म के बन्ध को...** करे। आहाहा! वह जड़कर्म है न, इसलिए निमित्त से असद्भूतव्यवहार कहा। और यह भाव है, वह इसकी पर्याय में अशुद्ध निश्चय से है। समझ में आया? द्रव्यकर्म का करना तो अयथार्थ असद्भूत-व्यवहारनय से कहने में आता है। पर के साथ क्या? यह बँधता है तो उसके कारण से; छूटता है, उसके कारण से परन्तु निमित्त का नजदीक का सम्बन्ध देखकर उस नय से ऐसा कहा कि ज्ञानावरणीय कर्म को व्यवहारनय से करता है।

अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म के बन्ध को (करे)... आहाहा! भावकर्म का बन्ध अशुद्धनिश्चय से है। यह नय तो सरल है। पर की अपेक्षावाला नय, वह असद्भूत है और स्व के अशुद्धनय अपेक्षा से उसे अशुद्ध निश्चय स्वयं का है, स्वयं से होता है।

आहाहा! दोनों नयों से द्रव्यकर्म भावकर्म की मुक्ति को... आहाहा! द्रव्यकर्म भी अयथार्थ अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से छोड़ता है और राग को अशुद्ध निश्चय से छोड़ता है। आहाहा! समझ में आया? राग को अशुद्ध निश्चय से छोड़ता है और अशुद्ध व्यवहारनय से कर्म को छोड़ता है। आहाहा! इसे बहुत गम्भीर होना पड़ेगा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ता है। पर्याय में छूटते हैं न? द्रव्य में से कहाँ? मोक्ष की पर्याय यथार्थरूप से तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। उसका अशुद्ध निश्चय छूटता है, ऐसा कहते हैं। अशुद्ध निश्चय कहो या व्यवहार कहो। आहाहा!

अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म के बन्ध को तथा दोनों नयों से... असद्भूतव्यवहारनय से जीव द्रव्यकर्म को छोड़ता है, ऐसा। अशुद्ध निश्चयनय से भावकर्म को छोड़ता है। यद्यपि जीव इस प्रकार से पर्याय में करता है। आहाहा! पर्याय और द्रव्य दोनों एक नहीं, ऐसा कहते हैं। अशुद्ध निश्चय से राग को छोड़ता है, वह पर्याय में; द्रव्य में कुछ है नहीं। द्रव्यकर्म को बाँधना-छोड़ना, भावकर्म को बाँधना-छोड़ना, वस्तु स्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसा नय है, इन्द्रजाल नय। भगवान! तेरे नय इन्द्रजाल हैं। ओहोहो! इन्द्रजाल कहकर पर्याय में खड़ा होता है। आहाहा! वापस समेटते हैं परन्तु वह भी अशुद्धनय से, ऐसा कहते हैं। शुद्धस्वरूप त्रिकाल में वह कहाँ है? आहाहा!

अरे! इसे समय निकालना पड़ेगा, भाई! यह संसार के पाप के लिये पूरे दिन और रात धन्धे में पाप के पोटले बाँधता है। चौबीसों घण्टे दुकान में, उसे यह आत्मा का हित करना हो तो इसे निवृत्ति लेनी पड़ेगी। इसे समझने के लिये बाह्य से निवृत्ति हो तो इसे सुनने का मिले, तो इसे विचारने का मिले, सत्य क्या है, इसका निर्णय करने को मिले। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! अरे! चौरासी के भव, सिन्धु.. आहाहा! यह समुद्र में से जहाँ देखते थे न, यहाँ दादर में अठारह दिन रहे न समुद्र के किनारे। वहाँ समुद्र नजदीक। आहाहा! कहीं पानी का छोर नहीं मिलता। यह आमोदवाले के मकान में उतरे थे। आमोदवाले रमणीकभाई दिगम्बर है, आमोद, आमोद, अपने गुजरात के हैं। पाँच, छह करोड़ रुपये हैं, नरम व्यक्ति है। यहाँ विनती करने आये थे। महाराज! दादर

में हमारे घर में उतरना। वह ७० लाख का तो उसका एक मकान है। पाँच, छह करोड़ रुपये हैं, नाम व्यक्ति है। पूरे दिन बेचारा ध्यान रखकर, उसकी प्रवृत्ति कम करके साथ में रहते, दोनों भाई। ऐसे समुद्र नजदीक, हों! यहाँ तुरन्त... आहाहा!

यह पानी के दल, नीचे कितना पानी, ऐसे कितना पानी, एक-एक बूँद में असंख्य जीव, भाई! वे जीव उसी और उसी में मरें और उपजें। वह हो न लोड? पानी का लोड मरे, क्षण-क्षण में असंख्य मरे और वापस वहीं के वहीं वे उपजें और कोई अन्यत्र उपजे। आहाहा! पानी के किनारे ऐसे भटकते हैं न? पानी भटके उसमें मर जाये पानी के जीव और क्षण-क्षण में कितने मरे और वे फिर वहाँ उपजे, और वहाँ उपजे या अन्यत्र उपजे। आहाहा! यह भवसमुद्र-सागर और ऊपर देखें तो सैंकड़ों सफेद बगुले मछलियाँ पकड़ने को घूमते हों। बीस-बीस मील! किनारे से बीस मील तक बगुले मछलियाँ लेने जाते हैं, पकड़ने। तैरते-तैरते चले जायें। आहाहा! बीस मील अर्थात्? दस कोस। और दस कोस वापस आवे। वहाँ समुद्र में तो कुछ बैठने को मिले नहीं। आहाहा! कितनी मेहनत करे बेचारे! बगुले, बगुले समझते हो? सफेद। ऐसे दिखते हैं। कहा, भाई! यह बगुले कहाँ तक जाते हैं? भाई कहे, रमणीकभाई कहे कि बीस मील तक जाते हैं। यह तो वहाँ हमेशा रहनेवाले। बँगला है, सत्तर लाख का तो एक बँगला है। उसमें ऊपर उतरे थे। सेठ आये थे न? नहीं था वहाँ दादर?

मुमुक्षु : तबीयत अच्छी नहीं थी इसलिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं थी, हाँ, ठीक। वरना आये बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु : आपका आवास जिस जगह हो जाये, वह धन्य हो जाती है!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है, यह तो एक संसार ऐसे देखते... देखते... आहाहा! यह संसारसिन्धु समुद्र, उसमें पानी के जीवरूप से होना। आहाहा! और वह ऐसे गहरा कितना, ऐसे कितना, वह सब पानी जीव के दल भरे हैं, एकेन्द्रिय जीव। आहाहा! वह कब मनुष्य हो? उसे कब ऐसी बात सत्य सुनने में मिले? अरे! दुर्लभ वस्तु है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

इसमें अब और यहाँ आत्मा... आहाहा! अशुद्धनिश्चय से बन्ध और अशुद्धनिश्चय से मुक्ति। गजब है न? शुद्धनिश्चय में मुक्ति कैसी? कहते हैं। मुक्ति तो पर्याय हुई,

अशुद्ध से छूटना। ऐई! यह शुद्ध त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस शुद्धनिश्चय में तो भावबन्ध भी नहीं और बन्ध से छूटना उसमें नहीं। पर्याय में भावबन्ध और पर्याय में छूटना है। आहाहा! समझ में आया? जिसे-जिस क्षेत्र में हो, उस-उस क्षेत्र के आकार मानो आत्मा उस क्षेत्र का हो गया हो, ऐसा माने। वह क्षेत्र तो पर है। शरीर का क्षेत्र पर है। परन्तु वहाँ उपजे तो मानो उस क्षेत्र आकारवर्ती हो गया। आहाहा! यह सब अशुद्धनिश्चय से है, ऐसा कहे और छूटना भी अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटना कहाँ है? पर्याय में बन्ध और पर्याय में मोक्ष। आहाहा! द्रव्य से भिन्न। इसलिए द्रव्य में नहीं बन्ध और द्रव्य में नहीं मोक्ष। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अभाव होता है, वह शुद्धनय कहाँ आया वहाँ? उसका आश्रय द्रव्य का करना, वहाँ शुद्धनय है। पर्याय के आश्रय में जितनी बात, वह सब व्यवहारनय की है। अशुद्धनिश्चय कहो या व्यवहार कहो। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, निश्चय का नहीं। आहाहा! केवलज्ञान की प्राप्ति सद्भूतव्यवहार है। यह निश्चयनय में अपने ११ (वीं गाथा) में आया नहीं? व्यवहार सब अभूतार्थ होने से अभूत अर्थ को प्रगट करता है। आहाहा! अर्थात् क्या? ११वीं गाथा (समयसार) पहली शुरुआत की टीका। व्यवहार सब अभूतार्थ होने से अभूत अर्थ को प्रगट करता है, इसलिए वह हेय है। शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से शुद्ध अर्थ को प्रगट करता है, त्रिकाली को प्रगट करता है; इसलिए सब व्यवहार अभूतार्थ। केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहार का विषय, उसे यहाँ अभूतार्थ कहा।

मुमुक्षु : आश्रय करनेयोग्य है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आश्रय नहीं और जाननेयोग्य है। समझ में आया? यह तो भाई अन्तर में, अरे! इसने कभी देखने की मेहनत नहीं की अन्दर। प्रभु जहाँ विराजते हैं, स्वयं प्रभु परमात्मा! आहाहा! उसे देखने की इसने कभी दरकार नहीं की। आहाहा! यह दरकार नहीं की, वह भी अशुद्धनय से है और दरकार करे, वह भी (अशुद्धनय से है)। आहाहा!

आनन्द का नाथ जहाँ झूल रहा है। आहाहा! अकेला आनन्दकन्द रस, ज्ञायकरस, चैतन्यरस, ध्रुवधातु, चैतन्यरूप ध्रुवधातु। जिसने ध्रुवपना चैतन्य का धार रखा है। एकरूप त्रिकाल। आहाहा! उसकी इसने नजर की नहीं, इसलिए यह सब बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो नजर करना, वह भी कहते हैं कि अशुद्धनिश्चय है। आहाहा! यह वस्तु स्वयं वह है परन्तु उसके ऊपर पर्याय है न? आहाहा! वह व्यवहारनय है। निश्चयमोक्षमार्ग द्रव्य के लक्ष्य से होता है, वह व्यवहार है। आहाहा! त्रिकालपना जो चीज़ है, वह मोक्षमार्ग पर्याय में भी नहीं आती, राग के भाव में नहीं आती। राग में तो न आवे परन्तु उसके मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय में भी नहीं आती, क्योंकि वह व्यवहार है। आहाहा! यह तो जाननेयोग्य चीज़ है, बापू! चैतन्य हीरा को इसने परखा नहीं। इसलिए यह सब बात करते हैं। पर्याय से बन्ध और पर्याय से मुक्ति। रह गया भगवान भिन्न। समझ में आया? जिसकी कीमत करनेयोग्य है, वह (चीज़) रह गयी।

दोनों नयों से... असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यकर्म से छूटता है, अशुद्ध निश्चयनय से भावकर्म से छूटता है। आहाहा! है न? ऐसा करता है। **तो भी...** आहाहा! **शुद्धपारिणामिक परमभाव के ग्रहण करनेवाले...** आहाहा! शुद्धपारिणामिक त्रिकाली सहजस्वरूप है, पारिणामिक अर्थात् सहजस्वरूप। त्रिकाली स्वरूप है, जिसमें पर्याय का होना भी नहीं, पर्याय का जाना भी नहीं। आहाहा! पर्याय प्रवेश करती नहीं, पर्याय ऊपर-ऊपर तैरती है। आहाहा! ऐसा **शुद्धपारिणामिक परमभाव...** देखा? क्षायिकभाव आदि अपरमभाव है, अपरमभाव। आहाहा! यह भगवान परमभाव अस्ति शाश्वत् है न? परम स्वभावभाव का अस्तित्व शाश्वत् है। क्षायिकभाव का अस्तित्व भी सादि-अनन्त है। आहाहा! वह पर्याय है, नाशवान है, क्षायिकभाव की पर्याय भी नाशवान है, क्योंकि एक समय में होती है और दूसरे समय में नाश पाती है। भगवान अन्दर अविनाशी एकरूप है। आहाहा!

ऐसे **शुद्धपारिणामिक परमभाव के ग्रहण करनेवाले...** अर्थात् जाननेवाली। **शुद्धनिश्चयनय से नहीं करता है,...** शुद्धनिश्चयनय से राग को करता नहीं, बन्ध को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! वस्तु पर्याय को क्या करे? आहाहा! पर्याय पर्याय को करती है। देखो! यह सर्वज्ञ का पन्थ है। जिनवरदेव भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमार्थवचनिका में कहा नहीं? कहा था न? बताया था। परमार्थवचनिका

बनारसीदास (कृत)। द्रव्य है, वह निश्चय है और निश्चयमोक्षमार्ग साधना है, वह व्यवहार है। पर्याय है न? द्रव्य और पर्याय में द्रव्य निश्चय है और पर्याय व्यवहार है। चाहे तो मोक्ष की पर्याय हो और चाहे तो केवली की हो, परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा!

शुद्धपारिणामिक परमभाव... ऐसा शुद्ध क्यों लिया? कि पर्याय को भी पारिणामिक कहा जाता है। उदयभाव, उपशमभाव को (भी) पारिणामिक कहा जाता है परन्तु वह अशुद्ध पारिणामिक है। शुद्ध त्रिकाल है। यह द्रव्यसंग्रह में आता है, उसमें पारिणामिक के तीन भेद आते हैं न? अशुद्ध के। जीव भव्य, अभव्य है। यह तीन पड़े, वे भेद हो गये। द्रव्यसंग्रह में आता है, उसमें आता है। एक समय की मोक्ष की पर्याय, वह भी नाशवान है। दूसरे समय में तो व्यय हो जाता है। आहाहा! इसलिए वह पर्याय भी... यह श्रुतज्ञानी के लिये बात है, हों! जिसे हो गया, उसे कुछ नहीं। जिसे नय से जानना (होता है), उसके लिये यह है। नय है वह श्रुतज्ञानियों के लिये (भेद है)। मोक्ष हो गया, उसे व्यवहार नहीं। यह तो जो साधक है, श्रुतज्ञान के भेद नय से जानता है, उसे मोक्ष व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? उसे नय कहाँ हैं वहाँ? यह तो आता नहीं? शुद्धनय पूर्ण हो गया वहाँ। आता है न? समयसार में आस्रव अधिकार, आस्रव अधिकार। केवलज्ञान में शुद्धनय पूर्ण हो गया। अर्थात् कि आश्रय लेने का था, वह ले लिया, पूरा हो गया। आस्रव (अधिकार) में आता है। समयसार में तो अध्यात्म के... आहाहा! बड़ा गंज है!! अध्यात्म के निधान हैं।

बन्ध और मोक्ष से रहित है,... लो! परमशुद्धपारिणामिकभाव, वह तो बन्ध और मोक्ष से रहित है। आहाहा! ऐसा भगवान ने कहा है। लो! इसमें है न? वहाँ आया है न? 'कोऽसौ। निश्चय इति।' ऐसा। यह फिर भगवान का कहा हुआ है। इसका स्पष्टीकरण किया। शुद्ध उपादेय 'इति' भावार्थ है, ऐसा। आहाहा!

वही शुद्धात्मा आराधने योग्य है। लो! आराधना की पर्याय है, वह अशुद्धनय की है। आराधना है त्रिकाल को, वह शुद्ध है। आहाहा! परमात्मा परमदेव, उसकी आराधना करनी है। आहाहा! वह आराधना करने के योग्य है, लो! ६५वीं बहुत सरस गाथा है! अब ६८ में निश्चय का आयेगा। (समयसार) ३२० (गाथा में) आया है न? ३२० गाथा (की) जयसेनाचार्य की टीका में यह ६८वीं गाथा रखी है।

गाथा - ६५*१

अथ स्थलसंख्याबाह्यं प्रक्षेपकं कथयति -

६५) सो णत्थि त्ति पएसो चउरासी-जोणि-लक्ख-मज्झम्मि।
जिण वयणं ण लहंतो जत्थ ण डुलुडुल्लिओ जीवो॥६५*१॥
स नास्ति इति प्रदेशः चतुरशीतियोनिलक्षमध्ये।
जिनवचनं न लभमानः यत्र न भ्रमिताः जीवः॥६५*१॥

सो णत्थि त्ति पएसो स प्रदेशो नास्त्यत्र जगति। स किम्। चउरासीजोणिलक्खमज्झम्मि जिणवयणं ण लहंतो जत्थ ण डुलुडुल्लिओ जीवो चतुरशीतियोनिलक्षेषु मध्ये भूत्वा जिनवचनमलभमानो यत्र न भ्रमति जीव इति। तथाहि। भेदाभेदरत्नत्रयप्रतिपादकं जिनवचन-मलभमानः सन्नयं जीवोऽनादिकाले यत्र चतुरशीतियोनिलक्षेषु मध्ये भूत्वा न भ्रमितः सोऽत्र कोऽपि प्रदेशो नास्ति इति। अत्र यदेव भेदाभेदरत्नत्रयप्रतिपादकं जिनवचनमलभमानो भ्रमितो जीवस्तदेवोपादेयात्म-सुखप्रतिपादकत्वादुपादेयमिति तात्पर्यार्थः॥६५*१॥

आगे दोहा-सूत्रों की स्थल-संख्या से बाहर उक्तं च स्वरूप प्रक्षेपक को कहते हैं-

जिन वचनों से वञ्चित रह चौरासी लाख योनियों बीच।

ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ न जन्मा हो यह जीव॥६५*१॥

अन्वयार्थ :- [अत्र?] इस जगत में [स (कः अपि)] ऐसा कोई भी [प्रदेशः नास्ति] प्रदेश (स्थान) नहीं हैं, कि [यत्र] जिस जगह [चतुरशीतियोनिलक्षमध्ये] चौरासी लाख योनियों में होकर [जिनवचनं न लभमानः] जिन-वचन को नहीं प्राप्त करता हुआ [जीवः] यह जीव [न भ्रमितः] नहीं भटका।

भावार्थ :- इस जगत में कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहाँ पर यह जीव निश्चय व्यवहार रत्नत्रय को कहनेवाले जिन वचन को नहीं पाता हुआ अनादि काल से चौरासी लाख योनियों में होकर न घूमा हो, अर्थात् जिन वचन की प्रतीति न करने से सब जगह और सब योनियों में भ्रमण किया, जन्म-मरण किये। यहाँ यह तात्पर्य है, कि जिन-वचन के न पाने से यह जीव जगत् में भ्रमा, इसलिये जिन-वचन ही आराधने योग्य है॥६५*१॥

गाथा - ६५ *१ पर प्रवचन

आगे दोहा-सूत्रों की स्थूल-संख्या से बाहर उक्तं च स्वरूप प्रक्षेपक को कहते हैं... यह प्रक्षेप की गाथायें हैं। ६५, ६५ की दूसरी।

(६५) सो णत्थि त्ति पएसो चउरासी-जोणि-लक्ख-मज्झम्मि ।

जिण वयणं ण लहंतो जत्थ ण डुलुडुल्लिओ जीवो ॥६५ *१ ॥

आहाहा! ऐसा कोई भी प्रदेश (स्थान) नहीं है, ... चौदह ब्रह्माण्ड में कोई क्षेत्र खाली नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्मा और मरा न हो। असंख्य योजन का चौदह ब्रह्माण्ड, तिरछा असंख्य योजन... कोई एक प्रदेश भी खाली नहीं। आहाहा! कि जिस तरह चौरासी लाख योनियों में होकर जिनवचन को नहीं प्राप्त करता हुआ... आहाहा! जिनवचन का अर्थ? भगवान ने कहा हुआ भाव। आहाहा! उसे नहीं प्राप्त करता... आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली भाव, वह जिनवचन का अर्थ।

यह आया है न कलशटीका में? नहीं? 'उभयनयविरोधध्वंसिनी स्यात्पदांके' वहाँ अर्थ किया है कि भगवान ने शुद्ध आत्मा उपादेय कहा है, वह जिनवचन है। समझ में आया? कलशटीका। वहाँ विवाद है न? पाठ ऐसा है। 'उभयनयविरोधध्वंसिनी स्यात्पदांके जिनवचसि रमन्ते' अर्थात् व्यवहार और निश्चय में रमे। ऐसा अर्थ करते हैं उसमें। व्यवहारनय दो है न? दो नय है न? कितने ही पण्डित ऐसा अर्थ करते हैं। इसलिए कहते हैं कि 'जिनवचसि रमन्ते' अर्थात्? दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु, वह। जिनवचन में रमना अर्थात् जिनवचन में कही हुई शुद्ध उपादेय वस्तु उसे जिनवचन कहते हैं। आहाहा! है या नहीं? शिखरचन्दजी! इसमें सौ टका... ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

क्या कहा? 'जिनवचसि रमन्ते' है न शब्द? अर्थात् कि भाई! जिनवचन में रमना है? वचन तो जड़ है। पाठ तो यह है। तब कहते हैं कि जिनवचन में अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा कही है उपादेय शुद्ध जीव वस्तु, उसमें 'रमन्ते' सावधानरूप से रुचि, श्रद्धा प्रतीति करे। शुद्ध जीव वस्तु का प्रत्यक्षरूप से अनुभव करे, इसका नाम रुचि,

श्रद्धा, प्रतीति है। वचन पुद्गल है, उसकी रुचि करने से स्वरूप की प्राप्ति नहीं। इसलिए वचन द्वारा कही गयी है जो कोई उपादेय वस्तु, उसका अनुभव करने से फल प्राप्ति है। आहाहा! कैसा है जिनवचन? दो पक्षपात और परस्पर वेरभाव है—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—उसका हल करनेवाला है। आहाहा! उसमें से यह निकालते हैं, देखो! दो नय है, भगवान ने कहे हैं दोनों में रमना, परन्तु दोनों में किस प्रकार रमे? ऐसे रमे तो राग में रमे नहीं और राग में रमे तो इसमें रमे नहीं। इसलिए रमने की वस्तु एक ही कही। त्रिकाली वस्तु है, वह उपादेय है, जिनवचन में ऐसा कहा। टीकाकार ने... आहाहा! उसमें वहाँ पण्डित गड़बड़ करते हैं।

जिनवचन में रमना, ऐसा कहा तो वचन में रमना है? वचन तो वाणी है, जड़ है। उसमें कहा हुआ जो भाव, दिव्यध्वनि द्वारा कहा हुआ आत्मा त्रिकाली, वह दिव्यध्वनि द्वारा भगवान ने कहा है। पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण है, उसका आदर कर। आहाहा! उसे तू उपादेयरूप से जान, भाई! राग को नहीं, निमित्त को नहीं, पर्याय को नहीं, उपादेयरूप से... आहाहा! भगवन्तों का दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहना है। आहाहा! अरे! उसे न समझे और बाहर में यह किया करे, पूजा, दया, दान और भक्ति... वह तो सब भटकने के रास्ते हैं। समझ में आया? दया, दान, पूजा, व्रत, भक्ति... वीतराग के वचन में तो प्रभु ने यह कहा है। आहाहा! 'भूदत्थमस्सिदो खलु' यह भगवान ने कहा है। (समयसार) ११वीं गाथा। भूतार्थ के आश्रय से दृष्टि समकित होती है। भूतार्थ का आश्रय कर, त्रिकाल भगवान है, उसे उपादेय कर। आहाहा!

यह जीव नहीं भटका। जिनवचन को नहीं प्राप्त करके। अर्थात् यहाँ तो जिनवचन आया है न? इसलिए उस जिनवचन में कही हुई उपादेय वस्तु को नहीं प्राप्त करके। इस जगत में कोई ऐसा स्थान नहीं रहा, जहाँ पर यह जीव निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय को कहनेवाले जिनवचन को नहीं पाता हुआ... है न? पाठ में भी है, हों! भेदाभेदरत्नत्रय-प्रतिपादकं' ऐसा है न? कहा है। मूल तो निश्चय है, वहाँ व्यवहार होता है, ऐसा बतलाकर भेदाभेदरत्नत्रय का प्रतिपादक वचन कहा। समझ में आया? जहाँ निश्चय है, स्वभाव का आश्रय लेकर पड़ा है, उसे अभी राग बाकी है, उसे व्यवहार होता है, ऐसा सिद्ध करने के लिये भेदाभेदरत्नत्रय का वचन अप्राप्त करके, ऐसा कहा है।

समझ में आया? उसमें भी वह निश्चय है, उसे व्यवहार होता है, ऐसा सिद्ध करने को वीतराग की वाणी में भेदाभेदरत्नत्रय को कहा है, ऐसा कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आराधनेयोग्य एक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह कि आराधनेयोग्य एक है, परन्तु साथ में है, उसे आराधनेयोग्य का आरोप दिया गया है। आहाहा! जैसे दो मोक्षमार्ग कहे न? यह कथन है। उसी प्रकार दो आराधन है, यह कथन है। आराधने योग्य तो एक ही त्रिकाली वस्तु है, परन्तु साथ में निरूपण-कथन आता है, साथ में उस-उस भूमिका के योग्य का मन्द कषाय का राग होता है, उसे व्यवहार का आरोप करके आराधने को कहा है। आहाहा! आरोप से कहा है, यथार्थ से नहीं। आहाहा!

निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय को कहनेवाले जिनवचन को नहीं पाता हुआ अनादि काल से चौरासी लाख योनियों में होकर न घूमा हो... आहाहा! अरे रे! एकेन्द्रिय के चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में अनन्त बार जन्मा और मरा न हो, ऐसा कोई स्थान नहीं है। काल की आदि नहीं, ऐसे अनादि काल में इसने चौरासी (लाख) योनियों में एक-एक में अनन्त बार उपजकर.... आहाहा! खाली रखी नहीं। अर्थात् जिनवचन की प्रतीति न करने से सब जगह और सब योनियों में... आहाहा! भ्रमण किया, जन्म-मरण किये। भाई! आहाहा! वीतरागी भाव का आराधन नहीं किया। वीतरागी भाव ऐसा भगवान आत्मा, उसका आराधन नहीं किया, इसलिए उसे व्यवहार भी नहीं होता। जिसने यह आराधन किया, उसे व्यवहार होता है, इतना बतलाने के लिये दोनों का आराधन कहा है। आहाहा! वे कहे, दोनों से पूरा होता है। समन्तभद्र का कहा। बाह्य और अभ्यन्तर से... बापू! वह किस अपेक्षा से है? भाई! जहाँ निश्चय का अभ्यन्तर परिणाम है, उस काल में उसकी पूर्णदशा हुई नहीं, इसलिए उस काल में उसे राग होता है, उसे व्यवहार कहकर मोक्षमार्ग कहा है, आराधन करना कहा। समझ में आया? यह तो उपचार से है, निश्चय से है, वह यथार्थ से है। समझ में आया? यह किस नय का कथन है, ऐसा न जाने तो मुश्किल पड़े।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जिनवचन के न पाने से यह जीव जगत में भ्रमा, इसलिए

जिनवचन ही आराधने योग्य है। ६५ है न? देखो! टीका में तो ऐसा है। 'जीवस्तदेवो-पादेयात्मसुखप्रतिपादकत्वा' देखा? 'जीवस्तदेवोपादेयात्मसुखप्रतिपादकत्वादुपादेय' आत्मसुख की प्राप्ति, वह उपादेय है। वापस डाले दोनों वे, भाई! परन्तु टीका का अन्तिम योगफल यह है, ६५ में, ६५ का दूसरा। 'जीवस्तदेवोपादेयात्मसुखप्रतिपादकत्वादुपादेय' ऐसा है न? ऐसा लिखा है। सुख का कहनेवाला, ऐसा। आनन्द का कहनेवाला वचन वीतराग का है। अतीन्द्रिय आनन्द का कहनेवाला है, उसका आराधन किया नहीं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६६

अथात्मा पङ्गुवत् स्वयं न याति न चैति कर्मैव नयत्यानयति चेति कथयति -

६६) अप्पा पंगुह अणुहरइ अप्पु ण जाइ ण एइ।

भुवणत्तयहँ वि मज्झि जिय विहि आणइ विहि णेइ॥६६॥

आत्मा पङ्गोः अनुहरति आत्मा न याति न आयाति।

भुवनत्रयस्य अपि मध्ये जीव विधिः आनयति विधिः नयति॥६६॥

अप्पा पंगुह अणुहरइ अप्पु ण जाइ ण एइ आत्मा पङ्गोनुहरति सदृशो भवति ^१अयमात्मा न याति न चागच्छति। क्व। भुवणत्तयहँ वि मज्झि जिय विहि आणइ विहि णेइ भुवनत्रयस्यापि मध्ये हे जीव विधिरानयति विधिर्नयतीति। तद्यथा। ^१अयमात्मा शुद्धनिश्चयेनानन्तवीर्यत्वात् शुभाशुभकर्मरूपनिगलद्वयरहितोऽपि व्यवहारेण अनादिसंसारे स्वशुद्धात्मभावनाप्रतिबन्धकेन मोनवचनकायत्रयेणोपार्जितेन कर्मणा निर्मितेन पुण्यपापनिगलद्वयेन दृढतरं बद्धः सन् पङ्गुवद्भूत्वा स्वयं न याति न चागच्छति स एवात्मा परमात्मोपलम्भप्रतिपक्षभूतेन विधिशब्दवाच्येन कर्मणा भुवनत्रये नीयते तथैवानीयते चेति। अत्र वीतरागसदानन्दैकरूपा-त्सर्वप्रकारोपादेयभूतात्परमात्मनो यद्द्वितं शुभाशुभकर्मद्वयं तद्धेयमिति भावार्थः॥६६॥ इति कर्मशक्तिस्वरूपकथनमुख्यत्वेनाष्ट-मस्थस्ले सूत्राष्टकं गतम्।

आगे आत्मा पङ्गु (लंगड़े) की तरह आप न तो कहीं जाता है, और न आता है, कर्म ही इसको ले जाते हैं, और ले आते हैं, ऐसा कहते हैं -

पंगु समान आत्मा है यह स्वयं न आता जाता है।

तीन लोक में कर्म जीव को लाता अरु ले जाता है॥६६॥

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [आत्मा] यह आत्मा [पङ्गोः अनुहरति] पंगु के समान है, [आत्मा] आप [न यति] न कहीं जाता है, [न आयाति] न आता है [भुवनत्रयस्य अपि मध्ये] तीनों लोक में इस जीव को [विधिः] कर्म ही [नयति] ले जाता है, [विधिः] कर्म ही [आनयति] ले आता है।

भावार्थ :- यह आत्मा शुद्ध निश्चयनय से अनंत वीर्य (बल) का धारण करनेवाला

१. पाठान्तर : अयमात्मा = स्वयमात्मा

होने से शुभ-अशुभ कर्मरूप बंधन से रहित है, तो भी व्यवहारनय से इस अनादि संसार में निज शुद्धात्मा की भावना से विमुख जो मन, वचन, काय इन तीनों से उपार्जे कर्मोंकर उत्पन्न हुए पुण्य-पापरूप बंधनोंकर अच्छी तरह बँधा हुआ पंगु के समान आप ही न कहीं जाता है, न कहीं आता है। जैसे बंदीवान आपसे न कहीं जाता है और न कहीं आता है, चौकीदारोंकर ले जाया जाता है, और आता है, आप तो पंगु के समान है। वही आत्मा परमात्मा की प्राप्ति के रोकनेवाले चतुर्गतिरूप संसार के कारणस्वरूप कर्मोंकर तीन जगत् में गमन-आगमन करता है, एक गति से दूसरी गति में जाता है। यहाँ सारांश यह है, कि वीतराग परम आनंदरूप तथा सब तरह उपादेयरूप परमात्मा से (अपने स्वरूप से) भिन्न जो शुभ-अशुभ कर्म हैं, वे त्यागने योग्य हैं।।६६।।

वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण १३, शनिवार
दिनांक-२४-०७-१९७६, गाथा-६६-६७, प्रवचन-४३

परमात्मप्रकाश। ६६ गाथा। वह यहाँ ६६ लिखा गया है, वह भूल है। ६५ का पहला प्रक्षेप का है। अब ६६।

आगे आत्मा पंगु (लंगड़े) की तरह आप न तो कहीं जाता है, और न आता है,... ज्ञायकस्वरूप चैतन्य वस्तु, वह कहाँ जाये और कहाँ आवे ? वस्तु जो है चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव, वह तो पंगु की भाँति कहीं जाता नहीं, आता नहीं ? कर्म ही इसको ले जाते हैं,... अर्थात् कि आत्मा के स्वरूप से विरुद्ध भाव करके जो कर्म उपार्जित किये, उन कर्म के कारण आता-जाता है। वस्तु की स्थिति स्वयं अपने स्वभाव से कहीं जाता और आता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। ६६।

(६६) अप्या पंगुह अणुहरइ अप्पु ण जाइ ण एइ।

भुवणत्तयहँ वि मज्झि जिय विहि आणइ विहि णेइ ॥६६ ॥

दो शब्द रखे हैं। हे जीव... ऐसा करके। आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन वस्तु स्वभाव, उसका अस्तित्व तो ज्ञायकभावरूप है। वह ज्ञायकभाव कहाँ जाये और कहाँ आवे ? हे जीव! यह आत्मा पंगु के समान है,... इसमें से वे लोग यह निकालते हैं। कर्म के कारण जाता-आता है। देखो! निमित्त के कारण आता और जाता है, ऐसा होता

है या नहीं? यहाँ तो स्वभाव की बात है। बाकी तो गति में जाता है, वह अपनी योग्यता की पर्याय से जाता है। आहाहा! परन्तु यहाँ वह योग्यता की पर्याय इसका स्वभाव नहीं। स्वभाव तो चैतन्यमूर्ति ज्ञानरस है। उसकी अपेक्षा से वह ज्ञानरस आत्मा तत्त्व, वह कहीं जाता-आता नहीं। उसके स्वभाव से विरुद्ध भाव अज्ञानभाव से किये, उस भाव से कर्म हुए और उसके कारण जाना-आना होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी योग्यता स्वयं भूला, उससे हुए शुभाशुभभाव, उसके हुए कर्म, उससे होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

मक्खी का दृष्टान्त दिया है कहीं। मक्खी कहीं बैठी हो और फिर पाट ऐसे चले, मक्खी तो वहीं की वहीं है। मक्खी तो वहीं की वहीं है। घूमता है दूसरा। पाट ऊपर हो न ऐसे? चक्की। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा यहाँ तो ज्ञायकभावस्वरूप उसे आत्मा कहते हैं। अज्ञान से हुए शुभाशुभभाव, वह कहीं आत्मा नहीं। वह तो आस्रव है। उससे हुए कर्म, वह तो अजीव-जड़ है। नौ तत्त्व में वह अजीव भिन्न चीज़ है, आस्रव भिन्न चीज़ है। स्वभाव के भान बिना उपार्जित आस्रव, उससे हुए कर्म, उससे गति-आगति होती है, यह सिद्ध करना है। आहाहा! उसके कारण ऐसा नहीं कि कर्म के कारण आये और अपनी योग्यता से नहीं। यह यहाँ सिद्ध नहीं करना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं।

यहाँ तो अपनी जाति ज्ञायक चैतन्यबिम्ब प्रभु, वह स्वयं कहीं जावे-आवे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। उस स्वभाव को भूलकर जो हुए कर्म, वह कहीं आत्मा नहीं। भूल हुई आस्रव, वह कहीं आत्मा नहीं। भूल हुई, ऐसे जो परिणाम, वह आस्रव है, वह भी आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा गिनकर वह आत्मा पंगु है और कर्म के कारण यहाँ ले जाते हैं और आ जाता है। आहाहा! यह उसका स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : कर्म से जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह किस अपेक्षा से? कहा न यह। पहले बात की न कि

स्वरूप है, वह तो ज्ञायक चिदानन्द है। उसके भान बिना उपार्जित भाव आस्रव, वह अजीव है। वह ज्ञायकभाव वस्तु नहीं। और उसके उपार्जित भाव से बँधा हुआ कर्म, वह अजीव है। उसके कारण गति-आगति होती है; स्वभाव के कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! स्वभाव से विपरीत भाव को उत्पन्न किया, वह आत्मा नहीं। उसके कारण गति-आगति होती है, ऐसा सिद्ध करना है। आत्मा से गति होती (नहीं), वह तो ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द है। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश है न! आत्मा तो परमात्मस्वरूप है, परमस्वरूप है। उसे विपरीत भाव उसमें है, वह उसका कहाँ है? परन्तु किये उसने पर्याय में व्यवहारनय से। उससे हुए कर्म और उनसे गति-आगति, ज्ञायकभाव से गति-आगति नहीं, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : परिभ्रमण के लिये आत्मा पंगु है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंगु है इस अपेक्षा से। जाननेवाला-देखनेवाला स्वभाव भगवान, वह गति-आगति कहाँ करे? यह कहेंगे, देखो!

हे जीव! यह आत्मा पंगु के समान है, आप न कहीं जाता है, न आता है, तीनों लोक में इस जीव को कर्म ही ले जाता है,... उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। स्वभाव से विपरीत भाव को करके (भटकता है), तो विपरीत भाव वह कहीं जीव नहीं। समझ में आया? उसे कर्म कहो, भावकर्म कहो, उससे हुआ जड़कर्म सब एक है। वह सब अजीव है। आहाहा! अजीव से जाना-आना होता है। जीव के वास्तविक स्वभाव से उसका जाना-आना, उसके स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इसलिए योगफल में कहेंगे। शुभाशुभकर्म छोड़नेयोग्य है। अर्थात्? स्वभाव से विरुद्ध जो पुण्य-पाप के भाव छोड़नेयोग्य है। उनसे कर्म बँधे, वे छोड़नेयोग्य है। आदरनेयोग्य तो ज्ञायकस्वरूप प्रभु चैतन्यस्वभाव, शुद्ध चैतन्यघन, वह आदरनेयोग्य है। आहाहा! दृष्टि में उसे उपादेयरूप से माननेयोग्य है। शुभाशुभभाव वे स्वभाव से विरुद्ध भाव, उनसे हुआ कर्म, वह सब छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा! इसमें यह निकालते हैं कि कर्म के कारण ही भटकता है। ऐसा यहाँ नहीं है। कर्म बँधे हैं, विकारी भाव से। वह विकारी भाव, स्वभाव से विरुद्ध भाव स्वयं ने किया। उससे हुआ कर्म निमित्त से। कर्म के कारण जाना-आना होता है। वस्तु का स्वभाव नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। अमरचन्द्रभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म है इसलिए ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किस नय से कथन है, यह जानना चाहिए न! भगवान स्वयं कुछ अपराध करता है, वह इसकी चीज़ नहीं है। शुभाशुभभाव जो करता है, वह अपराध है, वह इसका स्वरूप नहीं, इसलिए स्वरूप स्वयं अपराध करता नहीं। स्वरूप को भूलनेवाला भाव, वह अपराध करता है। उस अपराध से कर्म होते हैं, उससे भटकता है और आता-जाता है। ऐसा। देवीलालजी! ऐसा है, भाई! अरे रे! **कर्म ही ले जाता है, कर्म ही ले आता है।**

भावार्थ:—यह आत्मा शुद्ध निश्चयनय से अनन्तवीर्य (बल) का धारण करनेवाला.... ओहो! इसका स्वरूप तो अनन्त वीर्य, अनन्त वीर्य, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—यह अनन्त चतुष्टय सम्पन्न आत्मा है। उसका बल अनन्त है स्वभाव का। ऐसे अनन्त बल को धारण करनेवाला होने से शुभ-अशुभ कर्मरूप बन्धन से रहित है,... इस कारण से यह शुभ-अशुभभाव और बन्धन से रहित है। वस्तु अबद्धस्पृष्ट है। आहाहा! अनन्त जिसका वीर्य है। आहाहा! अनन्त जिसका पुरुषार्थ पराक्रम स्वभाव है। ऐसा भगवान आत्मा शुभ-अशुभकर्मरूप बन्धन से रहित है,... इस अपेक्षा से तो वस्तुस्वभाव से तो शुभ-अशुभकर्म के बन्धन से रहित है।

अनन्त वीर्यस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है। समझ में आया? इसलिए कहा न (समयसार) १४-१५ गाथा। 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं' यह अबद्धस्पृष्ट है, उसे जो देखे, उसकी जो दृष्टि करे, उसने जैनशासन देखा। आता है न? 'पस्सदि जिणसासणं' आहाहा! 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अण्णयं णियदं। अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि।' 'अबद्धपुट्टं अण्णमविसेसं अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं...' जिसने भगवानस्वरूप प्रभु आत्मा को मुक्तस्वरूप देखा, अबद्धस्वरूप अर्थात् बन्ध से रहित अर्थात् वह तो मुक्तस्वरूप है। आहाहा! मुक्तस्वरूप भगवान जिसने दृष्टि में लिया, उसने जैनशासन सब देखा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। लोगों को अभी कठिन (पड़ती है)। शुभभाव... शुभभाव हाय-हाय ऐसा हो गया है मानो। शुभभाव कहो लोगों को, शुभभाव कहो, भाई! यह तो कर रहे हैं, भाई! उन्हें धर्म समझाना है या क्या? शुभभाव तो कर रहे हैं अनादि से। वह कहीं नयी

चीज़ नहीं है। उसे धर्म करना हो और समझाना हो तो वह पुण्य के, पाप के भाव से वस्तु रहित है। उसे देख, वह शुद्धभाव है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सभा को देखकर उपदेश देना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सभा क्या है यह ? द्रव्यानुयोग का अभ्यास सभा में करना, ऐसा कहा नहीं ? जहाँ मोक्ष का मार्ग है मुख्य। सभा में तो यह कहना। आता है ? मोक्षमार्गप्रकाशक में यह आता है। सभा में मुख्यरूप से द्रव्यानुयोग का उपदेश देना। क्योंकि उसमें मोक्ष के मार्ग का, मुख्य-मुख्य मार्ग का अधिकार वहाँ है। आहाहा! अरे.. !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का उपदेश करना न ? पुण्य-पाप तो कर रहा है। आहाहा !

यह कल वाँचन किया ? भाई! वाँचन नहीं किया होगा। वाँचन करनेयोग्य है। द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करता हो तो भी अन्दर उसे अहंकार मुमुक्षु को... ऐसा डाला है। उतारा डाला है सबको। और धर्म में इन लोगों ने द्वंद्व खड़ा किया है। चलता था कुछ। उपादान-निमित्त का कुछ नहीं था। पुण्य में धर्म मानते थे। परन्तु मानते थे, वह तो अज्ञान है। सुन न! इसलिए तो यहाँ धर्म की बात है। भगवान ने धर्म कहा है कि संसार के भाव को कहा है ? आहाहा ! और वह शुभभाव तो होता है। कहाँ नहीं होता ? पूजा, भक्ति, सुनना, इसमें नहीं होता ? होता है, उससे क्या ? आवे न। परन्तु अन्तर्दृष्टि में उसका निषेध होकर स्वभाव का स्वीकार नहीं करे, तब तक उसके जन्म-मरण नहीं मिलेंगे। यह बात है। यहाँ तो धर्म की बात है न ?

उन्होंने ऐसा कहा जैनशासन देखकर। शुभभाव देखे, उसने जैनशासन देखा, ऐसा नहीं कहा वहाँ। आहाहा ! जो शुभभाव—अशुभभावरहित और राग के एकत्व की बुद्धि के बन्ध से रहित... आहाहा ! ऐसा जो भगवान अबद्धस्पृष्ट है, नियत-निश्चय है, विशेषरहित सामान्य है। आहाहा ! और सुख-दुःख के परिणाम से रहित है। ऐसे आत्मा को जो देखे। भगवान तो ऐसा कहते हैं। तीर्थकर, केवली, सन्त तो ऐसा कहते हैं। ऐसे आत्मा को देखे, उसने जैनशासन देखा। शुभभाव को करे और देखे, उसने जैनशासन (देखा), ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : सब अनादि में तो शुभभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो करे। अभव्य को होता है। निगोद को होता है न। एकेन्द्रिय जीव को अनादि निगोद में पड़े हैं जीव, अभी त्रस हुए नहीं, उन्हें क्षण में शुभ और दूसरे क्षण में अशुभ, तीसरे में शुभ, चौथे में अशुभ निरन्तर चला करता है। क्योंकि चैतन्य की धारा की खबर नहीं और कर्मधारा शुभाशुभभाव की कायम चलती ही है। आहाहा! अभव्य निगोद में पड़ा, उसे भी शुभभाव होता है। आहाहा! यह क्या चीज है? भाई! यह तो धर्म की बात है। जैनधर्म। उसे जिसको समझना हो तो उसे यह (समझना चाहिए)। आहाहा! पुण्य-पाप के भावरहित और अबद्धस्पृष्टसहित अकेला सामान्य स्वभाव, उसे श्रद्धा में लेना पड़ेगा। क्योंकि उसका स्वरूप ऐसा है। अब उसमें पुण्य-पाप के परिणाम को देखना और करना, वह कहाँ है?

मुमुक्षु : शुद्धता में आवे तो भी शुभ-अशुभ होते ही हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह है कहाँ उसमें? वस्तु में....

इसीलिए तो यहाँ कहते हैं कि वस्तु स्वयं पंगु है। ज्ञायकभाव बद्धस्पृष्ट वस्तु, वह तो पंगु है। उससे विरुद्ध भाव शुभाशुभ किये, उससे कर्म हुआ, उसके कारण गति-आगति है। आहाहा! ऐसा करके उस शुभाशुभभाव को दृष्टि में से छुड़ाना चाहते हैं। और दृष्टि में पंगु जो आत्मा है, उसे दृष्टि में लेने के लिये (बात करते हैं)। ऐसी बात है परन्तु अब भारी कथन ऐसा लेखन किया है... चार लेख आये हैं ऐसे एक के बाद एक विरुद्ध के। उसमें इस समय तो बहुत दृष्टिफेर हो गयी, कहते हैं, अरे! प्रभु! भगवान... भगवान... भगवान।

यहाँ तो जैनधर्म कहना है न? तो जैनधर्म किसे कहा जाता है? कि जो पुण्य और पाप के भाव राग है, उससे भिन्न भगवान अरागी वस्तु है, उसकी दृष्टि-ज्ञान करना, उसका नाम जैनधर्म है। राग को जीते और अराग को प्रगट करे, उसका नाम जैनधर्म है। राग को रखे और करे, उसका नाम जैनधर्म है? ऐसी वस्तु, बापू! क्या हो? नहीं थी और बाहर आयी न तो लोगों को ऐसा लगा खलबलाहट। अपनी पण्डिताई की दिक्कत आती है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! आहाहा! जैनधर्म समझना है न? जैनधर्म करना है न?

तो जैनधर्म अर्थात् क्या ? भगवान वीतरागस्वरूपी प्रभु, उसकी पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर और यह वीतरागीस्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम जैनधर्म है। देवीलालजी !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, १४-१५ (गाथा, समयसार) । 'जो पस्सदि अप्पाणं' आहाहा! 'अपदेस-संतमज्झं पस्सदि जिणसासण सव्वं ॥' जिसने रागरहित भगवान आत्मा (देखा), वह रागरहित ही आत्मा है। राग है, वह तो आस्रव है। आस्रव है, वह तो अजैनपना है। उससे... भाई! यहाँ तो धर्म की बात है। धर्म करना हो और समझना हो तो यह बात है। शुभभाव तो होता है। और यहाँ तक लिया पुरुषार्थसिद्धि उपाय में, जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। अब क्या कहना ? हो, परन्तु है अपराध। जब तीर्थकरगोत्र का भाव भी अपराध है, वह जैनपना नहीं। आहाहा! जैनपना तो राग को जीते अर्थात् अरागी दृष्टि करे, उसे जैन कहा जाता है। वस्तु तो यह है।

यहाँ यह कहते हैं। अनन्त वीर्य का धारण करनेवाला प्रभु शुभ-अशुभ कर्मरूप बन्धन से रहित है,... आहाहा! वह तो अबद्धस्वरूप है। देखा! तो भी... ऐसा होने पर भी व्यवहारनय से... आहाहा! इस अनादि संसार में निज शुद्धात्मा की भावना से विमुख... लो! आहाहा! उससे उपार्जित कर्म, वे भटकाते हैं। यह तो अपना भाव ही भटकने का है। आहाहा! मध्यस्थ से देखना पड़ेगा न, बापू! ऐसा मानता है और अमुक ऐसा मानता है। ऐसा नहीं, सत्य क्या है ? आहाहा! निज शुद्धात्मा की.... वापस देखा ? भगवान सर्वज्ञ, वे भी नहीं। वे तो परद्रव्य हैं। निज शुद्धात्मा की भावना से... देखा! निज शुद्धात्मा के सन्मुख की एकाग्रता, वह जैनधर्म। उससे विमुख। आहाहा!

निज शुद्धात्मा वीतरागी मूर्ति प्रभु, उसकी भावना वीतरागी पर्याय... आहाहा! उससे विमुख मन, वचन, काय... आहाहा! देखा! इन तीनों से उपार्जे कर्मोकर... मन, वचन, काया चाहे तो शुभ-अशुभभाव हो। आहाहा! इन तीनों से उपार्जे कर्मोकर उत्पन्न हुए पुण्य-पापरूप बन्धनोंकर अच्छी तरह बँधा हुआ... आहाहा! पहले तो कहा, अनन्त वीर्य का धनी भगवान बन्धरहित है, ऐसा तो पहले कहा। आहाहा! परन्तु स्वभाव की भावना से विरुद्ध भाव, उससे उपार्जित कर्म, उससे बँधा हुआ, पुण्य-पापरूप बन्धनोंकर

अच्छी तरह बँधा हुआ... आहाहा! यह दोष तो निज भावना से विरुद्ध भाव का दोष कहा। समझ में आया? ज्ञायकभाव आनन्दस्वरूप प्रभु की भावना तो उसके सन्मुख की एकाग्रता, वह तो वीतरागता है। उसकी भावना से विमुख अर्थात् राग। मन, वचन, काया से उपार्जित कर्म। आहाहा!

उत्पन्न हुए पुण्य-पापरूप बँधनोंकर अच्छी तरह बँधा हुआ पंगु के समान आप ही न कहीं जाता है, न कहीं आता है। आहाहा! ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव में ही है। आहाहा! समझ में आया? मक्खी अँगुली पर बैठी हो, अँगुली ऐसे चले परन्तु वह तो है, वहाँ है। समझ में आया? वह हिलती-चलती नहीं है। उसके कारण गति हो, वह अलग वस्तु है।

मुमुक्षु : यहाँ से यहाँ आ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो स्वयं के कारण से है वहाँ। आहाहा! उसके कारण ऐसा होता है, ऐसा भी नहीं। वह तो निमित्त चीज़ है। उसे स्वयं के कारण ऐसे गति करता है, वह अपनी योग्यता है। क्रियावतीशक्ति के कारण ऐसा होता है। आहाहा!

चौकीदारोंकर ले जाया जाता है,... आहाहा! चौकीदार का दृष्टान्त दिया। ले जाया जाता है, आता है, आप तो पंगु के समान है। ज्ञायकस्वरूप तो ज्ञायकरूप ही है। आहाहा! पर्याय में विपरीत भाव हुए, सब हुआ भले, वस्तु तो वस्तुरूप से है। आहाहा! वस्तु, वह शुभाशुभभाव में आयी नहीं, तथा कर्म बँधे, उसमें आत्मा आया नहीं। समझ में आया? एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक चाहे जैसी पर्याय हुई परन्तु वस्तु तो वस्तुरूप से है, उसमें त्रिकाल।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्तु ऐसी है। बन्धन तो पर्याय में है। वस्तु को कहाँ बन्धन है। उसकी ही महिमा है। आहाहा!

कहा न? अनन्त वीर्य का धनी प्रभु, उसका माहात्म्य यह है। अनन्त ज्ञान का धनी, अनन्त आनन्द का साहेबा, उसका माहात्म्य तो यह है। परन्तु उसकी सन्मुख की भावना से छूटकर उस वस्तु की सन्मुख की भावना से विमुख। ऐसा कहा न? ऐसी

विकारी भावना में आकर। फिर चाहे तो पुण्य हो या पाप। वह पुण्य और पाप से कहा है न? देखो न! बँधनोंकर अच्छी तरह बँधा हुआ... पुण्य-पाप से बराबर बँध गया है। आहाहा! समझ में आया? है? टीका में है न? 'विधिशब्दवाच्येन कर्मणा भुवनत्रये' 'पुण्यपापनिगलद्वयेन दृढतरं बद्धः' यह अच्छी तरह... अच्छी तरह... का किया न सेठ ने। 'पुण्यपापनिगलद्वयेन दृढतरं बद्धः' आहाहा! बेड़ी में बँध गया, कहते हैं। अपनी उल्टी मान्यता से। आहाहा!

वही आत्मा परमात्मा की प्राप्ति के रोकनेवाले चतुर्गतिरूप संसार के कारणस्वरूप कर्मोंकर तीन जगत में गमन-आगमन करता है,... आहाहा! उपार्जित किये हैं तो उसने व्यवहार की उल्टी पर्याय से है न? परमार्थ से नहीं। व्यवहारनय की उल्टी पर्याय से, स्वभाव से विरुद्ध भाव से कर्म, उसके कारण भटकता है। आहाहा! अपने भाव से, हों! उल्टा किया है इसने? इस भाव के कारण भटकता है। स्वभाव ऐसा नहीं है।

ज्ञाता-दृष्टा, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द जिसका स्वरूप और स्वभाव, उसके गुण की मर्यादा की हद क्या? अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता—ऐसा जो भगवान, उसकी भावना से विमुख। आहाहा! यह स्वरूप है, उसकी भावना चाहिए। यह ऐसा है, उसकी अन्दर में एकाग्रता चाहिए। उसके बदले उससे विमुख राग में एकाग्रता (करता है)। ऐसा कहते हैं मूल तो। आहाहा! वह राग में एकाग्रता से बँधा और भटकता है। मूल तो उल्टी भावना, वही भटकने का कारण है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? शुभाशुभभाव, शुद्धता के स्वभाव के आश्रय बिना भगवान शुद्ध चैतन्य प्रभु की भावना बिना विरुद्ध भाव की भावना से भटकता है। अर्थात् उससे कर्म हुआ, कर्म से आया-जाया करता है। आहाहा! समझ में आया?

अब ऐसी बात कहे तो साधारण के लिये है। सुनाना तो समयसार तो ऐसा कहते हैं स्वयं। 'वोच्छामि समयपाहुडं' हे श्रोताओं! तुम्हारे ज्ञान में भी मैं सिद्धपने को स्थापित करता हूँ। मेरे ज्ञान में भी मैं सिद्धदशा को स्थापित करता हूँ। अर्थात् कि लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाये और तेरा भी लक्ष्य द्रव्य के ऊपर जाये और तुझे सुनाता हूँ। अमुक को सुनाता हूँ, ऐसा है? वहाँ तो यहाँ तक कहा है कि तीव्र अप्रतिबुद्ध जीव है, उसे मैं सुनाता हूँ। आता है? अत्यन्त अप्रतिबुद्ध। आहाहा! किस क्षण में वह सुलटा न पड़ सके, ऐसा कैसे मानना? समझ में आया? आहाहा!

भगवान (महावीर) का जीव सिंह के भव में ऐसे हिरण को मारने के लिये थाप मारता है। माँस... आहाहा! कहो, उसे उपदेश दिया, अरे! आत्मा! तू कौन है? तू तो दसवें भव में तीर्थकर होने के योग्य तेरा आत्मा है। तू तीर्थकर का जीव है। अरे यह! ऐसा जहाँ हुआ। अब वैसे तो माँस खाता है और हिरण मारता है। आहाहा! गुलाँट खा जाता है वहाँ। ऐसा नहीं कि इसके लिये पहले शुभभाव करे, बाद में... सुनता है, वहाँ शुभभाव हुआ ही। राग करे कि मुनि ने ऐसा कहा। अरे प्रभु! क्या है यह? तू कौन है? केवलियों ने मुझे कहा कि तू तो तीर्थकर का जीव है। दसवें भव में तीर्थकर है। आहाहा! उसकी योग्यता कैसी! मुनि की भाषा कैसी? उस जंगल में रहनेवाले सिंह को वह भाषा कैसे समझ में आ गयी? आहाहा! अब यह तो मुनि ऊपर से उतरते हैं। अब उनकी भाषा कैसी और समझ में आयी। यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ही ऐसा हो जाता है। आहाहा!

ऐसा कहते हैं, अरे आत्मा! भगवान ने केवली ने तो हमको कहा है कि तू तीर्थकर का जीव है। वह समझ गया भाषा से? यह बाद में। पहले तो सुना। फिर उसने विचार किया। ओहो! यह क्या कहते हैं? और ऐसी स्थिति में भी जातिस्मरण हुआ, ऐसा जिसे। अभी हिरण पर ऐसे हाथ है। आहाहा! अरे! यह आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निकृष्ट काल आत्मज्ञान के लिये नहीं। आत्मदर्शन के लिये निकृष्ट काल नहीं। यह नियमसार में कहा कि तुझसे दूसरा न हो सके, काल ऐसा है परन्तु सच्ची श्रद्धा तो बराबर कर। आता है? आहाहा! श्रद्धा में कुछ फेरफार न रख। यह श्रद्धा होगी तो तू तिर जायेगा। यह मार्ग हाथ में आ गया। समझ में आया? आहाहा! यह श्लोक आता है कुछ, परन्तु याद नहीं आया। ऐसा कि दर्शनमोह गलता जाये, वैसे-वैसे समकित की शुद्धि होती जाती है, ऐसा एक श्लोक आता है। किसमें होगा अब धवल में या? गाथा है। बहुत गाथायें होती हैं न, उसमें वाँचन किया है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में, इष्टोपदेश में कहीं ऐसी गाथा है।

जैसे स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थी श्रद्धा के बल को बढ़ाता जाता है, वैसे-वैसे दर्शनमोह गलता जाता है। एकदम पाता है वहाँ, ऐसा नहीं लिया। यह श्रद्धा के संस्कार

डालता जाता है न अन्दर! वह पूर्ण होगा, तब समकित होगा। ऐसी कहीं गाथा है। है, कहा है, व्याख्यान में कहा है कि देखो भाई! इसमें ऐसा कहा है। आचार्य, दिगम्बर आचार्यों ने तो गजब काम किये हैं! जैनधर्म को सहारा रखकर,... ऐसे मुनियों का भी विरह पड़ा।

ऐसा कि मुनिराज यहाँ देखो न, यह कहते हैं। योगीन्द्रदेव मुनिराज हैं, वे परमात्मप्रकाश (में कहते हैं), भगवान! तेरे स्वरूप में तो जाना-आना, ऐसी क्रिया है ही नहीं। ऐसी तेरी चीज़ ज्ञाता-दृष्टा के रस से भरपूर प्रभु, परन्तु उसकी भावना से विमुख भाव किया इसने स्वयं। उससे हुए कर्म, वह वास्तव में तो विमुख भाव के कारण गति-आगति होती है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा परमात्मा की प्राप्ति के रोकनेवाला चतुर्गतिरूप संसार के कारणस्वरूप कर्मोंकर तीन जगत में गमन-आगमन करता है,... आहाहा! एक गति से दूसरी गति में जाता है। यहाँ साराँश यह है कि... वीतराग परमानन्दरूप भगवान आत्मा वीतरागी परम आनन्दरूप प्रभु और सब तरह उपादेयरूप... कैसा है प्रभु—यह आत्मा? वीतरागी परमानन्दरूप। आहाहा! और सब तरह उपादेयरूप... सब प्रकार से यह भगवान उपादेय एक ही है। आहाहा! उसके स्वरूप से भिन्न (सब हेय है)। उपादेय तो यह है, कहते हैं। समझ में आया? उससे भिन्न जो शुभ-अशुभ कर्म हैं, वे त्यागनेयोग्य हैं। आहाहा! शुभाशुभभाव छोड़नेयोग्य है, उससे बँधा हुआ कर्म छोड़नेयोग्य है। सब एक है। पुण्य-पाप में लिया है न, कर्म छोड़नेयोग्य अर्थात् कर्म के फिर प्रकार लिये हैं। शुभाशुभभाव भी वह, बँधा हुआ कर्म आदि सब। वह छोड़नेयोग्य है। वे कहते हैं कि जड़ कर्म छोड़नेयोग्य कहा है, परन्तु जड़ कर्म के साथ वहाँ लिया है अमृतचन्द्राचार्य ने कि यह भावकर्म भी साथ में है, उसे छोड़नेयोग्य है। पुण्य-पाप अधिकार। आहाहा! अरे! यह रुचे नहीं। ऐसा कि जो भाव संसार में प्रवेश करावे, उस भाव का कैसे उसका उपदेश देना कि तू यह कर।

मुमुक्षु : वह तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आता है और अनादि से करता है। आहाहा!

यह उस दिन वहाँ गये थे न उसमें ? उस डाकू को बन्द किया था या नहीं ? डाकू को बन्द किया था न उस गाँव में ।

मुमुक्षु : बेगमगढ़ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेगमगढ़ कैसा ? बेगमगढ़ । वहाँ दो-तीन बार रास्ते में आया था न, उन लोगों ने डाकू को बन्द किया है वहाँ । बड़े डाकू हैं । वहाँ हमारे साथ ही आवास था । उन्हें खबर पड़ी उन डाकूओं को । बड़े-बड़े डाकू । बड़े डाकू । बड़े... सबको बन्द किया हुआ । उसे ...छूट दी । उसे आवश्यकता हो वहाँ जाना, परन्तु वापस यहाँ आना । फिर उसे खबर पड़ी कि महाराज यहाँ हैं । हमको महाराज के दर्शन करना है । जेल में । तीन बड़े डाकू थे महापापी । बड़े पाप किये हुए । अनेक लाखों रुपये इकट्ठे किये हुए । परन्तु उन्हें खबर पड़ी कि महाराज यहाँ आये हैं । हमारे रास्ते में आवे न तो दो-तीन-चार बार आ गया । निवास था बाहर । उसे खबर पड़ी कि यहाँ महाराज है । कहे, हमें दर्शन करना है । सब आये थे ।

कहा, बापू ! आत्मा है वह ऐसे.... गुनाह करता है । अज्ञानभाव से क्या न करे ? भाई ! आहाहा ! सब डाकू थे । तीन बड़े डाकू । २०-२५ व्यक्ति बड़े थे । सब बेचारों ने ... था । वह दिया था । आता है न ? फूलमाला । वह रेशम की नहीं आती ? रेशम की नहीं परन्तु वह कपास में रंगी हुई बढ़िया आती है न ? सूत की । वे वहाँ लाये थे । फिर रखी, हाथ में दे न !

मुमुक्षु : निवास पर आये थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, अन्दर मुझे जाना पड़ा । बाहर नहीं आवे । हम जेल में गये थे । साथ में (थी) जेल । सामने जेल थी । उसके दो दरवाजे होते हैं । एक दरवाजा खोलकर अन्दर बन्द करे । फिर ऐसे... सब आये थे । सुनते थे । बहुत प्रसन्न होते थे । बापू ! आत्मा है, भाई ! अपराध तो करता है जीव अनादि से, परन्तु उसे छोड़ना, यह बात है । आहाहा !

इसी प्रकार यहाँ जीव अपराध तो करता है, ऐसा कहते हैं । उसके फलरूप से भटकता है । समझ में आया ? कर्म भटकावे... कर्म भटकावे... अर्थात् ? कर्म बाँधने के

भाव किसके ? अपना भाव है अज्ञान। उससे विमुख होकर... आहाहा! जब भगवान आत्मा कर्ता-हर्ता बिना की चीज़ है, तब उससे विमुख हुए भाव, वह कर्ता-हर्ता का कारण है। भटकने का कारण है। समझ में आया ? वह निरपराध तो एक क्षण में हो सकता है। वस्तु निरपराधी पड़ी है पूरी। आहाहा! बाहर से खींचकर अन्तर में दृष्टि रखने की वस्तु, वह तो उसका अपना काम है।

अनन्त वीर्य का धनी है, अनन्त आनन्द का साहेबा है। आहाहा! अनन्त आनन्द जहाँ पड़ा है अन्दर, वहाँ उसे जाना है। वह तो उत्साह से जाये न ? आहाहा! उत्साह... उत्साह चाहिए। वीर्य में उत्साह चाहिए। स्वभाव में जाने-सन्मुख का होने का वीर्य का उत्साह चाहिए। पुरुषार्थहीन का यहाँ काम नहीं है। यहाँ कायर का काम नहीं है। आहाहा! 'हरि का मार्ग है शूरो का, कायर का नहीं काम।' इसी प्रकार प्रभु का मार्ग है शूरो का, वीर्यहीन का यहाँ काम नहीं। आहाहा! यह सब बाहर के कार्यकर्ता हैं। हमारे भाई नहीं अभी, नहीं ? गिरधरभाई नहीं। वे बड़े कार्यकर्ता हैं हमारे वढवाण के। यहाँ रहते हैं अभी। गिरधरभाई हैं, वढवाण के। वहाँ के सेठ हैं और कार्यकर्ता हैं। अभी यहाँ ही रहते हैं। अभी गये हैं। अरे! किसका कार्य ? बापू! स्वभाव की विमुखता के कार्य भी भटकने के हैं। तो पर के कार्य तो कहाँ कर सकता है ? समझ में आया ? आहाहा!

पंगु कहकर क्या वर्णन किया ? भगवान! तू राग की क्रिया बिना का अक्रिय स्वरूप है। वह भटके कैसे ? उसके अक्रियस्वरूप की भवाना से विरुद्ध भाव, जो छोड़नेयोग्य है... आहाहा! उसे करके भटकता है। अन्त में कहना कि वह छोड़नेयोग्य है। जिस भाव से भटकता है, कर्म बँधते हैं, वह भाव छोड़नेयोग्य है। देखो!

वीतराग परमानन्दरूप... आहाहा! अरे! इसके अस्तित्व को, ऐसा इसका अस्तित्व है, उसे स्वीकारे तो सही! आहाहा! परम वीतराग आनन्दरूप भगवान **सब तरह उपादेयरूप...** परमात्मा स्वयं है। आहाहा! उसकी ओर सन्मुख होना और उपादेय होना, वह सर्व ओर से एक ही बात उपादेय है। समझ में आया ? आहाहा! जिसमें पर्याय भी उपादेय नहीं तो शुभाशुभभाव की बात क्या करना! आहाहा! कहा न ? **सब तरह उपादेयरूप परमात्मा...** अपना त्रिकाली स्वरूप कहा। आहाहा! अरे! उत्साह तो दे... उत्साह तो दे। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वीतराग परमानन्दरूप, वह उपादेय है। उससे विरुद्ध भाव है, वह त्याज्य है, ऐसा कहते हैं। यह तो धर्म की बात है, भाई! धर्म में शुभभाव छोड़नेयोग्य है, ऐसा श्रद्धा में न ले तो स्वभाव-सन्मुख नहीं जा सकेगा। समझ में आया ? वहाँ और ऐसा कहा। निश्चय और व्यवहार दोनों उपादेय है। तथा निश्चय और व्यवहार दोनों हेय है। कहो। अरे! भगवान!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्जरा है ही नहीं उसमें। था ही नहीं। आहाहा! वह अशुद्धनय है। शुद्ध तो त्रिकाली एक ही उपादेय।

यहाँ कहा, एक ही उपादेय सर्व ओर से है। आहाहा! कोई आंशिक भी उपादेय नहीं, ऐसा नहीं। सर्वांश उपादेय है। वीतराग परमानन्दरूप और जो सब तरह उपादेयरूप... ऐसा परमात्मा श्रद्धा में लेनेयोग्य है। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब उसमें आ गया। शुद्ध में दोनों आ गये। ज्ञान भी आ गया और अनन्त गुण साथ में है न। यह ६६ (गाथा) हुई।

गाथा - ६७

अत ऊर्ध्वं भेदाभेदभावनामुख्यताय पृथक् पृथक् स्वतन्त्रसूत्रनवकं कथयति-
 ६७) अप्पा अप्पु जि परु जि परु अप्पा परु जि ण होइ।
 परु जि कयाइ वि अप्पु णवि णियमें पभणहिं जोई॥६७॥

आत्मा आत्मा एव परः एव परः आत्मा परः एव न भवति।
 पर एव कदाचिदपि आत्मा नैव नियमेन प्रभणन्ति योगिनः॥६७॥

अप्पा अप्पु जि परु जि परु अप्पा परु जि ण होइ आत्मात्मैव पर एव परः आत्मा पर
 एव न भवति। परु जि कयाइ वि अप्पु णवि णियमें पभणहिं जोइ पर एव कदाचिदप्यात्मा
 नैव भवति नियमेन निश्चयेन भणन्ति कथयन्ति। के कथयन्ति। परमयोगिन इति। तथाहि।
 शुद्धात्मा केवलज्ञानादिस्वभावः शुद्धात्मात्मैव परः कामक्रोधादिस्वभावः पर एव पूर्वोक्तः
 परमात्माभिधानं तदैकस्वस्वभावं त्यक्त्वा कामक्रोधादिरूपो न भवति। कामक्रोधादिरूपः पर
 क्वापि काले शुद्धात्मा न भवतीति परमयोगिनः कथयन्ति। अत्र मोक्षसुखादुपादेयभूतादभिन्नः
 कामक्रोधादिभ्यो भिन्नो यः शुद्धात्मा स एवोपादेय इति तात्पर्यार्थः॥६७॥

इस प्रकार कर्म की शक्ति के स्वरूप के कहने की मुख्यता से आठवें स्थल में
 आठ दोहे कहे। इससे आगे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना की मुख्यता से जुदे जुदे स्वतन्त्र
 नौ सूत्र कहते हैं -

आत्मा तो बस आत्मा ही है पर ही है पर, आत्म नहीं।

आत्मा भी पररूप नहीं हो कहते योगीराज सभी॥६७॥

अन्वयार्थ :- [आत्मा] निजवस्तु [आत्मा] एव आत्मा ही है, [परः] देहादि पदार्थ
 [परः एव] पर ही हैं, [आत्मा] आत्मा तो [परः न एव] परद्रव्य नहीं [भवति] होता, [पर
 एव] और परद्रव्य भी [कदाचिदपि] कभी आत्मा नैव आत्मा नहीं होता, ऐसा [नियमेन]
 निश्चयकर [योगिनः] योगीश्वर [प्रभणन्ति] कहते हैं।

भावार्थ :- शुद्धात्मा तो केवलज्ञानादि स्वभाव है, जड़रूप नहीं है, उपाधिरूप
 नहीं है, शुद्धात्मस्वरूप ही है। पर जो काम-क्रोधादि पर वस्तु भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्म

हैं, वे पर ही हैं, अपने नहीं है, जो यह आत्मा संसार-अवस्था में यद्यपि अशुद्धनिश्चयनयकर काम क्रोधादिरूप हो गया है, तो भी परमभाव के ग्राहक शुद्धनिश्चयनयकर अपने ज्ञानादि निजभाव को छोड़कर काम क्रोधादिरूप नहीं होता, अर्थात् निजभावरूप ही है। ये रागादि विभावपरिणाम उपाधिक हैं, पर के संबंध से हैं, निजभाव नहीं हैं, इसलिये आत्मा कभी इन रागादिरूप नहीं होता, ऐसा योगीश्वर कहते हैं। यहाँ उपादेयरूप मोक्ष-सुख (अतीन्द्रिय सुख) से तन्मय और काम-क्रोधादिक से भिन्न जो शुद्धात्मा है, वही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय है॥६७॥

गाथा - ६७ पर प्रवचन

६७। इस प्रकार कर्म की शक्ति के स्वरूप के कहने की मुख्यता से आठवें स्थल में आठ दोहे कहे। इससे आगे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना की मुख्यता से जुदे जुदे स्वतंत्र नौ सूत्र कहते हैं— भेदाभेदरत्नत्रय की भावना। है तो अभेदरत्नत्रय की भावना, परन्तु साथ में राग है, उसे आरोपित करके उसकी आराधना—भावना की मुख्यता से कहा जाता है। समझ में आया? भेदरत्नत्रय तो राग है। परन्तु यहाँ निश्चय का अभेदरत्नत्रय जो है, उसके साथ ऐसा राग है, इसलिए उसे सहचर गिनकर, आराधना का आरोप दिया है। वास्तव में उसका आराधना नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदाभेद... भेद है। यह तो रत्नत्रय की निरूपण की दशा है। रत्नत्रय तो अभेद हुआ एक ही है। परन्तु मोक्षमार्ग, उसके आश्रय से हुआ निश्चय एक ही है। परन्तु मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग अर्थात् पर्याय, निर्मल पर्याय मोक्षमार्ग है, उसके साथ राग मोक्षमार्ग है, यह आरोपित कथन है। ज्ञान करने के लिये। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना... भाषा ऐसी आती है। मोक्षमार्ग दो कहा न? इसी

प्रकार यह दो। ...यह दो कहा। दो नहीं। वास्तव में तो एक ही है। दूसरे को निमित्त सहचर देखकर आरोप करके कहा है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! अकेली गाथा पकड़े परन्तु किस नय की अपेक्षा है, उसे न समझे तब तो विरोध आवे। आहाहा! अरे! परमात्मस्वरूप को प्राप्त करने के काल में ऐसे आग्रह करे, वे नहीं चलते। प्रभु! तुझे नुकसान करेंगे। आहाहा! दो कहे हैं न? परन्तु इसका अर्थ क्या? मोक्षमार्ग दो कहे नहीं? तथापि एक मोक्षमार्ग है, वह सच्चा है और दूसरा उपचारिक कथन किया है। निरूपण दो प्रकार से है। इसी प्रकार यह निरूपण दो प्रकार से है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आषाढ कृष्ण १४, रविवार
दिनांक-२५-०७-१९७६, गाथा-६७-६८, प्रवचन-४४

शुद्धात्मा तो केवलज्ञानादि स्वभाव है,... आत्मा त्रिकाली शुद्ध आत्मा वस्तु, वह तो अकेले ज्ञान, आनन्द आदि स्वभावस्वरूप है। केवल अर्थात् अकेला, केवल (—ज्ञान की) पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, ऐसा शुद्धात्मा उसका स्वभाव है। जड़रूप नहीं है,... वह शरीररूप नहीं, रागरूप नहीं। वह आत्मा उपादेय—दृष्टि में ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा कहना है। ऐसी बात है। उपाधिरूप नहीं... भगवान् आत्मा का द्रव्यस्वभाव, नित्यस्वभाव, वह ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप स्वभाव है। वह कभी रागरूप हुआ नहीं। शरीररूप तो हुआ नहीं परन्तु रागरूप वह वस्तु हुई नहीं। आहाहा!

उपाधिरूप नहीं है,... चैतन्यबिम्ब प्रभु जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो पर्याय में उपादेय करनेयोग्य, ऐसा जो शुद्धात्मा, वह रागरूप हुआ नहीं। शुद्धात्मस्वरूप ही है। वह तो शुद्ध चैतन्यघन निर्मलानन्द प्रभु है। पर जो काम-क्रोधादि परवस्तु भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म हैं, वे पर ही हैं,... इच्छा, क्रोध, राग, द्वेष, दया, दान के भाव, जड़कर्म और शरीर, वे सब पर हैं। अपने नहीं हैं,... वे स्वरूप में नहीं, स्वरूप के नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो यह आत्मा... तब कहते हैं न कि है पर्याय में? संसार-अवस्था में यद्यपि अशुद्धनिश्चयनकर... पर्याय में अशुद्धता है, वह अशुद्धनिश्चयनकर काम-क्रोधादिरूप हो गया है,... पर्याय में अशुद्धनिश्चय से, शुद्धनिश्चय तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! वही आदरणीय है, परन्तु उसकी पर्याय में अशुद्धनिश्चय से काम—क्रोधादिरूप हुए हैं। तो भी परमभाव के ग्राहक शुद्धनिश्चयनकर... आहाहा! तो भी त्रिकाली उसका स्वभाव जो है, उस दृष्टि से उसे देखो तो... परमभाव ग्राहक (अर्थात्) त्रिकाली स्वभाव को जाननेवाला, ग्रहण करनेवाला ऐसा जो शुद्धनिश्चयनकर... है? अपने ज्ञानादि एक स्वभाव को छोड़कर... एक शब्द रह गया है अन्दर। संस्कृत में है। शुद्धनिश्चयकर अपने ज्ञानादि एक निजस्वभाव... एक निजस्वभाव ऐसा। एकरूप जो त्रिकाल स्वभाव

है। समझ में आया? आहाहा! चिद्घन प्रभु ज्ञानस्वभावी वस्तु, वह शुद्धनिश्चय से उसे देखें तो एक स्वभावी ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है। उसने कभी उसके निज स्वभाव को छोड़ा नहीं। आहाहा!

वस्तु है, उसका जो ज्ञान-आनन्द आदि स्वभाव (है, वह) शुद्धनिश्चय से देखो तो उसने कभी छोड़ा नहीं और राग को तथा काम-क्रोध को या विकल्प को कभी ग्रहण नहीं किया। आहाहा! ऐसी बात है। काम-क्रोधादिरूप नहीं होता, अर्थात् निजभावरूप ही है। शुद्धचैतन्य की दृष्टि से देखें तो निजभावरूप शुद्ध एकरूप त्रिकाल स्वभाव है और वही उपादेय है। पर्याय में उपादेय (अर्थात्) उसके सन्मुख होकर उसका ही आदर करनेयोग्य है। आहाहा! यह धर्म की रीति है। यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय जो है, उसरूप निजस्वभाव कभी हुआ ही नहीं। क्या है?

मुमुक्षु : काम-क्रोधादि....

पूज्य गुरुदेवश्री : काम-क्रोधादि विकार है। विकार आया न? व्यवहाररत्नत्रय विकार है, शुभराग है। यद्यपि पर्याय में अशुद्ध निश्चय से हो, परन्तु वह तो पर्याय में अशुद्ध है, वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। रागादिरूप नहीं होता। है? यह आया या नहीं?

निजभावरूप ही है। ये रागादि विभावपरिणाम उपाधिक हैं,... क्या आया? आया या नहीं यह? आहाहा! भगवान त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु राग की उपाधि से रहित है, स्वभाव के एकरूप स्वभाव से भरपूर वह तत्त्व है। वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, बापू! लोगों ने बाहर से मानकर मनाया है, वह वीतरागमार्ग नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : माना मनाया है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मनाया है। राग से धर्म और पुण्य से-व्यवहार से और शुभराग से (धर्म है)। यही विवाद उठे हैं न सबके? शुभ उपयोग है, वही अभी करनेयोग्य है। आहाहा! भाई! यह तो अनन्त काल से करता है। जो स्वभाव में नहीं, ऐसी पर्याय में शुभभाव तो अशुद्धनिश्चय से अनादि से कर रहा है, वह कोई नयी चीज़ नहीं। नयी तो उस शुद्धभाव से शुभ से भिन्न भगवान पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति प्रभु है, उसे उपादेय करना, इसका नाम धर्म है।

मुमुक्षु : वीतराग मूर्ति तो वहाँ (मन्दिर में) है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ है। वह तो स्थापनानिक्षेप है। यह भावनिक्षेप है। वह तो स्थापना है। भावस्वरूप यहाँ है। वीतरागस्वरूपी शुद्धात्मा अकेला ज्ञानस्वरूप, वीतरागस्वरूप, अकषायस्वरूप ऐसा भगवान नित्यानन्द प्रभु पर्याय में उपादेय है। वह तो है, वह है। आहाहा! उसकी ओर की दृष्टि करना, वही उसका उपादेयपना है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई!

ऐसा योगीश्वर कहते हैं। मुनि ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली स्वभाव भगवान आत्मा, वह कभी रागरूप, व्यवहाररूप हुआ ही नहीं और पर्याय में हुआ है, वह तो अशुद्धनय का विषय है अर्थात् कि व्यवहार का विषय है। वह वस्तु नहीं। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव नहीं, परन्तु उसके भाव बिना का स्वभाव जिसमें है, उसका आश्रय करने से जन्म-मरण मिटें, ऐसा है। यह चौरासी के अवतार, एक-एक भव के दुःख का वर्णन शास्त्र में (आता है)। निगोद के जीव एक श्वास में अठारह भव करते हैं। उस दुःख की कितनी पराकाष्ठा! आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय लिया नहीं, उसे स्वीकार किया नहीं कि मैं पूर्णानन्दस्वरूप हूँ। उसके कारण अशुद्ध परिणति में पुण्य और पाप के भाव में रुककर इसने परिभ्रमण किया। समझ में आया?

यहाँ उपादेयरूप मोक्ष-सुख से तन्मय... अर्थात्? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख से अभिन्न है। मूल शब्द अभिन्न है। इसका अर्थ तन्मय किया है। टीका में 'मोक्षसुखादुपादेयभूतादभिन्नः' भाई! उन रागादि को भिन्न कहना है न, इसलिए मोक्ष के सुख को अभिन्न कहना है। संस्कृत में है। नीचे से संस्कृत की दूसरी लाईन। आहाहा! अर्थात् 'मोक्षसुखादुपादेयभूतादभिन्नः' आहाहा! ऐसा शुद्धात्मा... आहाहा! जो परमानन्द का नाथ प्रभु मोक्ष के सुख से वह अभिन्न है और काम-क्रोधादि के व्यवहार विकल्प से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

कल पत्र आया था। किसी का है कि मैं सुनने आया था परन्तु मुझे कुछ समझ में नहीं आया।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि जैसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बोले थे कि तुम हँसते-हँसते कुछ बात करते थे, इससे मानो दिव्यध्वनि हो, ऐसा लगता था। परन्तु क्या कहते हैं, (वह समझ में नहीं आया)। बात तो ऐसी लगती थी कि मानो हँसते कहते हुए दिव्यध्वनि आती हो, ऐसा लिखा है। कल पत्र आया न? कल पढ़ा। परन्तु कुछ समझा नहीं, मुझे अब समझने की जिज्ञासा है। पुस्तकें मुफ्त भेजो, ऐसा लिखा है। आहाहा!

प्रभु! तू अनादि से अनजाना रहा। शुद्धचैतन्य वस्तु है, वह अनादि से अनजानी रही और शुभाशुभभाव का जानपने का परिचय किया। आहाहा! वह शुभभाव कहीं नयी चीज़ नहीं है। ऐसा कहते हैं कि अब तुम शुभभाव का कुछ कहो, सुधार करो। शुभभाव को हेय बताते हो, इसे सुधारो, ऐसा कहता है। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : व्यवहाररत्नत्रय है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अनादि से है, वह कहाँ नयी चीज़ है? वह तो शुद्धचैतन्य के स्वभाव की भान दशा हो, उसे व्यवहाररत्नत्रय का आरोप शुभभाव में दिया जाता है। लो, इतना आवे। जिसे भगवान आत्मा वीतराग आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसे जिसने उपादेय करके निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ है, उसे जो रागादि हैं, उसे व्यवहाररत्नत्रय और परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा आरोप करके कहा जाता है। समझ में आया? है, वस्तु नहीं, परन्तु बन्ध का कारण है। उसे आरोप से मोक्ष का कारण कहा। यह कहा न? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! इसने कभी निज स्वभाव का अवलम्बन लिया नहीं। यह राग के सहारे—आलम्बन लेकर पड़ा है, उसमें इसे मजा आता है, यह भटकने का रास्ता है। आहाहा! आरोपित वह वस्तु है। कहा न निश्चयसम्यग्दर्शन।

मुमुक्षु : लोग भ्रम में पड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग भ्रम में पड़ जाये वे इसे... न समझे, वे तो भ्रम में पड़े ही हैं। आत्मा का शुद्धचैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा उपादेय करके निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प जो है, उसे सहज निमित्तरूप से देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहार से उसे समकित कहा है। इतने शब्द हैं। है? मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवें अध्याय में (आता है)। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधा कहा न, बन्ध का ही कारण कहा है। परन्तु यहाँ यह है, उसका आरोप देकर सहचर—साथ में देखकर आरोप से व्यवहार कहा है। वह नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में? आहाहा! बहुत सरस बात। और उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि यह लक्षण जो बाँधता हूँ, वह निश्चय (और) सर्व व्यवहार का लक्षण सर्वत्र जानना। आहाहा! जहाँ कहीं राग को साधकरूप से कहा हो, वहाँ भी उसे उपचार से, व्यवहार से, आरोप से साधन कहा है। वास्तविक साधन तो भगवान आत्मा राग से भिन्न पड़कर अनुभव की क्रिया करे, प्रज्ञाछैनी से छेदकर राग से भिन्न करे, वह साधन है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव की रीति बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : रीति यह है। आहाहा! और जिसमें आनन्द आवे, उसे साधकपना कहते हैं। राग आवे उसमें तो दुःख आता है। व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह तो दुःख है। दुःख को मोक्ष के उपाय में आरोप से कथन (किया है)। यह तो आरोप से कथन है, निरूपण की शैली है, यह वस्तुस्थिति नहीं है। आहाहा!

अरे! भगवान! ऐसा समय मिला, भाई! जगत को ऐसे देखते हैं। आहाहा! कितने जीव पड़े हैं थर के थर (झुण्ड के झुण्ड), यह नीम देखो! ओहोहो! पत्ते के एक टुकड़े में असंख्य जीव जमकर पड़े हैं। बेचारे कब मनुष्य हों? तिरने के उपाय को सुनने का कब मिले इन्हें? आहाहा! ऐसी दुर्लभ चीज़ है, उसे समझ ले, कहते हैं। आहाहा! दुर्लभ कहा है। यह ८५वीं गाथा में कल आया था न? 'कालु लहेविणु जोड़या' उसके अर्थ में था एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय और त्रीन्द्रिय करते... करते... करते... करते... ऐसा लिया है, हों! ८५ नहीं? ८५ है न? कल याद नहीं आयी थी, वह याद आयी थी न, वह।

'कालु लहेविणु जोड़या' ८५ (गाथा)। इस काल की लब्धि को पाकर हे योगी! 'जिमु जिमु मोहु गलेइ तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमें अप्पु मुणेइ' आहाहा! यह फिर उसमें बहुत स्पष्टीकरण किया है। एकेन्द्रिय से विकलत्रय... दुर्लभ है, विकलत्रय से पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय से सैनी पर्याप्त, उससे मनुष्य होना कठिन है। मनुष्य में भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शुद्धात्मा का उपदेश आदि मिलना... आहाहा! जैन में जन्म हो और वापस शुद्धात्मा का उपदेश मिलना...! आहाहा! दुर्लभ सामग्री मिलने पर भी

जैन-शास्त्रोक्त मार्ग से मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते हुए, जैसा-जैसा मोह क्षीण होता जाता है, वैसा-वैसा शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, ऐसा रुचिररूप सम्यक्त्व होता है। आहाहा!

कितना दुर्लभ है। अरे! इसे भूल न जा, भाई! बाहर के रस के प्रेम में काल चला जायेगा तो वह तो जो अनन्त काल किया है, उसमें का है। भगवान अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु है न! आनन्द की निधि है, ज्ञान की निधि है, श्रद्धा की निधि है, शान्ति की निधि है। आहाहा! ईश्वर-शक्तियों की वह निधि है। उसे तू साधारण में न खपा डाल, भाई! उस शुभ उपयोग से और उसमें से होगा। भाई! यह तो स्वभाव से विरुद्ध भाव है, विरुद्ध भाव से स्वभावभाव होगा ?

मुमुक्षु : अशुभ से तो बचेगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बचे, वह कौन ? जो समकिति हो वह। जिसे शुद्ध चैतन्य का भान हुआ है, उसे शुभराग में अशुभ से बचना होता है, मिथ्यादृष्टि को तो पूरी दृष्टि ही वहाँ पड़ी है, वह अशुभ से कहाँ बचता है ? भाई! देवीलालजी! भगवान! ऐसा तेरा स्वरूप है न ? उसे पामर न डाल। आहाहा! भाई! उसमें तुझे नुकसान है। दुनिया प्रसन्न होगी और तू प्रसन्न होगा। आहाहा! शुभभाव होता है न... शुभभाव होता है न... भाई! वह शुभभाव तो निगोद में भी अनन्त बार किये हैं। निगोद में भी शुभभाव अनन्त बार किया है। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान शुभभाव से पीछे... यह यहाँ कहा महाप्रभु स्थित है न! आहाहा! वह स्वयं कभी शुभराग (रूप) हुआ ही नहीं। आहाहा! और राग, वह शुद्धात्मारूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्धात्मा की पर्यायबुद्धि में राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अब बाद में आयेगा। यहाँ तो अभी यहाँ ६७ तक लिया। अब ६८ (गाथा में) आगे आयेगा, आगे बढ़ती जाती है न गाथा! आहाहा!

उपादेयरूप मोक्ष-सुख से तन्मय... अभिन्न। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से तन्मय है। अन्दर स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द से वह अभिन्न है। आहाहा! काम-क्रोधादिक से भिन्न है जो शुद्धात्मा है, वही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय है। लो! अब आगे बढ़कर जाता है। यह ६८ गाथा तो बहुत ऊँची है। (समयसार) ३२० गाथा की

टीका में भी यह डाला है, जयसेनाचार्य की टीका में। ३२० (गाथा) अभी मुम्बई में वाँचन हो गयी है। हजारों (लोग), दस-दस हजार लोग, पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग। ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की (टीका है)। ऐसी यह गाथा है। अब तो लोग सुनते हैं, सुनते हैं। बापू! सुनो, भाई! अरे! भगवान! पक्ष को छोड़ दो। अमुक ऐसा कहेंगे और ढींकणा ऐसा (कहेंगे, वह) रहने दे, बापू! तीन लोक के नाथ जिनवरदेव क्या कहते हैं, उसे देख न तू! आहाहा!

यह परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली शुद्ध आत्मा जो है, वह रागरूप हुआ नहीं। आहाहा! और राग है, वह शुद्धात्मारूप हुआ नहीं। यहाँ तक ६७ वीं गाथा से बात की। अब ६८ में आगे ले जाते हैं। अलौकिक बात है, बापू! और मौके से रविवार है। हमारे यह भावनगरवाले आये हैं न, मनसुखभाई और जयन्तीभाई।

मुमुक्षु : आपके भावनगरवाले हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगरवाले, वे हमारे हैं। जो भावनगरवाले हों, वे सब हैं। यह तो वे लोग रविवार को आते हैं न, रविवार को आते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु हम आपके हैं या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ किसी के नहीं। आहाहा! ६८। भाई! यह समझ में आता है? अशुद्धनय! भाई ने पूछा।

शुद्धनिश्चय, वह वस्तु। वस्तु को शुद्धनिश्चय कहा, परम शुद्धनिश्चय। त्रिकाल। और पर्याय में अशुद्धता... अरे! शुद्धता हो तो भी इसे अशुद्धनय कहते हैं। पर्याय में शुद्धता... ४७ नय आते हैं न? प्रवचनसार। ४६, ४७ अन्तिम (नय)। मिट्टी को उसके बर्तनवाली दशा से देखो तो वह अशुद्धनय है। इसी प्रकार भगवान आत्मा को पर्यायनय से देखना (तो) वह अशुद्ध है। समझ में आया? मिट्टी को मिट्टीरूप से अकेली देखना, वह यह शुद्ध है। इसी प्रकार भगवान को उसकी निर्मल पर्याय से भी न देखना (और) अकेले द्रव्य को देखना, वह शुद्ध है। (प्रवचनसार, परिशिष्ट में) ४६, ४७ अशुद्धनय और शुद्धनय है न? आहाहा! अरे! दिगम्बर सन्तों ने तो जगत को निहाल कर दिया है। आहाहा! केवलज्ञान के मार्गानुसारी! अकेला माल परोसा है। ऐसी बात कहीं नहीं है, भाई! समझ में आया? आगे ले जाते हैं।

गाथा - ६८

अथ शुद्धनिश्चयेननोत्पत्तिं मरणं बन्धमोक्षौ च न करोत्यात्मेति प्रतिपादयति -

६८) ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।

जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

नापि उत्पद्यते नापि म्रियते बन्धं न मोक्षं करोति।

जीवः परमार्थेन योगिन् जिनवरः एवं भणति॥६८॥

नाप्युत्पद्यते नापि म्रियते बन्धं मोक्षं च न करोति। कोऽसौ कर्ता। जीवः। केन परमार्थेन हे योगिन् जिनवर एवं ब्रूते कथयति। तथाहि। यद्यप्यात्मा शुद्धात्मानुभूत्यभावे सति शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणम्य जीवितमरणशुभाशुभबन्धान् करोति। शुद्धात्मानुभूतिसद्भावे तु शुद्धोपयोगेन परिणम्य मोक्षं च करोति तथापि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन न करोति। अत्राह शिष्यः। यदि शुद्धधद्रव्यार्तिकलक्षणेन शुद्धनिश्चयेन मोक्षं च न करोति तर्हि शुद्धनयेन मोक्षो नास्तीति तदर्थमनुष्ठानं वृथा। परिहारमाह। मोक्षो हि बन्धपूर्वकः, स च बन्धः शुद्धनिश्चयेन नास्ति, तेन कारणेन बन्धप्रतिपक्षभूतो मोक्षः सोऽपि शुद्धनिश्चयेन नास्ति। यदि पुनः शुद्धनिश्चयेन बन्धो भवति तदा सर्वदेव बन्ध एव। अस्मिन्नर्थे दृष्टान्तमाह। एकः कोनपि पुरुषः शुङ्खलाबद्धस्तिष्ठति द्वितीयस्तु बन्धनरहितस्तिष्ठति यस्य बन्धभावो मुक्त इति व्यवहारो घटते, द्वितीयं प्रति मोक्षो जातो भवत इति यदि भण्यते तदा कोपं करोति। कस्माद्बन्धाभावे मोक्षवचनं कथं घटते इति। तथा जीवस्यापि शुद्धनिश्चयेन बन्धाभावे मुक्तवचनं न घटते इति। अत्र वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतो मुक्तजीवसदृशः स्वशुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः॥६८॥

आगे शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा जन्म, मरण, बन्ध और मोक्ष को नहीं करता है, जैसा है वैसा ही है, ऐसा निरूपण करते हैं -

नहीं जन्मता मरता भी नहीं बंध मोक्ष भी नहीं करे।

यह परमार्थ कथन हे योगी! ऐसा श्री जिनदेव कहें॥६८॥

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगीश्वर, [परमार्थेन] निश्चयनयकर विचारा जावे, तो [जीवः] यह जीव [नापि उत्पद्यते] न तो उत्पन्न होता है, [नापि म्रियते] न मरता है [च]

और [न बन्धं मोक्षं] न बंध मोक्ष को [करोति] करता है, अर्थात् शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित है, [एवं] ऐसा [जिनवरः] जिनेन्द्रदेव भणति कहते हैं।

भावार्थ :- यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति के अभाव के होने पर शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ, कर्मबंध को करता है, और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर न बंध का कर्ता है और न मोक्ष का कर्ता है। ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया, कि हे प्रभो, शुद्धद्रव्यार्थिकस्वरूप शुद्धनिश्चयनयकर मोक्ष का भी कर्ता नहीं है, तो ऐसा समझना चाहिये, कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है, जब मोक्ष नहीं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है। उसका उत्तर कहते हैं - मोक्ष है, वह बंधपूर्वक है, और बंध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है। जो शुद्धनिश्चयनय से बंध होता, तो हमेशा बंधा ही रहता, कभी बंध का अभाव न होता। इसके बारे में दृष्टांत कहते हैं - कोई एक पुरुष साँकल से बंध रहा है, और कोई एक पुरुष बंध रहित हैं, उनमें से जो पहले बंधा था, उसको तो 'मुक्त' (छूटा) ऐसा कहना, ठीक मालूम पड़ता है और दूसरा जो बंधा ही नहीं, उसको जो 'आप छूट गये' ऐसा कहा जाय, तो वह क्रोध करे, कि मैं कब बंधा था, सो यह मुझे 'छूटा' कहता है, बंधा होवे, वह छूटे, इसलिये बंधे को तो मोक्ष कहना ठीक है, और बंधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते हैं? उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनयकर बंधा हुआ नहीं है, इस कारण मुक्त कहना ठीक नहीं है। बंध भी व्यवहारनयकर है, बंध भी व्यवहारनयकर और मुक्ति भी व्यवहारनयकर है, शुद्धनिश्चयनयकर न बंध है, न मोक्ष है, और अशुद्धनयकर बंध है, इसलिये बंध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिये। यहाँ यह अभिप्राय है, कि सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्पसमाधि में लीन पुरुषों को उपादेय हैं, अन्य सब हेय हैं।६८॥

गाथा - ६८ पर प्रवचन

शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा जन्म,... अर्थात् उत्पाद पर्याय नहीं। मरण अर्थात् व्यय उसमें नहीं। उसे बन्ध नहीं और मोक्ष करता नहीं। वह उत्पाद को करता नहीं, व्यय को करता नहीं, बन्ध को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! पाठ क्या है ?

(६८) ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ ।

जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८ ॥

तीन लोक के नाथ जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे हम जीव कहते हैं... आहाहा! वह जीव उत्पन्न नहीं होता, पर्याय में नहीं आता; पर्याय को व्यय नहीं करता। यह उसे हम जीव कहते हैं कि वह बन्ध को करता नहीं और वह मोक्ष को और मोक्ष के कारण को—मार्ग को करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा प्रभु एक समय में चैतन्यधातु को धारता हुआ, धातु अर्थात् स्वभाव से धार रखा हुआ ऐसा जो त्रिकाली तत्त्व, उसे जिनवर ऐसा कहते हैं, ऐसा जो जीव, वह जीव है। आहाहा! अमरचन्द्रभाई! आहाहा!

ऐसा जो जीव त्रिकाली ध्रुवस्वरूप परमात्मा स्वयं, वह मोक्ष के मार्ग को करता नहीं। आहाहा! मोक्ष को करता नहीं, तो बन्ध और बन्ध के मार्ग को तो करता नहीं। वह उत्पाद पर्याय में आता नहीं, वह व्यय पर्याय में आता नहीं। आहाहा! ऐसे जीव को जिनवर जीव कहते हैं। आहाहा! समयसार की ३२० वीं गाथा है, उसकी (जयसेनाचार्य कृत) टीका में यह गाथा डाली है।

(६८) ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ ।

जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८ ॥

हे योगी! तीन लोक के नाथ उसे जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो सम्यग्दर्शन का विषय जो जीव है, वह नहीं मोक्ष की पर्याय को करता, नहीं मोक्ष को करता। आहाहा! मोक्षमार्ग को करता नहीं। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय को जीव करता नहीं। आहाहा! उस पर्याय को पर्याय करती है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की पर्याय को जीव करता नहीं। क्यों?—कि उस पर्याय में षट्कारकरूप परिणमने की पर्याय की सामर्थ्य से वह पर्याय परिणमति है। सम्यग्दर्शन की पर्याय कर्ता, कर्म, पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय साधन... आहाहा! पर्याय अपादान, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय करके पर्याय रखे, पर्याय का आधार पर्याय। यह एक समय की सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारकरूप परिणमति (उत्पन्न होती है)। वह द्रव्य

उसरूप परिणमता नहीं। वह द्रव्य उस समकित को करता नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! अरे रे! इसका वास्तविक सत्य। रमणीकभाई! अभी और ठीक किया यहाँ। धन्धा छोड़कर आये। यह तो समझनेयोग्य है, बापू! क्या हो? अरे रे! दुनिया में मार्ग को फेरफार कर डाला, इससे मार्ग नहीं फिरेगा। मार्ग तो मार्ग रहेगा, भाई! आहाहा!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, 'जिणवरु एउँ भणेइ' न? जिनवर त्रिलोकनाथ तीर्थकर इन्द्रों और गणधर की सभा में ऐसा कहते थे। आहाहा! ऐसा सन्त कहते हैं। आहाहा! वह वीतरागी सन्त वीतराग के माल के आडतिया हैं। वे कहते हैं कि जिनवर ऐसा कहते हैं, प्रभु! परन्तु तुम भी मुनि हो और कहो तो वह उचित है। परन्तु (यह) तो जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! यह वाद-विवाद की वस्तु नहीं। यह तो अन्तर में समाने की वस्तु है। आहाहा! जहाँ चीज़ है, वहाँ जाने के लिये है। उस जाने की पर्याय को भी वह नहीं करता, कहते हैं। आहाहा! वह ध्रुव भगवान उत्पाद-व्यय की पर्याय को निर्मल को मोक्षमार्ग की पर्याय को नहीं करता। पण्डितजी! आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आचार्य ने तो यहाँ तक कहा, 'जिणवरु एउँ भणेइ' क्या कहा? जिनवर उसे जीव कहते हैं। उसे—जीव को भगवान ने ऐसा कहा कि ऐसा जीव, वह जीव, वह बन्ध और मोक्ष की पर्याय को करता नहीं, उस जीव को हम जीव कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक् ही है। पर्याय और द्रव्य दोनों एक है ही नहीं। आहाहा! पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आवे परन्तु पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! परमभाव स्वभावभाव भगवान नित्यानन्द प्रभु ऐसा जो जीव, उसका एक समय की ज्ञान की पर्याय में वह पूरा तत्त्व है, ऐसा यहाँ ज्ञान आता है, परन्तु वह द्रव्य यहाँ नहीं आता। आहाहा! देखो! वीतरागमार्ग की बलिहारी। आहाहा! एक समय की पर्याय में लोकालोक का ज्ञान आवे, लोकालोक नहीं आता। एक पर्याय में पूरा द्रव्य का ज्ञान आता है, ऐसी चीज़ है, ऐसा ज्ञान आता है, वस्तु नहीं आती। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग का तत्त्व है, भाई!

तू राग की एकता में भिड़ गया है, प्रभु! दबाव में आ गया है। पर्याय दबाव में आयी है, हों! द्रव्य तो द्रव्यरूप से सदा एकरूप रहा है। वह राग के दबाव में नहीं आता, वह मोक्षमार्ग की पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! राग की भीड़ में से, दबाव से छूटा तो उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! ऐसी चीज़ है। कहाँ है? बापू! आहाहा! जिनवर त्रिलोकनाथ उसमें यह दिगम्बर धर्म, यह सनातन जैनदर्शन। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय बिना का द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर की अपेक्षा से पर्याय का द्रव्य, स्व की अपेक्षा से पर्याय बिना का द्रव्य है। दो है या नहीं?—या एक है? पर्याय और द्रव्य दो वाचक है न? तो वाच्य दो है। तो दोनों भिन्न चीज़ है। वास्तव में तो द्रव्य पर्याय को स्पर्शा नहीं। यह नहीं आता अपने ४९ गाथा में? (समयसार में) अलिंगग्रहण में (अव्यक्त में)। पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ४९ में आता है। व्यक्त-अव्यक्त का एक साथ ज्ञान होने पर भी व्यक्त को प्रभु स्पर्श नहीं करता। आहाहा! पर्याय को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आहाहा! देखो! यह जिनवर की (कथनी)! आहाहा!

भाई! तेरी स्थिति ऐसी है। आहाहा! उसे तू लक्ष्य में तो ले। वह भगवान आत्मा, (उसे) लक्ष्य में लेनेवाली पर्याय में आता नहीं। आहाहा! ऐसा है, बापू! यह तो वीतरागस्वरूप की बात है, भगवान! इसमें राग से प्रसन्न होना और हर्ष और उत्साह आदि, बापू! वह तो उन्मादता है। यहाँ तो परमात्मा स्वयं जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि हम उसे जीव कहते हैं कि जो जीव बन्ध और मोक्ष की पर्याय में आता नहीं, उसे करता नहीं, उसे हम जीव कहते हैं कि उत्पाद-व्यय की दशा में वह आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश अब कठिन लगे न लोगों को? वह बेचारा कहे, मैं कुछ समझा नहीं। कभी कुछ सुना न हो, इसलिए बेचारा (ऐसा कहे)। क्या हो? बापू! तेरे घर की बात है, भाई! आहाहा!

ऐसा जो पर्याय में जो आता नहीं, मोक्ष की पर्याय में आता नहीं, ऐसा आत्मा दृष्टि में लेना, तथापि उस दृष्टि में वह वस्तु आती नहीं। आहाहा! श्रद्धा की पर्याय में वह वस्तु है, ऐसी श्रद्धा आती है। वह वस्तु कितनी और जितनी है, वैसी श्रद्धा की पर्याय में आती है, परन्तु पर्याय में वह वस्तु नहीं आती। आहाहा! यह सर्राफ का धन्धा है। हमारे सेठ

सर्गाफ है न! आहाहा! सर्गाफ का धन्धा यह है, बापू! आहाहा! भाई! इसे वाद-विवाद में न डाल। समझ में आया? उसे जैसा है, वैसा रख। आहाहा! भाषा देखो न! आहाहा!

‘जिणवरु एउँ भणोइ’ जिनवर ऐसा कहते हैं। उसे हम जीव कहते हैं कि जो जीव पर्याय के मोक्ष में आता नहीं, मोक्ष की पर्याय को करता नहीं, उसे हम जीव कहते हैं। यह गजब बात है! आहाहा! गाथा, वह गाथा है न!! अमृत बहाया है, अमृत बहाया है। आहाहा!

‘ण वि उप्पज्जइ’ वह जीव उत्पाद पर्याय में आता नहीं। गजब बात! प्रभु! आत्मा तो उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? वह तो प्रमाण के विषय का सत् है। समझ में आया? आहाहा! शुद्धनिश्चयनयकर... अर्थात् कि त्रिकाली वस्तु को देखनेवाले नय से देखे तो आत्मा... पाठ में जीव है। यहाँ ‘आत्मा’ शब्द लिया है। और कोई ऐसा कहे कि जीव और आत्मा दोनों भिन्न जाति है, यह वेदान्तवाले ऐसा कहते हैं न? अन्तकरण विशिष्ट वह जीव और अत्यन्त निर्मल त्रिकाल, वह आत्मा। ऐसा नहीं है। आहा!

शुद्धनिश्चयनयकर... भगवान आत्मा ध्रुव जो है, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! नित्यानन्दस्वभाव है, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। वह आत्मा जन्मता नहीं, अर्थात् उत्पाद में आता नहीं, मरता नहीं (अर्थात्) व्यय में आता नहीं। आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? परन्तु वह तो पूरे द्रव्य की बात की, परन्तु मूल द्रव्य जो ध्रुव है, उसकी बात में यह बात है। समझ में आया?

जैसा है, वैसा ही है... आहाहा! यह तो भगवान जैसा है, वैसा और वैसा एकरूप है। एकेन्द्रिय की पर्याय, सिद्ध की पर्याय या मोक्षमार्ग की पर्याय (हो), सर्वत्र वह तो जो है, वह है। आहाहा! समझ में आया? ठीक आज और रविवार आ गया है और यह गाथा भी आ गयी। जयन्तीभाई! आहाहा! अरे! भगवान! तू कितना कहाँ है, उसकी प्रभु बात करते हैं। कितना कहाँ है? उसे हम आत्मा कहते हैं। वह कहाँ है?—कितना है? आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनवरदेव दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा फरमाते हैं। जीव, वह बन्ध और मोक्ष की पर्याय को करता नहीं, ऐसा हम कहते हैं, उसे जीव कहते हैं। आहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव है, पर्याय नहीं। सम्यग्दर्शन पर्याय है... आहाहा! परन्तु उसका विषय है, वह त्रिकाली वस्तु है। आहाहा! उस पर्याय में पूरी चीज़ है, उसकी श्रद्धा आती है परन्तु श्रद्धा की पर्याय में वह वस्तु नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? श्रद्धा की पर्याय में उसकी पाचनशक्ति श्रद्धा में है। जैसे अग्नि पचा डालती है न? चाहे जैसा अनाज हो, उसे (पचा डालती है)। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन की पर्याय में पाचनशक्ति पूरा पूर्ण प्रभु है, उसे पाचन कर डालती है। समझ में आया? वह प्रतीति में पूरे पूर्णानन्द को लेती है। तथापि उस प्रतीति में पूर्णानन्द की श्रद्धा ली परन्तु पूर्णानन्द का नाथ श्रद्धा की पर्याय में नहीं आया। आहाहा! जयन्तीभाई! ऐसी चीज़ है, बापू! अभी तो भारी गड़बड़ कर डाली है।

यहाँ आया था न? भेदाभेदरत्नत्रय की भावना। पाठ में तो इतना है—भेदाभेद भावना। इसका अर्थ यह है। ६७ (गाथा में), भाई! आया था न? ६७। आगे भेदाभेद रत्नत्रय की भावना की मुख्यता से नौ सूत्र कहेंगे। उनमें का यह सूत्र है न। है? पाठ में भेदाभेद है, भेदाभेद की भावना, स्पष्टीकरण भेदाभेदरत्नत्रय। वह भी यह कथन है। सम्यग्दर्शन-चारित्र जो निश्चय है आनन्ददाता, उस पर्याय को अभेद कहते हैं, तब साथ में राग का भाग है। श्रद्धा का व्यवहार से श्रद्धा का, ज्ञान का, महाव्रत का विकल्प, उसे निमित्तपना देखकर और साथ में है, इसलिए उपचार से उसे व्यवहाररत्नत्रय का आराधन कहा है। आहाहा! समझ में आया?

अभेद रत्नत्रय के परिणाम जिसमें नहीं। आहाहा! और अभेद रत्नत्रय के परिणाम में आत्मा नहीं। वह भेद रत्नत्रय में आत्मा कहाँ से आया? आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू! यह देह विलय हो जायेगा, भाई! और कोई साथ में नहीं आयेगा। बाहर की अनुकूलता लोग प्रसन्न हुए होंगे, प्रसन्न रखेंगे... आहाहा! वह कोई मदद नहीं करे, बापू! आहाहा! जिसकी शरण में जाना, वह तीन लोक का नाथ है। आहाहा! उसकी शरण में जाने की पर्याय भी जिसमें नहीं और जिसमें वह आता नहीं। आहाहा!

‘केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं’ मोक्ष का मार्ग है, निश्चय से वह शरण है। उस शरण की पर्याय में ध्रुव आता नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा का शरण है। समझ में आया? कितने ही बेचारों ने यह बात सुनी न हो। यह दया पालो, व्रत करो, अपवास

करो, त्याग करो, ऐसी बात वे साधु करे तो सरल लगे, हमको समझ में आये। तुम्हारी बात समझ में नहीं आती, है सही कुछ, ऐसा कहा। परन्तु कुछ समझ में नहीं आता, कुछ समझ में नहीं आता। ऐसा पत्र आया है। कोई गाँव का है। दिल्ली? दिल्ली का।

अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग जो है, वह स्व के आश्रय से प्रगट हुआ। तथापि आश्रय से प्रगट हुआ अर्थात्? द्रव्य में से आया? द्रव्य तो द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह भाषा तो ऐसी ही आती है। वस्तुस्थिति ही पूरी पड़ी है न? उसमें से निर्मल परिणति आती है न! भेद हुआ, ऐसा भेद से कहे, भेद से ऐसा कहा जाता है। बाकी वस्तु है, वह वस्तु है, पर्याय पर्याय में से होती है, पर्याय पर्याय से होती है। आहाहा! पर्याय द्रव्य से भी नहीं। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग। जिनवरदेव की... आहाहा! परम निधान को, 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय जिनेश्वर।' यह परमात्मा परम निधान पड़ा है, उसे उल्लंघ कर पर्याय और राग में चिपटा है। 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय।' आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय ध्रुव.... ध्रुव पर्याय की एकता करे या न करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता करती नहीं तीन काल में। एकता कहने का अर्थ, उस ओर ढली, इसलिए एकता (की, ऐसा कहा)। बाकी पर्याय और द्रव्य की एकता तीन काल में कभी होती नहीं। सामान्य विशेष में नहीं आता और विशेष सामान्यरूप नहीं होता। दोनों धर्म भिन्न हैं। आहाहा! यह तो गाथा आयी है। ऐसी बातें हैं, भाई! ध्रुव तो सदृश्यरूप से त्रिकाल एकरूप है, कूटस्थ है, बदले बिना का है।

कहीं ऐसा हो तो पंचाध्यायी में ऐसा भी कहा जाता है कि गुण है, वह पर्याय होती है तो बदलते हैं, गुण भी बदलते हैं। वह तो पर्याय आती और जाती है, इस अपेक्षा से (कहा), परन्तु गुण और द्रव्य सदृश्य त्रिकाल है। पंचाध्यायी में है। ऐसा कि पर्याय पलटती है, वैसे गुण पलटते हैं या नहीं? गुण भी पलटते हैं। बदलते हैं न? वह पर्याय आवे-जावे। नयी हो, पुरानी जाए। इस अपेक्षा से गुण को पर्यायनय से पलटते हैं, ऐसा कहा। द्रव्यनय से देखो... आहाहा! (तो) एकरूप ऐसे परमात्मा पूरा विराजता है। उसे जन्म भी नहीं, मरण भी नहीं, बन्ध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं।

जैसा है, वैसा ही है। जैसा है, वैसा ही है, ऐसा निरूपण करते हैं—हे योगीश्वर! हे सन्त! आहाहा! प्रभाकर भट्ट को कहते हैं न! निश्चयनयकर विचारा जावे... यह द्रव्यसंग्रह में है, हों! पृष्ठ २०८। द्रव्यसंग्रह में भी यह बात है। ध्यान विनश्वर है, द्रव्यसंग्रह में २०८ पृष्ठ लिखा है। समयसार का पृष्ठ ४२४, यह ३२० गाथा का। लिखा है, तब लिख लिया था।

हे सन्त! निश्चयनयकर... परमार्थ निश्चयनय से देखें। परमार्थ शब्द है न? परमार्थ से देखें तो। आहाहा! यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बन्ध मोक्ष को करता है, ये शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित है,... भगवान तो वस्तु है, वह निश्चय से बन्ध हो तो कभी छूटे नहीं। बन्ध हो तो इसका अभाव हो जाता है। शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल १, मंगलवार
दिनांक-२७-०७-१९७६, गाथा-६८, प्रवचन-४५

पर्याय को उत्पन्न नहीं करता। आहाहा! और पर्याय का व्यय नहीं करता। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत् है, तो ध्रुव जो चीज़ है, वह अपनी पर्याय में भी नहीं आती। और पर्याय को नहीं करती। आहाहा! अज्ञानी आत्मा परद्रव्य का कर्ता नहीं, कर नहीं सकता। अज्ञानी का आत्मा और आत्मा क्या है, यह दृष्टि में नहीं तो वह राग का कर्ता अज्ञानी होता है। व्यवहार राग का कर्ता होता है। पर का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं हो सकता। क्योंकि परपदार्थ अपनी पर्याय का कर्ता है और पर्याय से रहित तो कभी परपदार्थ नहीं है तो उस पदार्थ की पर्याय को अज्ञानी भी नहीं करता। अज्ञानी करे तो अपने द्रव्य को भूलकर राग को करे। उसे खबर नहीं है कि मैं क्या हूँ? यहाँ तो जिसे खबर है कि मैं शुद्ध चैतन्यघन हूँ... आहाहा! ऐसा आत्मा परद्रव्य की पर्याय का पर्याय कर्ता नहीं है। अपनी पर्याय से परद्रव्य का कर्ता आत्मा नहीं है और निर्मल पर्याय से आत्मा का भान हुआ है तो निर्मल पर्याय से राग का भी कर्ता नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। लोग कहाँ ले जाते हैं? परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। प्रभु! क्या करता है, भाई? अरे! परमात्मा के विरह में ऐसा नहीं होता। परमात्मा तो ऐसा फरमाते हैं। त्रिलोकनाथ कहते हैं।

शुद्ध निश्चय से त्रिकाली वस्तु जो भगवान आत्मा, वह उत्पाद को करता नहीं, व्यय को करता नहीं। आहाहा! बन्ध को करता नहीं और मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! त्रिकाली वस्तु जो सम्यग्दर्शन का विषय... आहाहा! वह चीज़ तो पर्याय की कर्ता नहीं, मोक्ष की पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा! अब उसे पर का कर्ता मानना है। देवीलालजी! भगवान! तेरी चीज़ क्या है, तुझे खबर नहीं है, प्रभु! चीज़ यह है, वह तो भगवान अपनी पर्याय की, मोक्षमार्ग की या मोक्ष की पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहाहा! सेठ! आहाहा! यह तो निर्मल मोक्ष की पर्याय का भी अकर्ता द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया?

हे योगी!... शिष्य को कहता है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि हैं। सन्त दिगम्बर आत्मज्ञानी, अनुभवी, भावलिंगी वीतराग के आनन्द में अनुभव करनेवाले हैं। आहाहा!

वे अपने शिष्य को कहते हैं, हे योगी! निश्चयनयकर विचार जावे... वास्तविक तत्त्व की दृष्टि से विचार किया जाए... आहाहा! वस्तु जो ध्रुव चिदानन्द प्रभु, जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं और पूर्ण स्वभाव से खाली नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ वस्तु जो भूतार्थ है। लो! ऐसी चीज़ है। आहाहा! अमरचन्दभाई!

भगवान् पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु, अपना पूर्ण स्वभाव... पूर्ण स्वभाव... पूर्ण स्वभाव.. अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति—ऐसे पूर्ण स्वभाव से भरपूर जो तत्त्व, वह तत्त्व मोक्ष के परिणाम को और मोक्ष के मार्ग के परिणाम को नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान्! सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव त्रिकाल है, तो सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि यह मेरी पर्याय है, उसका द्रव्य कर्ता नहीं है, ऐसा वह मानता है। आहाहा! अरे! प्रभु! भाई! तेरा मार्ग यह है। वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु! सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है, सम्यग्दर्शन है पर्याय, परन्तु वह ऐसा मानती है कि मेरी चीज़ है, वह तो सम्यग्दर्शन का भी कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। वीतराग... यह कहते हैं।

निश्चयनयकर विचारा जावे, तो यह जीव... वास्तविक भूतार्थ तत्त्व जो, त्रिकाली है, उस दृष्टि से और उस नय से विचार किया जाए तो... आहाहा! न तो उत्पन्न होता है, न मरता है... व्यय भी कर्ता नहीं और उत्पाद भी कर्ता नहीं और भगवान् उत्पाद में भी नहीं आता, व्यय में भी नहीं आता। आहाहा! द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन की जो पर्याय उत्पन्न हुई, उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! उस पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को ऐसा जानना धर्म है या अधर्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन धर्म है। सम्यग्दर्शन और चारित्र आदि वह तो धर्म की पर्याय है। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है कि पर्याय का भी द्रव्य कर्ता नहीं है। आहाहा! और पर्याय राग का कर्ता नहीं, राग पर का कर्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय में त्रिकाली चीज़ जो दृष्टि में आयी है तो वह सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है और मानता है कि इस सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा नहीं आता। आत्मा सम्यग्दर्शन की पर्याय में उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन की पर्याय में सम्पूर्ण पूर्ण आत्मा

की प्रतीति आती है, प्रतीति। परन्तु प्रतीति में वह द्रव्य नहीं आता। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। अरे! कहाँ अटकता है? प्रभु! आहाहा!

कहते हैं और न बन्ध-मोक्ष को करता है अर्थात् शुद्धनिश्चयनय से बन्ध-मोक्ष से रहित है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। है? आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनवर प्रभु, जिन्हें एक समय में लोकालोक ज्ञात हुए हैं और पूरा द्रव्य ज्ञात हुआ है। एक समय की पर्याय में पूर्ण द्रव्य क्या है, यह ज्ञात हुआ है और लोकालोक पर्याय में उन्हें ज्ञात हुए हैं। ऐसे जिनवरदेव दिव्यध्वनि द्वारा इन्द्रों और गणधरों के बीच ऐसा कहते थे... आहाहा! कि भगवान आत्मा, वह पर का कर्ता तो नहीं, राग का तो कर्ता नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहाहा! अमरचन्द्रभाई! यह गाथा तो अन्तिम माल की है। ३२० गाथा के व्याख्या बहुत हो गये हैं। समयसार की ३२० गाथा है, उसकी जयसेनाचार्य की टीका में यह रखी है। वह संस्कृत टीका है जयसेनाचार्य की। उसमें यह गाथा है। अभी मुम्बई में व्याख्यान हो गये हैं। ३२० गाथा पर ग्यारह व्याख्यान हुए। दस-दस हजार लोग, बारह-बारह हजार, पन्द्रह हजार सब सुनते थे। बापू! सुनो, भाई! पोपटभाई! पोपटभाई थे। सब सुनते थे। सुनो, बापू! आहाहा!

सुनना तुम। आता है न कहीं? पंचास्तिकाय में पहले आया न? सुनना तुम, नहीं? कल स्वाध्याय थी। आहाहा! कल पंचास्तिकाय में आया था। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं... आहाहा! वीतरागी सन्त हैं और जिन्हें सम्यग्दर्शनादि अप्रतिहत प्रगट हुए हैं। आहाहा! वे कहते हैं। वे कहते हैं कि सुनना तुम, प्रभु! तुम सुनो। आहाहा! भगवन! एक बार हम कहते हैं, वह सुन, भाई! प्रभुरूप से तो बुलाते हैं।

(समयसार) ७२ गाथा में आया है। ७२ गाथा है, ७२ समयसार। भगवान आत्मा शुचि है, ऐसा कहा। संस्कृत में ऐसा है। पुण्य और पाप का भाव है, वह अशुचि है, अपवित्र है और मैलरूप अनुभव में आता है। और भगवान आत्मा... ऐसा पाठ है। भगवानरूप से बुलाया है। आहाहा! उसकी माँ घोडिया में... क्या कहलाता है वह? झूले में सुलावे तो महिमा करती है। 'बेटा! पाटले बैठ नहाया' ऐसा आता है न गाना? वह सुलाने के लिये कहती है। भगवान जागृत कराने को कहते हैं। तीन लोक के नाथ भगवान एक बार सुन। अरे रे! आहाहा! तू अधूरा नहीं, अपूर्ण नहीं, अल्पज्ञ नहीं,

विकारी नहीं। आहाहा! तू तो पवित्र ज्ञानानन्दस्वभाव का पिण्ड प्रभु है। ऐसा यह आत्मा जिसे दृष्टि में आया है, उसे ऐसा कहते हैं कि तेरी पर्याय का कर्ता वह द्रव्य नहीं है। आहाहा! पर्याय पर्याय ने की है। यह तुम समझो। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

संसार के जन्म-मरण के दुःख देखो न, ओहो! कल रवारी का लड़का मर गया बेचारा, रवारी। भरवाड़ होते हैं न? भरवाड़ नहीं होते? भरवाड़ नहीं समझते। बकरे चराते हैं वे। पन्द्रह वर्ष का लड़का था, माघ महीने में विवाह हुआ था। अभी-अभी विवाह किया था। पन्द्रह वर्ष का लड़का। अपने पूनाभाई यहाँ काम करते हैं न, उनकी लड़की के साथ। अभी पूनाभाई आये थे। यहाँ आ गये। अन्त में ऐसा बोला, मुझे बाँधो, मुझसे बटका भरा जाएगा। हड़किया कुत्ता होता है न? मुझे बाँधो और मेरी खाट उल्टी कर दो। सुना था? वे कहते थे। ऐसा कैसे यह खाट उल्टा करने को कहा? आहाहा! राम... ऐसा बेचारा बोलता था। यह पीड़ा... यह पीड़ा... देह की एकत्वबुद्धि की है। इस देह की एकताबुद्धि की पीड़ा है। देह में रोग है, उसका दुःख नहीं। अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर देह और राग की एकताबुद्धि में जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे वेदता है, शरीर की पीड़ा को नहीं। शरीर तो जड़ है, उसकी पीड़ा तो जड़ में है। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर बिगड़े तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर बिगड़ना किसे कहना? उसकी पर्याय के काल में होता है, उसे बिगड़ना क्या कहना? वह तो लोक की भाषा में रोग होवे, तब कहलाता है। वह रोग की अवस्था भी उन परमाणुओं की उस समय की पर्याय है। आहाहा! उस समय की वह पर्याय है। आहाहा! उसे खराब भी क्या कहना और उसे अच्छा क्या कहना? वह तो पर्याय है। रोग, वह परमाणु की पर्याय है, आत्मा उसका जाननेवाला है। आहाहा!

कहते हैं कि शुद्धनिश्चय से बन्ध-मोक्ष से रहित है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। ऐसा मुनिराज कहते हैं कि जिनेन्द्र ऐसा कहते हैं, उसे तू सुन। आहाहा! भाई! तेरा मार्ग बहुत अलग है और उस मार्ग का ध्येय जो है, वह द्रव्य है। सम्यग्दर्शन का मार्ग जो है, मोक्षमार्ग कहो, उसका ध्येय तो द्रव्य है कि जो पर्याय को करता नहीं, वह द्रव्य उसका ध्येय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। इतना तो परसों आ गया था। यह फिर से जरा हिन्दी में लिया। आहाहा!

भावार्थ:—यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति के अभाव के... आहाहा! ऐसा जो द्रव्यस्वभाव—शुद्धस्वरूप, जो पर्याय को करता नहीं, पर्याय में आता नहीं। पर्याय को कर्ता नहीं, पर्याय में आता नहीं... आहाहा! ऐसा शुद्धात्मा, उसकी जो अनुभूति। उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव, उसका अभाव। शुद्धात्मानुभूति का अभाव। आहाहा! अनादि काल से भगवान जो शुद्धस्वरूप, जो पर्याय को भी करता नहीं—ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी जो अनुभूति, वह पर्याय है। ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी अनुभूति, वह पर्याय है; शुद्धात्मा, वह द्रव्य है। आहाहा! उस शुद्धात्मा की अनुभूति के अभाव के कारण शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके... आत्मा लिया है न वापस, हों! वहाँ। पर्याय में अपनी अनुभूति के अभाव से, अपना चैतन्य भगवान पूर्णानन्द स्वरूप, उसकी अनुभूति के अभाव से शुभाशुभभाव करके। है ?

शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके... आहाहा! देखो! शुभोपयोग में परिणमन करके। अपनी शुद्धस्वरूप की अनुभूति के अभाव से शुभ उपयोग का परिणमन करके। आहाहा! यह व्यवहार। जीवन, मरण, शुभ, अशुभ, कर्मबन्ध को करता है,... गति का उत्पन्न होना और गति का व्यय होना और शुभ-अशुभ कर्मबन्ध को करता है। आहाहा! क्या कहा? कि जो शुद्धनय से कहने में आया है कि जो त्रिकाली चीज परमात्मा, वह तो पर्याय को करता नहीं तो राग को करे और पर को करे, ऐसा तो उसमें है ही नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन का विषय शुद्ध चैतन्यघन ऐसा होने पर भी उसकी अनुभूति के अभाव से। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल भगवान है। आहाहा! ... ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, आनन्द का दल है। आहाहा! जिसमें ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति पड़ी है। उस त्रिकाल को जानकर देखने की शक्तिवाला यह आत्मा है। त्रिकाल वस्तु है, उसके त्रिकाली ज्ञान-दर्शन त्रिकाल को जानने-देखने की शक्ति धराते हैं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी सन्मुख की अनुभूति, वह पर्याय है। अनुभूति के अभाव से... आहाहा! शुभ-अशुभ उपयोग से शुभाशुभ कर्म बाँधे। आहाहा! शुभ-अशुभ उपयोग से शुभाशुभ कर्म बाँधे, उससे जन्म-मरण करता है। आहाहा! यहाँ तो शुभोपयोग से कर्म बाँधते हैं और उससे जन्म-मरण करता है, ऐसा

कहा है। इस शुभोपयोग से आत्मा को सम्यग्दर्शन होगा? आहाहा! ... ऐसा मार्ग है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : आपने क्या फरमाया, समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुव जो कहा, वह तो निर्मल पर्याय का भी करता नहीं, मलिन पर्याय को भी वह नहीं करता तो निर्मल पर्याय को तो करता ही नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा, उसकी अनुभूति के अभाव में उस चीज़ के सन्मुख होकर जो आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है, ऐसे आनन्द की अनुभूति के अभाव में शुभ-अशुभ उपयोग से शुभाशुभकर्म बाँधे। शुभोपयोग से अनुभूति होती है, यह तो कहीं रह गया। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह कहाँ है? बापू! अभी मुश्किल से अवसर मिला। अरे! आहाहा! दुनिया के दुःख देखे तो सही। दुनिया के दुःख देखकर आँसू आवे, ऐसी पीड़ा जगत की है। आहाहा! वह पीड़ा टालने का अवसर है, प्रभु! उसमें तुझे यह पर की पकड़, इससे यह होता है और इससे यह होता है। आहाहा! भगवान! शुभोपयोग से... क्या कहा? शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणामन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ (कर्मबन्ध को करता है।) शुभोपयोग से शुभकर्म, अशुभोपयोग से अशुभकर्म (बाँधता है)।

मुमुक्षु : निश्चय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय नहीं, व्यवहार से। पर्याय, वह व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! अरे! तुझे कहाँ सन्तोष है? बापू! शुभभाव में भी जहाँ रुक गया है, अटक गया है। बाहर में तो क्या चीज़ पड़ी है? जगत की मायाजाल। आहाहा! श्मशान में हड्डियाँ होती हैं न, हड्डियाँ? श्मशान में। उनमें चमक... चमक होती है। बालक ऐसा मानता है कि भूत है। भूत नहीं, परन्तु उन हड्डियों में क्या कहलाता है? फोरफरस। श्मशान में हड्डियाँ होती हैं न? इसी प्रकार यह पूरी दुनिया हड्डियों की फासफूस है। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? और कहाँ तू रुक गया? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, सिद्ध यह करना है कि वस्तु पर्याय को नहीं करती और पर्याय में आती नहीं, यह बात सिद्ध करना है। परन्तु कहते हैं कि अभी तक यह

हुआ क्या ? कि उस शुद्धचैतन्यमूर्ति की दृष्टि बिना और उसकी अनुभूति बिना... आहाहा ! इसने शुभ-अशुभ उपयोग किया, शुभ-अशुभ उपयोग किया। शुभोपयोग तो एकेन्द्रिय में भी होता है। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि निगोद में एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा ! प्रभु ! तुझे तेरा ज्ञेय कितना है ? तेरे ज्ञान में आनेयोग्य ज्ञेय कितना है ! एक राई के दाने जितना काइ का, एक लहसुन का, प्याज का... डुंगली कहते हैं न तुम्हारे ? प्याज का एक राई के दाने जितना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो शरीर है। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव हैं। वस्तुस्थिति उसे कहाँ (खबर है)। आहाहा ! उस जीव में शुभ-अशुभभाव होता है, ऐसा कहना है। क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ, क्षण में शुभ, क्षण में अशुभ। निरन्तर धारा चलती है। ऐसा भगवान के कर्मशास्त्र में-करणानुयोग में है। समझ में आया ? यह कोई नई चीज़ नहीं है। शुभभाव, यह कोई नई चीज़ नहीं है।

यहाँ तो यह कहा कि भगवान आत्मा पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा हमें सिद्ध करना है। यह आत्मा की पर्याय अनुभूति नहीं करके... आहाहा ! अनुभूति के अभाव में, शुभाशुभ उपयोग से शुभ-अशुभ कर्म बाँधता है और शुभ-अशुभ कर्म से शुभ-अशुभ गति में उत्पन्न होता है। आहाहा ! समझ में आया ? कर्मबन्ध को करता है।

और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर.... भगवान आत्मा चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, ऐसा ध्रुव प्रभु, उसकी अनुभूति—उसके सन्मुख की परिणति, वीतरागी अनुभूति। शुभ-अशुभभाव था, वह राग था। शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत। आहाहा ! भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, पूर्णानन्दभाव, परमस्वभावभाव, परमपारिणामिक सहजभाव की अनुभूति। आहाहा ! उस वस्तु को अनुसरण कर सन्मुख होकर जो अनुभूति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा ! समझ में आया ? शुद्धात्मानुभूति। शुद्ध आत्मा कौन है ? कि जो पहले कहा वह। त्रिकाली, जो पर्याय का भी कर्ता नहीं है। आहाहा ! तेरी बात तुझे सुनने को नहीं मिलती, प्रभु ! वह बेचारा कहाँ जाए ? और सत्य का विरोध करे। प्रभु ! तुझे खबर नहीं, भाई ! आहाहा ! एक समय की भूल है। प्रभु तो भूलरहित है।

मुमुक्षु : पुस्तक नहीं होगी उसके पास।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुस्तक होवे तो क्या करे ? पुस्तक तो पढ़ता है। (उसकी) दृष्टि से पढ़ता है न ? आहाहा ! जब तक पर का कर्ता न माने, वह श्वेताम्बर है—ऐसा कहकर

यहाँ (सोनगढ़ को) श्वेताम्बर सिद्ध करना है । अरेरे ! प्रभु ! क्या करता है तू यह ? हम तो यहाँ श्वेताम्बर को गृहीत मिथ्यादृष्टि मानते हैं । श्वेताम्बर को तो हम गृहीत मिथ्यादृष्टि मानते हैं । हम श्वेताम्बर नहीं हैं । पर्याय में दिगम्बर हैं, द्रव्य तो दिगम्बर भी नहीं है ।

कहते हैं... थोड़ा गुजराती आ जाता है । भाषा वह है न ! **शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...** भाषा देखो ! समझ में आया ? आहाहा ! शुद्धात्मानुभूति के सद्भाव में, ऐसा है न ? सद्भाव है । आहाहा ! अर्थात् ? भगवान पूर्णानन्द प्रभु के सन्मुख होकर अनुभूति का सद्भाव होना, अनुभूति का प्रगट होना । सद्भाव-अस्ति । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अनुभूति, वह वस्तु के स्वभाव के सन्मुख होकर होती है तो उसकी अनुभूति के सद्भाव में । आहाहा ! **शुद्धोपयोग से परिणत होकर...** देखो ! उन शुभाशुभ से विपरीत **शुद्धोपयोग से परिणत होकर...** शुभोपयोग से शुद्धोपयोगरूप परिणमकर, ऐसा नहीं कहा । स्व अनुभूति के कारण से शुद्धोपयोग करके । आहाहा ! ऐसा मार्ग, बापू ! आहाहा ! वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव महाविदेह में साक्षात् प्रभु विराजते हैं । कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे । वहाँ गये थे । आठ दिन रहे थे । संवत् ४९ । दो हजार वर्ष हुए । समझ में आया ? इन कुन्दकुन्दाचार्य के कथन का अनुकरण सब सन्तों बहुत किया है । दिगम्बर मुनियों ने भी कुन्दकुन्दाचार्य के कथन का अनुकरण बहुत किया है ।

शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है... लो ! आत्मा भले मोक्ष की पर्याय का कर्ता नहीं परन्तु आत्मा शुद्धात्मानुभूति में परिणमन करके मोक्ष को करता है । आहाहा ! शुभभाव, बन्ध को करता है ; शुद्धोपयोग, मोक्ष को करता है । दोनों विपरीत बात है । आहाहा ! अरे ! भाई ! ...लड़की को कहते हैं, भाई ! ...कि इसे यह हुआ तो इसकी लड़की यहाँ गाँव में थी तो अन्यत्र भेज दी । ऐसा सुन । वह एक लड़की, मास्टर की लड़की मर गयी । उसने सुना तो उसे हो गया । उसे काटा हुआ था । दूसरी एक लड़की को बाहर भेज दिया । उसे जहाँ हुआ था, इसे बाहर भेज दिया । क्या कहा, समझ में आया ? पागल कुत्ता है । एक लड़की को काट गया । ...तो उसे बाहर पर गाँव भेज दिया । आहाहा ! और उस पागलपने का वेदन बहुत कठिन । उसे सहन नहीं हो । कहीं चैन पड़े नहीं । यहाँ तो कोई कहता था कि पानी माँगा । पानी दो । आहाहा ! यह स्थिति है ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा है, हमें खबर है। आहाहा! यह तो हड़का बाहर से पागल है। यह (आत्मा) तो राग को अपना मानना और राग से धर्म मानना, वह अन्दर का पागल है। आहाहा! जिसमें गति मिले, उसे धर्म माने, वह पागल है। आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ देखना, बापू! तू कौन है, वहाँ देख न! तू कौन है? तू क्या है? कैसा है? आहाहा! और तू ऐसा है ही। तेरे पास चीज़ है, ऐसा भी नहीं, तू स्वयं ही ऐसा है। आहाहा! है, उसकी नजर करनी है। आहाहा!

वस्तु पूर्णानन्द प्रभु के सन्मुख होकर स्वीकार करना है। है, उसका स्वीकार करना है। उसमें क्या तुझे...? आहाहा! यह अनुभूति है। शुद्ध भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु की अनुभूति, वह पर्याय है। अन्तरस्वरूप की दृष्टि करके अनुभव करना, आनन्द का अनुभव करना, वह अनुभूति। वह शुद्धोपयोग। शुद्धोपयोग में आनन्द का स्वाद आता है। शुभराग में दुःख का स्वाद आता है। गोदिकाजी! समझ में आया? थोड़ी-थोड़ी (गुजराती) भाषा आ जाती है। आहाहा! यह तो हिन्दी है। इसलिए हिन्दी करते हैं। दोपहर में तो समयसार चलेगा। शुक्रवार तक हिन्दी चलेगा। दो दिन बाद। शनिवार को तो अपने शिक्षण-शिविर है। तब हिन्दी लोग आयेंगे। चारों ओर से बहुत पत्र आये हैं। कल कोई कहता था। भाई! छिन्दवाड़ा। कितने? २५, कहीं से ५०। आवे तो सही! आहाहा! इतने प्रेम से, जिज्ञासा से कितनी दूर से आते हैं। आहाहा!

यहाँ परमात्मा जिनवर कहते हैं, ऐसा आया है न? जिनवर ने कहा है। ऐसा हम कहते हैं, मुनि कहते हैं। हमारी कोई कल्पना से बात नहीं है। जिनवरदेव तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतराग भगवान के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में आया है, ऐसा हम तुझे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर न बन्ध का कर्ता है और न मोक्ष का कर्ता है। देखो! शुद्ध अनुभूति अपनी निर्मल वीतरागीदशा से विपरीत शुभाशुभभाव, वह शुभाशुभभाव पर्याय में होते हैं और उनसे बन्ध होता है और अनुभूति से, शुद्धोपयोग से मोक्ष होता है, परन्तु उस परमपारिणामिकभाव की दृष्टि से

कहें तो वह मोक्ष की पर्याय का भी कर्ता नहीं है और बन्ध की पर्याय को भी करता नहीं है। आहाहा! वह तो ज्ञातादृष्टा का पिण्ड है।

वह सत् है, तो सत् का सत्व अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह सत् का सत्व है। सत्व—उसका माल। आहाहा! उस शुद्धात्मानुभूति का अभाव करके, शुभाशुभभाव करके, जन्म-मरण करता है और शुद्धात्मानुभूति करके मोक्ष को करता है, परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखें तो बन्ध और मोक्ष को वह वस्तु करती नहीं है। आहाहा! अब उसके बाहर के काम में होशियारी। गिरधरभाई नहीं अभी। वह तो अब छूट गये हैं। आहाहा! यह कार्यकर्ता होते हैं न? ढेवरभाई और... ढेवरभाई नहीं अपने? गाँधीजी के। हम ऐसा करते हैं। अभी तो उन्हें कुछ दूसरा हो गया था, ऐसा सुना था। पक्षघात हो गया है। हाँ, ऐसा कोई कहता था। पक्षघात। आहाहा!

इसी प्रकार पर्याय में शुभाशुभभाव पर्यायदृष्टि से करता है और उन शुभाशुभभाव से कर्म बँधते हैं और शुद्धात्मानुभूति से पर्याय में शुद्धात्मानुभूति होती है, उससे मोक्ष होता है। ऐसे होने भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक... आहाहा! सहज त्रिकाली स्वभाव जो पर्यायरहित चीज़ है। ध्रुव-ध्रुव, अनादि-अनन्त। आदि नहीं, अन्त नहीं, स्वभाव से खाली नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ परम पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर न बन्ध का कर्ता है और न मोक्ष का कर्ता है। शुभाशुभभाव का कर्ता भी नहीं, अनुभूति की पर्याय का भी वह कर्ता नहीं। आहाहा!

अरे! भगवान! तेरी सामर्थ्य शक्ति तो देख! आहाहा! तू अनन्त वीर्य का पिण्ड है, प्रभु! अनन्त वीर्य का पिण्ड ध्रुववस्तु है। अनन्त ज्ञान का पिण्ड है, अनन्त सिद्धरूप है, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, अकषायस्वभाव का अनन्त-अनन्त पिण्ड है। ऐसा प्रभु परमभाव की दृष्टि से देखें तो वह अनुभूति और शुभाशुभभाव दोनों को नहीं करता। आहाहा! कहो, खजुरियाजी! ऐसा सुना है? ऐसी वीतराग की बात है। यह दिगम्बर सन्त... आहाहा! दुनिया दुनिया की जाने, बापू! जिसके जो परिणाम हैं, उसके परिणाम का वेदन तो उसे है न! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मिथ्याश्रद्धा करे, उसका वेदन तो प्रभु! उसे दुःख का कारण है। श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं 'बन्ध मोक्ष है कल्पना कही वाणी माही, वर्ते मोहावेश में शुष्कज्ञान वह ताय'

क्रियाकाण्ड में ज्ञानमार्ग निषेधते... उसकी करुणा उपजे। करुणा उपजे, भाई! बापू! तेरे पर द्वेष नहीं है। परन्तु भाई! तेरी विपरीत मान्यता के फल, बापू! तुझे बहुत दुःख करेगा। अभी प्रसन्न और उत्साह से शुभभाव से धर्म होता है और शुभभाव ऐसा और... उसका उत्साह करे, बापू! आहाहा! (इसका फल कठोर आयेगा)।

शुद्ध पारिणामिक परमभाव... त्रिकाल परमभाव, भूतार्थभाव, सत्यार्थ भाव, पर्याय बिना का भाव। आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुव है न? तो उत्पाद-व्यय बिना का ध्रुव। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी का। उसमें उत्पाद-व्यय बिना का जो ध्रुव है, उस परमभाव की दृष्टि से देखें तो वह ध्रुव है। वह बन्ध का और मोक्ष का कर्ता नहीं है। आहाहा! मोक्ष के मार्ग का कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र का पाठ तो मुखाग्र याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुखाग्र है तो क्या हुआ? अर्थ समझना चाहिए न। यह तो हमेशा सुनते थे। दशलक्षणी पर्व में। दशलक्षणी। तत्त्वार्थसूत्र, परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए न। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। वह उस पूर्ण सत्य की बात की है। परन्तु जो ध्रुव सत् है, उसमें उत्पाद-व्यय नहीं है। नहीं तो उत्पाद-व्यय भी सत् है परन्तु वह सत् उत्पाद-व्यय, निश्चय से उत्पाद-व्यय का हेतु बिना ध्रुव है। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। निश्चय से तो उत्पाद है, वह भी व्यय के हेतु से नहीं है। उत्पाद है, वह ध्रुव के हेतु से नहीं है। व्यय, उत्पाद के हेतु से नहीं है। व्यय, ध्रुव के हेतु से नहीं है। ध्रुव, उत्पाद-व्यय के हेतु से नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है कहाँ? बापू! यह दिगम्बर के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। उसमें दिगम्बर में अर्थ करनेवाले को उल्टा घोटाला उठा। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने सब अर्थ बदल दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे होते हैं, वैसे किये हैं। आहाहा!

पर्याय में ऐसा शुभाशुभभाव होता है। शुभाशुभ बन्ध होने पर जन्म-मरण करता है और अनुभूति होने पर मोक्ष करता है। उसमें जन्म-मरण नहीं है और दोनों भाव का कर्ता ध्रुव नहीं है। ओहोहो! केवलज्ञान की पर्याय का भी कर्ता द्रव्य नहीं है। गजब बात है। केवलज्ञान की पर्याय में सारा लोकालोक ज्ञात होता है और सारा द्रव्य भी ज्ञात होता

है। इसे पूर्ण द्रव्य है, वैसे पर्याय में ज्ञात हुआ है परन्तु पर्याय में द्रव्य आया नहीं, उसका ज्ञान आया है। आहाहा! समझ में आया? एक बात।

निमित्त का विचार आया था। भगवान का केवलज्ञान है। सर्वविशुद्ध में—सिद्धान्त में लेख है कि लोकालोक को वह निमित्त है। क्या कहा? केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को निमित्त है और लोकालोक है, वह केवलज्ञान की पर्याय में निमित्त है। उसका अर्थ क्या? लोकालोक ने केवलज्ञान उत्पन्न किया, निमित्त ने? और केवलज्ञान की पर्याय ने लोकोलोक को बनाया है? अमरचन्द्रभाई! सर्वविशुद्ध में पीछे है। केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक को निमित्त कहने में आता है। देवीलालजी! सर्वविशुद्ध में पीछे, आहाहा! गजब, समयसार तो ऐसी घड़ी में लिखा गया है... गजब काम किया है! केवलज्ञान (के विरह) को भुला दिया है। आहाहा!

कोई कहता है कि केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को निमित्त कहने में आती है, इसका अर्थ क्या? केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक को बनाया है? और लोकालोक केवलज्ञान की पर्याय में निमित्त है, तब लोकालोक ने केवलज्ञान की पर्याय को बनाया है? वह है ऐसी वस्तु, बस! आहाहा! निमित्त है अर्थात् क्या परन्तु? केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है, ऐसा है तो क्या केवलज्ञान ने लोकालोक बनाया है? और लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त है तो लोकालोक ने केवलज्ञान की पर्याय को बनाया है? आहाहा! समझ में आया? कल आया था न? निमित्त नहीं आया था? जीव परिणाम को प्राप्त करके निमित्त... पुद्गल परिणाम की परिणति होती है और पुद्गल परिणति का निमित्त पाकर यहाँ विकार होता है। उसका अर्थ क्या? क्या कर्म के उदय ने विकार किया है? विकार किया तो उसने कर्मबन्ध की पर्याय की? आहाहा! इस गाथा का विवाद पहले से ऐसा है। बहुत वर्ष पहले। निमित्त प्राप्त करके ऐसा होता है। परन्तु निमित्त प्राप्त करके, इसका अर्थ क्या? विकारी परिणाम है और सामने कर्मबन्ध की पर्याय स्वयं से होती है। कोई आगे-पीछे नहीं है कि निमित्त आया और यहाँ कर्म की पर्याय हुई। ऐसा है? कि कर्म का उदय आया और यहाँ विकार बाद में हुआ, ऐसा है? वह वहाँ निमित्त है। विकार स्वयं से हुआ है।

पश्चात् उसका कर्ता कहाँ है? आहाहा! ऐसी वस्तु है, भाई! माने, न माने, स्वतन्त्र

जीव है। अनादि काल से सत्य की शरण में गया नहीं। सत् का शरण लिया ही नहीं, असत् का शरण लिया। शुभ और अशुभभाव और ऐसा और वैसा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय का ही शरण नहीं है। पर्याय को शरण तो द्रव्य का है। जो द्रव्य पर्याय को कर्ता नहीं, उस पर्याय को द्रव्य का शरण है। अमरचन्द्रभाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय को द्रव्य करता नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय को द्रव्य का शरण है। शरण का अर्थ? उसकी सन्मुखता की, वह शरण। आहाहा! सन्मुख (अर्थात्) दूसरा क्या? कहीं पर्याय द्रव्य में एक हो जाती है? पर्याय तो पर्याय में रहती है। पर्याय पर्याय में रहकर द्रव्य की श्रद्धा करती है। पर्याय पर्याय में रहकर द्रव्य का ज्ञान करती है। द्रव्य में मिलकर ज्ञान करती है? आहाहा! बापू! वीतरागमार्ग अलौकिक है। नागा बादशाह से आघा। नग्न मुनि जिन्हें बादशाह की दरकार नहीं। समाज में यह बात बैठेगी या नहीं? सुगठित रहेगी या नहीं? बात यह है। मानो, न मानो तुम्हारी मर्जी। समझ में आया? और माननेवाले भी बहुत हों तो यह सत्य है, ऐसा कुछ नहीं है। सत्य तो सत्य ही है।

ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया,... ऐसा कहा न कि बन्ध-मोक्ष की पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं है। तो प्रश्न किया। कि हे प्रभु, शुद्ध द्रव्यार्थिकस्वरूप शुद्धनिश्चयनयकर मोक्ष का भी कर्ता नहीं है,... आप तो कहते हो कि शुद्धनिश्चय से द्रव्यस्वभाव जो है, वह मोक्ष का कर्ता नहीं। तो ऐसा समझना चाहिए कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है? जब मोक्ष नहीं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है। शिष्य का प्रश्न है। शुद्धनिश्चय से तो मोक्ष ही नहीं है। यदि मोक्ष नहीं है तो मोक्ष के लिये प्रयत्न करना वृथा हो गया। समझ में आया? आप क्या कहना चाहते हो? आप कहते हो कि मोक्ष का और बन्ध का कर्ता भगवान नहीं है तो मोक्ष के लिये प्रयत्न करना नहीं रहता। क्योंकि मोक्ष है नहीं। मोक्ष आत्मा नहीं करता। द्रव्य में मोक्ष है? नहीं तो प्रयत्न करना वृथा रहा। इसका जवाब कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल २, बुधवार
दिनांक-२८-०७-१९७६, गाथा-६८, प्रवचन-४६

अनुभूति—जो शुद्ध आत्मा है, उसे अनुसरकर अनुभूति होना। निर्विकल्प परिणति को शुद्धात्मानुभूति कहते हैं। अपना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, उसकी अनुभूति-उसका अनुभव होना। उसके अभाव में-अनुभूति के अभाव में शुभ-अशुभ उपयोग से परिणामन करके... क्योंकि शुद्ध आत्मा वस्तु की ओर की शुद्धात्मानुभूति का अभाव है तो शुभाशुभभाव का भाव है। शुभ-अशुभ उपयोग से परिणामन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ कर्मबंध को करता है,... जन्मना और मरना, वह शुभाशुभ उपयोग के कारण से कर्मबन्ध होता है, उससे वह जीवन-मरण होता है।

और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर.... यहाँ बात यह कहनी है कि पर्याय में अनुभूति के अभाव के कारण, पर्याय में शुभ-अशुभभाव करके जो कर्मबन्धन हुआ, उससे जन्म-मरण करता है। और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर... भगवान शुद्ध आत्मा को निर्विकल्प अनुभूति द्वारा अनुभव करके अथवा शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर... शुद्धात्मानुभूति के अभाव में जो शुभाशुभभाव प्रगट है। उस शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर... आहाहा! चैतन्य वस्तु जो अबद्धस्वरूप है, परमार्थ से स्वयं अबद्धस्वरूप है, परन्तु उसकी पर्याय में जब शुद्धात्मानुभूति होती है, उससे शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है,... पर्याय में शुद्धात्मानुभूति की परिणति से पर्याय में मोक्ष करता है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है।

ऐसा होने पर भी, शुद्धात्मानुभूति के अभाव से शुभाशुभभाव करके पर्याय में जन्म-मरण होता है और शुद्धात्मानुभूति को प्रगट करने से-भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की ओर की निर्विकल्प वीतरागी परिणति को प्रगट करके मोक्ष को करता है। ये दोनों बातें पर्याय में होती हैं। समझ में आया? आहाहा!

तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर... त्रिकाल परमस्वभावभाव जो बन्ध में नहीं और मुक्ति में नहीं। वह तो त्रिकाली मोक्षस्वरूप ही है। शक्तिरूप मोक्षस्वरूप ही आत्मा है। आहा! उसमें-पर्याय में बन्ध और मुक्ति (है, वह) त्रिकाली मुक्तस्वभाव में नहीं है।

यहाँ तो ऐसा भी कहा है कि शुभ-उपयोग से तो शुभबन्ध होता है और उससे जन्म-मरण होते हैं। भले स्वर्गादि मिले; और शुद्धोपयोग से ही मुक्ति होती है। व्यवहार से परम्परा मुक्ति कहने में आती है, वह तो उपचार से कथन है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप है। उसकी अनुभूतिस्वरूप शुद्धोपयोग है। आहाहा! (उस) शुद्धोपयोग से मुक्ति होती है—ऐसा कहा है न? परन्तु यह पर्याय की बात की है। वस्तु जो त्रिकाल परम स्वभावभाव है, शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर... शुद्धद्रव्य जिस नय का प्रयोजन है, उस नय से देखने पर न बन्ध का कर्ता है और न मोक्ष का कर्ता है। यह वस्तु जो है, वह रागभावरूपी बन्ध का कर्ता भी नहीं और अनुभूति और निर्विकल्प शुद्धोपयोग का कर्ता भी नहीं और मोक्ष का भी कर्ता नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो! ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया, कि हे प्रभो, शुद्धद्रव्यार्थिकस्वरूप शुद्धनिश्चयनयकर मोक्ष का भी कर्ता नहीं है,... आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वरूप से मोक्ष का कर्ता नहीं तो ऐसा समझना चाहिए, कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है, जब मोक्ष नहीं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है। शुद्धनय से मुक्ति नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न करना भी रहा नहीं—ऐसा शिष्य का प्रश्न है। गाथा बहुत अलौकिक है। (समयसार की) ३२० गाथा की जयसेनाचार्य की टीका में यह गाथा ली है।

उसका उत्तर कहते हैं— क्या कहते हैं? भगवन्त! आप कहते हो कि शुद्धनय से, द्रव्यार्थिकनय से तो आत्मा, मोक्ष को भी नहीं करता; बन्ध नहीं करता—यह बात एक ओर रखो, परन्तु मोक्ष को भी नहीं करता तो मोक्ष का प्रयत्न करना वृथा हो गया। आत्मा, मोक्ष करता नहीं तो मोक्ष का (प्रयत्न) करना वृथा हुआ। समझ में आया?

उसका उत्तर—मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है,... पर्याय में जो मोक्ष है... वस्तुस्वरूप जो मोक्ष (स्वरूप) है, वह तो त्रिकाल है। अबन्धस्वरूप कहो, मोक्षस्वरूप कहो। कायम मोक्षस्वरूप, हों! असली त्रिकाली। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

ऐसा उत्तमस्वरूप जो बन्ध-मोक्ष की पर्यायरहित है, उसे दृष्टि में लेना, वह कितना पुरुषार्थ है! इस निर्विकल्प शुद्धपरिणति द्वारा, जिसमें पर्याय का बन्ध-मोक्ष नहीं, उसकी शुद्ध निर्विकल्प परिणति द्वारा दृष्टि में आता है। समझ में आया? पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। हम भी करते थे न, बापू! हम सब भी दुकान पर करते थे। 'पालेज',

सामायिक करते, परन्तु वह पर्यूषण में, हों! आठ दिन पर्यूषण आवे, तब शाम को प्रतिक्रमण, आठ दिन में चार उपवास (करते) तब, हों! संवत् १९६४-६५ के वर्ष। दीक्षा तो संवत् १९७० में (ली थी)। उस समय आठ दिन में चार उपवास करते, चौविहार, हों! चौविहार अर्थात् पानी भी नहीं (लेना)। दुकान में धन्धे पर बैठना पड़े।

मुमुक्षु : उस दिन का पुण्य अभी काम आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भ्रमणा थी। आहा! ऐसा मानते थे कि धर्म करते हैं। आहाहा! वह तो साधारण शुभभाव था। मिथ्यात्वसहित, गृहीत मिथ्यात्व (था)। स्थानकवासी की श्रद्धा थी न! वह तो गृहीत मिथ्यात्व था। हम तो (संवत्) १९६४ के वर्ष से तो शास्त्र पढ़ते थे। १९६५ के वर्ष से तो रात्रि के आहार-पानी का त्याग है। १९६५ के वर्ष से रात्रि में आहार-पानी नहीं लेते। दुकान पर भी नहीं लेते थे। यह सब गृहीत मिथ्यात्व की भूमिका में ऐसा शुभभाव था। आहा...!

यह चीज तो... आहाहा! कहते हैं कि जिसकी पर्याय में बन्ध-मोक्ष है, उस द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं। आहाहा! अथवा द्रव्य जो त्रिकाली वस्तु है, वह बन्ध-मोक्ष की करती नहीं। आहाहा! तो फिर शिष्य का प्रश्न है कि मोक्ष का करती नहीं और शुद्धनय से तो मोक्ष होता नहीं तो फिर शुद्धनय से मोक्ष का प्रयत्न करना वृथा हो गया। शिष्य का यह प्रश्न है।

उत्तर (ऐसा है)। **मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है,...** पर्याय में राग का बन्ध हो तो उसका अभाव करके बन्धपूर्वक मोक्ष होता है। पर्याय में बन्धभाव है तो उस बन्ध का अभाव करके मोक्ष होता है। **और बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं,...** आहाहा! त्रिकाली वस्तु को निश्चय से तो बन्ध है ही नहीं। बन्ध क्या? वह तो पर्याय में बन्ध है। समझ में आया? आहाहा!

बाहर की चीजों का आकर्षण है, तब तक तो अज्ञानभाव है। वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि बन्ध है, वह मोक्षपूर्वक होता है, परन्तु वह तो पर्याय में बन्ध है तो मोक्षपूर्वक होता है। वस्तु में निश्चय से तो बन्ध नहीं। वस्तु में बन्ध कैसा? द्रव्य में बन्ध हो, तब तो उसका अभाव हो जाए। समझ में आया? पर्याय में बन्ध होता है तो पर्याय में विकारदशा उत्पन्न होती है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! वस्तु जो है, वह

यदि निश्चय से बन्धरूप हो तो उसका अर्थ क्या हुआ ? कि वस्तु ही बन्ध में आ गयी, तो वस्तु ही (रहती) नहीं-परन्तु ऐसा नहीं है। निश्चय से वस्तु में बन्ध है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान रखे तो समझ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखे तो समझ में आये-बात सत्य है। आहाहा! अरे! इस कब समय मिले ? भाई! आहाहा! जन्म-मरण करके देखो न यह! आहाहा! हड़के कुत्ते से मनुष्य मर जाता है। उसे बहुत दुःख होता है, बहुत दुःख। उस समय उसे इतना दुःख होता है कि कहीं चैन नहीं पड़ती। आहाहा! पागल कुत्ता काटता है न? आहाहा! यह (अज्ञानी) पागल है, कहते हैं। राग की एकताबुद्धि (धरनेवाला) पागल है।

भगवान आत्मा निश्चय में बन्धपूर्वक हो, तब तो वस्तु का ही अभाव हो जाये, वस्तु में तो बन्ध है नहीं। आहा! है? बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं, इस कारण बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है। पर्याय में जो बन्ध का अभाव होकर होता है, वह तो द्रव्य में है नहीं। द्रव्य में बन्ध नहीं तो बन्ध का अभाव करके मोक्ष (करना), वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यह तो क्या वस्तु?

ज्ञायकभाव, स्वभावभाव...! प्रवचनसार २०० गाथा में लिया है न? चाहे जिस प्रकार से रागादि हुए, वस्तु तो ज्ञायकभावरूप रही है। आहाहा! प्रवचनसार २०० गाथा में है। प्रवचनसार की २०० गाथा में है कि (वस्तु) तो ज्ञायकरूप ही रही है। उसमें बन्ध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं। वस्तु में क्या? ऐसी वस्तु की दृष्टि करना -ऐसा कहा, उसमें कितना पुरुषार्थ है? समझ में आया?

जो वस्तु में बन्ध-मोक्ष नहीं, (उसमें) पर्यायदृष्टि उड़ा दी। त्रिकाली भगवान आत्मा अस्तित्वपदार्थ है न! अस्ति-सत्तारूप भाव है और वह ज्ञायकभावरूप सत्ता भाव त्रिकाल है। उसमें बन्ध और मोक्ष कहाँ आया? वह तो पर्याय में बन्ध और मोक्ष है। आहा! कितनी बात की है! पर्यायबुद्धि उड़ाने को, द्रव्यबुद्धि कराने को (कहते हैं कि) द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो धीर का काम है, बापू! आहाहा! जिस वस्तु में बन्ध और मोक्ष नहीं, पर्याय का बन्ध-मोक्ष (है); द्रव्य में नहीं। समझ में आया? वह द्रव्यदृष्टि करना, वह कहीं शुभ उपयोग से दृष्टि होती है? आहाहा!

मुमुक्षु : होती तो नहीं है, रुकती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय रुकती है। द्रव्य में कुछ नहीं। आहा!

यहाँ तो स्पष्टीकरण यह आता है कि जिसमें बन्ध-मोक्ष नहीं, ऐसी चीज़, उस चीज़ को पकड़ना, वह क्या शुभराग पकड़ सकता है? समझ में आया? वह तो शुद्ध उपयोग से ही पकड़ में आता है। आहा! शुद्ध उपयोग है पर्याय, परन्तु उसका ध्येय पूरा द्रव्य है। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने का यह उपाय है। आहा! शरीर युवा हो, रूपवान हो, पैसा पाँच-पचास लाख हो, कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र ठीक हो तो मानो हमें ठीक है। अरे! प्रभु! कहाँ है? बापू! प्रभु! तू कहाँ रुक गया? आहा!

मुमुक्षु : व्यवहार की अपेक्षा से ठीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की अपेक्षा भी अठीक है। मोक्षमार्ग, वह व्यवहार है, उसकी अपेक्षा से तो वे अठीक हैं। आहा! मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय, व्यवहार है। आहाहा!

डॉक्टर ने अवधि दी है, अढ़तालीस घण्टे ध्यान रखना। आहाहा! अब उस स्थिति में अढ़तालीस घण्टे किस प्रकार निकालना? लोगों को ऐसा हो गया, हाय... हाय...! क्या होगा? क्योंकि वह तो अढ़तालीस घण्टे में देह तो छूट जायेगी। अढ़तालीस घण्टे में क्या होगा? आहा! यह राग की एकता की पीड़ा है।

मुमुक्षु : शरीर की पीड़ा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की पीड़ा नहीं। शरीर को तो स्पर्श भी नहीं करता। आहा! शरीर मेरा, यह भी कहाँ खबर है? आहा! अनादि का पागल है। इसे मिथ्यात्व का हड़किया कुत्ते ने काटा है। आहाहा! इसे परपदार्थ की अनुकूलता में उत्साह (आता है), यह सब हड़किया कुत्ता है, पागल कुत्ता है। इसे छह लड़के हैं, दो करोड़ रुपये, बड़ी आमदनी है, छहों बड़े लोहे जैसे हैं। आहा! किसके पुत्र? बापू! अरे!

जहाँ निर्मल परिणति भी द्रव्य की नहीं.. आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय में है, भगवान! आहाहा! बापू! तू कौन है? आहाहा!

तू कहाँ है? तुम कौन हो? आहा! इसके बाद ६९ (गाथा में) कहेंगे। हे आत्मराम! टीका में है, हों! हे आत्मन्! हे जीव! ६९ में है, भाई! पहली लाईन है न? उस ओर की पहली, ऐसे तीसरी लाईन है। हे आत्मन्! हे जीव! अर्थ किया है, हे आत्मराम! आहाहा! 'निज पद रमे सो राम कहिये।' आनन्द का नाथ आनन्द में रमे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! आनन्द का नाथ आत्मा में रमे तो आत्माराम कहते हैं। राग में रमे, वह हराम आत्मा है। आहाहा! वह पर्याय में है। हराम और राम की सब क्रीड़ा पर्याय में है। आहाहा!

आचार्य द्रव्यदृष्टि कराने के लिये द्रव्य का स्वरूप वर्णन करके वहाँ दृष्टि लगाने को पर्याय को द्रव्य नहीं करता—ऐसा कहते हैं। करता नहीं, वहाँ नजर डाल न! आहाहा! समझ में आया? द्रव्य, पर्याय को करता नहीं। ओहोहो! यह तो अभी परद्रव्य को करना (-ऐसा मानता है)। मूल बात तो यह है कि निमित्त का करना है, वह स्थापित करना है। निमित्तकर्ता है न? निमित्तकर्ता। इस बात को स्थापित करके इसे कहना है कि पर का कर्ता न माने, उसकी बात मिथ्या है। इस प्रकार, मूल तो ऐसा कहना है, हों! अरे! भगवान!

पर की क्रिया जिस काल में होती है, उस समय अज्ञानी के योग और राग का वह कर्ता होता है। कम्पन और इच्छा राग का। अतः वह इच्छा और कम्पन (निमित्त कहलाते हैं)। पर की पर्याय तो उस काल में उसके कारण हुई है। उसमें यह योग और विकल्प का कर्ता अज्ञानी आत्मा है। वह उसका निमित्तकर्ता कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं है। आहा! निमित्त है, इतना कहने में आता है। और धर्मी तो, निज स्वभाव की दृष्टि है, इस कारण अपने सम्यग्ज्ञान में परचीज़ निमित्त पड़ी। ऐसे निमित्त हुआ। अज्ञानी ऐसे निमित्तकर्ता हुआ। आहाहा!

हम निमित्त तो हैं या नहीं? ऐसा हमारे एक कहते थे। है न, डेवरभाई? यह डेवरभाई नहीं? गाँधी के। यहाँ बड़े प्रधान थे न? दिल्ली में बड़े प्रधान थे। हम जिस दिन पहली बार दिल्ली गये, उस दिन बड़े प्रधान थे। व्याख्यान में आते थे। लोगों को ऐसा लगता कि ऐसे बड़े प्रधान (सुनने आते हैं)? वहाँ तो हमारे बहुत बार आते हैं। रामजीभाई उनके गुरु थे, रामजीभाई के शिष्य थे। फिर बड़ी पदवी हो गयी। आहा! हम

निमित्त तो हैं न ? ऐसा वे कहते थे। निमित्त होना, इसका अर्थ क्या ? जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय होती है, उस समय निमित्त होता है, तो निमित्त होना उसमें कहाँ आया ? तब तो निमित्त कहलाता है। आहाहा ! निमित्त हो तो वहाँ होता है, इसका अर्थ क्या ? इसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जो शुद्धनिश्चयनय से बन्ध होता, तो हमेशा बँधा ही रहता,... आहाहा ! कभी बन्ध का अभाव न होता। इसके बारे में दृष्टान्त कहते हैं—कोई एक पुरुष साँकल से बँध रहा है, और कोई एक पुरुष बन्ध रहित हैं, उनमें से जो पहले बँधा था, उसको तो 'मुक्त' (छूटा) ऐसा कहना, ठीक मालूम पड़ता है... बँधा था, वह छूटा—ऐसा कहना वह ठीक मालूम होता है। और दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको जो 'आप छूट गये' ऐसा कहा जाय, तो वह क्रोध करे,... अरे ! क्या कहते हो ? हम बँधे थे कि छूटा—ऐसा कहते हो ? हम जेल में गये थे तो छूटा ऐसा कहते हो ? आहा ! इसका अर्थ कि हमने कोई गुनाह किया था ? गुनाह किया था, जेल में गये थे, तो अब छूटे, इतना सब निश्चित हो जाता है। हम तो कभी बँधे ही नहीं। कभी गुनाह करके जेल में कभी गये ही नहीं। हमें छूटे ऐसा तुम क्या कहते हो ? आहा ! टीकाकार ने भाषा में कोप (शब्द) लिया है, हों ! तदा कोपं करोति ऐसा शब्द है। संस्कृत टीका में है। है ?

ऐसा कहा कहा जाय, तो वह क्रोध करे, कि मैं कब बँधा था, सो यह मुझे 'छूटा' कहता है,... क्या मैं पहले जेल में गया था तो तुम छूटा कहते हो ? बँधा होवे, वह छूटे, इसलिये बँधे को तो मोक्ष कहना ठीक है,... समझ में आया ? राग से बँधा है, वह पर्याय में मुक्त हुआ—ऐसा कहना वह ठीक है। पर्याय में राग से बँधा है तो राग से छूटा—ऐसे पर्यायवाले को कहना, वह तो ठीक है। और बँधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते हैं ? आहाहा !

उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनयकर बँधा हुआ नहीं है,... आहाहा ! वस्तु-भगवान पूर्णानन्द वस्तु अस्ति, तत्त्व महासत्ता, वह चीज़ तो कभी बँधी ही नहीं। आहाहा ! वह चीज़ बँधे तो इसका क्या अर्थ हुआ ? कि राग में बँधे तो अरागी पर्याय रुक गयी। ऐसे जीव बँधे तो जीवतत्त्व का ही अभाव हो जाये। समझ में आया ? क्या कहा ? राग से बँधा हो, तब तो अरागी पर्याय रुक गयी। समझ में आया ? अरागी रही नहीं; इसी

प्रकार यदि वस्तु बँध जाये तो वस्तु रहती नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भगवान!

लोगों ने स्थूल करके वापस ऐसा कर दिया है कि व्यवहार परम्परा मोक्ष का मार्ग है न! अरे! भगवान किसने कहा? यह तो जिसे निश्चय अनुभव हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है, ज्ञान, चारित्र, शान्ति (प्रगट हुए हैं), उसके व्यवहार को परम्परा का आरोप देकर मुक्ति का कारण कहा है; परन्तु जिसे अभी निश्चय ही है नहीं, अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप राग से भिन्न है—ऐसा अनुभव नहीं, दृष्टि नहीं, आश्रय नहीं, उसे तो अकेले व्यवहार का आश्रय है। वह व्यवहार परम्परा मुक्ति का कारण है? समझ में आया? ऐसा व्यवहार तो अनन्त बार किया। अनन्त बार व्यवहार किया। नौवें ग्रैवेयक गया तो वहाँ के अनन्त पुद्गलपरावर्तन शास्त्र में लिखे हैं। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त पुद्गल परावर्तन किये। आहाहा! समझ में आया?

एक पुद्गलपरावर्तन के भाग में अनन्त-अनन्त भव होते हैं। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त भव होते हैं। ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन नौवें ग्रैवेयक के किये। अनन्त-अनन्त काल है। आहाहा! इसके शुभभाव की दशा तो बहुत ऊँची थी। इस कारण स्वर्ग में गया। मिथ्यादृष्टि की भूमिका में अन्तिम हद का शुभभाव (हुआ), उससे तो कोई लाभ हुआ नहीं। मिथ्यात्व रहा (तो) जन्म-मरण रहे। आहाहा! सम्यक् अनुभव के बिना जो व्यवहार है, वह (व्यवहार ही नहीं) अज्ञानी को तो व्यवहार ही कहाँ है? निश्चय हुआ हो, उसे राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहा परन्तु जिसे निश्चय ही नहीं हुआ, उसे व्यवहार कहाँ से आया? वह तो पूरा आत्मा ही उसरूप हो गया है। आत्मा उसरूप हुआ नहीं—ऐसा अनुभव हुआ है, उसके राग को परम्परा मुक्ति के कारण का आरोप किया जाता है। देवीलालजी! इसी बात है, भाई!

भगवान परमात्मा जिनेश्वर तो ऐसा कहते हैं। वह इसमें कहा न? जिणवरु एउँ भणेइ आहाहा! जीव जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष करता नहीं—ऐसा जिनवर कहते हैं। उसे जीव कहते हैं। आहाहा! उसे जीव कहकर जिनवर कहते हैं। आहाहा! यह शब्द है न? ६८ (गाथा) ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ—उस जीव को जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जो बन्ध-मोक्ष करे नहीं,

जन्म-मरण करे नहीं, उस जीव को जिनेश्वरदेव ने जीव कहा है। आहाहा! है ?

जिउ परमत्थें जोड़या जिणवरु एउँ भणेइ। आहाहा! तीन लोक के नाथ, इच्छा बिना वाणी में ऐसा आया, हे योगी! इस जीव को जिनवर, जीव कहते हैं। पर्याय में बन्ध-मोक्ष करे वह जीव नहीं, वह तो व्यवहार पर्याय हुई, निश्चय जीव नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात है। बन्ध-मोक्ष करे नहीं, उपजे-मरे नहीं, वह जीव, वह परमार्थ से, हे योगी! उसे हम जीव कहते हैं। और '**जिणवरु एउँ भणेइ।**' तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थकर ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! उसे हम जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष और जन्म-मरण करे नहीं। पर्याय में बन्ध-मोक्ष होता है, वह तो व्यवहार आत्मा हो गया; परमार्थ आत्मा नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

निश्चयमोक्षमार्ग भी पर्याय है तो वह भी व्यवहार हो गया। त्रिकाल द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं—ऐसे जीव को जीव कहते हैं, तो जब मोक्ष की पर्याय हुई तो वह व्यवहार आत्मा हो गया। आहाहा! समझ में आया? प्रभु का कथन ऐसा है, भाई! आहाहा! वीतराग **जिणवरु एउँ भणेइ।** आहाहा! सन्त भी कहते हैं न! यह दिगम्बर सन्तों की ध्वनि तो देखो! जिनवर ऐसा कहते हैं। अनन्त जिनवर, एक जिनवर नहीं लिये। अनन्त जिनवर ऐसा कहते हैं कि जो जीव जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष न करे, उसे हमें जीव कहते हैं। आहाहा! उसे हम परमार्थ से आत्मा कहते हैं। आहाहा!

पर्यायबुद्धि छुड़ाने और द्रव्य की ओर झुकाव करने के लिये यह बात कहते हैं। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग है, उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। निश्चयबन्धमार्ग—राग है, वह तो आश्रय करने योग्य नहीं परन्तु पर्याय में मोक्षमार्ग होता है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग में आश्रय करनेयोग्य त्रिकाली जीव है, जो बन्ध-मोक्ष से रहित है, वह। निश्चयमोक्षमार्ग में निश्चयमोक्षमार्ग का भी आश्रय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, हीराभाई! आहाहा!

अनन्त जिनवर अर्थात् वीतरागी प्रधान परमात्मा। जिन तो चौथे-पाँचवें (गुणस्थानवर्ती को भी) कहते हैं। ये तो जिनवर—ऐसा शब्द है। जिनवर वीतराग परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, वे ऐसे जीव को जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष नहीं करता। आहाहा!

जो पर्याय को नहीं करता, उसे जिनवर जीव कहते हैं। अरे! भगवान! यह बात कहाँ है? बापू! देवीलालजी! यह तीन लोक के नाथ के घर की बातें हैं। भाई! अरे रे!

पाँचवाँ काल तो (भी) जीव तो है, वह है। चौथे काल में दूसरा जीव और पाँचवें काल में (दूसरा जीव) ऐसा है कहीं? पाँचवें काल में भी भगवान उसे जीव कहते हैं। आहाहा! अनन्त जिनवर उसे जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष की पर्याय को, जन्म-मरण को करे नहीं, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? लो, इस पर्याय को जीव नहीं कहें? मोक्षमार्ग की पर्याय को जीव नहीं कहें? मोक्ष को जीव नहीं कहें? वह व्यवहार जीव है। पर्यायवाला जीव अर्थात् पर्याय, अर्थात् व्यवहार; द्रव्य अर्थात् निश्चय। यह सिद्धान्त है। आहाहा!

भगवान! तेरी बलिहारी है, नाथ! तू कोरा रहकर पर्याय में नहीं आता। आहाहा! ऐसे जीव को परमात्मा कहते हैं कि हम आत्मा कहते हैं। हे आतमराम! वहाँ नजर कर! जो द्रव्य, बन्ध और मोक्ष को करता नहीं, जो जीव, मोक्ष के परिणाम को करता नहीं—ऐसा जिनवर कहते हैं—ऐसे जीव को हम जीव कहते हैं। कहते हैं कि वहाँ नजर कर! अमरचन्दभाई! आहाहा! गजब बातें हैं, बापू! दुनिया को ऐसा लगता है कि ऐसा क्या! भाई!

मुमुक्षु : मीठा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मीठा है, बापू!

मुमुक्षु : जीव और मोक्ष के बीच कोई सम्बन्ध है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, पर्याय में है; द्रव्य, द्रव्य में है। द्रव्य में पर्याय का अभाव है—ऐसा सम्बन्ध है। समझ में आया? पर्यायधर्म का द्रव्यधर्म में अभाव है। द्रव्यधर्म में पर्यायधर्म का अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा कहीं तो लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है। आहाहा! क्या प्रभु की शैली!

जिनवर उसे जीव कहते हैं। आहाहा! ऐसा सन्त आढ़तिया होकर जिनवर का माल प्रसिद्ध करते हैं। आढ़तिया कहते हैं न? आढ़तिया होते हैं न? माल बताते हैं।

सन्त, दिगम्बर सन्त आदृतिया होकर जिनवर ऐसा माल कहते हैं—ऐसा कहते हैं। तुझे रुचता है? आहाहा! आहाहा! तू त्रिकाल भगवानस्वरूप है, सदृश वस्तु है, सामान्य है, उसमें विशेष का तो अभाव है—ऐसा कहते हैं। जो सामान्य चीज़ है, वह विशेष को नहीं करती। आहाहा! गजब बात है!

मुमुक्षु : करती नहीं अर्थात् छूती भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। यह अधिकार बहुत आया। समयसार ४९ गाथा। व्यक्त-अव्यक्त को जानने पर भी व्यक्त को आत्मा स्पर्श नहीं करता। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। यह द्रव्य और पर्याय का एक समय में साथ में ज्ञान होने पर भी अव्यक्त, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य, मोक्ष की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! और पर्याय, द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। १९ में अलिंगग्रहण में आया है। १९वाँ बोल, बीस बोल में १९वाँ बोल। पर्याय, द्रव्य का स्पर्श नहीं करती। अर्थावबोधरूप विशेष पर्याय का आलिंगन किये बिना द्रव्य शुद्ध है। आहाहा! पर्याय का आलिंगन किये बिना द्रव्य को शुद्ध कहते हैं। आहाहा! देखो न, कितना मेल है!

४७ (नय) में शुद्धनय। निर्मल पर्यायसहित जो द्रव्य को देखो तो उसे अशुद्धनय कहते हैं। व्यवहार हुआ न? आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान कहते हैं ऐसा सुनो, भाई! आहाहा! क्या कहा? कि मोक्ष की पर्याय जो है, केवलज्ञान की जो पर्याय है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! प्रभु! पूर्ण हो गयी न? परन्तु है पर्याय न!

मुमुक्षु : दोनों के बीच अत्यन्ताभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव है। चार प्रकार के अभाव, वह नहीं। प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, वह नहीं। यह तो अध्यात्म का (अभाव)। राग में और आत्मा में अत्यन्त अभाव है, वह दूसरी चीज़ है। इन चार अभाव से दूसरी चीज़ है, अध्यात्म का (अभाव है)। राग में और आत्मा में अत्यन्त अभाव है। समयसार में आता है। आहाहा! इन चार अभाववाली चीज़ नहीं, यह तो अध्यात्म की चीज़ है। वैसे द्रव्य में पर्याय नहीं, उसका अभाव है। यह अध्यात्म का अभाव है। गिरधरभाई! यह सब वापस

आये, (ये) कल सबेरे नहीं थे। आहाहा! भगवान! थोड़ा परन्तु सत्य यह है। समझ में आया? आहाहा!

जिनवर अनन्त तीर्थकर दिव्यध्वनि में ऐसा कहते हैं कि हम उसे जीव कहते हैं कि जो मोक्ष की पर्याय तो करे नहीं, उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! परमार्थ जीवद्रव्य आत्मवस्तु मूलवस्तु। आहाहा! निश्चय जीव, निश्चय आत्मा। जिसे नियमसार में ३८ गाथा में कहा है न? यह त्रिकाली भगवान है, वह निश्चय आत्मा है। आहाहा! देखो न, शैली तो देखो! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो! ओहोहो! चारों ओर से सत्य खड़ा होता है। वहाँ ऐसा कहा। समझे? आहाहा! क्या कहा अन्तिम? ३८ (गाथा), निश्चय आत्मा उसे कहते हैं। ओहो! जो परमपारिणामिकभाव स्वभाव यहाँ कहा न? **पारिणामिक परमभाव ग्राहक...** उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! उसे यहाँ जीव कहते हैं। आहाहा!

भगवान! तुझे एक बार राग को भूलना पड़ेगा। दुनिया को भूलना पड़ेगा, पूरी दुनिया को ही भूलना पड़ेगा। अरे! तुझे पर्याय को भूलना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया? पर्याय वहाँ काम करेगी कि जब पर्याय को भूल जायेगा तब। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय को भूल जाएगा तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय तो ऐसा जानती है कि मैं त्रिकाल निरावरण हूँ। यह ३२० (गाथा में) आया है न? लो, यही आया। मोक्ष का मार्ग क्षयोपशम ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं, तो भी ध्याता पुरुष मोक्ष के मार्ग को ध्याता नहीं। आहाहा! तो भी ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय... जो सकल निरावरण त्रिकाल अखण्ड वस्तु, (जिसमें) पर्याय का भेद नहीं। एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। यह क्या कहते हैं? आहाहा!

ज्ञान की पर्याय में जिसका प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। ज्ञान की पर्याय में जिसका प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। वह चीज़ आती नहीं परन्तु प्रतिभास होता है। आहाहा! समझ में आया? अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। पर्याय ऐसा जानती है कि मैं यह हूँ। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि जीव यह है। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। आहाहा! देखो तो! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय स्वयं पर्याय को भूल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय कहती है कि यह मैं हूँ, मैं इसका ध्यान करती हूँ। आहाहा! यह मैं हूँ - ऐसा कहा न? देखो, ध्याता पुरुष ऐसी भावना करता है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, जो यहाँ जीव कहा वह; वह प्रत्यक्ष प्रतिभासमय एकरूप है। अखण्ड है, एकरूप है। आहा! जिसमें पर्याय का भेद नहीं—ऐसा प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ परन्तु ऐसा भाता नहीं कि खण्ड ज्ञानरूप हूँ। मोक्षमार्ग की पर्याय का ध्यान नहीं करता, ऐसा कहते हैं। मैं मोक्षमार्ग की (पर्याय) हूँ—ऐसा नहीं; मैं तो यह हूँ। ऐसी बातें हैं, भगवान! क्या करे? आहा!

महा परमात्मा प्रभु तू है, भाई! आहाहा! क्या बात की है! उसे हम जीव कहते हैं। तीन लोक के नाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि उसे हम जीव कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, पर्याय ऐसा जानती है कि जो यहाँ जीव कहा, वह मैं हूँ। समझ में आया? यहाँ जिनवर ने जो कहा कि यह जीव, वह मोक्ष की पर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय को नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं। ध्याता उस जीव को ध्याता है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बातें हैं। किसी समय ऐसी (बात) निकलती है। आहा! थोड़ी तो मुम्बई में चली थी। ३२० गाथा। आज अधिक-अधिक आता है। यहाँ जीव कहा न? वीतराग ने इसे जीव कहा, पर्याय भी उस जीव को ध्याती है कि यह मैं हूँ। पर्याय ऐसा कहती है कि यह जीव मैं हूँ। आहा! अर्थात् मैं ही यह हूँ, ऐसा। आहाहा! ऐसा हुआ न? हिम्मतभाई! पर्याय कहती है कि यह मैं हूँ। वीतराग कहते हैं कि यह जीव कहलाता है जो जीव मोक्ष की पर्याय को भी करता नहीं, उसे हम जीव कहते हैं।

धर्मी की पर्याय ऐसा जानती है... आहाहा! त्रिकाली अखण्ड एकरूप चीज है, वह मैं हूँ। जिनवर ने ऐसा कहा कि यह जीव है तो पर्याय कहती है कि मैं यह जीव हूँ। आहाहा! भगवान ने जिसे जीव कहा, उस जीव को जो पर्याय (जीव) मानती है, आहाहा! उसने आत्मा को माना। समझ में आया? लो, समय हो गया, हों!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ३, गुरुवार
दिनांक-२९-०७-१९७६, गाथा-६८, प्रवचन-४७

परमात्मप्रकाश चलता है। ६८ गाथा। अन्तिम भाव है, देखो! उसी प्रकार से... यहाँ है। है? अन्तिम की छठी लाईन है। पहले क्या कहा? दृष्टान्त दिया। कोई प्राणी साँकल से बँधा हुआ हो, उसे छूटा कहना उचित है, परन्तु जो बँधा ही नहीं, उसे छूटा हुआ कहना, वह अनुचित है। समझ में आया? साँकल का दृष्टान्त है। साँकल समझ में आती है? साँकल। यहाँ हिन्दी में है। कोई प्राणी साँकल से बँधा हुआ हो, उसे छूटा, ऐसा कहना, वह यथार्थ है, परन्तु जो साँकल से बँधा ही नहीं, उसे छूटा कहना, वह उचित नहीं। यह तो दृष्टान्त हुआ।

उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनय से बँधा नहीं... आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु जो स्वभाव चिदानन्द है, त्रिकाली द्रव्यभाव स्वभावभाव है, वह तो कभी बँधा ही नहीं। वस्तु क्या बँधे? समझ में आया? सूक्ष्म अधिकार है। एक समय में चिदानन्द भगवान द्रव्यस्वभाव पूर्णानन्द का नाथ है, उस चीज़ को बन्ध कहाँ और मुक्ति कहाँ? समझ में आया? आहाहा! वस्तुस्वभाव जो द्रव्यस्वभाव पर्याय बिना का, पर्याय बिना का जो द्रव्यस्वभाव है, वह बँधा ही नहीं है। वह तो मुक्तस्वरूप त्रिकाल है। शक्तिस्वरूप मुक्तस्वरूप ही है। सूक्ष्म बात है, भगवान! वह चीज़ जो दृष्टि का विषय है, वह तो कभी बँधी भी नहीं, कभी मुक्त भी होती नहीं। है?

इस कारण से मुक्त कहना ठीक नहीं... आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु, जो १४-१५ गाथा में कहा न? अबद्धस्पृष्ट। जो अबद्धस्वरूप है। वह बँधी हुई चीज़ नहीं। वस्तु बँधे कैसे? पर्याय में बन्ध और मुक्ति है। समझ में आया? आहाहा! पर्याय / वर्तमान दशा, जो व्यवहारनय का विषय है, उस पर्याय में बन्ध और पर्याय में मुक्ति है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने पर्याय से क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना पर्याय में है न! ध्रुव में करना है? मोक्षमार्ग तो पर्याय है, वह अशुद्धनय का विषय है। ध्यान रखना! पर्याय है न? मोक्षमार्ग भी पर्याय है।

क्योंकि बन्धमार्गभाव, वह भी पर्याय है। वे दोनों अशुद्धनय से हैं। अशुद्ध का अर्थ पर्याय से है, पर्याय का अर्थ व्यवहार से है। सूक्ष्म है, भगवान् !

वस्तु जो है, वह तो निष्क्रिय—परिणमन बिना की चीज़ है। सूक्ष्म अधिकार है। आहाहा! भगवान् आत्मा जो उत्पाद-व्यय की पर्याय से रहित ध्रुव है, वह तो बन्धन में भी नहीं और मोक्ष में भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! शुद्धनिश्चयनय से बँधा नहीं... वस्तु बँधे तो वस्तु का अभाव हो जाये। समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई! सम्यग्दर्शन का विषय बन्ध और मोक्ष की पर्याय से रहित है। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है न? पण्डितजी! बंशीधरजी! परमात्मप्रकाश है? पण्डितजी को कहता हूँ। है, पुस्तक तो है न? समझ में आया?

६८ गाथा ऐसी है कि जीव को जन्म नहीं, मरण नहीं, बन्ध नहीं, मोक्ष नहीं। उसे जिनवर जीव कहते हैं। ६८ गाथा। 'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ' जिसमें नहीं उत्पाद होता, न व्यय होता है। आहाहा! 'बंधु ण मोक्खु करेइ' बन्ध नहीं करता, मोक्ष नहीं करता। हे योगी! हे सन्त! गुरु कहते हैं, हे शिष्य! 'जोइया' योगी! आहाहा! 'जिणवरु एउं भणेइ' मूल गाथा है। उसे जिनवर, जीव कहते हैं। आहाहा! कौन जीव? क्या? निश्चय आत्मा त्रिकाली आत्मा, वह जीव; पर्याय नहीं।

मुमुक्षु : जीव कितने प्रकार के हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक व्यवहार जीव और एक निश्चय जीव, ऐसे दो प्रकार के हैं। जीव के दो प्रकार। (त्रिकाली को निश्चय जीव कहते हैं) और उत्पाद-व्यय पर्यायवाले को व्यवहार जीव कहते हैं।

मुमुक्षु : एक जीव में दो जीव कहाँ से आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जीव। पर्याय और द्रव्य के दो भेद हैं। पर्याय और द्रव्य दो भेद हैं। पर्याय, द्रव्य में आती नहीं और द्रव्य, पर्याय में आता नहीं। सूक्ष्म है, भगवान् !

सर्वज्ञ वीतराग जिनवर ऐसा कहते हैं कि हम उसे जीव कहते हैं—निश्चय जीव, वास्तविक जीव अर्थात् यथार्थ आत्मा, हम उसे कहते हैं कि जिसे उत्पाद-व्यय नहीं है, जन्म-मरण नहीं है, बन्ध-मोक्ष नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

बन्ध और मोक्ष, उत्पाद-व्यय तो पर्यायदृष्टि में है, वह पर्यायनय के विषय में वे है। द्रव्यनय के विषय में वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'जिणवरु एउँ भणेइ' आहाहा! अनन्त जिनवर ऐसा कहते हैं कि परमार्थ जीव उसे कहते हैं, जो सम्यग्दर्शन का विषय है; सम्यग्दर्शन है पर्याय, परन्तु उसका विषय ध्रुव द्रव्य है। आहाहा! वह द्रव्य जो त्रिकाली ध्रुव है, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें बन्ध-मोक्ष नहीं, उसे जिनवरदेव परमार्थ भगवान आत्मा कहते हैं। समझ में आया? भाई! आहाहा! पर्यायवन्त जो पर्याय है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। चाहे तो मोक्ष या मोक्ष का मार्ग हो, वह व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षु : मोक्ष, वह व्यवहार और व्यवहार खोटा, इसलिए मोक्ष खोटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार खोटा किस अपेक्षा से? वह तो त्रिकाली की अपेक्षा से अभूतार्थ है, परन्तु स्वयं की अपेक्षा से तो भूतार्थ है। आहाहा! सूक्ष्म विषय है, यह गाथा ही बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : झीणो अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म।

मुमुक्षु : सूक्ष्म अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बहुत ही लक्ष्य रखकर सुननेयोग्य यह चीज़ है। आहाहा! अनन्त काल में यह चीज़ क्या है, वह इसने लक्ष्य में ही नहीं ली। जो भगवान आत्मा एक समय में जो ध्रुव है, उस ध्रुव में तो उत्पाद-व्यय भी नहीं। उत्पाद-व्यय तो पर्याय में है, तथा बन्ध और मोक्ष भी पर्याय में है। आहाहा! गजब बातें! अभी तो लोग बाहर में व्यवहार करे और दया, दान से मुक्ति (मानते हैं)। वह तो कहीं रह गया, प्रभु!

यहाँ तो भगवान आत्मा एक समय में उत्पाद-व्यय जो है, (उससे रहित है)। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' यह तो तत्त्वार्थसूत्र में आता है। दसलक्षणीपर्व में आता है, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय और ध्रुव, तीनों मिलकर प्रमाण का विषय है, प्रमाण का विषय है। और उसके दो भाग करके (कहते हैं), त्रिकाली द्रव्य जो है, वह बन्ध-मोक्ष से रहित है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है और बन्ध-मोक्ष

की पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अलौकिक बात है। ऐसी बात कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी नहीं तो दूसरे में तो होवे कहाँ से? आहाहा! यह तो सनातन जैनदर्शन में यह कथन है। समझ में आया? ऐसा कहकर क्या कहना है?

जो वस्तु बन्ध-मोक्षरहित ध्रुव है, उसका आश्रय करनेयोग्य है। पर्याय का भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। मोक्ष और मोक्ष का मार्ग भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। पण्डितजी! सूक्ष्म विषय है, भाई! आहाहा! एकदम बात गुलोट खाती है। वस्तु भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव का जो पिण्ड है, ध्रुवस्वरूप है, जिसमें उत्पाद-व्यय, बन्ध-मोक्ष है नहीं। आहाहा! उस चीज़ को भगवान, परमार्थ आत्मा कहते हैं। बन्ध-मोक्ष की पर्याय, वह परमार्थ आत्मा नहीं। आहाहा! बन्ध-मोक्ष तो पर्याय में है, पर्याय में राग की एकता का बन्ध और राग के अभावरूप मोक्ष की पर्याय, वह पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय एक कोने में पड़ी है, ध्रुव एक कोने में पड़ा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में द्रव्य नहीं और द्रव्य में पर्याय नहीं, इतना है। है तो साथ में। सुनो, भाई! यह भगवान की बात तो सूक्ष्म है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं। ज्ञान की पर्याय में और श्रद्धा की पर्याय में पूरे द्रव्य का ज्ञान और द्रव्य की श्रद्धा आती है। समझ में आया? पर्याय में द्रव्य कैसा है, उसकी श्रद्धा होती है, द्रव्य (पर्याय में) आता नहीं। आहाहा! अभी तो आते नहीं, दो-चार दिन से जिनेश्वरदासजी आये नहीं, ठीक नहीं। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। आहाहा! तेरे द्रव्य की प्रभुता इतनी है कि जिसमें बन्ध-मोक्ष की पर्याय भी नहीं। समझ में आया? और बन्ध-मोक्ष की जो पर्याय है, वह पर्याय है तो व्यवहारनय का विषय है अर्थात् वह अशुद्धनय का विषय है। बन्ध-मोक्ष और मोक्ष का मार्ग... भगवान! एक बार सुन तो सही! यह जो मोक्ष का मार्ग निश्चय है, द्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय वास्तविक मोक्षमार्ग है, विकल्प है, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह वास्तविक निश्चयमोक्षमार्ग जो वास्तव में है,

वह भी पर्याय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है, दूसरी भाषा से कहें तो वह अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! उमेदचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई!

तीन लोक के नाथ जिनवरदेव सभा में इन्द्र और गणधरों के बीच में ऐसा फरमाते थे। वह बात यह है। आहाहा! भगवान! तू कितना बड़ा है, कितना तेरा माहात्म्य है और तेरी कितनी ध्रुवता त्रिकालता है। आहाहा! उसे पर्याय स्पर्श नहीं करती। वह द्रव्य जो है, वह निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय को स्पर्श नहीं करता और मोक्षमार्ग की पर्याय जो है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! अरे! अभी तो सब गड़बड़ (हो गयी)। यह व्यवहार से होता है और उससे होता है और दया, दान, व्रत को करो और इससे (धर्म होगा)। अरे! भगवान! वह तो बन्धमार्ग है न? उससे मोक्षमार्ग होता है? बन्धमार्ग द्रव्य का आश्रय लेता है? आहाहा! रागादि भाव है, वे तो (बन्धमार्ग हैं)। (उसमें) लक्ष्य पर का है, दिशा पर की है। उस दशा की दिशा परसन्मुख है। उस दशा की दिशा पर की ओर है। आहाहा! और जो मोक्षमार्ग सच्चा है, उसकी दशा की दिशा द्रव्य की ओर है। समझ में आया? अरेरे! ऐसी बात प्रभु की लोगों ने ऐसी गड़बड़ में डाल दी।

शास्त्र में ऐसा आवे न? व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा आता है। किसे? जिसे त्रिकाली भगवान बन्ध-मोक्ष की पर्यायरहित है, उसकी जिसे अनुभव में दृष्टि हुई है, जिसे आनन्द का स्वाद आया है (उसे)। आहाहा! अर्थात्? हिन्दी में अटले कहते हैं? अर्थात्। जो आनन्दस्वरूप ध्रुव प्रभु है, उसका आश्रय करने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य हुए तो वह आनन्द की दशा हुई। त्रिकाली आनन्द है, उसकी आनन्ददशा हुई। समझ में आया? आहाहा! और राग भाग है, जितना शुभ उपयोग है, भगवान ने व्यवहारनय से जो कथन करके व्रत और नियम और तपस्या और क्रियाकाण्ड कहे, वह सब अशुद्धनय का विषय है और बन्ध का कारण है। आहाहा! और मोक्ष का मार्ग जो है, वह निर्मल पर्याय है, उसका आश्रयदाता भगवान है। दाता का अर्थ वह पर्याय को देता नहीं। आहाहा!

यह द्रव्य पर्याय का दाता नहीं। यह अपने आत्मधर्म में आ गया न? योगसार में। योगसार का कथन आत्मधर्म में बहुत आ गया। अभी आत्मधर्म बहुत अच्छा स्पष्ट आता

है। लोग बहुत प्रसन्न होते हैं। इस कार्तिक महीने से आत्मधर्म (वाँचकर) लोग बहुत राजी-खुशी होते हैं। ओहोहो! आत्मधर्म तो आत्मधर्म अब आया। आहाहा! क्या है ?

जो 'आत्मा' और 'आत्मधर्म', दो शब्द हैं ? तो आत्मा है, वह तो त्रिकाली है। उसमें बन्ध और मोक्ष भी नहीं। मोक्ष का मार्ग भी उसमें नहीं। आहाहा! जो बन्ध और मोक्ष है... कहा न? ६८ (गाथा न)? **बन्ध भी व्यवहारनय से है और मोक्ष भी व्यवहारनय से है।** है ? भाई! क्या कहा ? सुनो, भाई! यह तो अलौकिक मार्ग है। आहाहा! बन्ध भी व्यवहार है। राग की एकता जो पर्याय में है, वह व्यवहार है। पर्याय है न ? और मुक्ति का मार्ग जो सच्चा निश्चय है, वह व्यवहार है। पर्याय है न ? आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो राग से छूटी हुई दशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटी हुई परन्तु वह पर्याय है न ? पर्याय है, वह व्यवहार है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यहाँ तो प्रवचनसार में ४७ नय में वहाँ तक कहा, ४६-४७ नय है न ? प्रवचनसार में पीछे है। वहाँ तो ऐसा कहा कि मिट्टी को उसकी बर्तन आदि पर्याय से देखना, वह अशुद्धनय है। मिट्टी को मात्र मिट्टीरूप से देखना, वह शुद्धनय है। ऐसे भगवान आत्मा को निर्मलपर्यायसहित देखना, वह अशुद्धनय है।

मुमुक्षु : इस दृष्टान्त का यह सिद्धान्त निकला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सिद्धान्त है। है इसमें ? प्रवचनसार में ४६-४७ (नय) ४६ समझते हो ? ४० और ६। और ४७। ४० और ७। अन्तिम दो नय है न ? आहाहा!

मिट्टी को उसकी पर्याय जो बर्तन आदि है, बर्तन है न ? मिट्टी के बर्तन है न ? बर्तन से मिट्टी को देखना, वह अशुद्धनय है। एक मिट्टी को अकेली देखना, वह शुद्धनय है। उसी प्रकार भगवान आत्मा को निर्मलपर्यायसहित द्रव्य को देखना, वह अशुद्धनय है। आहाहा! गजब बात है। अकेले त्रिकाली द्रव्य को देखना, वह शुद्धनय है। समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! वीतराग जिनेश्वरदर्शन, वह दिगम्बरदर्शन है। दिगम्बरदर्शन है, वह जिनेश्वरदर्शन है, वह जिनदर्शन है। आहाहा! इसके अतिरिक्त ऐसी सत्य की बात अन्यत्र कहीं है ही नहीं। आहाहा! क्या कहा ?

बन्ध भी व्यवहारनय से है और मोक्ष भी व्यवहारनय से है... है ? आहाहा ! क्योंकि बन्ध और मुक्ति तो पर्याय है; वस्तु में बन्ध-मुक्ति नहीं, वह तो त्रिकाली चीज़ है। आहाहा ! और वही सम्यग्दर्शन का विषय है। 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो' (समयसार) ११वीं गाथा। 'ववहारोऽभूदत्थो' पर्यायबुद्धि अभूतार्थ है। मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी अभूतार्थ है। किस अपेक्षा से ? त्रिकाल की अपेक्षा से। उसकी अपनी अपेक्षा से है, परन्तु वह पर्यायनय का विषय है। आहाहा ! मोक्ष और मोक्ष का मार्ग, सच्चा, हों ! व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह तो आरोपण से कथननिरूपण है। मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार का है। मोक्षमार्ग दो प्रकार का नहीं। आहाहा ! कथन में ऐसा आता है। जब अपना निश्चयमोक्षमार्ग अपने से प्रगट होता है, उस समय राग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग साथ में व्यवहार सहचर देखकर निमित्त का उपचार करके व्यवहार कहा है। वह मोक्षमार्ग नहीं, मात्र साथ में निमित्त देखकर उपचार किया है। आहाहा ! सेठ ! ऐसी चीज़ है, भगवान ! लो, यह लोग आये और पहले यही (आया)। आहाहा !

मुक्ति भी व्यवहारनय से है, ... आहाहा ! राग को व्यवहार से मोक्ष का मार्ग कहा है, उसकी तो बात ही कहाँ है ? वह तो बन्धमार्ग है। समझ में आया ? क्योंकि पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है। मुक्ति की पर्याय अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, दर्शन, केवलज्ञान की पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! पर्याय है न ? त्रिकाल में भेद है। आहाहा ! भगवान त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं। पाठ में आ गया है। 'जिणवरु एउं भणेइ' आहाहा !

प्रभु ! तू कौन ? शाश्वत् कौन ? तू कौन है ? शाश्वत् चीज़ तो द्रव्यस्वरूप, ध्रुवस्वरूप है। जिनवर ऐसा कहते हैं कि ध्रुवस्वरूप में बन्ध-मोक्ष की पर्याय का अभाव है। आहाहा ! अरे ! मोक्षमार्ग की पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आता है, द्रव्य की श्रद्धा आती है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! सूक्ष्म है। आहाहा ! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा गणधर और इन्द्रों की सभा में दिव्यध्वनि में ऐसा कहते थे। आहाहा ! प्रभु ! तुझे मुक्ति और बन्ध व्यवहारनय से है। आहाहा ! क्योंकि द्रव्य, वह निश्चय है, पर्याय वह व्यवहार है। इसलिए मोक्ष और मोक्ष

का मार्ग पर्याय है, इसलिए व्यवहारनय से है, अशुद्धनय है। समझ में आया? यह अशुद्धता है, ऐसा नहीं। मोक्षमार्ग अशुद्ध है, ऐसा नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय से देखना एक भेद है, इसलिए अशुद्धनय है। पर्याय है न? और त्रिकाली भगवान् शुद्ध चिदानन्द प्रभु शुद्धनय का विषय है। वह सम्यग्दर्शन का विषय कहो, शुद्धनय का विषय कहो या ११वीं गाथा में कहा, भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन होता है। उस त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया? पकड़ में आये उतना पकड़ो, प्रभु! मार्ग तो यह है, भाई! अभी तो बहुत फेरफार कर डाला। आहाहा! कहाँ का कहाँ... आहाहा! पद्मावती देवी और फलाने यक्ष और कहाँ के कहाँ बेचारे भ्रमते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी विकल्प और राग है। आहाहा! वह बन्धमार्ग है। परद्रव्य आश्रित भाव होते हैं, तो राग ही होता है। वह तो बन्धमार्ग है। परन्तु यहाँ तो भगवान् त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु है, उसमें सर्वस्व शक्ति भरी है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य जिसके स्वभाव की मर्यादा नहीं! एक-एक शक्ति की मर्यादा नहीं, ऐसी शक्ति और उस शक्ति में अनन्त-अनन्त सामर्थ्य! ऐसी अनन्त शक्तिरूप ध्रुव भगवान् द्रव्य जो है, वह पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! ४९ गाथा में आया है, समयसार ४९। व्यक्त-अव्यक्त का। व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। दो का एक साथ ज्ञान होने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्शता नहीं। आहाहा! व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य दोनों का एकसाथ ज्ञान होने पर भी... आहाहा! व्यक्त को अव्यक्त द्रव्य स्पर्शता नहीं। यह पाँचवाँ बोल है। छह बोल है न? छह बोल। ४९ गाथा। अव्यक्त के छह बोल हैं। समझ में आया? आहाहा!

अलिंगग्रहण में है। प्रवचनसार १७२ गाथा में बीस बोल हैं। उसमें १८वाँ बोल है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष को नहीं स्पर्शनेवाला यह भगवान् आत्मा। द्रव्य है, वह विशेष में नहीं आता। आहाहा! द्रव्य उस विशेष को स्पर्शता नहीं। पण्डितजी! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! '....' आज तो हिन्दी में चलता है। आहाहा! उस व्यक्त को द्रव्य छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। पर्याय पर्याय में रहती है, द्रव्य द्रव्य में रहता है। और पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। यह बीसवाँ बोल है और वह उन्नीसवाँ बोल है। अर्थावबोधरूप

पर्याय द्रव्य को आलिंगन नहीं करती। आहाहा! देखो! वीतराग का तत्त्व दर्शन, देखो! आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय व्यक्त है, वह अव्यक्त अर्थात् द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा!

मुमुक्षु : आश्रय लेती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय लेती ही नहीं। आश्रय का अर्थ, वह सन्मुख हुई, उसने आश्रय लिया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पर्याय द्रव्य-सन्मुख हुई तो द्रव्य का आश्रय लिया, ऐसा कहने में आता है। पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती तो आश्रय कैसा? आहाहा! देखो! यह तत्त्वज्ञान की लहर!

मोक्षमार्ग की आनन्द की अनुभव दशा, क्षायिक समकित, क्षायिक यथाख्यातचारित्र की पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती और उस पर्याय में द्रव्य आता नहीं। द्रव्य उसे स्पर्श नहीं करता, द्रव्य उसमें आता नहीं। पर्याय स्पर्श नहीं करती, पर्याय द्रव्य में जाती नहीं। आहाहा! जाती नहीं कहते हैं न? समझ में आया? यहाँ यह व्याख्या है। **व्यवहारनयकर और मुक्ति भी व्यवहारनयकर है।** बन्ध और मुक्ति व्यवहारनय से है। पर्याय है न? तो पर्याय, वह व्यवहार है। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर न बन्ध है, न मोक्ष है,... है? आहाहा! शुद्धनिश्चय तो त्रिकाली वस्तु, द्रव्यवस्तु है। उसमें तो न बन्ध है, न मोक्ष है। आहाहा! अशुद्धनयकर बन्ध है। इसलिए बन्ध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिए। बन्ध के नाश का प्रयत्न व्यवहारनय का विषय आता है, होता है। शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया था न कि निश्चयनय से बन्ध और मोक्ष आत्मा में नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न करना व्यर्थ है। शिष्य का यह प्रश्न था कि बन्ध और मोक्ष आत्मा में नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न करना व्यर्थ हुआ। तो कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! बन्ध भी पर्याय में है और मोक्ष भी पर्याय में है। व्यवहारनय का विषय है। बन्ध का नाश करने में व्यवहारनय का विषय निश्चयमोक्षमार्ग आता है। समझ में आया?

परमार्थवचनिका में भी कहा है, नहीं? बनारसीदास (कृत) परमार्थवचनिका है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे लिया है, अपने लिया है। हिन्दी में आया है? हिन्दी में?

मोक्षमार्गप्रकाशक के पीछे तीन (चिट्टियाँ) ली हैं। रहस्यपूर्ण चिट्टी, परमार्थ वचनिका, उपादान-निमित्त। पीछे तीन विषय लिये हैं। उसमें भी ऐसा लिया है, द्रव्य है वह निष्क्रिय निश्चय है। मोक्षमार्ग निश्चय साधना, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? क्षायिक समकित व्यवहारनय का विषय है, केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न! यथाख्यातचारित्र व्यवहारनय का विषय है, मोक्ष व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है। अरे! मूल तत्त्व की खबर नहीं होती। बाहर से ऐसे करो और ऐसे करो और ऐसे करो।

यहाँ तो द्रव्य, पर्याय को करता नहीं। पर्याय राग को करती नहीं, राग परद्रव्य की पर्याय को करता नहीं। विकल्प है, वह पर की पर्याय को, जड़ की किसी पर्याय को करता नहीं और निर्मल पर्याय राग को करती नहीं और निर्मल भगवान आत्मा निर्मल पर्याय को करता नहीं। आहाहा! समझ में आये ऐसी बात है। लॉजिक से—न्याय से तो कहने में आता है। यह वीतराग का मार्ग तो न्याय से है। समझ में आया?

अशुद्धनयकर बन्ध है, इसलिए बन्ध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिए। बन्ध के नाश का अर्थ मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग व्यवहार है। बन्ध भी असद्भूतव्यवहार है, यह सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! आहाहा! परन्तु यह दोनों हैं तो अशुद्धनय का विषय।

मुमुक्षु : किसी समय तो आप शुद्धनय का विषय कहते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस अपेक्षा से? वह तो शुद्धता की अपेक्षा से, बाकी है तो अशुद्धनय का विषय। व्यवहारनय का कहो, पर्यायनय का कहो या अशुद्ध का कहो। त्रिकाल है, वह शुद्धनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार में ऐसा लिया है। ४७ नय है न? अन्त में ४७ नय है न? आत्मद्रव्य अशुद्धनय से घट और रामपात्र की विशेष मिट्टीपात्र की भाँति सोपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा! आत्मद्रव्य शुद्धनय से केवल मिट्टीमात्र की भाँति निरुपाधि स्वभाववाला है। आहाहा! आत्मद्रव्य अकेला त्रिकाली शुद्धनय से मिट्टीमात्र की भाँति। मिट्टी के बर्तन सहित मिट्टी को देखना, वह तो व्यवहारनय हो गया, अशुद्धनय हुआ। इसी प्रकार भगवान आत्मा को निर्मलपर्यायसहित लक्ष्य में लेना, वह तो व्यवहारनय का, अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! प्रवचनसार में है। भाई! ऐसी बात है। कहीं दूर से आये हैं। आहाहा! दिल्ली से आये हैं? आहाहा!

यहाँ तो आत्मद्रव्य, वह त्रिकाली और मोक्ष और मोक्ष की वर्तमान पर्याय! वह त्रिकाली, वह शुद्धनय का अथवा सम्यग्दर्शन का विषय है और मोक्ष का मार्ग और मोक्ष, वह व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है। आहाहा! वह मोक्ष का मार्ग और मोक्ष आदरनेयोग्य नहीं।

मुमुक्षु : प्रगट करनेयोग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट करनेयोग्य है, वह दूसरी बात है। यह तो पुरुषार्थ से अशुद्धनय से व्यवहारनय से प्रगट होता है। मोक्ष प्रगट करनेयोग्य है, ऐसा तो यहाँ कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। मोक्ष है, वह परमहितकर है। संवर है, वह उपादेय है; निर्जरा है, वह हितकर है। आस्रव है, वह अहितकर है। आहाहा! यह तो ज्ञान कराया है।

यहाँ तो कहते हैं, संवर उपादेय कहा, वह भी प्रगट करने की अपेक्षा से (कहा है)। बाकी उपादेय तो त्रिकाली ध्रुव है, वह उपादेय है। पण्डितजी! ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया? आत्मद्रव्य अशुद्धनय से घट और रामपात्र की विशेष मिट्टीमात्र की भाँति। घड़ा और रामपात्र की पर्याय की विशेषता सहित मिट्टी, वह अशुद्धनय का विषय है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, उसकी निर्मल पर्यायसहित का उसे देखना, वह व्यवहारनय का विषय है, अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली जो पर्याय बिना की चीज़ द्रव्य है, वह उपादेय है। यह यहाँ कहेंगे, देखो! आहाहा!

इसलिए बन्ध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहिए। यहाँ यह अभिप्राय है, ... देखो! यहाँ यह अभिप्राय है, कि सिद्ध समान यह अपना... सिद्धसमान अर्थात् पर्याय नहीं। त्रिकाली। समझ में आया? सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्पसमाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है, ... आहाहा! कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुव किसे उपादेय है? कि जिसने शुद्धात्मानुभूति में द्रव्य को लक्ष्य में-दृष्टि में लिया है, उसे उपादेय है। क्या कहा, समझ में आया?

शुद्ध अनुभूतिवाले को यह आत्मा उपादेय है। ऐसे उपादेय मानना, वह तो धारणा का विषय हो गया। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु जो शुद्धनय का विषय है, परन्तु कब उसे उपादेय कहलाये? आहाहा! उसके सन्मुख

की शुद्धात्मानुभूति हो, उस काल में वह आत्मा उपादेय है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ही वह उपादेय है। ऐसा का ऐसा उपादेय-उपादेय कहे, वह क्या? यह त्रिकाली उपादेय है, ऐसा परिणमन हुआ, उसे उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश निर्मल अनुभूति हुई, उस अनुभूति के काल में उपादेय है। उसका आश्रय लिया और वह (निर्मल अनुभूति हुई) तो उस अनुभूति में वह उपादेय है। गोदिकाजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! अरे रे! ऐसी बात को लोग निश्चय करके तोड़ डालते हैं। अरे! प्रभु! मार्ग तो यह है, हों!

तेरे हित का पन्थ तो यह है, भाई! दूसरे प्रकार से करने जायेगा, प्रभु! (तो) हाथ नहीं आवे। आहाहा! संसार में भटकना पड़ेगा, भाई! जन्म-मरण कर-करके कचूमर निकल गया है। नरक और निगोद के भव कर-करके। आहाहा! एक श्वास में निगोद के अठारह भव। बापू! कितना दुःख होगा, भाई! आहाहा! तेरे आनन्द के नाथ के विरह में ऐसे दुःख तूने सहन किये। आहाहा! झगड़े खड़े करे। इस नय से ऐसा कहा है और इस नय से (ऐसा कहा है)। सब है, सुन न! आहाहा!

यहाँ तात्पर्य / अभिप्राय यह है कि सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा.... त्रिकाली, हों! वीतराग निर्विकल्पसमाधि में लीन... आहाहा! रागरहित होकर स्वभाव-सन्मुख की वीतराग निर्विकल्प शान्ति, समाधि अर्थात् शान्ति। वीतराग निर्विकल्प आनन्द की शान्ति के काल में वह उपादेय है। आहाहा! उन्होंने आत्मा को आदर किया। उन्होंने आत्मा का आदर किया। आहाहा! शुद्धात्मानुभूति के काल में उन्होंने आत्मा को उपादेय माना। आहाहा! लीन पुरुषों को उपादेय है, अन्य सब हेय हैं। आहाहा! पर्याय आदि सब हेय है।

यह ६८ गाथा पूरी हुई, लो! तीन दिन से अपने चलती है। यह नये मेहमान आये हैं न! अन्तिम लाईन में इतना भरा है, माल भरा है। पार नहीं आता, ऐसी बात है, बापू! यह गणधर पूरा कर सके, सन्त पूरा कर सके, ऐसी बात है।

वस्तु-वस्तु है न? तत्त्व है न? अस्ति पदार्थ है न भगवान? त्रिकाल, हों! अस्ति पदार्थ का स्वभाव अस्तिरूप अनन्त है। आहाहा! ऐसा अनन्त स्वभाव सम्पन्न भगवान सिद्ध समान द्रव्य, हों! उसके सन्मुख होकर शुद्धात्मा की अनुभूति के काल में यह

आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा! ऐसे शास्त्र से ख्याल में लिया कि यह उपादेय है, परन्तु वह उपादेय हुआ तो नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र सुनकर ख्याल लेने पर भी 'यह उपादेय है' ऐसा नहीं हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की पर्याय में ऐसा हुआ परन्तु श्रद्धा की पर्याय में, अनुभूति की पर्याय में यह उपादेय है, ऐसा कहाँ आया ? अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! करना है तो यही करना है, बाकी सब हेय है। आहाहा! समझ में आया ?

'समाधिरतो मुक्तजीवसदृशः' देखो! ऐसा लिया है न? 'मुक्तजीवसदृशः' ऐसा है। इसलिए सिद्ध समान लिया। 'स्वशुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः' लो! यह सिद्ध समान लिया न? यह 'मुक्तजीवसदृशः' की व्याख्या की। यह ६८ गाथा हुई, (अब) ६९।

आगे निश्चयनयकर जीव के जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण, और संज्ञा नहीं है,... आहाहा! आत्मा इन सब विकारों से रहित है,... आहाहा! यह तो निर्मलानन्द प्रभु त्रिकाल विज्ञानघन प्रभु, वह इन सब विकारों से रहित है। ऐसा कहते हैं। यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६९

अथ निश्चयनयेन जीवस्योद्भवजरामरणरोगलिङ्गवर्णसंज्ञा नास्तीति कथयति -
 ६९) अत्थि ण उब्भउ जर-मरणु रोय वि लिंग वि वण्ण।
 णियमिं अप्पु वियाणि तुह्णं जीवहं एक्क वि सण्ण॥६९॥

अस्ति न उद्भवः जरामरणं रोगाः अपि लिङ्गान्यपि वर्णाः।

नियमेन आत्मन् विजानीहि त्वं जीवस्य एकापि संज्ञा॥६९॥

अत्थि ण उब्भउ जरमरणु रोय वि लिंग वि वण्ण अस्ति न न विद्यते। किं किं नास्ति। उब्भउ उत्पत्तिः जरामरणं जरामरणं रोगा अपि लिङ्गान्यपि वर्णाः णियमिं अप्पु वियाणि तुह्णं जीवहं एक्क वि सण्ण नियमेन निश्चयेन हे आत्मन् हे जीव विजानीहि त्वम्। कस्य नास्ति। जीवस्य न केवलमेतन्नास्ति संज्ञापि नास्तीति। अत्र संज्ञाशब्देनाहारादिसंज्ञा नामसंज्ञा वा ग्राह्या। तथाहि। वीतरागनिर्विकल्पसमाधेर्विपरीतैः क्रोधमानमायालोभप्रभृतिविभावपरिणामैर्यान्यु-पार्जितानि कर्माणि तदुदयजनितान्युद्भवादीनि शुद्धनिश्चयेन न सन्ति जीवस्य। तानि कस्मात् सन्ति। केवलज्ञानाद्यनन्तगुणैः कृत्वा निश्चयेनानादिसंतानागतोद्भवादिभ्यो भिन्नत्वादिति। अत्र उपादेयरूपानन्तसुखाविनाभूतशुद्ध-जीवात्तत्सकासाद्यानि भिन्नान्युद्भवादीनि तानि हेयानीति तात्पर्यार्थः॥६९॥

आगे निश्चयनयकर जीव के जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण, और संज्ञा नहीं है, आत्मा इन सब विकारों से रहित है, ऐसा कहते हैं -

हे आत्मन्! नहीं जन्म जरा अरु मृत्यु रोग लिंगादि नहीं।

नहीं आत्मा में वर्णादिक संज्ञा भी नहीं, नियम यही॥६९॥

अन्वयार्थ :- [आत्मन्] हे जीव आत्माराम, [जीवस्य] जीव के [उद्भवः न] जन्म नहीं [अस्ति] है, [जरामरणः] जरा (बुढ़ापा) मरण [रोगाः अपि] रोग [लिङ्गान्यपि] चिन्ह [वर्णाः] वर्ण [एका संज्ञा अपि] आहारादिक एक भी संज्ञा वा नाम नहीं है, ऐसा [त्वं] तू [नियमेन] निश्चयनकर [विजानीहि] जान।

भावार्थ :- वीतराग निर्विकल्पसमाधि से विपरीत जो क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि विभाव-परिणाम उनकर उपार्जन किये कर्मों के उदय से उत्पन्न हुए जन्म-मरण

आदि अनेक विकार है, वे शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं हैं, क्योंकि निश्चयनयकर आत्मा केवलज्ञानादि अनंत गुणाकर पूर्ण है, और अनादि-संतान से प्राप्त जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिंग, सफेद काला वर्ण, वगैर आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप संज्ञा इन सबों से भिन्न है। यहाँ उपादेयरूप अनंत सुख का धाम जो शुद्ध जीव उससे भिन्न जन्मादिक हैं, वे सब त्याज्य हैं, एक आत्मा ही उपादेय हैं, यह तात्पर्य जानना॥६९॥

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार
दिनांक-३०-०७-१९७६, गाथा-६९, प्रवचन-४८

जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण और संज्ञा नहीं है,... यह कहते हैं। इन सब विकारों से रहित है,...

(६९) अत्थि ण उब्भउ जर-मरणु रोय वि लिंग वि वण्ण ।

णियमिं अप्पु वियाणि तुहँ जीवहँ एक्क वि सण्ण ॥६९ ॥

हे आत्माराम! ऐसा कहकर बुलाया है। आहाहा! भगवान आत्मा तो शुद्ध आत्मा है। वस्तुरूप से जो त्रिकाली शुद्ध आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। वह सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय ऐसा शुद्धात्मा, उसे हे आत्माराम! जीव के जन्म नहीं... वह वस्तु है, उसमें जन्म नहीं। आगे कहेंगे। जन्म तो देह का है। आत्मा का जन्म नहीं। आत्मा में जन्म नहीं। आत्मा का जन्म नहीं परन्तु आत्मा में जन्म नहीं। आत्मा का जन्म नहीं, ऐसा नहीं परन्तु आत्मा को जन्म नहीं। आहाहा! आत्मा का जन्म नहीं अर्थात् आत्मा कोई नया उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! वह तो अनादि नित्यानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द विज्ञानघन ऐसी जो चीज आत्मा, उसमें हे आत्माराम! जन्म नहीं। तू जन्मता नहीं। पोपटभाई! यह जन्म का देह, देह का जन्म, प्रभु! आहाहा!

शुद्धात्मा पूर्णानन्दस्वरूप तेरी जो चीज है, उसमें तो जन्म नहीं। ऐसी चीज पर दृष्टि करने का नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम, अनन्त शक्ति का संग्रहालय... आहाहा! अनन्त स्वभाव का सागर, ऐसी जो चीज, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। वह आत्मा सम्यग्दृष्टि का विषय है। शुक्लचन्दजी!

वह आत्मा राग से, व्यवहार से प्राप्त हो, वह आत्मा नहीं। समझ में आया ? रागादि भाव जो व्यवहार दया, दान, व्रतादि हैं, उस राग से प्राप्त नहीं होता। क्योंकि उसमें राग है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्मानुराग है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मानुराग, वह राग विकार है। विकार आत्मा में है नहीं और उस विकार से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। ऐसी चीज़ है, भाई!

परमात्मप्रकाश है न! वस्तु त्रिकाली, वही परमात्मप्रकाश है। आहाहा! सहजानन्द-स्वरूप प्रभु, जिसमें जन्म नहीं। आहाहा! हे आत्मराम! शब्द लिया है। देखो! पाठ में ऐसा है, हों! टीका। हे आत्मनं! हे जीव! ऐसा दो बार लिया है। आहाहा! प्रभु! तू तो आत्मा है न, प्रभु! तो आत्मा तो उसे कहते हैं कि जिसमें जन्म नहीं। आहाहा! हे जीव आत्मराम! जीव के जन्म नहीं है, जरा (बुढ़ापा)... नहीं। शरीर की अवस्था वृद्धावस्था (हो), वह आत्मा में नहीं है। वह तो जड़ की अवस्था है। आहाहा! भगवान आत्मा तो ऐसा का ऐसा अनादि से शुद्ध, आनन्दघन है। उसमें वृद्धावस्था नहीं।

वह शुद्ध आनन्दघन जो चैतन्यमूर्ति मौजूद चीज़ जो है, उसकी दृष्टि बिना राग की एकताबुद्धि में वह बाल अवस्था है। पर्याय में। वस्तु तो वस्तु है। राग की एकताबुद्धि, वह आत्मा की पर्याय में बाल अवस्था है; वस्तु में नहीं। और वस्तु का भान होना सम्यग्दर्शन, अन्तरात्मा, अन्तरात्मा है। बहिरात्मा—रागादि विकल्प को अपना मानना, वह बहिरात्मा है, यह पर्याय की बाल अवस्था है। वस्तु में यह नहीं।

मुमुक्षु : बहिरात्मा भले हो, है तो आत्मा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिर अर्थात् उसमें जो चीज़ नहीं, उसे—बहिर को अपना मानना, वह पर्याय में बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु तो परमात्मस्वरूप ही है। समझ में आया ? यह चीज़ है, भाई! अनन्त काल से दुःखी है। समझ में आया ?

अभी वह लड़का आया था, तो बात की थी। वह लड़का है न भाई पोपटभाई के लड़के का लड़का यहाँ। पोपटभाई लींबड़ीवाले। उनके लड़के का लड़का। कहा, तेरे बाप के मामा के पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये हैं। अभी दो अरब चालीस करोड़। दो अरब चालीस करोड़। दो अरब समझते हो ? सौ करोड़ का एक अरब, सौ हजार का

एक लाख, सौ लाख का करोड़, सौ करोड़ का एक अरब। आहाहा! एक अभी है गोवा में। जैन स्थानकवासी। वह गुजर गये। उनकी पत्नी सवा वर्ष से बेहोश पड़ी है। हेमरेज हो गया है। सवा वर्ष से। उसके पास पैसा तो दो अरब चालीस करोड़ है। अभी। उसका पति तो सवा वर्ष पहले मर गया। दस मिनट में। रात्रि में। स्त्री को हेमरेज हो गया। हेमरेज कहते हैं न? तो वहाँ से—गोवा से मुम्बई लाये थे। डॉक्टर को बताने के लिये (लाये थे)। उसे ही दो-चार दिन में रात्रि में डेढ़ बजे तबियत खराब हो गयी। मुझे दुःखता है। बस, डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आने से पहले भगवान (आत्मा) चला गया। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके पहले उसका आत्मा मर गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मर क्या जाये ? शरीर—देह छूटा, उसे मर गया, ऐसा कहते हैं। आत्मा मरता नहीं और आत्मा जीता (जन्म) नहीं। यह तो आ गया न अपने ? जिसे आत्मा ध्रुव कहते हैं, वह तो पर्याय में भी आता नहीं, शरीर में तो आता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़, भाई! जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! तू कौन है ? कहाँ है ? तो कहते हैं, प्रभु! तू तो पूर्णानन्द का नाथ है, ध्रुवस्वरूप है। वह उत्पन्न होता नहीं, व्यय होता नहीं, परन्तु वह ध्रुवस्वरूप पर्याय में भी आता नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, वह ध्रुव कहीं उत्पन्न नहीं होता, ध्रुव का व्यय नहीं होता। परन्तु ध्रुव चीज़ जो है, जिसे परमात्मा निश्चय आत्मा कहते हैं, वह तो अपनी पर्याय में भी नहीं आता। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। आहाहा! समझ में आया ? वह सम्यग्दर्शन का विषय है। बाकी लाख-करोड़ दूसरी बात करे। यह छहढाला में नहीं आता ? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वंद्वफंद एक निज आतम उर ध्याओ।' आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे आत्मा में लखा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लखावे ? यह लखना अर्थात् जानना। लखना, यह जानना होता है या नहीं ? स्वयं अपने को जाने, दूसरा कौन जाने ? आहाहा!

मुमुक्षु : जब से आपने बताया, तब से हमको यह पाठ याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। दृष्टि में, अनुभूति में जब आता है, तब वह आत्मा का ज्ञान होता है। राग से हटकर निर्विकल्प—रागरहित अनुभूति (होती है), उस अनुभूति की पर्याय के काल में आत्मा जानने में आता है। क्योंकि वह ध्येय जो हुआ, अनुभूति हुई, वह ध्येय के लक्ष्य से हुई। अनुभूति में आया, तब ज्ञात हुआ। इसके बिना ज्ञात नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? दशरथलालजी! ऐसा आत्मा है। लोग तो बाहर में ऐसी सिरपच्ची करते हैं। ऐसे व्रत पालन करो और दया पालो, भक्ति करो, पूजा करो। वह तो सब विकल्प है, राग है। उस राग से प्राप्त नहीं होता। और वह चीज़ ही ऐसी है कि अनुभूति के काल में ही प्राप्त होती है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान् शुद्ध चैतन्यघन... यहाँ परमात्मा की व्याख्या है न? तो आत्मा है, वही परमात्मा है। शक्ति से परमात्मा है। व्यक्ति से पर्याय में परमात्मा होता है, वह तो पर्याय में होता है। समझ में आया? आहाहा! जैसे छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर कहते हैं। छोटी पीपर इतनी। उसमें बाहर में चरपराहट अल्प है। परन्तु अन्दर में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है। चरपराहट को हमारे (गुजराती में) तिखाश कहते हैं। तुम्हारे चरपराई कहते हैं। तो चौसठ पहर ऐसे घिसते हैं तो प्रगट होती है, तो वह बाहर कहाँ से आयी? अन्दर है। चौसठ पहरी अर्थात् चौसठ पैसा अर्थात्? सोलह आना। अर्थात् एक रुपया अर्थात् कि पूर्ण। आहाहा!

भगवान् आत्मा अपने स्वभाव में, जैसे छोटी पीपर में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है, वही छोटी पीपर, वही छोटी पीपर, उसी प्रकार भगवान् आत्मा में पूर्ण आनन्द, ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता पूर्ण ध्रुव पड़े हैं, उसे आत्मा कहते हैं। पर्याय को नहीं। आहाहा! पर्याय को व्यवहार आत्मा (कहते हैं)। आहाहा! भाई! ऐसी बात है। अरे! भाई! जन्म-मरण करके चौरासी के अवतार में दुःखी है। यह पैसेवाले कहलाये धूलवाले—धूल के धनी, वे बेचारे दुःखी हैं, भिखारी हैं। पर को माँगते हैं। अपनी चीज़ है, उसे जानते नहीं।

यहाँ कहते हैं कि जब तक अपनी चीज़ को जाना नहीं और रागादि को अपना मान रहा है, तब तक पर्याय में बाल अवस्था है। और अपना आत्मा पूर्णानन्द का नाथ

है, उसकी दृष्टि करके, अनुभव किया (तो) अन्तरात्मा हुआ तो आत्मा की युवा अवस्था हुई, पर्याय में युवा अवस्था हुई। और यह आत्मा में केवलज्ञान होता है, तब पर्याय में वृद्धावस्था हुई। समझ में आया? भगवान! तेरी चीज़ ऐसी है। आहाहा! यह भगवानस्वरूप ही है।

मुमुक्षु : आत्मा वृद्ध होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वृद्ध होता है। कहा नहीं? केवलज्ञान होता है, तब अवस्था में वृद्ध होता है। वस्तु में तो है वह है। पर्याय में, हों! शरीर में नहीं। शरीर की वृद्धावस्था तो आत्मा में है ही कहाँ? वह तो मिट्टी-जड़ है। यह तो जगत की चीज़ मिट्टी है। यह मिट्टी अपने से रही है, अपने से परिणमति है और अपने से छूट जायेगी। यह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं। वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। आहाहा! इसी प्रकार लक्ष्मी भी धूल-मिट्टी है। आहाहा! यह मिट्टी अपनी है, देह अपनी है, ऐसी जब तक मिथ्या मान्यता है, तब तक बहिरात्मा है, वहाँ तक बाल अवस्था पर्याय में है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। भगवान आत्मा में जरा (वृद्धावस्था) नहीं। आहाहा! शरीर की जरा (वृद्धावस्था) नहीं, परन्तु केवलज्ञान की वृद्धावस्था पर्याय में है, वह भी आत्मा में नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा में नहीं तो वह कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में है। आहाहा! यह तो कल आया नहीं था? आत्मा है, वह तो पर्याय में आता ही नहीं। केवलज्ञान भी पर्याय है, कोई गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल ध्रुव है। एक समय की केवलदशा, परमात्मदशा, वह भी पर्याय है—अवस्था है। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु केवलज्ञान की पर्याय में भी आता नहीं। एक समय की पर्याय में आवे तो उसका नाश हो जाये। क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय तो दूसरे समय में नाश पाती है। एक समय रहती है। केवलज्ञान भी एक समय रहता है। पर्याय है न? नाशवान है। दूसरे समय में दूसरी केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। यदि केवलज्ञान की पर्याय में सामान्य आ जाये, विशेष पर्याय में सामान्य आ जाये तो विशेष पलटने से सामान्य का भी नाश हो जाये। आहाहा! अरे! भाई! तेरी चीज़ क्या है? नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज)

आत्मज्ञान बिन लेश...’ आत्मज्ञान, हों! आत्मा की पर्याय का ज्ञान, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा जो यहाँ त्रिकाल कहते हैं, ध्रुव, ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना लेश सुख न पाया। पंच महाव्रत, अट्टाईस मूलगुण और शरीर को छेद डाले तो भी क्रोध न करे, परन्तु वह सब शुभराग की क्रिया है। स्वभाव से विपरीत राग की क्रिया है। वह तो दुःख की क्रिया है। समझ में आया? आहाहा! पंच महाव्रत का भाव दुःखरूप है, आस्रव है, राग है। भगवान आत्मा, ऐसे क्रियाकाण्ड तो अनन्त बार किये परन्तु आत्मज्ञान नहीं किया। भगवान एक समय में पूर्णानन्द प्रभु चिद्रूपोऽहं—ज्ञानरूप ही मेरा स्वरूप त्रिकाल है, उसका ज्ञान नहीं किया। उस ज्ञान के बिना आनन्द नहीं आया। समझ में आया? तो यह कहते हैं कि पर्याय में भी आता नहीं।

यहाँ वृद्धावस्था तो नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें आत्मा नहीं आता। देह का जन्म होता है, उसमें तो आत्मा नहीं आता... आहाहा! ऐसा मार्ग है। प्रभु! तुझे तेरी महत्ता की खबर नहीं। आहाहा! कहते हैं कि वृद्धावस्था नहीं। शरीर की अवस्था नहीं और केवलज्ञान का भाव—वृद्धावस्था, वह भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक है? भाई! जमनादासजी? परमात्मप्रकाश। जमनादास। है? परमात्मप्रकाश। ये भाई जलगाँव से आये हैं। रामजीभाई! जलगाँव से आये हैं। तुम्हारे राजकोट के मोची हैं। हम जलगाँव गये थे न, जलगाँव? तब इनकी दुकान में थे। मोची हैं राजकोट के। बड़ी दुकान है। इन्हें रुदन आया, बहुत रोये। भाई आये थे। मोची हैं राजकोट के। हमको देखकर... हमको तो कुछ खबर नहीं। स्वागत होता था न, उस समय दुकान में बैठे थे। देखकर रोने लगे। बहुत रुदन। फिर तो पत्र लेकर आये, जहाँ हमारा आवास था न वहाँ। क्या हुआ? इन्हें ऐसा लगा यह कोई अपशकुन हुए। प्रेम के आँसू आये। महाराज... मोची है। १०१ रुपये लेकर आये। ऐसी कोई चीज अन्दर से देखकर इन्हें ऐसा हो गया। आहाहा!

भगवान आत्मा... आहाहा! यह ८वीं गाथा में नहीं आता? आँसू आते हैं। ८वीं गाथा (समयसार)। ८वीं गाथा में आता है। हर्ष के आँसू हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि आत्मा का जहाँ भान होता है, वहाँ हर्ष के आँसू आते हैं और आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया? देवीलालजी! आहाहा! ८वीं गाथा में है।

मुमुक्षु : अन्दर में आनन्द, बाहर में आँसू ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में आनन्द आया। जैसे किसी चीज़ को देखकर हर्ष के आँसू आते हैं न ? प्रिय पुत्र हो, उसे देखकर ऐसा होता है, भाई ! तू बहुत वर्ष से परदेश में था, अब आया। इसी प्रकार भगवान बहुत काल से राग की आड़ में था। राग का प्रेम छोड़कर जहाँ अन्दर गया, वहाँ आनन्द के आँसू आये। आहाहा ! जैसे प्रभु को देखकर हर्ष आता है न ! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ, इन्द्र आकर ऐसे... आहाहा ! जिनके जन्म में इन्द्र हजार नेत्र करके देखे। बाहर का रूप, हों ! भगवान के शरीर की सुन्दरता, कोमलता बाहर की देखकर एक नेत्र से तृप्ति नहीं होती, हजार नेत्र करता है।

मुमुक्षु : उससे भी तृप्ति नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि तृप्ति नहीं होती। यहाँ तो दूसरा कहना है न ! आहाहा !

अन्तर का आनन्द का नाथ जहाँ चैतन्यमूर्ति भगवान, राग और पर्यायबुद्धि में दूर था, राग की एकता और पर्यायबुद्धि में भगवान दूर था। अपना भगवान, हों ! आहाहा ! उस पर्याय को उसके सन्मुख किया, (वहाँ) आनन्द की धारा बहती है। इसका नाम आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! यह तो बापू ! धर्म की बात है, भाई ! धर्म चीज़ ऐसी कोई अपूर्व है। लोगों ने मान रखा है, वैसी धर्म चीज़ नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

उसमें तो ऐसा आया न, भाई ! स्वस्ति। किसी ब्राह्मण ने कहा कि स्वस्ति। समयसार की ऽवीं गाथा में है। तुम्हारा स्वस्ति। समझा नहीं। समझा नहीं तो टग टग देखता है। आप क्या कहते हो ? स्वस्ति। स्वस्ति क्या कहते हो ? हम तो कुछ समझते नहीं। टग टग (देखता है)। जैसे मेंढा देखे, वैसे टग टग देखता है कि आप क्या कहते हो ? उसने कहा तेरा अविनाशी कल्याण होओ, ऐसा हम कहते हैं। सुअस्ति, स्वस्ति, स्वअस्ति। स्व अर्थात् तेरे आत्मा का अस्ति अर्थात् जैसा है, वैसा कल्याण होओ। आहाहा ! तो उसे हर्ष के आँसू आते हैं। ऐसा है, ऽवीं गाथा में। आहाहा !

इसी प्रकार भगवान, सन्त इसे कहते हैं कि तू आत्मा ऐसा है। आत्मा कहा तो टग टग देखता है। क्या कहते हो ? प्रभु ! आप क्या कहते हो ? तो कहते हैं कि आत्मा

उसे कहते हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। हम भेद से, व्यवहार से कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त, वह आत्मा। तो वह दर्शन-ज्ञान को प्राप्त करनेवाला आत्मा है, वहाँ नजर गयी। आनन्दधारा (बहती है), इसका नाम धर्म है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! तेरी प्रभुता की तुझे खबर नहीं है। तूने पामर में अपने को मान लिया है। अपनी पर्याय में केवलज्ञान हो तो इतना भी आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप चिदानन्द, आनन्द की गाँठ है, ज्ञान का गोदाम है, स्वभाव का सागर है, अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, संग्रह—आलय / स्थान है। संग्रहालय कहते हैं न? भाई! आलय। आहाहा! कहो, समझ में आता है न? भाई, ऋषभभाई! यह तो सादी भाषा है। आहाहा!

अरे! प्रभु! यह परमात्मप्रकाश है। अपने उसका परमात्मप्रकाश नाम है। हुकमचन्दजी का पुत्र है न? हुकमचन्दजी पण्डित है न? जयपुरवाले। हुकमचन्दजी पण्डित है। बहुत अच्छे पण्डित हैं। क्षयोपशम बहुत है। रुचि भी बहुत अच्छी है। वे भाषण करते हैं। अभी आयेंगे। कल आयेंगे। थोड़े दिन रहेंगे। उनके बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है और छोटे पुत्र का नाम अध्यात्मप्रकाश है। और इस लड़के का नाम अरहन्तप्रकाश है। बहुत रस है। हमारे फूलचन्दजी के पुत्र का पुत्र है। झाँझरी। इतनी उम्र में रात्रि का आहार-पानी छोड़ दिया है। डेढ़ वर्ष से। वह लड़का है न छोटा? रात्रि में आहार-पानी नहीं। और अष्टमी-चतुर्दशी को उपवास। एक बार करे। वाँचन करता है। आत्मा है तो आठ वर्ष में केवलज्ञान पावे, उसमें क्या है? उसे उम्र की कहाँ आवश्यकता है। आहाहा! अन्तर सन्मुख होने के पुरुषार्थ की वहाँ आवश्यकता है।

मुमुक्षु : हम तो पढ़े ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तो पढ़े हैं न? यह आत्मा पढ़े नहीं। आहाहा! आत्मा पढ़ा उसे कहते हैं कि स्वानुभूति से आत्मा की पकड़ हो जाये, तब उसे आत्मा का पठन हुआ।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व का (अभ्यास) तो अनन्त बार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र तो अनन्त बार पढ़ा है। ग्यारह अंग का ज्ञान, नौ पूर्व की

लब्धि हुई, अभव्य को, उसमें क्या है ? परलक्ष्यी ज्ञान है। वह कोई स्वरूप नहीं। नौ पूर्व का ज्ञान। ओहोहो ! वह कोई चीज़ नहीं।

भगवान आनन्दस्वरूप पूर्णानन्द की गाँठ है वह तो। उसकी एकता से गाँठ खोल डाली। वह राग की एकता में गाँठ बन्द थी। पूरा सन्दूक बन्द था। राग की एकता छोड़कर स्वभाव की एकता की, निधान खोल दिये। यह आत्मा ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भगवान ! अभी तो बाहर में ऐसा कर दिया है न ! यहाँ की बात निकली (तो) यह तो निश्चय की बात। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। सत्यार्थ को निश्चय कहते हैं; उपचार को व्यवहार कहते हैं। आता नहीं ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, (बुढ़ापा) मरण... नहीं। आहाहा ! रोग... नहीं। आहाहा ! शरीर का रोग तो उसमें नहीं परन्तु आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं। भ्रान्ति हुई, वह बड़ा रोग है। आत्मा आनन्दस्वरूप को छोड़कर 'राग मेरा है'—ऐसी भ्रान्ति बड़ा रोग है। समझ में आया ? वह रोग भी आत्मा में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? रोग... नहीं। लिंग... नहीं। आहाहा ! शरीर के जो स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद जड़ के, वे उसमें नहीं। वे तो नहीं, परन्तु स्त्रीवेद की वासना, पुरुषवेद की वासना, नपुंसकवेद की वासना, वह स्वरूप में नहीं। आहाहा ! वह तो अवेदीस्वरूप है। वेद के स्वरूप से रहित है। आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा के सन्मुख होकर दृष्टि करना, इसका नाम धर्म की शुरुआत—सम्यग्दर्शन है। धर्म की शुरुआत। आहाहा ! इसके बिना व्रत और तप ले बैठे, वह सब बालव्रत और बालतप है। मूर्खता से भरपूर व्रत, मूर्खता से भरपूर तप है। बन्ध अधिकार में कहा न ? समझ में आया ? आहाहा !

लिंग (चिह्न)... नहीं। वर्ण... नहीं। रंग, गन्ध, रस आत्मा में नहीं। और वर्ण नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण आत्मा में नहीं। समझ में आया ? वर्ण अर्थात् रंग भी नहीं, और वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, क्षुद्र यह वर्ण भी आत्मा में नहीं। आहाहा ! आहारादिक एक भी संज्ञा वा नाम नहीं है,... आहाहा ! आहारसंज्ञा आदि तो नहीं परन्तु आहारसंज्ञा का नाम उसमें नहीं। आहाहा ! आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा—चार संज्ञा, वे भगवान आत्मा में नहीं। वह तो चिदानन्द शुद्ध है। समझ में आया ? और

इन संज्ञाओं का नाम भी उसमें नहीं। वस्तु तो नहीं, परन्तु नाम भी उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा तू निश्चयकर जान। है ? आहाहा! भगवन्त! तू निश्चयकर तुझे ऐसा जान। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल वस्तु यह है। मूल वस्तु की दृष्टि बिना जो कुछ करे, वह सब संसार है और राग से-व्यवहार से आत्मा प्राप्त हो, यह तो यहाँ इनकार करते हैं। उसमें राग है ही नहीं न! उसमें है नहीं तो उससे किस प्रकार प्राप्त हो ? समझ में आया ? आहाहा!

अलिंगग्रहण में आया है। छठवाँ बोल है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न? प्रवचनसार १७२ गाथा। बीस बोल (में से) अलिंगग्रहण का छठवाँ बोल। आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है, यह शब्द है। छठवाँ बोल। भगवान आत्मा उस राग और व्यवहार से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा... छठवाँ बोल है, छठवाँ बोल, बीस बोल में। अपने स्वभाव से ज्ञात होता है। आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से ज्ञात होता है। आहाहा! प्रत्यक्ष ज्ञाता है न वह तो। आहाहा! वह चीज़ ही प्रत्यक्ष पड़ी है, कहते हैं। और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान में वह आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! समझ में आया ? अलिंगग्रहण है न? २० बोल। (उनमें) यह छठवाँ बोल है।

भगवान इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होता। इन्द्रियों से प्रभु जानता नहीं। इन्द्रियों से आत्मा जानता नहीं। इन्द्रियों का प्रत्यक्ष विषय नहीं प्रभु। आहाहा! अन्य द्वारा अनुमान से ज्ञात हो, ऐसा नहीं और आत्मा अपने अनुमान से पर को जाने, ऐसा भी नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात होता है और वह प्रत्यक्ष ज्ञाता है। ऐसी बात है, भाई! लोगों को ऐसा लगे। भाई! अभी यह तो निश्चय की एकड़ा की बात है। सम्यग्दर्शन एकड़ा, उसकी बात है। आहाहा! चारित्र तो क्या है, वह तो बाद में। स्वरूप दृष्टि में आया। पूर्णानन्द का नाथ, वह दृष्टि में आने के बाद उसमें स्थिर होना, रमना, जमना, आनन्द का भोजन करना... आहाहा! इसका नाम चारित्र है। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

शरीर की जवान अवस्था, पाँच इन्द्रियाँ मजबूत हों, निरोग शरीर हो, पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) हों, परिवार, स्त्री अनुकूल हो। यह तो सब श्मशान की चीजें हैं। प्रभु! ये तुझमें कहाँ हैं? यह तो कहते हैं। तुझमें है, वह बाहर नहीं और बाहर है, वह तुझमें नहीं। आहाहा!

भावार्थ:—वीतराग निर्विकल्पसमाधि से विपरीत जो क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि विभावपरिणाम उनकर उपार्जन किये... ऐसा कहते हैं कि जन्म नहीं परन्तु जन्म हुआ कैसे तब? शरीर का, हों! कि वीतराग निर्विकल्पसमाधि से विपरीत... भगवान आत्मा अपनी वीतराग निर्विकल्प अभेद शान्ति की प्राप्ति करने में वह कारण है। उससे विपरीत वीतराग निर्विकल्पसमाधि से विपरीत जो क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि विभावपरिणाम... विकारी भाव, उनकर उपार्जन किये कर्मों के... उससे उपार्जित हुए कर्म। शुद्धात्मानुभूति, वीतराग अनुभूति से तो आत्मा प्राप्त होता है। उसमें कहीं कर्म बाँधता नहीं। शुद्धात्मानुभूति से कर्म नहीं होते। आहाहा! उससे तो कर्मों की निर्जरा होती है। शुद्धात्मानुभूति से विपरीत विभावभाव से उत्पन्न हुए जो कर्म... समझ में आया? उसके उदय से उत्पन्न हुए जन्म-मरण... यह बाँधे हुए कर्मों से जन्म-मरण होता है। आहाहा! भगवान आत्मा में तो है ही नहीं। परन्तु इस शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीतभाव में बन्धन हुआ, उससे जन्म-मरण होता है। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म की बात सूक्ष्म है, भगवान! वह कभी इसने सुनी नहीं।

समयसार चौथी गाथा में कहा है न? 'सुदपरिचिदाणभूदा' भगवान! तूने राग की बात सुनी है, परिचय में आयी है, अनुभव में आयी है। परन्तु राग से भिन्न भगवान की बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! और परिचय में आयी नहीं और अनुभव किया नहीं। तो यह एक ही दुर्लभ है। समझ में आया? विषयकषाय के परिणाम, लक्ष्मी की प्राप्ति, वह कोई दुर्लभ नहीं; यह तो अनादि से हुआ है। आहाहा! अज्ञानी को विषय-कषाय के परिणाम सुलभ हैं। ज्ञानी को विषय-कषाय के परिणाम दुर्लभ हैं। अमरचन्द्रभाई! ऐसी बात है, भगवान! लोग चाहे जो कहो। इसकी जवाबदारी उनके पास है। मार्ग तो यह है और इस मार्ग में आये बिना कभी जन्म-मरण का उद्धार नहीं होता। आहाहा!

देखो! अभी दो दिन पहले अमावस्या के (दिन) एक लड़का, रबारी का लड़का

था ग्वाले का। पन्द्रह वर्ष का। माघ महीने में विवाह हुआ। माघ महीने में विवाह हुआ। पागल—हड़के कुत्ते ने काट लिया तो हड़काया हो गया, पागल हो गया। इस अमावस्या को। चार दिन हुए न? देह छूट गयी। कुटुम्ब सब बाँधो मुझे... बाँधो मुझे... खाट के साथ बाँधो। बाँधो कहते हैं न? ऐसा हो जाता है बटका भरने का। हड़का कुत्ता। हमारे (गुजराती में) हड़काया कहे हैं। आहाहा! यह देह।

मुमुक्षु : उस लड़के का नाम जबरो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जबरो नाम था। हमारे चिमनभाई के यहाँ रहता था वह। कहाँ गये चिमनभाई नहीं? नहीं आये? नहीं आये। वर्षा आती होगी। रामजीभाई पहिचानते हैं। अपने यहाँ पूनाभाई है न नौकर? उनका दामाद। मुझे बाँधो। खाट उल्टी डालकर उल्टा करो। मुझसे बटका भरा जायेगा। बाँधा। पूरा परिवार इकट्ठा हुआ। रोवे... रोवे। क्या करे? अरे रे! पीड़ा बहुत। हड़का कुत्ता काटे तो पीड़ा बहुत होती है। हवा, पानी कुछ (सुहावे नहीं), ऐसी पीड़ा। देह की और राग की एकत्वबुद्धि से पीड़ा है। शरीर के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पीड़ा। यहाँ अभी चार दिन हुए। आहाहा! लड़का १५ वर्ष का जवान। माघ महीने में विवाह (हुआ)। वे लोग ग्वाले हैं न? छोटी उम्र में विवाह कर देते हैं। जाओ। आहाहा! यह सब जन्म-मरण। शुद्धात्मानुभूति के अभाव में विभावभाव से उत्पन्न हुए कर्म, उससे यह जन्म-मरण और रोग होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अनेक विकार है, वे शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं है,... आहाहा! जिस विकार से कर्मबन्धन और कर्म से रोगादि होते हैं, वह विकार जीव का नहीं है। जिसे भगवान आत्मा जीव कहते हैं, निश्चय आत्मा परमात्मास्वरूप उसे यहाँ जीव कहते हैं, पर्याय को नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में विकार है नहीं। आहाहा! **शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं है, क्योंकि निश्चयनयकर आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण है,...** केवलज्ञान अर्थात् यह पर्याय की बात नहीं है। केवल ज्ञान, अकेला ज्ञान। केवलज्ञान पर्याय यह नहीं। यह तो अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द। केवल ज्ञान आदि। केवल ज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, अकेली स्वच्छता, अकेली प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणों से प्रभु तो पूर्ण है। आहाहा! लोगों को इस दृष्टि की

खबर नहीं होती और दृष्टि का विषय क्या है, उसकी खबर नहीं और धर्म करते हैं। ठीक, भाई! जीवन चला जायेगा, प्रभु! आहाहा! मनुष्यपना मिला है, वह भव के, अनन्त भव के अभाव के लिये यह भव है। अनन्त भव के अभाव के लिये यह भव है। यह अनन्त भव का अभाव नहीं किया तो ऐसे अनन्त भव खड़े हैं। क्या किया इसने? आहाहा! बाहर में इज्जत मिली, पाँच-पचास लाख, अरब रुपये... कहा नहीं अभी। दो अरब चालीस करोड़। यहाँ अपने बहुत करोड़पति बैठे हैं। उसमें क्या हुआ ?

शुद्धनिश्चयनयकर... त्रिकाली भगवान आत्मा आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण है,... देखो! अल्पज्ञ अवस्था भी नहीं। गुण से परिपूर्ण प्रभु (विराजता है)। आहाहा! अनन्त गुण का निधान! भगवान आत्मा तो अनन्त शान्ति, अनन्त ज्ञान, केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, जिसमें भेद नहीं, पर्याय नहीं। आहाहा! जिसमें अपूर्णता नहीं, जिसमें विपरीतता नहीं, जिसमें अल्पता नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, अरे! इसने कभी गुण सुने ही नहीं। यह धूल और धाणी। आहाहा! आहाहा!

केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण है, और अनादि-सन्तान से प्राप्त... यह जन्म-मरण तो अनादि से पर्याय में है। अनादि-सन्तान से प्राप्त जन्म, जरा,... वृद्धावस्था, मरण,... देह छूटना। यह तो सन्तान (प्रवाह) चलता जाता है। आहाहा! भगवान तो अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें तो यह कुछ है नहीं। समझ में आया? **जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय,...** यह कुछ आत्मा में है नहीं, त्रिकाली वस्तु में है नहीं। **स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिंग,...** वेद की वासना और यह लिंग सब उसमें नहीं। **सफेद, काला वर्ण,...** सफेद वर्ण, रूपवान वर्ण वह तो जड़ का है। आत्मा में क्या है, भाई! आहाहा! श्मशान राख रूपवान हो, ऐसा यह सब रूपवान है, कहते हैं। श्मशान-श्मशान। यह राजाओं को जलावे तो सूखड़ की—चन्दन की लकड़ियों से जलाते हैं। रानी आदि को। दो मण, तीन मण, चार मण, पाँच मण अकेला चन्दन। उसकी राख भी कैसी होती है।

एक बार जामनगर में थे, तब कोई रानी गुजर गयी थी तो उसे वहाँ श्मशान में बहुत जलाया। फिर अमुक दिन तक वहाँ दूध डालते। गाय जाये और श्मशान में उसकी राख पर दूध डाले।

मुमुक्षु : जहाँ जन्मा हो वहाँ उसका

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पहुँचता नहीं। यहाँ बैठा हो, यहाँ मुख में पड़े, उसे पड़ता नहीं। वहाँ कहाँ से पड़ता था? यह सब मूर्खता के लक्षण हैं। इस एक को मुख में डाले तो दूसरे के मुख में पड़ता है? आहाहा!

मुमुक्षु : दूध यहाँ से भेजा किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूध भेजते नहीं। अज्ञान की भ्रमणा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सफेद आदि वर्ण आत्मा में नहीं है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप संज्ञा इन सबों से भिन्न है। आहाहा! यहाँ उपादेयरूप अनन्त सुख का धाम... अब आदरणीय कौन है? यह सब तो त्याज्य है। अनन्त सुख का धाम... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान है। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय सुख का धाम जो शुद्ध जीव उससे भिन्न जन्मादिक हैं, वे सब त्याज्य हैं, एक आत्मा ही उपादेय हैं,... आहाहा! अनन्त सुख का धाम भगवान, वह अनन्त गुण एकरूप, वह आत्मा आदरणीय है। आदर करनेयोग्य है, सत्कार करनेयोग्य है, स्वीकार करनेयोग्य है तो वह त्रिकाली आत्मा है कि जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते हैं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७०

यद्युद्भवादीनि स्वरूपाणि शुद्धनिश्चयेन जीवस्य न सन्ति तर्हि कस्य सन्तीति प्रश्ने देहस्य भवन्तीति प्रतिपादयति -

७०) देहहँ उभउ जर-मरणु देहहँ वणुणु विचित्तु।
 देहहँ रोय वियाणि तुहँ देहहँ लिंगु विचित्तु॥७०॥
 देहस्य उद्भवः जरामरणं देहस्य वर्णः विचित्रः।
 देहस्य रोगान् विजानीहि त्वं देहस्य लिङ्गं विचित्रम्॥७०॥

देहस्य भवति। किं किम्। उभउ उत्पत्तिः जरामरणं च वर्णो विचित्रः। वर्णशब्देनात्र पूर्वसूत्रे च श्वेतादि ब्राह्मणादि वा गृह्यते। तस्यैव देहस्य रोगान् विजानीहीति, लिङ्गमपि लिङ्गशब्देनात्र पूर्वसूत्रे च स्त्रीपुंनपुंसकलिङ्गं यतिलिङ्गं वा ग्राह्यं चित्तं मनश्चेति। तद्यथा शुद्धात्म-सम्यक्शुद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयभावनाप्रतिकूलै रागद्वेषमोहैर्यान्पु-पार्जितानि कर्माणि तदुदयसंपता जन्ममरणादिधर्मा यद्यपि व्यवहारनयेन जीवस्य सन्ति तथापि निश्चयनयेन देहस्येति ज्ञातव्यम्। अत्र देहादिममत्वरूप विकल्पजालं त्यक्त्वा यदा वीतरागसदानन्दैकरूपेण सर्वप्रकारोपादेयभूतेन परिणमति तदा स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति भावार्थः॥७०॥

आगे जो शुद्धनिश्चयनकर जन्म-मरणादि जीव के नहीं हैं, तो किसके हैं? ऐसा शिष्य के प्रश्न करने पर समाधान यह है, कि ये सब देह के हैं ऐसा कथन करते हैं - श्रीगुरु कहते हैं,

इस तन का ही जन्म मरण है विविध वर्ण भी तज के हैं।
 विविध लिंग अरु जरा रोग भी मन भी जानो तन के हैं॥७०॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य, [त्वं] तू [देहस्य] देह के [उद्भवः] जन्म [जरामरणं] जरा मरण होते हैं, अर्थात् नया शरीर (धरना), विद्यमान शरीर छोड़ना, वृद्ध अवस्था होना, ये सब देह के जानो, [देहस्य] देह के [विचित्रः वर्णः] अनेक तरह के सफेद, श्याम, हरे, पीले, लालरूप पाँच वर्ण, अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, ये चार वर्ण, [देहस्य] देह के [रोगान्] वात, पित्त, कफ, आदि अनेक रोग [देहस्य] देह के [विचित्रम् लिङ्गं] अनेक प्रकार के स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंगरूप चिन्ह को अथवा यति के लिंग को और द्रव्यमन को [विजानीहि] जान।

भावार्थ :- शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप अभेदरत्नत्रय की भावना से विमुख जो राग, द्वेष, मोह उनकर उपाजें जो कर्म उनसे उपजे जन्म-मरणादि विकार है, वे सब यद्यपि व्यवहारनय से जीव के हैं, तो भी निश्चयनयकर जीव के नहीं हैं, देहसम्बन्धी है ऐसा जानना चाहिये। यहाँ पर देहादिक में ममतारूप विकल्पजाल को छोड़कर जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनंदरूप सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है, तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय जानो॥७०॥

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ५, शनिवार
दिनांक-३१-०७-१९७६, गाथा-७०, प्रवचन-४९

परमात्मप्रकाश, ७० गाथा। क्या कहते हैं तुम्हारे ? सत्तर। आगे जो शुद्धनिश्चयनयकर जन्म-मरणादि जीव के नहीं हैं,... जन्म-मरण यह जीव के नहीं हैं। जीव तो त्रिकाली ध्रुवस्वरूप है। उसे जन्म-मरण नहीं, रोग नहीं, वृद्धावस्था नहीं। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण के भेद नहीं। तो किसके हैं ? ऐसा शिष्य के प्रश्न करने पर समाधान यह है,... क्या लिया ? शिष्य का ऐसा प्रश्न है, जिसे जानने की जिज्ञासा है कि भगवान आत्मा को जब जन्म-मरण संसार नहीं, तो यह जन्म-मरण हैं किसके ? उसका समाधान :

(७०) देहहँ उब्भउ जर-मरणु देहहँ वण्णु विचित्तु ।
देहहँ रोय वियाणि तुहँ देहहँ लिंगु विचित्तु ॥७० ॥

अन्वयार्थः—हे शिष्य! तू देह के जन्म, जरा, मरण होते हैं अर्थात् नया शरीर (धरना), विद्यमान शरीर छोड़ना,... यह सब शरीर की दशा है। आत्मा में शरीर है नहीं। इतनी बात यहाँ लेना है। वृद्ध अवस्था होना, ये सब देह के जानो,... आहाहा! देह के अनेक तरह के सफेद, श्याम, हरे, पीले, लालरूप पाँच वर्ण... आत्मा में नहीं है। अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र ये चार वर्ण... आत्मा में नहीं है। देह के वात, पित्त, कफ आदि अनेक रोग... देह के हैं। आहाहा! भगवान आत्मा में तो देह है नहीं, पूर्णानन्द आत्मा में तो विकार भी नहीं और सम्यग्दर्शन का विषय जो पूर्ण आत्मा, उसमें तो पर्याय भी है नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन जो पर्याय है, निर्विकल्प श्रद्धा के

साथ आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसे सम्यग्दर्शन का जो विषय है, वह तो त्रिकाली शुद्ध आत्मा उसका विषय है। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण तो नहीं, जिसमें विकार नहीं, जिसमें पर्याय नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

सम्यग्दर्शन की जो पर्याय है, उसका विषय त्रिकाल है परन्तु वह पर्याय द्रव्य में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय, पर्याय में है; द्रव्य, द्रव्य में है। वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु, सत् चिदानन्द प्रभु ध्रुव शाश्वत वस्तु, आहाहा! त्रिकाली भूतार्थ पदार्थ, जिसे ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ कहा। भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ। त्रिकाली वस्तु जो ध्रुव है, वह सत्यार्थ है। पर्याय भी असत्यार्थ है। आहाहा! त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय को भी असत्यार्थ कहा है, अभूतार्थ कहा है। गौण करके; अभाव करके असत्य है, ऐसा नहीं है। पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा है। त्रिकाल में नहीं; परन्तु पर्याय को गौण करके कहा तो पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव चिदानन्द प्रभु को विषय बनाने में सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन उसे विषय करता है तो सम्यग्दर्शन पर्याय तो अभूतार्थ है, त्रिकाल की अपेक्षा से। पर्याय, पर्याय की अपेक्षा से भूतार्थ है, परन्तु सम्यग्दर्शन का जो विषय है, वह त्रिकाल भूतार्थ है। आहाहा! बात ऐसी है, भाई!

वह यहाँ कहते हैं, देह के सब विकार हैं। जन्म-मरण आदि आत्मा में कहाँ! बाल, यौवन, वृद्धावस्था आदि अवस्था, वह सब तो शरीर की है। भगवान कहाँ बाल, युवा, वृद्ध है। वह तो कल थोड़ा कहा था। बाल अवस्था है, वह बहिर—रागादि को अपना मानना, वह बाल अवस्था है। शरीर की बाल अवस्था आत्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जो उस चीज़ में नहीं, ऐसा राग, पुण्य-पाप के विकल्प को अपना मानना, वह बहिर है। चैतन्य के स्वभाव में वह नहीं है। बहिर है, उन्हें अपना मानना, वह बहिरात्मा, वह बालक है। समझ में आया? आहाहा! और वस्तु भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अन्तरात्मा वस्तु, उसकी अनुभव में दृष्टि होना, उसकी स्वसन्मुख की दृष्टि में उपादेयता होना, उसे अन्तरात्मा, उसे युवा दशा कहते हैं। वह जीव की युवा दशा है। समझ में आया? और भगवान आत्मा अपनी पर्याय में परमात्मदशा प्रगट करे, पर्याय में; परमात्मा वस्तु से तो है। यहाँ परमात्मप्रकाश चलता है न! वस्तु से तो परमात्मस्वरूप ही है, अनादि। आहाहा! अभव्य का आत्मा भी परमात्मस्वरूप है। भव्य

का आत्मा भी परमात्मस्वरूप है, परन्तु वह परमात्मस्वरूप पर्याय में प्रगट होना, इसका नाम जीव की परिपक्व अवस्था—वृद्धावस्था कही जाती है। समझ में आया? इस (शरीर की) वृद्धावस्था, वह आत्मा में नहीं है। पर्याय में भी नहीं है।

मुमुक्षु : यह तो नयी व्याख्या आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी व्याख्या नहीं, अन्तर की बात है। ऐसा है, भगवान!

तेरी चीज़ क्या है? भाई! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, एक समय में तेरी ध्रुव सत्ता, जिसे शक्तिरूप परमात्मा कहते हैं, जिसे शक्तिरूप मोक्ष कहते हैं, जिसे शास्त्रभाषा से १४-१५ (गाथा में) अबद्ध कहा। कैसा है भगवान? कि अबद्ध है। उसकी दृष्टि करना, वह जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया? १५वीं गाथा में कहा न? 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणण्णं' उसमें मुझे तो 'अबद्ध' लेना है। आत्मा राग के बन्ध में है ही नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान अबद्धस्वरूप परमात्मा शक्ति, शक्ति से मोक्षस्वरूप है। अबद्ध कहो, वह तो बद्ध के अभाव की नास्ति की है। अस्ति से कहो तो मोक्षस्वरूप ही है। उसकी शक्ति मोक्षस्वरूप ही है।

मुमुक्षु : कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि। भगवान! तेरी मोक्ष अवस्था हो, वह दूसरी चीज़ है, परन्तु शक्ति और स्वभाव तो मोक्षस्वरूप ही है। आहाहा! यदि मोक्षस्वरूप शक्ति न हो तो पर्याय में मोक्ष कहाँ से आयेगा? कहीं बाहर से आता है? आहाहा! समझ में आया? यदि वह वीतरागस्वरूप न हो तो पर्याय में वीतरागता कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आती है? आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म खिरे, तब आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म खिरे तो आवे नहीं, ऐसा है ही नहीं। अपने स्वभाव में लीनता करे तो आती है। यह तो अपने आ गया न, अपने स्वभाव की—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय में आदि-मध्य-अन्त में आत्मा है। आदि में कर्म खिरे तो यहाँ

होता है, ऐसी बात है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञान की पर्याय प्रगट करने में आदि आत्मा, मध्य आत्मा, अन्त आत्मा। केवलज्ञान की पर्याय में केवलज्ञानावरणी का अभाव होता है तो केवलज्ञान होता है, ऐसी अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि (जन्म, जरा, मरण) आदि सब देह के जानो। आहाहा! वात, पित्त, कफ आदि अनेक रोग देह के... अरे! स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग.... देह के चिह्न हैं। आहाहा! अरे! यति के लिंग.... देह का है। नग्नदशा या पंच महाव्रत के विकल्प, वे सब देह के विकार हैं। समझ में आया? अलिंगग्रहण में तो कहा है। बीस बोल है न? आहाहा! यति का बाह्य लिंग जिसमें नहीं, उसे अलिंग आत्मा कहते हैं। समझ में आया? १७वाँ बोल है। बीस बोल हैं न, २०। प्रवचनसार, १७२ गाथा। बोंतेर कहते हैं। उसमें अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। उसमें १७वाँ बोल यह है। यति का बाह्य लिंग जिसमें नहीं, उसे हम भगवान आत्मा कहते हैं। आहाहा! अरे! वह तो नहीं, यह तो आगे लेंगे, आगे लेंगे। है? भावलिंग आत्मा में नहीं है। कितनी गाथा? देखो! ८८ गाथा है।

द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,... भगवान आत्मा में द्रव्यलिंग (तो है ही नहीं)। अन्तिम बात है। ८८ गाथा में अन्त में। दो आठ (८८) अन्तिम तीन लाईनें। द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,... नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प, वह सब द्रव्यलिंग है। ८८ की अन्तिम तीन-चार लाईनें। (गुजराती में) लीटी कहते हैं न? पंक्ति। आहाहा! (पृष्ठ) ८४ है? यहाँ ९३ है। क्या कहते हैं? द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है और वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग यद्यपि... देखो! वीतराग निर्विकल्प मोक्ष का निश्चय मोक्षमार्ग, वह भावलिंग। आहाहा! शुद्धात्मस्वरूप का साधक है, इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,... उपचार से है। आहाहा! पर्याय है न! मोक्ष के मार्ग की भी पर्याय है। निश्चय स्वभाव का अनुभव, दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसा जो मोक्षमार्ग निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प शान्ति, विकल्परहित निर्विकल्प वीतरागी शान्ति, वह भावलिंग भी जीव में नहीं है, वह तो पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग भाई! बहुत सूक्ष्म है, भाई! जिनवर का मार्ग लोगों ने बाह्य से मान लिया है, ऐसी चीज़ नहीं है।

जो भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप है, मुक्तस्वरूप है, ध्रुवस्वरूप है, सामान्यस्वरूप है, उसमें मोक्ष के मार्ग की निर्विकल्पदशा... द्रव्यलिंग तो है नहीं, भावलिंग साधकरूप से पर्याय में है; वस्तु में नहीं। वास्तव में तो भावलिंग जो निर्विकल्प आत्मा का अनुभव, जो वीतरागी पर्याय, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करती और द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है। सामान्य, पर्याय को स्पर्श कर जाए तो सामान्य का नाश हो जाए। एक समय की पर्याय बदले तो साथ में वह भी बदल जाए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, देखो! जीव का स्वरूप कहा जाता है, तो भी परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है। आहाहा! क्या बताना है? सम्यग्दर्शन का जो विषय है, वह तो भावलिंग की पर्याय से भी रहित है। समझ में आया? भावलिंग जो मोक्ष का मार्ग, निश्चय मोक्ष का मार्ग जो वीतराग पर्याय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीनों वीतरागी पर्याय हैं, यह मोक्ष का मार्ग है, परन्तु वह पर्याय में है। आहाहा! ऐसी बात! कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर दर्शन के सिवाय कहीं नहीं है। समझ में आया? आहाहा! तीन लोक का नाथ...

मुमुक्षु :कि भावलिंग से भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव नहीं, जीव का नहीं, द्रव्य का नहीं। 'जिउ' नहीं आया? ६८ गाथा में। ६८ गाथा में आ गया है। 'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।' 'जिउ' 'जिउ' हम जीव उसे कहते हैं। जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। देखो! 'जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउं भणेइ ॥६८ ॥' आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वर सभा के बीच, गणधर और इन्द्रों की सभा में, चक्रवर्ती और वासुदेव, बलदेव सभा में उपस्थित थे, वहाँ भगवान ऐसा कहते थे। आहाहा! प्रभु! 'जिणवरु एउं भणेइ' जीव उसे कहते हैं कि जिसमें... आहाहा! मोक्ष की पर्याय भी नहीं और मोक्ष के मार्ग को जीव करता नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय करती है। समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है, भाई! यह तो जैनदर्शन है। यह जैनदर्शन ही विश्वदर्शन है। दुनिया सबको इकट्ठे करके विश्वदर्शन कहती है, ऐसा नहीं है। ऐसा समन्वय किसी के साथ नहीं होता। आहाहा!

विश्व दर्शन अर्थात् समस्त शक्ति का पिण्ड प्रभु का दर्शन, वह जैनदर्शन है। यह तो १५वीं (गाथा) में कहा है न? 'जो पस्सदि अप्पाणं' कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते थे, वह हम सन्देश लेकर आये हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास गये थे न? आठ दिन रहे थे। भगवान ऐसा फरमाते थे कि जो कोई आत्मा को अबद्ध देखे, पर्याय में राग का सम्बन्ध नहीं, वस्तु अत्यन्त भिन्न है - ऐसा अबद्ध देखे, वह 'पस्सदि जिणसासणं सव्वं' वह समस्त जिनशासन को देखता है। आहाहा! जो राग को देखे नहीं, निमित्त को देखे नहीं, पर्याय को देखे नहीं। आहाहा! जो मुक्तस्वरूप प्रभु अनादि से है। पर्याय में जरा राग का सम्बन्ध है, वस्तु में है नहीं। पर्याय में राग का सम्बन्ध कहने में आता है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! वह वस्तु अबद्ध है। उसे 'पस्सदि' जो उसे देखता है, आहाहा! देखने के काल में वह वस्तु अबद्धस्वरूप दिखाई दी, वह जैनशासन है। उस पर्याय में उसे जैनशासन कहते हैं, वस्तु में नहीं।

जैनशासन वीतरागी पर्याय है, परन्तु उस त्रिकाली को देखकर जो वीतरागी पर्याय हुई, वह जैनशासन; परन्तु वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! देवीलालजी! बात तो ऐसी है, भगवान! अरे! तू छोटा नहीं, बड़ा है, प्रभु! तेरी शक्ति का माहात्म्य क्या कहे? प्रभु कहते हैं, हम भी पूरा नहीं कह सकते। समझ में आया? बारह अंग में बात आयी है, वह स्थूल आयी है, ऐसा कहते हैं। बारह अंग में, पण्डितजी! चौदह पूर्व। पंचाध्यायी में है, बारह अंग में स्थूल (बात) आयी है। आहाहा! वीतराग वाणी, आहाहा! देखने में आया उससे अनन्तवें भाग वाणी में आया, उससे अनन्तवें भाग गणधर ने आगम रचे, ऐसा भगवान निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु, सुख का साहिबा, सुख का भण्डार प्रभु है। उसमें जिनशासन की पर्याय नहीं है। जैनशासन पर्याय में है। समझ में आया? यहाँ यह कहा न? देखो!

'ण वि उप्पज्जइ' भगवान आत्मा तो उत्पाद में आता ही नहीं। जन्म तो नहीं, परन्तु उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, उस उत्पाद में ध्रुव आता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! भगवान का मार्ग है। जिसे एकावतारी इन्द्र सुनते हैं। शकेन्द्र, पहले देवलोक का इन्द्र, बत्तीस लाख तो विमान है। एक-एक विमान में असंख्य तो देव हैं। उनका साहेबा शकेन्द्र अभी एकावतारी है। एकावतारी समझते हो? एक भवतारी। आहाहा! वह

शकेन्द्र एकभवतारी है, ऐसा भगवान की वाणी में आया है और शास्त्र में है और उसकी इन्द्राणी एकभवतारी है। आहाहा! स्त्री का देह है। उत्पन्न हुई इन्द्राणी, तब तो मिथ्यादृष्टि थी। इन्द्राणीरूप से उत्पन्न हुई, तब तो मिथ्यादृष्टि थी। स्त्रीरूप से समकिति उत्पन्न नहीं होता। परन्तु पश्चात् इन्द्र के साथ भगवान के जन्म महोत्सव कल्याणक में जाती थी, तब उसे अन्तर में भान हो गया। उससे नहीं, हों! (अपने से हुआ है)। नहीं तो ऐसा सब देखते हैं, परन्तु अन्दर में ऐसा हो गया... ओहोहो! जिसकी पुण्यप्रकृति का इतना वैभव! मानस्तम्भ चारों ओर जिनकी सभा इन्द्र रचते हैं तो इन्द्र को विस्मय हो जाता है कि कैसी रचना हो गयी!! हम जैसा चाहते थे, उससे दूसरी रचना हो गयी। यह भगवान का—तीर्थकर का पुण्य है तो ऐसी हो गयी। उसमें इन्द्र बैठकर सुनता है तो भगवान यह बात करते हैं। आहाहा!

प्रभु! तेरा जीव जो है, वह उत्पाद की पर्याय में आता नहीं, नाथ! वह व्यय की पर्याय में आता नहीं, वह बन्ध-मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? है? 'जिउ' उसे जीव कहते हैं। यहाँ पर्याय को जीव नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा! त्रिकाली चिदानन्द प्रभु, चिदानन्द भूपाल की राजधानी, यह याद आया। उसमें आता है न? वीतराग की वाणी चिदानन्द भूपाल की राजधानी। वीतराग की वाणी, वह चिदानन्द भूपाल की राजधानी बताती है। भाई! यहाँ तो ऐसी बात है। क्या तेरी महिमा! प्रभु कहते हैं।

हम उसे जीव कहते हैं। आहाहा! कि जो जीव मोक्ष और मोक्ष के कारण की पर्याय को भी करता नहीं। जो बन्ध और बन्ध के कारण का तो करता नहीं परन्तु मोक्ष और मोक्ष के मार्ग को भी करता नहीं, उसे हम जीव कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप चाहे जिसे जीव कहो, हमें तो धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म उससे होता है। त्रिकाली जीव मोक्ष का करनेवाला नहीं, ऐसा द्रव्य है, उसकी दृष्टि करना, उसमें लीन होना, वह धर्म है। यह तो सेठ स्पष्टीकरण कराते हैं। आहाहा! देखो न! परमात्मप्रकाश। तेरी चीज़ जो है, वही परमात्मस्वरूप है। ध्रुव, हों! ध्रुव। उत्पाद-व्ययरहित जो चीज़ है, वह परमात्मस्वरूप ही है, प्रभु! विद्यमान परमात्मा, हों! आहाहा! अनादि परमात्मा। नया नहीं होता। वह तो परमात्मस्वरूप ही

है। आहाहा! उसकी दृष्टि इस ओर करना और स्वीकार करना, इसका नाम सम्यक् सत्य दर्शन, सत्य जैसा है, वैसा दर्शन करना सत्दर्शन है। आहाहा!

मुमुक्षु : धन्य है आपको कि आपने यह मर्म खोला।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ही ऐसी है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कोई भी सन्त हो, दिगम्बर सन्तों ने तो जगत को निहाल कर डाला है।

अनादि वस्तु यह है। भगवान सन्तों ने (ऐसा कहा है)। त्रिकाल में त्रिकाली को जाननेवाले का विरह नहीं होता। क्या कहा? तीन काल जो जगत है, उसमें तीन काल को जाननेवाले का विरह नहीं होता। अनादि से तीन काल का जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया? तीन काल में-तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। अनादि त्रिकाल ज्ञानी है, भविष्य में (होंगे)। आहाहा! अनादि त्रिकाल को जाननेवाले सर्वज्ञ अनादि से हैं। त्रिकाल जैसी चीज़ है, तो सामने त्रिकाल जाननेवाला भी त्रिकाल है। शुकनचन्दजी! आहाहा!

मैं तो यह कहता था, इस मूर्ति को उत्थापित करते हैं न, उन्हें हम कहते थे कि भगवान! ऐसा मत करो। जैसे भगवान त्रिकाल है, वैसे त्रिकाली प्रतिमा भी है। स्वर्ग में शाश्वत् प्रतिमा त्रिकाली है। जैसे त्रिकाली सर्वज्ञ हैं, किसी समय सर्वज्ञ का विरह नहीं होता तो किसी समय में उनके प्रतिबिम्ब का विरह नहीं होता। समझ में आया? प्रश्न चलते थे न! हमारे तो सम्प्रदाय में भी बहुत चलते थे। एक तो ऐसा प्रश्न बहुत वर्ष पहले ७६ के वर्ष में आया था। एक सेठ था। गृहस्थ था। अभी तो बहुत गृहस्थ हो गये। तब तो दस लाख बहुत कहलाते थे न! ७० वर्ष पहले। ६०-७०। कहते हैं न? सीत्तेर-सत्तर। उसे थे बहुत थोड़ा पैसा। गृहस्थ था। दस लाख रुपये, उस दिन, हों! ७० वर्ष पहले। अब तो साधारण महिलाओं के पास पाँच-दस लाख होते हैं। वे गृहस्थ थे, उनकी दृष्टि स्थानकवासी की थी। वे पहले ऐसा कहते थे, जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मूर्ति की पूजा होती है। सम्यग्दर्शन के बाद मूर्ति की पूजा नहीं, मूर्ति नहीं। समझे।

पश्चात् मैंने उत्तर दिया, सुनो! यह कहते हैं कि जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक प्रतिमा की पूजा होती है। सम्यग्दर्शन के बाद पूजा नहीं होती। भक्ति, पूजा और

प्रतिमा नहीं होती। सुनो भाई! मिथ्यादृष्टि के सामने निक्षेप होता ही नहीं। जब सम्यग्दर्शन होता है, तब श्रुतज्ञान होता है, तो श्रुतज्ञान के भेद निश्चय और व्यवहारनय होते हैं। उस व्यवहारनय का विषय निक्षेप समकित्ती को होता है। पण्डितजी! समकित्ती को ही पूज्य प्रतिमा है, क्योंकि उसे श्रुतज्ञान हुआ। त्रिकाली को जाने और पर्याय को जाने, राग को जाने, पर को जाने। तो उसे जो व्यवहारनय है, श्रुतज्ञान तो प्रमाण (ज्ञान) है, उसके भेद निश्चय और व्यवहार दो भेद हैं। श्रुतज्ञान अवयवी है और निश्चय-व्यवहार उसके अवयव / भेद हैं, अतः जब भेद में व्यवहारनय है, तब सामने निक्षेप ज्ञेय का भेद जो स्थापना, ज्ञेय का भेद है न? नाम, स्थापना, द्रव्य, वह ज्ञेय के (भेद हैं)। ज्ञान के भेद यहाँ रहे। ज्ञान के भेद निश्चय-व्यवहार यहाँ रहे। ज्ञेय के भेद वहाँ। अतः ज्ञानी को ही व्यवहार और निश्चय (होता है)। उसे ही प्रतिमा पूजनीय यथार्थ होती है। है भले शुभभाव। समझ में आया? हम तो पहले उसमें थे न, परन्तु हमारी लाईन तो अन्दर से दूसरी थी।

मैंने कहा कि नहीं; प्रतिमा का पूजन और प्रतिमा का यथार्थ मानना समकित्ती को होता है। जिसे सम्यग्ज्ञान हुआ, उसमें श्रुतज्ञान हुआ। श्रुतज्ञान का भेद व्यवहारनय हुआ, उसे-ज्ञेय का भेद स्थापना, वह व्यवहारनय का विषय उसको है। अज्ञानी को निक्षेप-बिक्षेप होता ही नहीं। समझ में आया? यह तो अन्दर से आती थी न! पूर्व की बात अन्दर थी न! यह तो कहीं सीखे नहीं थे। गुरु के पास थी ही नहीं। कहा, नहीं, बात ऐसी नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो क्या कहा? देखो! ओहोहो! यह जिनवर ऐसा कहते हैं, हे योगी! हे मुनि! हे धर्मात्मा! ऐसा कहते हैं। हे धर्मात्मा! जिनवर ऐसा कहते हैं कि हम उसे जीव कहते हैं कि जो मोक्ष के मार्ग को, मोक्ष को न करे, उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! समझ में आया? यह तो हिन्दी है। बेंगलोर में पण्डितजी बहुत अच्छे अर्थ (करते हैं), बहुत नरम व्यक्ति है। बेंगलोर। दो पण्डित थे। भाषा हिन्दी करते थे। वहाँ तो सब मराठी। मराठी भाषा बोलते थे। ये पण्डित बैठे, नरम हैं। बेंगलोर से आये हैं। हम बेंगलोर गये थे। बारह लाख का मन्दिर हुआ न अपना, बारह लाख का मन्दिर हुआ, दिगम्बर मन्दिर। बारह लाख का। हम गये थे। वहाँ बुलाया था। अपनी ओर से

हुआ है। सोनगढ़ की ओर से। एक जुगराजजी स्थानकवासी करोड़पति हैं। जुगराजजी करोड़पति। उन्होंने चार लाख डाले हैं। यहाँ की श्रद्धावाले हैं, परन्तु स्थानकवासी थे। एक करोड़। उसने चार लाख डाले हैं। एक भभूतमल श्वेताम्बर है। उसने आठ लाख डाले हैं। एक मन्दिर में बारह लाख। अपना मन्दिर, हों! दिगम्बर। नहीं तो हम तो श्वेताम्बर में जाते नहीं। बारह लाख।

मुमुक्षु : समवसरण भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समवसरण है, समवसरण है। लोग बहुत आते हैं। देखने के लिये अन्यमति (आते हैं)। बारह लाख का मन्दिर। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपकी अनुमति से बना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बनने की चीज़ थी, वह बनी है। किसी ने बनायी नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : हम तो कहते हैं कि हमारे गुरु मन्दिर बनाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाव होता है न शुभ! शुभभाव है और बनता है, उसमें निमित्त कहा जाता है। शुभभाव हुआ तो मन्दिर बना, ऐसा नहीं है। भाई! बनने की योग्यता परमाणु में थी तो परमाणु में उस समय में (उस प्रकार का परिणमन हुआ)।

प्रवचनसार १०२ गाथा में लेख है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस समय में उत्पन्न हो, वह उसका काल है। जन्मक्षण, ऐसा पाठ है। प्रवचनसार १०२ गाथा। द्रव्य की जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पत्ति का काल है, उस कारण से उत्पन्न होती है। पर से उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो दोपहर में चलता है। कर्ता-कर्म, दोपहर में चलता है न! आहाहा! पर का कर्ता तो नहीं। यह दोपहर में चलता है कि कर्म का उदय कर्ता और विकार कर्म, ऐसा है नहीं। विकारी परिणाम होते हैं, वह उसका कर्तव्य और कर्ता कर्म—ऐसा नहीं और विकारी परिणाम कर्ता तथा कर्मबन्धन होता है, वह कर्म—उसका कार्य, ऐसा होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो क्या होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार का कर्ता जीव और विकार जीव का कर्म। पर्याय में।

यहाँ तो पर्याय सिद्ध करनी है न! यहाँ तो विकार की पर्याय उसमें नहीं है। पर्याय, पर्याय की कर्ता है। परन्तु जब पर से भिन्न करना हो तो विकार का कर्ता आत्मा और विकारी पर्याय उसका कर्म। कर्म के कारण विकार हुआ है, ऐसा है नहीं और विकारी परिणाम हुए; इसलिए वहाँ कर्मबन्धन हुआ, ऐसा नहीं। उन परमाणु में उस समय में बँधने की योग्यता से परमाणु बँधे हैं। वे विकारी परिणाम हुए, वह तो निमित्तमात्र है। बन्धन हुआ, वह उपादान अपनी पर्याय से वहाँ बन्धन हुआ है। ज्ञानावरणीरूप बन्धन उसकी पर्याय से हुआ है। आत्मा ने राग किया, इसलिए नहीं। यह वस्तु है। निमित्त को उड़ाया कहो या निमित्त को सिद्ध किया कहो। है, इतनी बात। परन्तु उससे कार्य हुआ – ऐसा नहीं है। यह तो कहा न, ३७२ गाथा, समयसार। भगवान् अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि घड़ा कुम्हार से बना है, ऐसा हम नहीं देखते। मिट्टी से घड़ा बना है, ऐसा हम देखते हैं। ३७२, समयसार। दोपहर में चलता है न! समझ में आया? आहाहा! मिट्टी अपने स्वभाव को उल्लंघन नहीं करती, इसलिए कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं... लो, निमित्त उड़ा दिया। शिखरचन्दजी! निमित्त सिद्ध हुआ। निमित्त है उसमें, परन्तु उससे घड़ा हुआ है, ऐसा नहीं है। मिट्टी ही, कुम्हार के स्वभाव को नहीं स्पर्श करती हुई... आहाहा! है? अन्य द्रव्य के स्वभाव से किसी द्रव्य के परिणाम का उत्पाद देखने में नहीं आता। आहाहा! कहो, समझ में आया?

और जीव को परद्रव्य रागादि उत्पन्न करते हैं, ऐसी शंका नहीं करना चाहिए... कि कर्म का उदय आया तो इसे राग करना पड़ा, ऐसा नहीं है। आहाहा! परद्रव्य जीव को रागादि उत्पन्न कराता है, (ऐसी शंका नहीं करना) अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुण का उत्पाद करने की अयोग्यता है... आहाहा! कुम्हार की पर्याय से घड़ा उत्पन्न होता है, यह अयोग्यता है। आहाहा! मिट्टी की योग्यता है कि घड़े को उत्पन्न करती है। वह मिट्टी कर्ता और घड़े का कर्म, वह मिट्टी का है; वह कुम्हार का कार्य नहीं है। आहाहा! ३७२ गाथा बहुत स्पष्ट है। 'अण्णदविण्ण अण्णदवियस्स' ऐसा पाठ है। अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य की पर्याय कभी तीन काल में उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! लोग गड़बड़-गड़बड़ करते हैं, बापू! ऐसा नहीं होता, भाई! जो वस्तु जैसी है, वैसी समझनी चाहिए। उल्टी दृष्टि से अनादि काल गया। आहाहा! कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न नहीं

होती.... लो। मिट्टी कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न नहीं होती, परन्तु मिट्टी के स्वभाव से ही उत्पन्न होती है। उसमें चिह्न किया होगा न! इसमें चिह्न नहीं। गुजराती में उसके चिह्न होंगे। आहाहा!

यहाँ तो अपने ७० गाथा चलती है। यति के लिंग आत्मा में नहीं हैं। यहाँ आये हैं अपने। साधु का लिंग जो नग्नपना है या अट्टाईस मूलगुण है, वह आत्मा में नहीं है। वह तो नहीं; भावलिंग जो है, वह भी आत्मा में नहीं। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं और वह द्रव्य मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु : द्रव्य के आश्रय से तो मोक्षमार्ग की पर्याय होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल किसी के आश्रय से नहीं होती है। स्वयं के आश्रय से होती है। पर्याय, पर्याय के आश्रय से होती है। द्रव्य के आश्रय से नहीं और पर के आश्रय से तो नहीं, नहीं।

मुमुक्षु : सन्मुख होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय स्वयं से सन्मुख होती है। क्या द्रव्य सन्मुख कराता है ? आहाहा! यह वीतराग विज्ञान है। पण्डितजी आज आये नहीं। दोपहर में आयेंगे। हुकमचन्दजी आज आनेवाले थे।

मुमुक्षु : एक बजे आयेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बजे।

यहाँ तो कहते हैं यतिलिंग और द्रव्यमन भी आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! लिंग है न? आहाहा! है? लिंग नहीं। लिंग में यह डाला। यह द्रव्यमन परमाणु का बना हुआ है न, यह आत्मा में नहीं। निश्चय से तो भावमन जो संकल्प-विकल्प है, वह आत्मा में नहीं। अरे! मन की निर्मल ज्ञान की पर्याय जो है, वह भी आत्मा में नहीं, वह तो पर्याय में है। आहाहा! ऐसा पर्यायरहित जो भगवान, उसकी दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है, बाकी सब बात है। आहाहा! समझ में आया? भाई! युवक! झवेरीलाल है न? लड़का है। आहाहा! उसमें जवान (क्या), आत्मा तो है ऐसा

ही है। जवान, वृद्ध वह तो देह की दशा है। भगवान तो त्रिकाली एक स्वरूप विराजमान है। जिसमें विकारी पर्याय तो नहीं परन्तु जिसमें निर्विकारी पर्याय नहीं – ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़ती है। बाहर में रच-पच गये हैं न, बाहर की लाईन में।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें यति के लिंग का अभाव है। समझे न? अलिंगग्रहण में कहा न, अलिंगग्रहण में, १७वें बोल में यह कहा। यति के लिंग का अभाव है। बाह्यलिंग जो यति के हैं, विकल्प आदि, नग्नपना, इस भगवान आत्मा में अभाव है। इतना वहाँ लिया है। यहाँ तो आगे भावलिंग जो मोक्ष का मार्ग, आहाहा! कितना पर से हटना पड़े और कितना अन्दर में जुड़ान करना पड़े! योगी कहा न योगी! योगी अर्थात् स्वरूप में जुड़ान करना—पर्याय को जोड़ना, वह योगी। वे अन्यमति के बाबा के योगी की बात नहीं है। अपनी पर्याय को, निर्मल पर्याय को, द्रव्य में जोड़ना (अर्थात्) उस सन्मुख लक्ष्य करना, उसे योगी कहते हैं। समकिती भी उतना योगी है। समझ में आया? उन अन्यमत के बाबा की यहाँ बात नहीं है। (समकिती) योगी है उतना। आहाहा!

श्रद्धा की पर्याय को आत्मसन्मुख किया, इतना जुड़ान किया न? जुड़ान का अर्थ पर्याय द्रव्य में घुस नहीं जाती परन्तु उस ओर का झुकाव हुआ, उतना योगी। आहाहा! धर्मात्मा सन्त महात्मा योगी। योगी महात्मा। आहाहा! सन्त तो उसे कहते हैं, सन्त उसे कहते हैं, जो आनन्द के नाथ में झुक गये हैं और अतीन्द्रिय आनन्द का जिसमें अनुभव आया। सिद्धान्त तो ऐसा कहता है, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होना, वह धर्म की मोहरछाप है। समयसार पाँचवीं गाथा में है। यहाँ तो बहुत बार वाँचन हो गया है। सत्रह बार वाँचन हो गया। यह तो अठारहवीं बार चलता है। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान में भान हुआ तो उसमें आनन्द का अनुभव साथ में आता है। उस अनुभव की आनन्द की मोहरछाप है। आनन्द का भाव आवे नहीं और अनुभव हुआ, (ऐसा कोई कहे तो) वह बात मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा कहे और आनन्द आया नहीं (तो वह मिथ्या बात है)। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को पूर्णानन्द के नाथ की ओर दृष्टि है तो सर्व गुण के एक अंश की व्यक्तता प्रगट होती है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन में त्रिकाली ज्ञायकभाव

दृष्टि में आया तो जितने गुण हैं, (उनका) उतना एक अंश व्यक्तरूप से चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा! अनन्त गुण। क्योंकि द्रव्यदृष्टि हुई न, द्रव्य को पकड़ा न, पूरे अनन्त गुण के पिण्ड द्रव्य को पकड़ा तो द्रव्य में जितनी शक्ति है, उस सबका एक अंश व्यक्त प्रगट परिणमन में आया है। समझ में आया? ज्ञानादि एकदेश प्रगट होते हैं। यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। टोडरमलजी हैं न? (उनकी) रहस्यपूर्ण चिट्ठी।

इस प्रकार चौथे गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं... एक अंश प्रगट हुआ। वस्तु तो पूर्ण है, परन्तु सम्यग्दर्शन में सब गुणों का एकदेश व्यक्त अनुभव में आया है। है? रहस्यपूर्ण चिट्ठी। भाईश्री! तुमने तीन दृष्टान्त लिखे अथवा दृष्टान्त द्वारा प्रश्न लिखाये परन्तु दृष्टान्त सर्वांग मिलते नहीं हैं। दृष्टान्त है, वह एक प्रयोजन दर्शाता है। यहाँ दूज का चन्द्र, जलबिन्दु, अग्निकण—यह तो एकदेश है और पूर्णिमा का चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड—यह सर्वदेश है। इसी प्रकार चौथे गुणस्थान में आत्मा को ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुए हैं.... समझ में आया? उन्होंने ऐसा प्रश्न किया था कि असंख्य प्रदेश हैं न, तो कितने ही प्रदेश अत्यन्त एकदम खुले हो जाते हैं एकदेश। ऐसा उन्होंने कहा। तो (जवाब दिया कि) ऐसा नहीं है। एक थोड़ा भाग सर्व प्रदेश का खुल्ला हो जाता है। ऐसा प्रश्न किया था। ऐसा नहीं है। सब प्रदेश में अनन्त गुण हैं, वह एकदेश प्रगट होता है। समझ में आया? देवीलालजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मप्रदेश नहीं, गुण प्रगट हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण प्रगट हुए। प्रदेश में ऐसा कहा न कि जैसे दूज में चन्द्र का एक भाग खुल्ला हो जाता है, वैसे आत्मा के अमुक प्रदेश एकदम खुल्ले हो जाते हैं? तो कहा, ऐसा नहीं है। यह दृष्टान्त उससे नहीं मिलता। यहाँ तो असंख्य प्रदेश में जो अनन्त गुण हैं, वे प्रत्येक प्रदेश में आंशिक व्यक्त हो जाते हैं। प्रदेश थोड़े शुद्ध प्रगट होते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सब व्याख्यान हो गये हैं। सबके व्याख्यान हो गये हैं। 'अध्यात्म सन्देश' पुस्तक है न? उसमें सब व्याख्यान आ गये हैं। बहुत पुस्तकें बाहर प्रकाशित हुई हैं, यहाँ से चौदह लाख प्रकाशित हुई हैं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी, मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे है। तीन चिट्ठियाँ हैं न? एक उपादाननिमित्त चिट्ठी, एक रहस्यपूर्ण चिट्ठी और एक परमार्थ वचनिका, तीन है।

यहाँ कहते हैं, यतिलिंग और मन का द्रव्यलिंग भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! जान... गुरु ऐसा कहते हैं कि हे शिष्य! तू ऐसा जान। देखो! भाषा है! आहाहा! भगवान आत्मा में रंग, गन्ध, स्पर्श नहीं; ब्राह्मण-क्षत्रिय का वर्ण नहीं; और यति लिंग आदि मन के लिंग नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ:—शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान-ज्ञान आचरणरूप... शुद्धात्मा जो द्रव्य शुद्ध चैतन्य प्रभु, ऐसे शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सच्चा, सम्यक् आचरण सच्चा अभेदरत्नत्रय की भावना से विमुख.... उस अभेद भावना से विमुख जो राग, द्वेष, मोह, उनकर उपार्जे जो कर्म... आहाहा! यह कर्म कैसे उपार्जन हुए? शुद्धात्म श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र जो है, उससे विपरीत राग-द्वेष-मोह किये, उनसे कर्मबन्धन हुआ। समझ में आया? राग, द्वेष, मोह, उनकर उपार्जे जो कर्म उनसे उपजे जन्म-मरणादि विकार हैं,... उसके कारण से वहाँ जन्म-मरण विकार है, स्वभाव में है नहीं। वे सब यद्यपि व्यवहारनय से जीव के हैं,... व्यवहार से (कहे जाते हैं)। निश्चयनयकर जीव के नहीं हैं,... आहाहा! देह सम्बन्धी हैं, ऐसा जानना चाहिए। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ६, रविवार
दिनांक-०१-०८-१९७६, गाथा-७०, प्रवचन-५०

परमात्मप्रकाश, ७० गाथा। (गुजराती में) सीत्तर कहते हैं न? ७०। इसका भावार्थ। शब्दार्थ कल चला है।

भावार्थ:—शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप... सच्चे शब्द में सम्यक् (शब्द) पड़ा है। संस्कृत में सम्यक् (शब्द) पड़ा है। 'शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञान' यह सम्यक् का अर्थ किया सच्चा। क्यों किया? कि शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण... व्यवहाररत्नत्रय वह सच्चा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण नहीं है। समझ में आया? शुद्धात्मा जो एक स्वरूप त्रिकाल। यहाँ यह सिद्ध करना है कि उसमें देह, जन्म-मरण, यति का लिंग वह अन्तर में नहीं है। शुद्धात्मा जो वस्तु है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस शुद्धात्मा में यति का द्रव्यलिंग भी नहीं है, परन्तु यति का भावलिंग जो है, इस शुद्धात्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण अभेदरत्नत्रय। वह भावलिंग भी त्रिकाल शुद्धात्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें नहीं तो पर्याय में आया कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में पर्याय स्वतन्त्र हुई। पर्याय का दाता द्रव्य नहीं है। यह आ गया है अपने आत्मधर्म में योगसार में। योगसार में ऐसा है। अमितगति आचार्य (कृत योगसार प्राभृत)। धर्म की पर्याय का दाता आत्मा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा उसे कहते हैं जो शुद्धात्मा, उसकी सच्ची श्रद्धा, उसका सच्चा ज्ञान, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, वह अभेदरत्नत्रय। तो अभेदरत्नत्रय भी भावलिंग है। वह पर्याय है। शुद्धात्मा में वह भावलिंग भी नहीं। द्रव्यलिंग तो नहीं। आहाहा! जो ध्यान में ध्येय करनेयोग्य चीज़ है, उस चीज़ में तो देह आदि का लिंग, वर्ण, गन्ध, रस और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्ण और यति के द्रव्य और भावलिंग... (त्रिकाल शुद्धात्मा में नहीं)। आहाहा! जो अन्तर में ध्यान का विषय बनाना है, वह चीज़... आहाहा!

मुमुक्षु : उस चीज़ में तो सिद्ध भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी नहीं। सिद्ध तो अभी है नहीं? यह तो अभी होता है। साधकदशा में धर्मात्मा को भावलिंग होता है। सिद्धपना तो होता ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में शुद्धात्मा पूर्णानन्द का नाथ वह परिणति की क्रिया से रहित है। राग की क्रिया से तो रहित है, परन्तु परिणति, जो निर्मल शुद्ध अभेदरत्नत्रय की भावना... आहाहा! भावना अर्थात् अन्तर में शुद्धात्मा में एकाग्रता, वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं है। बात सूक्ष्म है, भगवान! यहाँ बताना है ध्येय द्रव्य है। ध्यानी के ध्यान का विषय द्रव्य है। समझ में आया? समकिति का ध्येय... साध्य परमात्मदशा है। केवलज्ञान प्राप्त करना, वह साध्य परमात्मदशा है परन्तु ध्येय त्रिकाल वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें बहिरात्मपर्याय, अन्तरात्मपर्याय और परमात्मपर्याय है नहीं, ऐसा भगवान आत्मा शुद्धात्मा कहा जाता है और वह शुद्धात्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। भावलिंग भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! तो निमित्त और संयोग तो उसका विषय होता नहीं। विषय समझे? ध्येय—लक्ष्य में जो चीज़ लेनी है। आहाहा! वह शुद्धात्मा भगवान... कहेंगे आगे।

ऐसा शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान... अर्थात् सम्यक् श्रद्धान। सम्यक् अर्थात् जैसा स्वरूप है, वैसा प्रतीति में आना। वह वस्तु प्रतीति में नहीं आती। समझ में आया? शुद्धात्मा, उसका सच्चा श्रद्धान। तो सच्चे श्रद्धान में वह शुद्धात्मा नहीं आता। परन्तु सच्चे श्रद्धान में शुद्धात्मा कैसा है, उसकी श्रद्धा आती है। आहाहा! ऐसा मार्ग! वीतराग सर्वज्ञ का पन्थ—जन्म, जरा, मरण के दुःखों से मुक्त होने का यह पन्थ है। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार कलंक है, कलंक है। आहाहा! उस कलंक को मिटाने का यह एक उपाय है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध द्रव्य, उसकी श्रद्धा। उसकी श्रद्धा। तो उस श्रद्धा में पूर्ण आत्मा की श्रद्धा आती है, परन्तु उस श्रद्धा की पर्याय में पूर्ण आत्मा नहीं आता। आहाहा! यदि एक समय की पर्याय में पूर्ण वस्तु आ जाये तो पर्याय पलटती है, वैसे द्रव्य भी पलटे और नाश हो जाये। आहाहा! देखो! यह मार्ग वीतराग का। यह दिगम्बर जैनदर्शन! यह कोई पक्ष नहीं, कोई वाड़ा नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि शुद्धात्मा का... पहले शुद्धात्मा की व्याख्या की। ज्ञानचन्दजी! कहो, आये नहीं तुम्हारे पिताजी? आते हैं। आहाहा! प्रेम है। यह वस्तु, बापू! यह तो... आहाहा! अरे! चौरासी लाख के अवतार, व्यवहाररत्नत्रय भी अनन्त बार किये। आता है? नियमसार में एक श्लोक—कलश आता है। कथनमात्र जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वह अनन्त बार किया है, प्रभु! आहाहा! तो व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता हो तो अनन्त बार हो गया होता। यह लोगों की बड़ी दलील है न? व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा (वे) कहते हैं। शास्त्र में है ऐसा। उसका अर्थ क्या? वह किस नय का वाक्य है?

कोई भी शब्द, गाथा हो तो पहले उसका शब्दार्थ करना, पश्चात् नयार्थ करना। किस नय का वाक्य है? फिर आगमार्थ। आगम यह कहता है। अन्यमति में विरोध यह है और तात्पर्य बाद में अन्तिम क्या है? तात्पर्य स्वरूप का आश्रय करना, वीतरागता तात्पर्य है। आहाहा! चारों अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। पंचास्तिकाय में आता है, १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। इसका अर्थ क्या हुआ। चारों अनुयोग में वीतरागता प्रगट करना, (ऐसा कहा है)। तो वीतरागता कब होती है? स्व के आश्रय से होती है। तो चारों अनुयोग में स्व का आश्रय करना, वह तात्पर्य है। आहाहा! देखो! सर्वज्ञ की शैली तो देखो! ओहोहो! चाहे तो चारों अनुयोग की बात हो, कथानुयोग हो परन्तु उसका तात्पर्य तो (वीतरागता है)। आत्मा को कर्म का निमित्त है और अपने परिणाम से दुःखी है स्वयं के कारण से, परन्तु उसका प्रयोजन क्या? प्रयोजन—उसे छोड़कर द्रव्य का आश्रय करना, वीतरागभाव प्रगट करना, यह उसका प्रयोजन है। समझ में आया?

यहाँ तो जन्म-मरणरहित होने की बात है। जन्म-मरण तो अनन्त बार किये स्वर्ग-नरक में। चार गति दुःखरूप है। चारों गति दुःखरूप है। स्वर्ग भी दुःखरूप है। वहाँ आनन्द कहाँ? आत्मा का आनन्द जहाँ नहीं, वहाँ राग का सुख, वह तो दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि शुद्धात्मा का सच्चा श्रद्धान... सम्यक्श्रद्धान, सत्यश्रद्धान। जैसा शुद्धात्मा पर्याय से रहित पूर्णानन्द अखण्ड प्रभु है, उसकी श्रद्धा... आहाहा!

उसका ज्ञान। उसके साथ सच्चा ले लेना। सच्चाश्रद्धान, सच्चाज्ञान और सच्चा आचरण। सच्चा आचरण, वह स्वरूप में लीनता, वह सच्चा आचरण है। व्यवहाररत्नत्रय आदि सच्चा आचरण नहीं। यह छहढाला में आता है न? निश्चय सो सत्यार्थ।

मुमुक्षु : जो सत्यार्थरूप सो निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। जो सत्यार्थरूप, उसे निश्चय कहा। तो इसका अर्थ व्यवहार, वह असत्यार्थ है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया ? ऐसा ! सेठ स्पष्ट कराते हैं।

सत्यार्थ यही है कि जो त्रिकाल शुद्धात्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, निर्विकल्प आनन्द की दशा (प्रगट हो), वह सत्यार्थ है। आहाहा! मोक्षमार्ग कहो, अभेदरत्नत्रय कहो या आनन्द का अनुभव कहो। पर्याय में, हों! आहाहा! यह आनन्द का अनुभव, वह मोक्षमार्ग सत्यार्थ है। और व्यवहाररत्नत्रय तो दुःखरूप है, राग है। (भले) उसे आरोप करके कहा, परन्तु है असत्यार्थ। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

ऐसे अभेद रत्नत्रय की भावना से... भावना अर्थात् एकाग्रता। भावना अर्थात् चिन्तवन या ऐसा नहीं। त्रिकाल शुद्धात्मरूप भाव, उसकी भावना। त्रिकाल शुद्धात्मा भगवान 'चित्स्वभावाय भावाय' आता है न पहली गाथा में (कलश में) ? 'भावाय' यह वस्तु त्रिकाली। कैसा भाव ? कि 'चित्स्वभावाय' आहाहा ! जिसका ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, ऐसे आत्मा का अन्तर में सच्चा श्रद्धान, सच्चाज्ञान, सच्चा आचरण, अन्दर स्वरूप में आनन्द की लीनता होना, वह आचरण अर्थात् चारित्र है। समझ में आया ?

उससे विमुख... ऐसे शुद्धात्मा की भावना से रहित। राग, द्वेष, मोह... यह राग-द्वेष-मोह तो उससे विरुद्ध हुए। आहाहा ! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय हो, वह तो शुभराग है। अभेद रत्नत्रय से तो ये विरुद्ध हैं। आहाहा ! समझ में आया ? नियमसार में लिया है न ? भाई ! निश्चय प्रतिक्रमण, इस व्यवहार क्रिया से विरुद्ध है। ऐसा लिया है। छह आवश्यक की व्यवहारक्रिया से निश्चय छह आवश्यक विरुद्ध है। तो निश्चय छह आवश्यक से व्यवहार आवश्यक की क्रिया विरुद्ध है, और उसका फल भी विरुद्ध है,

ऐसा लिया है। नियमसार में। आहाहा! समझ में आया? पहले इसके ज्ञान में ऐसी चीज़ का निर्णय विकल्प से नहीं, उसकी अन्तर में जाने की सामर्थ्य नहीं है। समझ में आया? जिसे रागमिश्रित विचार में भी मैं त्रिकाली शुद्ध हूँ, इसकी श्रद्धा, ज्ञान, वह धर्म है, ऐसा विकल्प से भी जिसे निर्णय नहीं, उसमें निर्विकल्प होने की शक्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आगे कहेंगे। निर्विकल्प काल में ही आत्मा उपादेय है। ऐसा कहेंगे। आहाहा! ऐसा शुद्धात्मा उपादेय है... उपादेय है (कहे), परन्तु किस काल में उसे उपादेय हुआ? जब वह शुद्धात्मा-सन्मुख (होकर) अनुभूति की तो उस अनुभूति के काल में वह भगवान आत्मा उपादेय है। राग के काल में उपादेय माना, वह उपादेय तो हुआ नहीं। आहाहा! देखो! मार्ग तो देखो! लोग व्यवहार का विवाद करते हैं। अरे.. प्रभु! भाई! तेरी महत्ता जोरदार है। तू व्यवहार से प्राप्त हो, ऐसी तेरी चीज़ नहीं। तेरी महत्ता को कलंक लगता है। व्यवहार से प्राप्त हो, यह कलंक है। आहाहा! राग से प्राप्त हो, ऐसी तेरी चीज़ नहीं। क्योंकि तेरा स्वरूप तो वीतराग है। भगवान शुद्धात्मा अर्थात् वीतरागस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! ऐसी चीज़ है, भगवान। जिनस्वरूपी है। क्योंकि वीतराग पर्याय जो होती है, वह कहाँ से आयेगी? वह वीतरागस्वरूप है, उसमें से आती है। भेद से कथन है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, भेद से कथन किया। यह तो साथ में कहा। वरना वीतरागी पर्याय वीतरागी पर्याय से होती है। वीतरागी भाव से भी नहीं। आहाहा! किस अपेक्षा से कथन है, यह जानना चाहिए न? आहाहा!

कहते हैं, उससे **विमुख जो राग, द्वेष, मोह...** तो राग में व्यवहाररत्नत्रय भी आ गया। द्वेष और मोह अर्थात् मिथ्यात्व, **उनकर उपाजें जो कर्म उनसे उपजे जन्म-मरणादि विकार है,...** आहाहा! राग की उत्पत्ति और व्यय तथा जन्म और मरण, यह सब अभेदरत्नत्रय की भावना से विमुख रागादि की भावना से कर्मबन्धन हुआ, उस बन्धन से वह सब मिलता है। उस कर्म से सब रागादि मिलते हैं। जन्म-मरण कर्म से मिलते हैं, आत्मा से नहीं। भगवान आत्मा तो जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव से

रहित है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा भव और भव के भाव से रहित है, प्रभु! रहित न हो तो रहित होगा कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? कठिन लगे, भाई! कोई ऐसा कहे कि निश्चय... निश्चय। सोनगढ़वाले निश्चय... निश्चय करते हैं। परन्तु यह आचार्य क्या कहते हैं? पण्डितजी! अरे भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरी महत्ता की इतनी बलिहारी है कि तू वीतराग पर्याय से ही ज्ञात होता है। राग से—निमित्त से ज्ञात नहीं होता, ऐसी तेरी महत्ता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : जो लोग आपका विरोध करते हैं, उन्हें आप...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई हमारा विरोध नहीं करते। उनकी पर्याय का विरोध करते हैं।

मुमुक्षु : आप उन्हें प्रभु कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम तो सबको प्रभु कहते हैं। (समयसार) ७२वीं गाथा में कहा न? अमृतचन्द्राचार्य ने (कहा है)। भगवान! ऐसा कहकर बुलाया है। आहाहा! पामर की पर्यायवाले प्राणी को द्रव्य से भगवान कहा है। माता झूले में झूलनेवाले बालक को (लोरी गाकर कहती है), मेरा बालक चतुर है, समझदार है, ऐसा कहकर सुलाती है। तीन लोक के नाथ अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त, भगवान कहकर जगाते हैं। अरे! जाग रे जाग, नाथ! समझ में आया? तेरी ऋद्धि भगवानस्वरूप है। आहाहा! यह राग में सोना तुझे योग्य नहीं, प्रभु! आहाहा! राग में सोना, राग में रजाई तानकर (सोना) वह तुझे योग्य नहीं, प्रभु! न पाळवे, समझते हो? न पाळवे अर्थात्? योग्य नहीं। थोड़ी हमारी गुजराती भाषा आ जाती है। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है न! तो परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा सिद्ध करते हैं। प्रत्येक गाथा (में) परमात्मस्वरूप प्रभु तू है। परमात्मा सर्वज्ञ होंगे, वे कहाँ से होंगे? वे परमात्मस्वरूप में से होंगे। समझ में आया? आहाहा! प्रायश्चित्त अधिकार है न? नियमसार में लिया है। प्रायश्चित्त तो यह है कि पुण्य-पाप को छेदना और वीतरागी पर्याय प्रगट करना। वह प्रायश्चित्त है। परन्तु उस प्रायश्चित्त का अर्थ आचार्य ने ऐसा किया। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज। प्रायश्चित्त अर्थात् आत्मा। प्रायश्चित्त प्रायः ज्ञान से सम्पन्न यह आत्मा। आहाहा! प्राय अर्थात् बहुलता से ज्ञानस्वरूप ही उसमें भरा है।

आहाहा! आत्मा प्रायश्चितस्वरूप ही है। प्रायश्चितस्वरूप है तो उसमें से प्रायश्चित वीतरागी पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? वीतरागी पर्याय प्रगट होती है तो वीतरागस्वरूप है, उसमें से प्रगट होती है। प्रायश्चित वीतरागी पर्याय प्रगट होती है तो कहाँ से प्रगट होती है? प्रायश्चितस्वरूप ही भगवान आत्मा है। प्रायः अर्थात् आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु आत्मा। आहाहा! कहो, सुकौशलजी! ऐसी बात है। भाई! इसकी अन्तर की चीज़ की महत्ता की खबर नहीं। आहाह

यहाँ यह कहते हैं कि इसकी जो स्वभाव-सन्मुख की भावना से विरुद्ध विकार से उत्पन्न हुए जो कर्म, उनसे यह सब जन्म-मरण आदि के संयोग दिखते हैं। वे सब यद्यपि व्यवहारनय से जीव के हैं,... पर्याय की अपेक्षा से व्यवहार से कहे जाते हैं। तो भी निश्चयनयकर जीव के नहीं हैं,... आहाहा! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यतिलिंग अन्दर आया है। यति का लिंग, द्रव्यमन वह भी लिंग है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर ऐसे आत्मा की दृष्टि करानी है। उसका तात्पर्य—यह आत्मा ऐसा है, इस ओर इसे झुकाना है। जो पर्याय और राग की ओर अनादि से मिथ्या दृष्टि झुकी हुई है। आहाहा! यह बात दिगम्बर सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। यह बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा!

प्रभु! तू परमात्मस्वरूप है। परमात्मप्रकाश है न? तेरी चीज़ ही परमात्मस्वरूप है। यदि परमात्मस्वरूप न हो तो परमात्मपर्याय कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आती है? आहाहा! समझ में आया? क्या राग करने से आती है व्यवहाररत्नत्रय से? राग में से वीतरागता आती है? आहाहा! और क्या पर्याय में से पर्याय आती है? आहाहा! यह और क्या कहा? कि वीतरागी स्वभाव में से वीतरागी पर्याय हुई, परन्तु फिर विशेष वीतरागी पर्याय कहाँ से आयी? वह पर्याय में से आती है? समझ में आया? मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय हो तो मोक्ष होता है। परन्तु मोक्ष होता है, वह मोक्षमार्ग की पर्याय से नहीं होता। केवलज्ञान, मोक्ष होता है, वह तो द्रव्य में से द्रव्य के आश्रय से होता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय होता है, तब मोक्ष होता है। परन्तु वह तो व्यय होकर होता है, तो भाव क्या? उसका मूल कारण (क्या)? वह तो अभाव हुआ। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय होता है, तब मोक्ष होता है। चौदहवें (गुणस्थान) में अन्त में पूर्ण मोक्षमार्ग की पर्याय हुई, बस, व्यय होकर मोक्ष होता है। मोक्ष के भाव का कारण क्या? उसका तो अभाव हो गया। समझ में आया? तो मोक्ष की पर्याय का वास्तव में कारण मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा है, वह कारण है। क्योंकि आत्मा ही मोक्षस्वरूप है। आहाहा! यहाँ परमात्मस्वरूप सिद्ध करना है न? समझ में आया? आहाहा! मोक्षस्वरूप भगवान कैसे जँचे इसे? पामर दृष्टि में राग और पर्याय के प्रेम में भगवान परमात्मा कैसे रुचे? समझ में आया? यह तो दिशा बदले, परसन्मुख की दिशा बदले और अपनी दिशा की ओर दशा करे। आहाहा! यह कहते हैं।

यह व्यवहारनय से जीव के हैं, तो भी निश्चयनयकर जीव के नहीं हैं, देहसम्बन्धी ऐसा जानना चाहिए। यहाँ पर देहादिक में ममतारूप विकल्पजाल को छोड़कर... अब उपादेय करना है, वह शुद्धात्मा किस काल में? समझ में आया? ऐसा शुद्धात्मा आदर करनेयोग्य है तो किस समय में? किस क्षण में? आहाहा! राग और पर्याय का आदर तो अनादि से किया है। अब त्रिकाली शुद्धात्मा का आदर करना, उपादेय करना। कब? किस क्षण में यह होता है? आहाहा! देहादिक में ममतारूप विकल्पजाल को छोड़कर जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप... आहाहा! जीव। अब त्रिकाली की बात करते हैं। वीतराग सदा आनन्दरूप... आहाहा! प्रभु आत्मा तो वीतराग सदा आनन्दरूप है। आहाहा! सब तरह उपादेयरूप... ऐसा भगवान आत्मा वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप... आहाहा! चारों ओर से वही उपादेय है। आहाहा! पर्याय उपादेय नहीं। निर्मल पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

नियमसार में, ५०वीं गाथा में तो ऐसा कहा कि मोक्ष का मार्ग जो निर्मल पर्याय है, वह भी परद्रव्य है। परद्रव्य है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से नयी वीतरागी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार निर्मल मोक्ष की पर्याय में से नयी शुद्धि, वृद्धि की उत्पत्ति नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! क्या इनकी शैली! सन्तों की क्या पद्धति! आहाहा! उसे पकड़ प्रभु तू, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बातों से वड़ा नहीं होते। बातें करने से कोई चीज़ नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बातों से वड़ा नहीं होते, ऐसा हमारे कहते हैं। तुम्हारे कुछ है? कथा। यह बातें करने में वड़ा नहीं होता? पकौड़ी?

यह बात करे कि आटा आया, ऐसा कहने से बड़ा हो जाये ?

मुमुक्षु : वहाँ तो नहीं होता, यहाँ तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आप हमको आनन्द आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आनन्द ऐसा नहीं है। यह तो राग की प्रसन्नता है। राग की प्रसन्नता है, यह भगवान की प्रसन्नता नहीं है। आहाहा!

बाल गोपाल, जवान विराजता है अन्दर, भाई! सब परमात्मा है अन्दर। आहाहा! देखो न! वहाँ समयसार की ७२ गाथा में कहा न? अशुचि—पुण्य और पाप के भाव अशुचि मलिनरूप अनुभव में आते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग भी अशुचि मलिनरूप अनुभव में आता है, ऐसा कहकर अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि भगवान आत्मा... ऐसा टीका में लिया है। आहाहा! प्रभु! तुझे भगवान कहकर बुलाते हैं। भगवान आत्मा अत्यन्त निर्मल सदा निर्मलानन्द है। आहाहा! जैसे पुण्य और पाप अशुचि मैल अनुभव में आता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! पवित्र पूर्ण निर्मल, ऐसा अनुभव में आना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! यह भगवान की धर्मकथा। यह भगवान अर्थात् आत्मा की धर्मकथा है। प्रभु! तू बड़ा है। अरे! तेरी शक्ति में तो सिद्ध की अनन्त पर्यायें पड़ी हैं। ऐसे भगवान को तू पामररूप से कैसे मानता है? प्रभु! आहाहा! तू पर्याय जितना क्यों मानता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। पाटनीजी! आहाहा!

स्वभाव के सन्मुख हुए जो मति और श्रुतज्ञान, उस मति-श्रुतज्ञान में पूरी चीज़ नहीं आती, परन्तु पूरी चीज़ का ज्ञान होता है। आहाहा! यह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, केवलज्ञान को बुलाते हैं। पण्डितजी! षट्खण्डागम में धवल में है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। गजब बात! आहाहा! जो भगवान आत्मा शुद्धात्मा, उसका ज्ञान हुआ—सम्यग्ज्ञान हुआ... पहले कहा न? वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है, ऐसा धवल में पाठ है। आहाहा! आओ... आओ... आओ... जैसे चन्द्र की दूज उगती है, तो उसकी पूर्णिमा होगी, होगी और होगी ही। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द की प्रतीति और उसका सम्यग्ज्ञान हुआ। उसका, हों! वह ज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है,

ऐसा पाठ है। बुलाता है, अर्थात् अल्प काल में आओ। अब केवलज्ञान का विरह नहीं रह सकता। आहाहा! प्रभु! तेरा ज्ञान हुआ न! पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान हुआ, वह सम्यक्ज्ञान ऐसी पुकार करता है। सुकौशलजी! ऐसी बात है, भगवान! लोगों को ऐसा लगता है, व्यवहार के रसिकों को मानो, बापू! यह मार्ग अलग, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव गणधर और इन्द्रों के बीच यह बात करते थे, वह बात सन्त जगत को आड़तिया रूप से कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इस बाह्यलिंग के ऊपर की दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! अरे! भावलिंग की दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! भावलिंग प्रगट हुआ, वह द्रव्य की दृष्टि से प्रगट हुआ, परन्तु अब अभी भावलिंग की दृष्टि छोड़ दे। उसका आश्रय छोड़ दे। तीन लोक का नाथ शुद्धात्मा भगवान परिपूर्ण परमात्मा शक्ति से पड़ा है, उसके आश्रय में जा, उसका अवलम्बन ले। आहाहा! प्रभु! तुझे जन्म-मरणरहित होना हो तो यह मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक उपाय कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही उपाय है, दूसरा उपाय है नहीं। स्पष्टीकरण करते हैं। एक उपाय दूसरा कहा है। प्रवचनसार में (कहा है)। आगम का स्वलक्ष्य से अभ्यास करना, यह दूसरा उपाय है। पण्डितजी! प्रवचनसार में ज्ञान अधिकार की पहली ९२ गाथा है न? उसमें लिया है। उस गाथा में लिया है। यह उपाय है और दूसरा यह उपाय है। स्वलक्ष्य से आगम का अभ्यास करना। राग से होता है, ऐसा दूसरा उपाय नहीं। आहाहा! प्रवचनसार में है। समझ में आया? सब बात ख्याल में तो है न! आनेवाली हो वैसी आती है। आती है। लावे कौन? आहाहा!

भगवान! अरे! तुझे भगवान कहकर बुलाते हैं और तू न जागे? आहाहा! प्रभु! तू भगवान है। तेरे आश्रय से जो दशा होती है, वह कब होती है, यह कहते हैं। वीतराग सदा आनन्दरूप... भगवान सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है,... आहाहा! यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ अपने सन्मुख होकर दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निज भावरूप परिणमता है। तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है,... तब उस समय।

फिर से। यह तो परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव (कृत)। कुन्दकुन्दाचार्य की छाप

सब ग्रन्थों में है। समयसार आदि की (छाप) सब ग्रन्थों में है। कुन्दकुन्दाचार्य तो अलौकिक हैं! आहाहा! देवसेनाचार्य ने कहा न? देवसेन आचार्य दर्शनसार में। छोटी पुस्तक है दर्शनसार। उसमें कहा। प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य को कहते हैं। आप महाविदेह में जाकर ऐसा मार्ग न लाते तो हम मुनि धर्म कैसे पाते? आहाहा! अपने डाला है। आहाहा! पद्मनन्दि। आप महाविदेह में जाकर साक्षात् तीन लोक के नाथ विराजते हैं... आहाहा! उस समय थे और अभी वे ही भगवान हैं। यह तो संवत् ४९ में (गये थे), अभी तो दो हजार वर्ष हुए। अभी तो प्रभु अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। श्वेताम्बर चौरासी लाख पूर्व कहते हैं। परन्तु करोड़ पूर्व है। एक पूर्व में (सत्तर लाख) छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। उसे एक पूर्व कहते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। समझ में आया? प्रभु! तुम महाविदेह में... ऐसे हाथ करते हैं, वहाँ विराजते हैं। आहाहा! प्रभु! तुम महाविदेह में जाकर ऐसा मार्ग न लाये होते तो हम मुनि धर्म कैसे प्राप्त करते? इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे मुनि का अनादर किया? उस समय कहा था न? कि अकेले कुन्दकुन्दाचार्य को मानने जाओगे तो दूसरे सन्तों का बलिदान होगा। अरे! भगवान! ऐसा नहीं होता, भाई! जिनकी विशेष महिमा आयी है और जिनके प्रताप से अपना भान हुआ है, उनकी महिमा गाते हैं। मुनि ऐसा कहते हैं देवसेनाचार्य भावलिंगी सन्त। नाथ! पद्मनन्दिप्रभु! तुम महाविदेह में जाकर यह मार्ग न लाते तो हम धर्म कैसे प्राप्त करते? आहाहा! तो इसका अर्थ ऐसा हुआ कि दूसरे मुनियों के पास धर्म नहीं? इसकी बात कहाँ है?

यहाँ तो उत्कृष्टरूप से सरल भाषा में, सादी भाषा में आप जो सीधे भगवान के पास जाकर लाये, ऐसी बात अन्यत्र कहीं मिली नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, पण्डितजी! उसमें दूसरे मुनि का अनादर हुआ? बलिदान हुआ? ऐसा नहीं है। भाई! ऐसा नहीं बोला जाता। और वह वृन्दावनदास तो ऐसा भी कहते हैं। वृन्दावन। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे हुए नहीं, हैं नहीं, होंगे नहीं। उनकी महिमा जिसे अन्तर में आयी, वह उसकी बात करते हैं। उसमें दूसरे मुनि का अनादर होता है, ऐसी बात नहीं, प्रभु! समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कहते हैं, आचार्य। आहाहा! देवसेनाचार्य कहते हैं। भावलिंगी सन्त थे। वे कहते हैं कि प्रभु! तुम महाविदेह में जाकर ऐसी बात सरल, सहज, अल्प भाषा में महान मर्म भरे हैं, ऐसी बात न लाते तो प्रभु! हम धर्म किस प्रकार प्राप्त करते? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! देहादिक में ममतारूप विकल्पजाल को छोड़कर जिस समय... यहाँ वजन है। विकल्पजाल को छोड़कर जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है,... आहाहा! जिस समय अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता है, उस काल में प्रभु, तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है,... उस काल में शुद्धात्मा उपादेय है। है? जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है,... आहाहा! समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निज भाव से जिस समय में परिणमते हैं, उस समय में आत्मा उपादेय हुआ। लक्ष्य में लिया और धारणा में लिया कि यह उपादेय है, वह उपादेय नहीं हुआ। आहाहा! परमात्मप्रकाश। अभी तो दोपहर में समयसार चलता है। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! पूर्णानन्द के नाथ का जिस समय में श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन है, उस समय में वह आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा! समझ में आया? जिस समय में शुद्धात्मा उपादेय हुआ... कब? कि उसका परिणमन निर्मल हुआ (तब)। आहाहा! वह कैसा है? निज भावोंकर परिणमता है,... ऐसा लिया न? क्योंकि वह है कैसा? कि वीतराग सदा आनन्दरूप... तो वीतराग सदा आनन्दरूप निज भाव से परिणमता है। निज भाव वीतराग आनन्दरूप परिणति। आहाहा! यह बात है कहाँ? आहाहा! यह तो मर्म की बातें हैं। समझ में आया? आहाहा! है?

‘वीतरागसदानन्दैकरूपेण सर्वप्रकारोपादेयभूतेन परिणमति तदा’ यह ‘तदा’ में से यह समय निकाला है। संस्कृत में ‘तदा’ शब्द है।

मुमुक्षु : सर्व प्रकार का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण उस ओर का झुकाव। सर्व प्रकार से। कोई राग की अपेक्षा नहीं, पर की नहीं। पूरा पूर्णानन्द। कोई राग का आश्रय, निमित्त का आश्रय, भगवान के

लक्ष्य का आश्रय, वाणी सुनने का आश्रय, कोई प्रकार नहीं। समझ में आया? यह तो पहले आ गया है। दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यह आ गया है। वेद और वाणी, शास्त्र। वेद का अर्थ दिव्यध्वनि किया। शास्त्र का अर्थ मुनियों की वाणी किया। उससे भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। क्योंकि वह तो परवस्तु है। परलक्ष्य में लक्ष्य हो, तब तो राग होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विचारते हैं स्वयं न? 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' ऐसा आता है। बनारसी विलास। समझे? प्रणव मन्त्र है। (संवत्) १९९५ में प्रकाशित हुआ। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' बनारसीदास का बनारसी विलास पुस्तक है, उसमें यह है। (संवत्) १९९५ के वर्ष में यह प्रकाशित हुआ था। ॐ की (स्थापना हुई) न स्वाध्यायमन्दिर में? ॐ-ॐ। यह इटली का पत्थर है। उसमें ॐ इटली के बड़े पत्थर में। १९९५ में, फाल्गुन महीने में। ३७ वर्ष हुए। तब प्रकाशित हुआ था। हजारों प्रकाशित हुए। हमारे हिम्मतभाई पण्डित गाते हैं। 'मुख ॐकार ध्वनि' भगवान के मुख से ॐकार ध्वनि उठती है। ऐसी भाषा नहीं आती। अपन जैसे बोलते हैं, वैसी भाषा नहीं होती। भाषा में तो, राग है तो खण्ड-खण्ड ओकर भाषा निकलती है। भगवान तो वीतराग हैं, इसलिए अखण्ड भाषा आती है। ॐ ध्वनि। समझ में आया? 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' चार ज्ञान के धनी गणधर भगवान की वाणी में से भाव करके सूत्र बनाते हैं।

भगवान की वाणी में अर्थ आया है। समझ में आया? भगवान की वाणी में श्रुतज्ञान आया है। क्या कहा? केवलज्ञान नहीं। श्रुतज्ञान आया है। धवल में पाठ है। धवल में। क्योंकि सुननेवाले गणधर थे और उन्हें श्रुतज्ञान हुआ। तो वाणी में श्रुतज्ञान आया है। वाणी में केवलज्ञान नहीं आया है। आहाहा! धवल में है। धवल में पाठ है। आहाहा! भगवान ने भावश्रुतज्ञान से... समझे? वाणी कही। आहाहा! समझ में आया? धवल यहाँ नहीं। धवल के भाग में है। यह श्रावण कृष्ण एकम् को ध्वनि निकलती है न? उस समय का वहाँ धवल में कथन है। यह तिथि और वार... उसमें यह है। क्या कहा? क्या कहा?

मुमुक्षु : भगवान के ज्ञान में श्रुतज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुतज्ञान आया, ऐसा कहा। केवलज्ञान वाणी में आया, ऐसा नहीं। वाणी में कहाँ से आवे ? समझ में आया ?

‘ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रची आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।’ आहाहा! ‘सु सत्यार्थ शारदा तासु भक्ति उर आण। छन्द भजुंग पर्याप्त में अष्ट कहूँ बखान।’ आहाहा! ‘सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला’ वीतराग वाणी ऐसी है। ‘सदा सुधा धर्म संसाधनी’ सुधा अर्थात् अमृत। अमृतरूपी धर्म के संसाधनी धर्मशाला है। वीतराग धर्मशाला है। चारों ओर देखो यह वाणी धर्मशाला। आहाहा! यह भगवान की वाणी है। पौने चार लाख अक्षर हैं। आहाहा!

देखो! ‘सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला’ सुधा का अर्थ हमारे भाई दूसरा करते हैं दूसरे में। परन्तु मैं तो ऐसा अर्थ करता हूँ। ‘सुधा ताप निरनाशनी मेघमाला।’ अमृतरूपी मेघमाला मोह के ताप का नाश करनेवाली है। बनारसीदास का प्रणव माहात्म्य है। प्रणव माहात्म्य। ॐकार के माहात्म्य की पूरी पुस्तक है। ‘महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी, महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी, नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी’ वागेश्वरी अर्थात् वाक् की ईश्वर। वाघेश्वरी नहीं। वह सरस्वती वाघ की ईश्वरी। ‘नमो देवी वागेश्वरी जिनवाणी’ वाकेश्वरी। वाणी में ईश्वर—वाणी भगवान की। आहाहा! ‘नमो देवी वागेश्वरी जिनवाणी’ आहाहा! विशेष अन्दर आया है। ‘चिदानन्द भुपाल की राजधानी, चिदानन्द भुपाल की...’ चिदानन्दरूपी राजा भुपाल, उसकी वीतराग वाणी राजधानी है। आहाहा! वह यह वाणी है। ‘नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी’ पूरा बड़ा है।

यहाँ कहते हैं, अर्थ है। है ? जिस समय यह जीव... आहाहा! वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप... क्योंकि ऐसे तो संवर को उपादेय कहा है। मोक्षमार्ग में आया है। निर्जरा को हित कहा है, मोक्ष को परमहितकर कहा है। परन्तु इस अपेक्षा से व्यवहार। यह तो सब तरह उपादेयरूप... भगवान आत्मा है। समझ में आया ? वह तो प्रगट करने की अपेक्षा से वहाँ उपादेय कहा है। संवर प्रगट करनेयोग्य है, निर्जरा करनेयोग्य है, मोक्ष (प्रगट करनेयोग्य है)। इस अपेक्षा से (कहा है)। बाकी सब तरह उपादेयरूप... हो तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है। कब ? कि जब उस ओर की

वीतरागी परिणति करे तब। सेठ! आहाहा! इसमें लक्ष्मी का कुछ (नहीं आता)। ये दोनों सेठिया साथ में बैठे हैं। दोनों करोड़पति। इसमें कहीं करोड़पति की कीमत नहीं आती। आहाहा!

यह भगवान अनन्त लक्ष्मी का पति, भगवान कहते हैं, भग अर्थात् लक्ष्मी और वान अर्थात् रूप। जिसका लक्ष्मी रूप है। लक्ष्मीवाले हैं। कैसी लक्ष्मी? अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आया न? सदा वीतराग सदा आनन्दरूप... सदा वीतराग और सदा आनन्दरूप। आहाहा! ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेकर अनुभव करता है, उस समय वह आत्मा उपादेय हुआ। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है,... देखा! जिस समय यह जीव वीतराग सदा आनन्दरूप सब तरह उपादेयरूप निज भावोंकर परिणमता है, तब अपना यह शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय जानो। आहाहा! इस गाथा का अभिप्राय यह है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७१

अथ देहस्य जरामरणं दृष्ट्वा मा भयं जीव कार्षीरिति निरूपयति -

७१) देहहं पेक्खिवि जर-मरणु मा भउ जीव करेहि।

जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि॥७१॥

देहस्य दृष्ट्वा जरामरणं मा भयं जीव कार्षीः।

यः अजरामरः ब्रह्म परः तं आत्मानं मन्यस्व॥७१॥

देहहं पेक्खिवि जरमरणु मा भउ जीव करेहि देहसंबन्धि दृष्ट्वा। किम्। जरा-मरणम्। मा भयं कार्षीः हे जीव। अयमर्थो यद्यपि व्यवहारेण जीवस्य जरामरणं तथापि शुद्धनिश्चयेन देहस्य न च जीवस्येति मत्वा भयं मा कार्षीः। तर्हि किं कुरु। जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि यः कश्चिदजरामरो जरामरणरहितब्रह्मशब्दवाच्यः शुद्धात्मा। कथंभूतः। परः सर्वोत्कृष्टस्त-मित्थंभूतं परं ब्रह्मस्वभावमात्मानं जानीहि पञ्चेन्द्रियविषयप्रभृतिसमस्तविकल्पजालं मुक्त्वा परमसमाधौ स्थित्वा तमेव भावयेति भावार्थः॥७१॥

आगे ऐसा कहते हैं कि हे जीव, तू जरा-मरण देह के जानकर डर मत कर -

इस शरीर की जरा-मृत्यु को देख न तू होना भयभीत।

परम ब्रह्म मैं अजर अमर आत्मा हूँ-ऐसा मानो जीव॥७१॥

अन्वयार्थ :- [जीव] हे आत्माराम, तू [देहस्य] देह के [जरामरणं] बुढ़ापा मरने को [दृष्ट्वा] देखकर [भयं] डर [मा कार्षीः] मतकर [यः] जो [अजरामरः] अजर अमर [परः ब्रह्म] परब्रह्म शुद्ध स्वभाव हैं, [तं] उसको तू [आत्मानं] आत्मा [मन्यस्व] जान।

भावार्थ :- यद्यपि व्यवहारनय से जीव के जरा-मरण हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं है, देह के हैं, ऐसा जानकर भय मत कर, तू अपने चित्त में ऐसा समझ, कि जो कोई जरा-मरण रहित अखंड परब्रह्म है, वैसा ही मेरा स्वरूप है, शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है, ऐसा तू अपना स्वभाव जान। पाँच इन्द्रियों के विषय को और समस्त विकल्पजालों को छोड़कर परमसमाधि में स्थिर होकर निज आत्मा का ही ध्यान कर, यह तात्पर्यार्थ हुआ॥७१॥

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ७, सोमवार
दिनांक-०२-०८-१९७६, गाथा-७१, प्रवचन-५१

.... जन्म नहीं लिया। जन्म के बाद जो देह हुई। हे जीव, तू जरा-मरण देह के जानकर... वृद्धावस्था, वह देह की है, तेरी नहीं और मरण भी देह का है, तेरा नहीं। ऐसा जानकर डर मत कर— ७१।

(७१) देहहँ पेक्खिवि जर-मरणु मा भउ जीव करेहि।
जो अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि ॥७१ ॥

‘पेक्खिवि’ अर्थात् दृष्टा—देखकर।

आहाहा! देह के बुढ़ापा मरने को देखकर डर मत कर... वह तेरी चीज़ नहीं। तुझमें वृद्धावस्था नहीं आती। शरीर की, हों! समझ में आया? तुझमें तो जवान अवस्था तो... कहा था एक बार। राग की एकताबुद्धि रखकर बहिरात्मपना रखना, वह जीव की बाल अवस्था है। शरीर की बाल अवस्था, वह तो जड़ की है। उसके साथ आत्मा को कोई सम्बन्ध है ही नहीं। भगवान यह परमात्मस्वरूप है न! परमात्मस्वरूप ही आत्मा भगवान है। उसे छोड़कर देहादि की अवस्था में जवानी, कोमलता, मजबूताई देखकर उसमें हर्षित होना, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! देह की जवान अवस्था, इन्द्रिय-जड़ की पुष्टि, उन सबमें उत्साहित होना, वह मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ कहते हैं कि देह के बुढ़ापा मरने को देखकर डर मत कर... आहाहा! जवान अवस्था देखकर अभिमान न कर तथा वृद्धा और मरण अवस्था देखकर डर मत कर। तेरी चीज़ तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा तू तो है न! आहाहा! उसमें तो शरीर की वृद्धावस्था, जन्म, मरण, वह तो है नहीं। उसमें विकार है नहीं। एक समय की अल्पज्ञता भी उसमें है नहीं। आहाहा! ऐसा सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा का अन्तर में ध्यान करके उपादेय कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। अन्तर में ध्यान में ऐसा परमात्मस्वरूप उपादेय करके, ग्रहण करके, सत्कार करके, है—ऐसा सत्कार किया। आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप है, ऐसा स्वीकार किया, उसने है, ऐसा माना। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं जो अजर अमर परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव हैं,... आहाहा! भगवान! तू तो जरा और मरण से रहित अजर-अमर है। अजर अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, मरण अर्थात् देह के छूटने से रहित है। अजरामर भगवान आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान अजर-अमर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा अजर-अमर है। यह आत्मा अभी अजर-अमर है। आहाहा! उसे दृष्टि में लेना, उसके सन्मुख होकर स्वीकार करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। देह की क्रिया होती है, वह तो जड़ की है। बोलने की, चलने की, खाने की, पीने की, वह तो सब जड़ की पर्याय है। उसमें तेरा कोई अधिकार है नहीं कि मैं खा सकता हूँ, पी सकता हूँ। तेरा अधिकार तो पर से भिन्न स्वरूप का स्वामित्व, वह तेरा अधिकार है। आहाहा! यह यहाँ कहा, देखो!

अजर अमर... अर्थात् निषेध किया पहले। जन्म-मरण रहित। अब अस्ति कैसी है? **परमब्रह्म...** आहाहा! **परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव हैं,**... आहाहा! परमब्रह्म। जिसका ज्ञान शरीर है, आनन्द जिसका शरीर है। समझ में आया? आता है न? ज्ञानविग्रहं। ज्ञानविग्रहं। आहाहा! प्रभु! तू तो ज्ञानशरीरी है न? और अतीन्द्रिय आनन्दशरीर, वह शरीर तेरा है। आहाहा!

मुमुक्षु : किसकी बात करते हो आप?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की बात करते हैं।

मुमुक्षु : कौन से आत्मा की?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर विराजता है उसकी। सिद्ध की नहीं। आहाहा! सिद्ध की भी पर्याय है। वह भी यहाँ नहीं। आहाहा! जो ध्रुवस्वभाव है, वह तो पर्याय में कभी आता ही नहीं। सिद्ध की पर्याय में भी द्रव्य नहीं आया है। आहाहा! द्रव्य तो त्रिकाल पर्याय से भिन्न रहता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बाहर की यह सब मोहजाल, अनुकूल शरीर, पैसा, मकान, इज्जत। अरे! धूलधाणी।

भगवान परमब्रह्मस्वरूप। भगवान! तू तो परमब्रह्मरूप है न! भगवान! तेरा शरीर तो ज्ञानशरीर है, आनन्दशरीर है। आहाहा! कभी उसका स्वीकार किया नहीं। उसे

छोड़कर रागादि को उपादेय किया, उसे भगवान हेय हो गया। परमब्रह्मस्वरूप होने पर भी राग दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का पुण्य है, उसका आदर किया, उसने त्रिकाली भगवान आनन्द के नाथ को हेय किया। आहाहा! समझ में आया? जिसने भगवान परमब्रह्म, अजर-अमर का आदर किया, उसे रागादि हेय हो जाते हैं, करना नहीं पड़ता। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भगवान! यहाँ परमात्मप्रकाश है न! वह आत्मा परमब्रह्मस्वरूप परमात्मप्रकाशस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे? रागबुद्धि, निमित्तबुद्धि और पर्यायबुद्धि छोड़े, तब यह बात जँचे। आहाहा! समझ में आया? संयोगी चीज़ की बुद्धि छूटे... आहाहा!

(समयसार) ३१ गाथा में तो ऐसा कहा है। आगे लेंगे। पाँच इन्द्रिय के विषयों को छोड़कर। आहाहा! वहाँ तो भगवान और भगवान की वाणी को भी इन्द्रिय का विषय कहा है। नीचे आयेगा। नीचे है। **पाँच इन्द्रियों के विषय को छोड़कर**। आहाहा! समयसार की ३१वीं गाथा में 'जो इंद्रिये जिणिता' ऐसा शब्द है। उसकी व्याख्या यह है कि यह द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड एक-एक विषय को बतलानेवाली और भावेन्द्रिय का विषय... आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। आलोचना करते हैं। स्त्री विषय है, वैसे भगवान की वाणी विषय है। अरे! बापू! पर विषय है। यह शुभभाव का (विषय) है, वह (स्त्री आदि) अशुभभाव का; परन्तु है तो विकार का विषय। भगवान ने तो यहाँ तक कहा कि हमारी वाणी और हम (वे) इन्द्रिय का विषय है। अणीन्द्रिय का विषय तो तेरी चीज़ है।

'जो इंद्रिये जिणिता' में इन्द्रिय के तीन अर्थ लिये हैं। 'जो इंद्रिये जिणिता' जिसने इन्द्रियाँ जीती और 'णाणसहावधियं मुणदि आदं' ज्ञानस्वभावी भगवान चैतन्यब्रह्म, वह इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय से भिन्न पर है। उसकी अन्तर्दृष्टि की, उसने इन्द्रिय के विषय को जीत लिया। वह विषय अर्थात्? कि भगवान की वाणी... उसमें तो लिया है। पण्डितजी! ३१वीं गाथा में तो यह कहा। भगवान की वाणी और भगवान भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि होने के बाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! समकित्ती को यहाँ कहते हैं। तुझे सम्यग्दर्शन प्रगट

करना हो तो इन्द्रिय का विषय, वह भगवान की वाणी और भगवान को यहाँ तो इन्द्रिय कहा है। समझ में आया ? जैसे यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय। एक-एक इन्द्रिय के एक-एक विषय, खण्ड-खण्ड बतलावे, ऐसी भावेन्द्रिय। एक-एक विषय को जानती है, इसका अर्थ ज्ञान खण्ड-खण्ड को जानता है। ऐसा अर्थ किया है पण्डितजी ने। खण्ड-खण्ड ज्ञान। अखण्ड वस्तु है तो भावेन्द्रिय तो खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है तो वह परविषय हुआ। आहाहा! इसी प्रकार पाँच जड़ इन्द्रियाँ हैं, वह भी परविषय हुआ। और भगवान और भगवान की वाणी को भी इन्द्रिय कहा है। भावेन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय, भगवान और भगवान की वाणी, प्रतिमा, मन्दिर... आहाहा! सम्मोदशिखर, सबको इन्द्रिय कहा है। गजब बात है! इसे जीतना अर्थात् कि उस ओर से लक्ष्य छोड़ना। आहाहा!

भगवान और भगवान की वाणी और भगवान की प्रतिमा 'जिनप्रतिमा जिन सारखी'। बनारसीदास में (आता है)। उसका भी लक्ष्य छोड़ना। आहाहा! वह तो शुभराग के काल में वह विषय निमित्त बनता है। यह शुभ करता है उसे। समझ में आया ? उससे शुभ नहीं होता। वह शुभविषय शुभराग का विषय है, तो उसे भगवान ऐसा कहते हैं कि तुम्हारे हिसाब से हम इन्द्रिय हैं। तुम्हारा अणीन्द्रिय (स्वरूप) है, वह तुम्हारा है। आहाहा! समझ में आया ? तुम्हारी अपेक्षा से हम इन्द्रिय हैं। तुम्हारा अणीन्द्रिय (स्वरूप) तुम्हारी भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! यह जन्म-मरण के अन्त लाने की बात है। अभी आयेगा। आहाहा! 'भव-तीरु पावहि' ७२ में आयेगा। ७२ है न ७२ ? 'भव-तीरु पावहि' भव के तीर को पार कर डालने की बात है।

भगवान आत्मा जिसमें भव नहीं, भव का भाव नहीं और भगवान इन्द्रिय का विषय भी उसमें, भगवान की वाणी उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे आत्मा को परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव हैं, उसको तू आत्मा जान। है ? देखो! भगवान की वाणी को आत्मा (ज्ञान, ऐसा) नहीं। भगवान, वाणी वह आत्मा नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय भी आत्मा नहीं। क्या कहते हैं ? देखो! परमब्रह्म शुद्ध स्वभाव हैं,... परमब्रह्म स्वभाव नित्यानन्द प्रभु। सदृश्य स्वभाव, एकरूप स्वभाव, शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव, ऐसा पाठ है। संस्कृत टीका में, जयसेनाचार्य में। शुद्ध बुद्ध एकस्वभाव। शुद्ध अर्थात् पवित्र, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड और एक स्वभावी। भेद नहीं, जिसमें पर्याय

का भेद भी नहीं। वह तेरा अणीन्द्रिय आत्मा, वह तू है। वह अणीन्द्रिय का विषय है। आहाहा!

अन्तर्मुख राग और वे ज्ञेय होने पर भी, ज्ञान की पर्याय को इस ओर झुकाना, राग हो, शरीर हो, पूरा संसार हो परन्तु उस ओर के ज्ञान की जो पर्याय है, उस पर्याय को द्रव्य में झुकाना। परमब्रह्म भगवान आत्मा। उसकी पर्यायरूपी प्रजा से पिता की ओर झुकना। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं। देखो! ओहोहो! भाषा परमात्मप्रकाश। अपने तो सवेरे-दोपहर दोनों चलते हैं। दोपहर में समयसार चलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह भी परमात्मप्रकाश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार, वह परमात्मा है। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित भगवान, वह समयसार है। आहाहा! वह समयसार ऐसा भगवान, उसकी दृष्टि करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। आहाहा! निमित्त और राग की दृष्टि करने से राग प्राप्त होता है, जो स्वभाव में नहीं। समझ में आया? धीर का काम है, भाई! यह कहीं पण्डिताई और उसका काम नहीं। ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ डाला। ग्यारह अंग पढ़ डाला। आता है न? नौ पूर्व की लब्धि हुई। वह पढ़ने से पढ़ा नहीं जाता। ग्यारह अंग तो पढ़ने से आते हैं, राग की मन्दता से, परन्तु नौ पूर्व पढ़ने से (नहीं पढ़े जाते, वे तो) ऐसी लब्धि होती है। नौ पूर्व, वह कहीं पढ़ने से नहीं होता तथापि वह परलक्ष्यी वस्तु है। समझ में आया? अनन्त बार ऐसी नौ पूर्व की लब्धि प्राप्त हो गयी है। वह कोई चीज नहीं। आहाहा! जिसमें भगवान प्राप्त नहीं हुआ, वह वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! थोड़ा भी मति और श्रुतज्ञान में परमात्मा प्राप्त हुआ तो उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

परमब्रह्म भगवान आत्मा उसे तू आत्मा जान, ऐसा कहा न? गुरु ने ऐसा कहा। दिगम्बर सन्त योगीन्द्रदेव, आहाहा! प्रभु! 'मुणेहि' ऐसा है न? ७१ गाथा है। 'मुणेहि' आहाहा! 'अजरामरु बंभु परु सो अप्पाणु मुणेहि' है न? अन्दर आयेगा।

भावार्थ:— यद्यपि व्यवहारनय से जीव के जरा-मरण है,... निमित्त। व्यवहारनय से जीव के जरा-मरण है,... अर्थात्?—अवस्था पर है, उसे व्यवहार से अपनी है, ऐसा

कहा जाता है। अर्थात् इसकी नहीं। आहाहा! व्यवहारनय से जीव के जरा... शरीर अवस्था। ऐसा कहते हैं न कि मेरी अवस्था ऐसी हो गयी। मेरी अवस्था (कहते हैं) परन्तु वह शरीर तू कहाँ है? इतना बोलने में आया।

मुमुक्षु : है तब बोलने में आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह झूठा है। व्यवहारनय अभूतार्थ है।

यह दोपहर में नहीं चला? अज्ञानी का व्यवहार अनादि से रूढ़ है। आहाहा! वह व्यवहार हेय है। आहाहा! ८४-८४। आहाहा! ८४ का परिभ्रमण मिटाने की (बात है)। आहाहा! कहते हैं कि अज्ञानी का रूढ़ व्यवहार है कि मैं कर्म बाँधता हूँ, मैं शरीर की क्रिया करता हूँ, मैं बोलता हूँ। आहाहा! यह तो अज्ञानी का रूढ़ व्यवहार है। यह वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान कर्ता और भाषा कर्तव्य—काम, ऐसा है? भगवान आत्मा व्यापक, देह की और वाणी की अवस्था व्याप्य—कार्य, ऐसा है? आहाहा! 'जिन' का मार्ग बहुत सूक्ष्म!

मुमुक्षु : धवल में तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मात्र निमित्त से बात की है। यह आता है, डाला है। खानिया चर्चा में सामनेवालों ने डाला है, देखो! उसमें ज्ञान कर्ता और भाषा कर्म। यह खबर है न! खानिया (चर्चा) में डाला है। यह तो निमित्त का कथन है वहाँ।

कल कहा था न? लोकालोक में ज्ञान निमित्त है। इसका अर्थ क्या? लोकालोक में यह केवलज्ञान निमित्त है तो लोकालोक है? और लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त है। तो लोकालोक है तो केवलज्ञान है? समझ में आया? केवलज्ञान पर्याय तो अपने से हुई है, अपने में है और अपने को देखती है वह। आहाहा! समझ में आया? यह अपने कर्ता-कर्म में आ गया पहले। ७५। ७५ गाथा में। राग को जानता है, अपने ज्ञान में, स्वपरप्रकाशक ज्ञान में राग निमित्त होने पर भी आत्मा, आत्मा को जानता है। ऐसा कहा। राग को जानता है, यह तो एक... ७५ में ऐसा लिया था कि स्वपरप्रकाशक पर्याय अपने से हुई है। राग है तो परप्रकाशक हुई, ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया? ज्ञान में राग निमित्त है। परन्तु इसका अर्थ क्या? ज्ञान अपने में अपने से उपादान से हुआ है,

तब राग को निमित्त कहा गया है। परन्तु कहते हैं कि ज्ञान में राग निमित्त होने पर भी और ज्ञान जाननेवाला और राग ज्ञेय होने पर भी, ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध व्यवहार से होने पर भी आत्मा राग को जानता नहीं; आत्मा ज्ञान को जानता है। राग सम्बन्धी अपना जो ज्ञान है, उस ज्ञान को आत्मा जानता है। यह ७५ में आया है। समयसार। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! समयसार की एक-एक गाथा, एक-एक पद में बहुत बात करते हैं। आहाहा! यह कहा न? समयसार है न?

कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, वे पुद्गल परिणाम हैं। समझ में आया? समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम उसे जो आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण, कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से, परमार्थ से करता नहीं, परन्तु (मात्र) पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को... यह बात सूक्ष्म है। समयसार है? ७५ गाथा। पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को... भाषा देखो! है? है भाई? पण्डितजी! आया? बीच में है, बीच में है। पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को कर्मरूप करता हुआ ऐसे... पुद्गलपरिणाम जो रागादि है, उसका ज्ञान आत्मा ने किया। है? ज्ञान को (आत्मा के) कर्मरूप करता हुआ... यह ज्ञान आत्मा का कार्य है। राग का कार्य आत्मा का नहीं। है?

परिणाम के ज्ञान को कर्मरूप करता हुआ... राग पुद्गल के परिणाम हैं, अपना आत्मा उसे जानता है तो जाननेवाले के परिणाम का आत्मा कर्ता और वह कर्म है। परन्तु राग उसका कर्म है नहीं। एक बात। और राग यहाँ ज्ञान में निमित्त है तो राग कर्ता और ज्ञान परिणाम कार्य, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। ७५ गाथा। यहाँ तो सब राग, द्वेष, सुख, दुःख आदि सबको पुद्गल के परिणाम कहा। क्योंकि वह अपनी चीज़ नहीं। समझ में आया? किस अपेक्षा से कहते हैं? तुम्हारे दोपहर में तो यह आया था। प्रवृत्ति आत्मा की पर्याय है। मोक्षमार्गप्रकाशक। वहाँ निश्चय से आत्मा की पर्याय ली है। तो वह प्रवृत्ति नय नहीं। परन्तु शुद्ध को निश्चय कहना और अशुद्ध को व्यवहार कहना, ऐसे मोक्षमार्ग के दो भेद पड़ते हैं। परिणति तो आत्मा की है। परन्तु शुद्ध को निश्चय कहना और अशुद्ध को व्यवहार कहना, यह मोक्षमार्ग की अपेक्षा से वहाँ भेद है। परिणति तो उसकी है। समझ में आया? परिणति नय नहीं। परिणति में जो

निश्चय और व्यवहार का आरोप करके नय करते हैं, शुद्ध को निश्चय कहते हैं, अशुद्ध को व्यवहार कहते हैं। वह व्रत और प्रवृत्ति है, वह कहीं व्यवहार नहीं है। उसे व्यवहार मोक्ष (मार्ग) मानना, वह व्यवहार है। समझ में आया ? रागादि की प्रवृत्ति तो अपनी परिणति है। परन्तु उसे मोक्षमार्ग किसे मानना और किसे नहीं मानना ? आहाहा !

शुद्ध परिणति जो भगवान् आत्मा के आश्रय से (हुई) वह परिणति तो आत्मा की है, परन्तु शुद्ध को निश्चयमोक्षमार्ग कहना और अशुद्ध जो राग बाकी रहा, उसे व्यवहारमार्ग कहना, यह भेद मार्ग की अपेक्षा से है। समझ में आया ? आत्मा की परिणति भिन्न है (ऐसा नहीं), वह तो दोनों परिणति इसकी है। समझ में आया ? परन्तु यहाँ तो ऐसा लेना है कि वह परिणति राग है, उसका यहाँ आत्मा ज्ञान करता है। वह परिणति इसकी होने पर भी। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं न ? पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को... इस राग को पुद्गलपरिणाम कहा। आत्मा की परिणति नहीं कही। आहाहा ! समझ में आया ? गम्भीर मार्ग है, भाई !

पुद्गलपरिणाम अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय ऐसा जो शुभराग, वह पुद्गल के परिणाम हैं; जीव की जाति के परिणाम नहीं। आहाहा ! ज्ञानचन्दजी ! आहाहा ! यह **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को कर्मरूप करता हुआ...** राग का जो ज्ञान हुआ, वह अपने से हुआ है, राग से नहीं। राग के काल में अपना ज्ञान और राग का ज्ञान अपने से हुआ है। राग है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह कहा, देखो ! **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** अर्थात् ज्ञान किसका ? अपना। उसमें स्व का ज्ञान हुआ और राग का ज्ञान हुआ। राग का ज्ञान हुआ, वह अपना कर्म है। राग का ज्ञान हुआ, वह अपना कर्तव्य है। उसे ज्ञान कहा। आहाहा !

उसे **कर्मरूप से कर्ता हुआ ऐसे अपने आत्मा को जानता है...** वापस भाषा देखो ! राग को जानता है, यह निकाल दिया। अपने ज्ञान के परिणाम में राग ज्ञात होता है तो वह ज्ञान में निमित्त है। वह ज्ञेय है और यह ज्ञान। तथापि जो ज्ञान हुआ, वह अपने स्वपरप्रकाशक के सामर्थ्य से हुआ है। राग है तो राग का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा ! और स्वपरप्रकाशक ज्ञान में राग निमित्त होने पर भी अथवा राग का ज्ञान यहाँ

होने पर भी वह ज्ञान आत्मा का कार्य है। वह राग का कार्य नहीं। आत्मा का राग कार्य नहीं। समझ में आया ?

यहाँ जो स्वपरप्रकाशक ज्ञान हुआ, उस पर्याय का कर्ता राग और ज्ञान हुआ, वह उसका कर्म, ऐसा नहीं है। तथा ज्ञान की परिणति में पुद्गलपरिणाम राग निमित्त हुआ, तो उससे ज्ञान परिणाम कर्ता और राग कर्म, ऐसा भी नहीं है। तथा राग कर्ता और ज्ञान परिणाम (कार्य) ऐसा भी नहीं है। और राग को जानता है, ऐसा कहा पहले। राग परिणाम के ज्ञान को कर्मरूप करता हुआ, ऐसा कहा, तथापि अपने आत्मा को जानता है। उस राग को जानता है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया ?

पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को करता हुआ ऐसा आत्मा, पुद्गलपरिणाम रागादि व्यवहार, उसके ज्ञान को करनेवाला ऐसा आत्मा, वह आत्मा आत्मा को जानता है। राग को जानता है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! समय-समय की पर्याय स्वतन्त्र अपनी अपने से हुई है, ऐसा कहते हैं। राग हुआ, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह प्रश्न तो हमारे (संवत्) १९८३ के वर्ष में बहुत चला था। १९८३-८३। १७ और ३२। तुम्हारे जन्म से पहले। ४९ (वर्ष हुए)। बड़ी चर्चा हुई थी। तब तो हम सम्प्रदाय में थे न! बड़ी चर्चा हुई थी। लोकालोक है तो केवलज्ञान होता है। बिल्कुल झूठ बात है। लोकालोक तो परद्रव्य है, पर है। उससे केवलज्ञान की पर्याय हुई है? परद्रव्य की अस्ति से पर्याय की अस्ति हुई? समझ में आया? बहुत चर्चा चली थी। वह दामोदरसेठ थे। वे सम्प्रदाय के बहुत आग्रही थे। हमारे बहुत चलता था। ऐसी बातें चलती थी अन्दर। वे कहे कि लोकालोक है तो केवलज्ञान है। बिल्कुल खोटी बात। लोकालोक, लोकालोक से है और केवलज्ञान की पर्याय स्वयं से है, लोकालोक है तो केवलज्ञान की पर्याय हुई, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : लोकालोक है तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा माने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से पर्याय हुई? पर्याय तो अपनी सामर्थ्य से हुई है। पर की सत्ता है तो यहाँ पर्याय की सत्ता हुई? झूठ बात है। पर्याय की सामर्थ्यता की शक्ति की उसे खबर नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो यह लेना था। राग के ज्ञान में पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को कर्मरूप करता हुआ... पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को ज्ञानरूप करता, पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को ज्ञानरूप—कर्मरूप करता हुआ। आहाहा! वहाँ तो ऐसा लिया है कि पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को वापस यहाँ लिया कि ऐसे अपने आत्मा को जानता है। समझ में आया? बात ऐसी है। यह एक-एक शब्द में गम्भीरता है। यह कहीं वार्ता नहीं। आहाहा! यह चर्चा बहुत चलती थी।

मूर्ति सम्बन्धी का कहा था न एक बार? मूर्ति सम्बन्धी चर्चा चली। उसमें (सम्प्रदाय में) थे न इसलिए... वह कहे कि मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मूर्ति की पूजा मान्य है। सम्यग्दृष्टि के बाद मूर्ति मान्य है नहीं, पूजा है नहीं। ऐसी चर्चा चली थी। तो कहा, सुनो! सम्यग्दृष्टि होने के बाद ही उसे निक्षेप लागू पड़ते हैं। क्योंकि सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु शुद्ध चैतन्यघन का श्रुतज्ञान हुआ श्रुतज्ञान, तो श्रुतज्ञान का भेद निश्चय और व्यवहारनय है। तो नय है, उसे निक्षेप होता है। नय है, वह ज्ञान का भेद है और निक्षेप है, वह ज्ञेय का भेद है। तो ज्ञेय का—भगवान की मूर्ति के निक्षेप का विषय किसे होता है? नयज्ञानवाले को। तो वास्तव में तो श्रुतज्ञान में व्यवहारनय हुआ, उसका विषय निक्षेप है। उसे मूर्ति माने, वह यथार्थ है। मिथ्यादृष्टि को नय भी नहीं और निक्षेप भी नहीं। समझ में आया? यह (बात) बहुत पहले से अन्दर से आती थी और बाहर में विरोध था। भाई! ऐसा नहीं, हम ऐसा नहीं मानते।

सम्यग्दृष्टि हुई, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, यह परमब्रह्म कहा न यहाँ? उसे जाना तो श्रुतज्ञान हुआ, तो श्रुतज्ञान है तो पर्याय, परन्तु उसका भेद वह नय है। श्रुतज्ञान अवयवी है, उसे नय अवयवी का अवयव—भेद है। तो व्यवहारनय श्रुतज्ञान का भेद है। तो व्यवहारनय का विषय निक्षेप—पर है (वह) ज्ञानी को लागू पड़ता है, अज्ञानी को नहीं। पण्डितजी! समझ में आया? कहा, हम सम्प्रदाय में आ गये, इसलिए हम ऐसा मानते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ५० वर्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४९ वर्ष। ८३-८३, संवत् १९८३। पण्डितजी के जन्म से पहले।

इन्हें ४० वर्ष हुए। छोटी उम्र में इनका क्षयोपशम बहुत है। समझ में आया? जैसी हो, वैसी यहाँ तो जानने की बात है।

हम बोटाद सम्प्रदाय में से निकले न? दिगम्बर हुए न? छोड़ दिया इसलिए स्थानकवासी साधु नहीं, ऐसा प्रसिद्ध कर दिया। फिर यहाँ के माननेवाले वहाँ सेठिया हैं, बोटाद में। पैसेवाले। तो उन्होंने पहले पैसा दिया था। संस्था में। संस्था कहलाये न स्थानकवासी में तो? भोजनशाला में पैसा दिया हो न? तीन-तीन हजार, चार-चार हजार। पैसेवाले हैं वे यहाँ आये। तो फिर यह कहे कि इसमें हमारा हक है। तब उन लोगों की चर्चा चली। कोर्ट में गयी। ये लोग अब स्थानकवासी रहे नहीं तो इनके पैसे दिये हैं, उन पर उनका हक नहीं है। फिर कोर्ट में चर्चा चली। तो कहे, मूर्ति है न? शाश्वत् मूर्ति है न? तब उस सेठ ने कोर्ट में प्रश्न किया कि मूर्ति यक्ष की है, तीर्थकर की नहीं। समझ में आया? बड़ी चर्चा हुई थी। यह तो हमारे सम्प्रदाय में हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न? तब भी तीन-तीन हजार लोग बहुत आते थे। (संवत्) १९८९ के वर्ष। राजकोट १९८९ के वर्ष में। तीन-तीन हजार लोग। डेढ़-डेढ़ घण्टे पहले मोटरों का ठाठ जमे। १९८९। कितने वर्ष हुए? ४३ वर्ष हुए। यह भी पण्डितजी के जन्म के पहले की बात है।

मुमुक्षु : साथ-साथ आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। साथ-साथ आते थे। दीवान आते थे। दीवान आये थे। कैसे भाई दीवान? 'वीरावाला'। वीरावाला दरबार नहीं थे? दरबार पहले आये थे। यह तो सब बात थी।

यहाँ तो कहा, भाई! देखो! हम इसमें मुँहपत्ती में आ गये हैं, इसलिए मूर्ति को नहीं मानना, ऐसी चीज़ नहीं है। जैसी वस्तुस्थिति है, वैसा हम तो माननेवाले हैं। इसलिए समकिति को ही मूर्ति मान्य है, क्योंकि उसे नय होते हैं तो नय का विषय निक्षेप उसे होता है। अज्ञानी को नय नहीं तो निक्षेप कहाँ से आया? समझ में आया? यहाँ तो न्याय बैठे तो बैठे, हम ऐसे के ऐसे नहीं मानते। हमको तो अन्दर में बैठना चाहिए, तो हम मानते हैं। फिर विवाद हुआ। यक्ष की मूर्ति की। यह बात तो हम पहले (संवत्) १९७३ के वर्ष। ७३ के वर्ष। कितने हुए? २७ और ३२ = ५९ वर्ष हुए। हम जीवाभिगमसूत्र पढ़ते थे। ३२ सूत्र है न उसमें जीवाभिगम है। सूत्र पढ़ते थे, उसमें ऐसा

आया कि शाश्वत् प्रतिमा जिनोक्त प्रमाण। तो अभी तक तो हम ऐसा मानते थे, यह यक्ष की प्रतिमा... यक्ष की प्रतिमा है। स्थानकवासी में। हम पढ़ते थे, उसमें ऐसा आया कि जो शाश्वत् प्रतिमा है, वह यक्ष की नहीं। वह जिनोक्त प्रमाण, ऐसा पाठ आया। जिन की ऊँचाई प्रमाण में है। तो शंका हुई कि यक्ष की हो तो जिन की ऊँचाई प्रमाण उपमा दे नहीं। समझ में आया? १९७३ की बात है। सुकौशलजी! समझे?

शाश्वत् प्रतिमा है या नहीं? तो शाश्वत् प्रतिमा का वाँचन में ऐसा आया कि शाश्वत् प्रतिमा जिन की ऊँचाई प्रमाण में है। वीतराग जो है, उनकी जितनी ऊँचाई है, उतनी उसकी ऊँचाई है, ऐसा आया। तो मुझे शंका हुई कि यह लोग यक्ष की प्रतिमा कहते हैं और यहाँ तो जिनोक्त प्रमाण है। जिन की ऊँचाई प्रमाण में यह उपमा यक्ष को तो नहीं दे सकते। जिन की प्रतिमा वहाँ हो तो जिन की ऊँचाई प्रमाण में उपमा दे सकते हैं। समझे?

मुमुक्षु : गुजराती में समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, थोड़ी-थोड़ी भाषा करते हैं।

कहा नहीं? जो शाश्वत् प्रतिमा है... है या नहीं शाश्वत्? तीर्थकर की अकृत्रिम। तो उसे वे लोग—स्थानकवासी यक्ष की कहते हैं। उस मूर्ति को तीर्थकर की नहीं कहते थे। तो हम शास्त्र वाँचते थे, उसमें ऐसा आया कि शाश्वत् प्रतिमा जिन ऊँचाई के प्रमाण में है। जितनी तीर्थकर की ऊँचाई है, उतनी ऊँचाई के प्रमाण में प्रतिमा है। तो हमको शंका पड़ी कि यदि यक्ष की प्रतिमा हो तो तीर्थकर की ऊँचाई—प्रमाण में है, ऐसी उपमा नहीं दे सकते। समझ में आया? थोड़ा समझ में आया या नहीं? भाई! थोड़ी गुजराती अन्दर आ जाती है।

शाश्वत् प्रतिमा का शास्त्र हम वाँचते थे। (संवत्) १९७३ के वर्ष। ६० में एक वर्ष कम। ५९ वर्ष पहले की बात है। शास्त्र वाँचते थे तो उसमें ऐसा आया। श्वेताम्बर का शास्त्र। शाश्वत् प्रतिमा जो है, वह जिन की ऊँचाई प्रमाण में है। तीर्थकर की जितनी ऊँचाई है सात हाथ की, पाँच सौ धनुष्य की उस ऊँचाई प्रमाण प्रतिमा है। तो हमको शंका पड़ी... हम तो मानते थे, ये लोग कहते हैं, यक्ष की (प्रतिमा है)। तो वह यक्ष की

(मानते थे)। हमको तो खबर नहीं। हम तो अभी नव दीक्षित थे। चार वर्ष की दीक्षा थी। (संवत्) १९७० के वर्ष में दीक्षा। दीक्षा को ६३ वर्ष हुए। चार वर्ष बाद यह बात चली। पश्चात् हमारे गुरुभाई थे। अकेले थे। कोई नहीं था, तब एकान्त में पूछा। कोई नहीं था। मूलचन्दजी थे। एकान्त में खड़े थे। मूलचन्दजी नहीं? उनसे कहा मैं जीवाभिगम वाँचता हूँ। इसमें तो शाश्वत् प्रतिमा को जिन की ऊँचाई प्रमाण कहा है। तो वह प्रतिमा कौन सी? तो कहे, वह है तो तीर्थकर की। अरे! तुम लोग बाहर में यक्ष की कहते हो और यहाँ (ऐसा कहते हो)! हमारी श्रद्धा उठ गयी। सम्प्रदाय में से, गुरु में से, सबमें से श्रद्धा उठ गयी।

हमारे तो स्वयं अपनेआप निर्णय करना है। समझ में आया? क्योंकि वे लोग यक्ष की प्रतिमा बाहर कहे और अन्दर में एकान्त में पूछा। मैंने कहा पाठ में ऐसा आया है। जीवाभिगम शास्त्र है। उसमें ऐसा आया है कि शाश्वत् प्रतिमा भगवान की है, वह जिन की—तीर्थकर की ऊँचाई प्रमाण है। तो वह तीर्थकर की प्रतिमा बिना जिन की ऊँचाई प्रमाण नहीं कहा जाता। तो वह यक्ष की प्रतिमा नहीं। समझ में आया? तब उन्होंने कहा कि, है तो तीर्थकर की (प्रतिमा)। बाहर में दूसरा कहे और अन्दर (दूसरा कुछ)। नहीं... नहीं। जिसे भव का डर नहीं। भगवान क्या कहते हैं, उसे कुछ माने, वह कही आत्मार्थी है? समझ में आया?

वीतराग का एक भी वचन उत्थापित करना और अपनी कल्पना से अर्थ करना, वह कहीं आत्मार्थी है? वह तो संसारार्थी है। आहाहा! समझ में आया? फिर तो हम दूसरे अर्थ करते थे कि भगवान त्रिकाली जो वस्तु है, तो त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। यहाँ तो अन्दर से बैठे, वह था। उसको कौन मानता था। त्रिकाली वस्तु जो ऐसे त्रिकाल ज्ञेय है, उस त्रिकाल में तीन काल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं होता। अनादि से सर्वज्ञ हैं। अनादि से सर्वज्ञ हैं और अनादि सर्वज्ञ रहेंगे। समझ में आया?

फिर ऐसा कहा कि त्रिकाली भगवान जब यहाँ शाश्वत् रहता है तो उसकी प्रतिमा भी शाश्वत् होनी चाहिए। जैसे त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह नहीं होता, ऐसे त्रिकाली को जाननेवाले की प्रतिमा भी शाश्वत् में विरह नहीं होता। सदा

प्रतिमा होती है। न्याय समझे ? पण्डितजी ! आहाहा ! उसे हम नहीं मानते। हम तो अन्दर में न्याय से बैठे तो मानते हैं। सम्प्रदाय में कहते हैं, इसलिए ऐसा मानो, हम आ गये, (इसलिए मानेंगे) ऐसा नहीं है। हम तो सम्प्रदाय क्षण में छोड़ देंगे, यदि विरुद्धता (होगी तो)। लोग डर रखते थे। नाम बड़ा था न ? तो लोग डरते थे। इन्हें कुछ नहीं कहना, हों ! नहीं तो अभी छोड़ देंगे। मार्ग तो यह है।

यहाँ तो कहते हैं कि, आहाहा ! प्रभु ! शरीर की वृद्ध अवस्था और मरण से डर मत कर। क्योंकि तू ऐसा है नहीं, उसमें है नहीं, वह तेरी अवस्था नहीं। तेरी अवस्था तो तेरी वस्तु तो परमब्रह्म भगवान है न ! त्रिकाली को अवस्था भी कहते हैं, हों ! पर्याय को ही अवस्था कहते हैं, ऐसा कुछ नहीं। त्रिकाली को भी अवस्था कहते हैं। १६वीं गाथा में आता है। कलश में। समयसार की १६वीं गाथा है न ! द्रव्य को अवस्था कहते हैं। अव-निश्चय-स्थ, ऐसा। अवस्था अर्थात् पर्याय का अर्थ ऐसा नहीं। भरित अवस्थम ऐसा भी शास्त्र में पाठ है। संस्कृत में है। आत्मा भरित अवस्था, उसे द्रव्य कहते हैं। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं वहाँ। अवस्थ—अवस्था। निश्चय-स्थ-अपने में रहा है। द्रव्य अपने में रहा है। उस द्रव्य को अवस्था कहते हैं। समयसार १६वीं गाथा में है। कलश है न कलश ? सब खबर है। जहाँ मर्म की बात है, वह ख्याल में आ गयी। साधारण (सब) वाँचन कर लिया। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि प्रभु ! तू कौन है ? आहाहा ! कहाँ है ? क्या वृद्धावस्था में तू है ? जवान अवस्था में तू है ? वह तो जड़ की अवस्था है, प्रभु ! तेरी चीज़ कहाँ है ? क्या देह का छूटना, वह तेरा छूटना है ? देह तो छूटेगी, उसमें डर किसका ? भगवान तो परमब्रह्मस्वरूप अनादि है। वह कभी छूटता नहीं, कभी जन्मता नहीं, कभी वृद्धावस्था होती नहीं। ऐसा स्वभाव का भान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो !

यद्यपि व्यवहारनय से जीव के जरा-मरण है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर जीव के नहीं है, देह के हैं, ऐसा जानकर भय मत कर, ... आहाहा ! जवानी में प्रेम न कर, वृद्धावस्था और मरण देखकर डर मत कर। आहाहा ! समझ में आया ? जवान अवस्था, वह तो जड़ की, मिट्टी-धूल की है। और जवानी तेरी जरा में चली जायेगी। जवानी जरा

(बुढ़ापा) में चली जायेगी। यह जवानी नहीं रहेगी, प्रभु! यह तो जड़ की अवस्था, मिट्टी की अवस्था है। आहाहा! जवानी... भक्ति में ऐसा कुछ आता है, हों! जवानी तेरी जरा में (जाने को) तैयार हो गयी है। आहाहा! वृद्धावस्था होने की तैयारी हो गयी, प्रभु! यह तो जड़ की अवस्था है। तुझे क्या है? जवान अवस्था की चेष्टायें देखकर तू ऐसा न मान कि यह मेरी चेष्टा है। आहाहा! इन्द्रिय आदि के विषय में चेष्टा होती है, वह तो जड़ की अवस्था है, प्रभु! तेरी नहीं, तूने नहीं की। आहाहा!

यहाँ तो जन्म की बात नहीं ली। पहले ७०वीं गाथा में आ गया। जन्म-जरा-मरण नहीं। ऐसा आया था। वर्ण नहीं। यहाँ तो जन्मने के बाद वृद्ध अवस्था और मरण का भय न कर। इसलिए यह गाथा ली है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा जानकर भय मत कर, तू अपने चित्त में ऐसा समझ.... आहाहा! कि जो कोई जरा-मरण रहित अखण्ड परब्रह्म है,... आहाहा! देखा! अखण्ड, हों! पर्याय में भी खण्ड है, भेद है। आहाहा! जरा-मरण रहित... प्रभु अन्दर अखण्ड परमब्रह्म परमात्मा है। यह परमात्मप्रकाश है, इसलिए अखण्ड ब्रह्म कहा है। शब्द बदलकर। मूल तो 'परमात्मप्रकाश' कहना है। परमात्मस्वरूप ही तेरा है। आहाहा! अखण्ड परब्रह्म है, वैसा ही मेरा स्वरूप है,... जैसा अखण्ड परमब्रह्म है, वैसा ही स्वरूप है। अथवा शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है,... परम शब्द पड़ा है न? 'परु' ऐसा शब्द है न? 'अजरामरु बंभु परु' 'परु' अर्थात् उत्कृष्ट। मैं सबसे उत्कृष्ट, पर्याय से भी उत्कृष्ट मैं शुद्धात्मा हूँ अथवा परात्मा—परमात्मा। परा अर्थात् उत्कृष्ट, मा अर्थात् लक्ष्मी। परमात्मा। परमार्थ। परमार्थ शब्द है न? इसमें तीन अर्थ हैं। परा-मा-अर्थ। परा अर्थात् उत्कृष्ट, मा अर्थात् लक्ष्मी। मेरी उत्कृष्ट लक्ष्मी ज्ञानादि ऐसा मैं हूँ। ऐसा अर्थ मैं हूँ। परमार्थ आत्मा ऐसा है। उसका अर्थ—परा अर्थात् उत्कृष्ट, मा अर्थात् लक्ष्मी। मेरी उत्कृष्ट लक्ष्मी, ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ मैं हूँ। यह तुम्हारी धूल की लक्ष्मी नहीं। सेठ! ऐई! पोपटभाई! यह सब पैसेवाले बैठे हैं। करोड़ोंपति। भाई गये? बैठे हैं। ठीक। यह जानेवाले हैं। राजकोट के सेठ हैं न, रतिभाई। यह करोड़पति है। यह करोड़पति है। यह रामजीभाई... ये राजकोट के हैं। ये बैठे। ये करोड़पति हैं। किसान।

मुमुक्षु : पुण्य के कारण पुण्य का ठाठ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का ठाठ जड़ का ठाठ है। सब विष्टा का ढेर है। आहाहा! भगवान अमृत का सागर, उसके पास तो राग को भी जहर कहा है। शुभराग, हों! आहाहा!

परमब्रह्म भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! वह शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है,... परा। 'परु' शब्द है न? उत्कृष्ट है और मा (अर्थात्) अपनी आनन्द आदि लक्ष्मी से भरपूर भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसा परमार्थ, परम-अर्थ ऐसा पदार्थ है वह। आहाहा! समझ में आया? संस्कृत टीका में ऐसा है। उसमें तो है परन्तु उसमें सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी और... यह है न? कलशटीका—कलशटीका। कलशटीका में। नहीं, तत्त्वज्ञानतरंगिणी नहीं। अध्यात्म तरंगिणी। तत्त्वज्ञान तरंगिणी भी देखा है। परन्तु उसमें बहुत स्पष्ट नहीं है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी में स्पष्ट नहीं है। जैसे मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्ट बात है, वैसी उसमें नहीं है। थोड़ी निमित्त की बात लगाते हैं। गोम्मटसार। कैसा?

मोक्षमार्गप्रकाशक। ओहोहो! टोडरमल आचार्यकल्प। एक बार कैलाशचन्दजी कहते थे, महाराज! यह शब्द जो है, वह किस शास्त्र में है? किसका स्पष्टीकरण किया हुआ है? भाई! हमको फुरसत नहीं है। कैलाशचन्दजी। ऐसा कि ... कहा था न कि जितना टोडरमलजी ने कहा है, उसमें सब शास्त्र का आधार है। भले लिखा नहीं वहाँ। तो कहे, मुझे आधार बताओ। मैंने कहा, हमको इतनी अधिक फुरसत नहीं है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ८, मंगलवार
दिनांक-०३-०८-१९७६, गाथा-७१-७२, प्रवचन-५२

.... उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं। अपना आत्मा, हों! शुद्धात्मा सबसे उत्कृष्ट है, ... निमित्त से भिन्न है, व्यवहार के राग से भिन्न है और एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। आहाहा! ऐसा भगवान शुद्धात्मा, उत्कृष्ट अपनी लक्ष्मी सम्पन्न ऐसा तू अपना स्वभाव जान। ऐसा तू अपना स्वभाव अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता ऐसी तेरी लक्ष्मी अन्दर है। ऐसा तू अपना स्वभाव जान। आहाहा! निमित्त को भी जान, ऐसा नहीं कहा, राग को जान, ऐसा नहीं कहा, पर्याय को जान, ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के रस से भरपूर है। आहाहा! जिसके सन्मुख देखकर, जिसके सन्मुख होने से जो आनन्द आवे, उस आनन्द के समक्ष इन्द्रों के इन्द्रासन और इन्द्र के भोग सड़े हुए तिनके जैसे लगते हैं। आहाहा! समझ में आया? करोड़ों इन्द्राणियाँ, जिसे अनाज का भोजन नहीं, मनुष्यनी और तिर्यचनी को अनाज का भोजन है। अनाज बिना शरीर थोड़ा ढीला पड़ जाये, शिथिल पड़ जाये, हीन पड़ जाये। इन्द्राणी को तो अनाज खाये बिना उसके काल में कण्ठ में से अमृत झरता है, ऐसी इन्द्राणी का भोग; परमानन्द स्वभाव ऐसा तू जान, तो वह भोग भी सड़े हुए कुत्ते, बिल्ली और बिल्ला, सड़ा हुआ है, ऐसा तुझे लगेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहा है न?

और तू अपना स्वभाव जान। भगवान का भगवान के पास रहा। अपना स्वभाव अकेला आनन्द, अकेला चिद्रूप, ज्ञानरूप जिसका स्वभाव है, उसे तू अपना स्वभाव जान और वहाँ दृष्टि दे। आहाहा! करना हो तो यह करने का है। समझ में आया? लाख शास्त्र पढ़ा हो परन्तु करने का तो यह है। आहाहा! शिवभूति अणगार। शिवभूति आते हैं न? गुरु ने कहा, मातुष-मारुष। प्रभु! तू आत्मा है! किसी के प्रति द्वेष नहीं करना, किसी के प्रति प्रीति, सन्तोष, प्रीति नहीं करना। इतने शब्द भी याद नहीं रहे। परन्तु आत्मा अन्दर याद रहा। समझ में आया? शिवभूति आते हैं। तुषमाष। यह दृष्टान्त तो

श्वेताम्बर भी देते हैं, है तो दिगम्बर के। श्वेताम्बर भी तुषमाष का दृष्टान्त देते हैं। उन्हें खबर नहीं।

मा तुष, मा रुष। तुष अर्थात् पर के साथ प्रीति नहीं करना, रोष नहीं करना। बस, अर्थात् कि वीतरागता करना, ऐसा कहा था। इतने शब्द याद नहीं रहे। कोई स्त्री उड़द को धो रही थी। उसका सफेद छिलका निकालती थी और सफेद दाल अलग करती थी। दूसरी स्त्री ने पूछा, बा! माँ! क्या करती हो? बहिन! माष तुष। माष अर्थात् उड़द और तुष अर्थात् छिलके से अलग करती हूँ। आहाहा! उड़द की दाल को छिलके से भिन्न करती हूँ, इतना सुनकर... उन्हें भाषा याद नहीं थी। सुनकर, ओहो! मेरी चीज़ उड़द की दाल जैसी सफेद ऐसा आनन्दकन्द मैं भिन्न हूँ और पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे छिलके के समान छिलके हैं। हमारी काठियावाड़ी भाषा में फोतरा कहते हैं। छिलका। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी छिलका है। लोग ऐसा कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता है। प्रभु! ऐसा नहीं है। तू ठगा जायेगा। भव चला जायेगा, भाई!

मुमुक्षु : ठगा जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठगा जायेगा। यह नहीं? छेतरा जायेगा, ऐसा नहीं कहते? ठगा जाये कहते हैं। छेतराय जाये, ऐसा नहीं कहते? छेतरे छे, ऐसा हिन्दी में नहीं आता। ठगाना। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। परमात्मप्रकाश है। तेरी चीज़ तो अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरपूर तेरा स्वभाव प्रभु है न! तेरी आनन्द की दशा प्राप्त करने में पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! राग भी, व्यवहाररत्नत्रय का राग भी दुःखरूप है। आहाहा! उसकी भी तुझे आनन्द की प्राप्ति में मदद—सहायता नहीं है। आहाहा! व्यवहार को अन्तर का निमित्त कहते हैं। दूसरी बाहर की पर्याय को बाह्य निमित्त कहते हैं। परन्तु उस निमित्त से अन्दर होता नहीं। जो अपनी परिणति पर्याय जो है, उसमें दूसरी चीज़ निमित्त हो, परन्तु निमित्त से पर्याय उत्पन्न नहीं होती। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। ऐसे अन्तर में निमित्त, व्यवहाररत्नत्रय देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र पढ़ने का विकल्प... आहाहा! वह भी छिलका है। वह तेरी चीज़ में नहीं और तेरे सन्मुख होने में उसकी सहायता नहीं। आहाहा!

बात ऐसी है कि अन्तर की चीज़ की इसे महिमा नहीं आती। जैसे पर चीज़ बाह्य की महिमा आकर्षण करती है, ऐसा अन्तर स्वरूप का इसे आकर्षण नहीं है। आहाहा! बाहर की चीज़ अनुकूल शरीर देखे जवान, हड्डियाँ, माँस रूपवान सुन्दर (शरीर) और लक्ष्मी हो और अच्छा भोजन करता हो, बस, ओहोहो! और हाथी पर बैठा हो। आहाहा! उसे उसका आकर्षण होता है। आहाहा! वह चीज़ नहीं, प्रभु! तेरा आनन्द का नाथ हाथी उसके ऊपर बैठ, उसका आकर्षण कर। आहाहा! पण्डितजी! ऐसा है, भगवान! आहाहा! प्रभु! तू कौन है? यह कहते हैं।

और तू अपना स्वभाव जान। पाँच इन्द्रियों के विषय को... आहाहा! यहाँ तो परमात्मा भगवान की वाणी और परमात्मा को भी इन्द्रिय कहा जाता है। इन्द्रिय का विषय है तो इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी दिव्यध्वनि परद्रव्य है न? तो परद्रव्य को वहाँ समयसार की ३१ गाथा में इन्द्रिय कहा है। है तो इन्द्रिय का विषय, तो विषय को भी इन्द्रिय कह दिया है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्रिय को भी विषय कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय तो है परन्तु वह इन्द्रिय का विषय है। विषय को इन्द्रिय कह दिया। ऐसा कहा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इन तीनों को इन्द्रिय कहा। भावेन्द्रिय, जो अन्दर ज्ञान के क्षयोपशम का अंश एक-एक इन्द्रिय के एक-एक विषय को जाने, वह भी भावेन्द्रिय ज्ञेय है, खण्ड-खण्ड है। वह ज्ञायक का स्वरूप नहीं। समझ में आया? जो खण्ड-खण्ड बतलाता है, भाव इन्द्रिय, हों! यह तो जड़ है, परन्तु जो भाव क्षयोपशम ज्ञान का अंश है, एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय को बतलाती है। इसका अर्थ? अपने अखण्ड ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलाता है। तो वह भी परज्ञेय है। आहाहा! अपना ज्ञायक—ज्ञेय वह नहीं। समझ में आया? और द्रव्य इन्द्रिय यह जड़। यह तो जड़ प्रत्यक्ष है, यह तो मिट्टी है।

जीवन होने पर भी आँखों से अन्धा हो जाता है, कान से बहरा होता है। आहाहा! यह तो जड़ है। जड़ में न्यूनता होने से मुझमें न्यूनता हुई, यह बड़ी विपरीत मान्यता है।

समझ में आया ? पाँच इन्द्रियाँ जड़ का काम, निमित्त को जानना आदि में न करे तो मेरे अवयव में न्यूनता आयी, ऐसा माननेवाले ने इन्द्रियों को अपना अवयव माना है। आहाहा! समझ में आया ? अपना अवयव तो भगवान त्रिकाल आनन्दस्वरूप है, उस ओर झुकाव करके निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, वह आत्मा का अवयव है। वह अवयव है। ये अवयव तो जड़ के हैं। अवयवी शरीर और पाँच इन्द्रिय के फांका, वे उसके अवयव-भाग हैं। आहाहा!

कहते हैं **पाँच इन्द्रियों के विषय को...** वह विषय अर्थात् भगवान की वाणी का भी लक्ष्य छोड़ दे। कठिन है। लोगों को ऐसा लगता है कि व्यवहार का... ऐसा कि ऐसे तीन लोक के नाथ की भक्ति, वह भी राग! और भगवान की ओर लक्ष्य होता है, वह भी राग! बापू! प्रभु! वह तो परद्रव्य है न? समझ में आया? मोक्षपाहुड़ में तो ऐसा लिया है। १६वीं गाथा में कहा था न? '**परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा पाठ है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर लक्ष्य करने से तेरी दुर्गति होगी। दुर्गति अर्थात् राग होगा। वह चैतन्य की गति नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया ? बहुत स्पष्ट कराते हैं।

ऐसा आया, भगवान (कुन्दकुन्दाचार्य) अष्टपाहुड़ में कहते हैं। मोक्ष अधिकार की १६वीं गाथा है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' मोक्ष है न? मोक्ष का अधिकार है न यह? तो मोक्ष की पर्याय परद्रव्य के आश्रय से नहीं होती। तथा मोक्ष का मार्ग भी परद्रव्य के आश्रय से नहीं होता। परद्रव्य के आश्रय से तो दुर्गति अर्थात् मोक्ष का मार्ग जो सुगति है, उसका फल मोक्ष सुगति है। उससे—परद्रव्य का लक्ष्य करने से राग (होता है), वह दुर्गति है। राग से तो गति मिलती है। गति, वह दुर्गति है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! समझ में आया ? यह चैतन्य हीरा, इसने परखा नहीं। '**परख्या माणेक मोती, परख्या हेम कपूर, एक प्रभु आत्मा परख्यो नहीं, कैसी वह चीज़ है।**' समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं, पंचेन्द्रिय के विषय को लक्ष्य में से छोड़ दे। आहाहा! और **समस्त विकल्प जालों को छोड़कर...** विकल्प जाल कहा, देखो! व्यवहाररत्नत्रय भी विकल्प जाल है। समझ में आया ? आहाहा! प्रभु! तुझे तेरे घर में ले जाते हैं। समझ में

आया ? आहाहा ! यह भजन में आता है न ? नहीं ? ' अब हम कबहु न निज घर आये, अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये ।' मैं पुण्यवन्त हूँ, मैं पापी हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ । ' पर घर भ्रमत ऐसा नाम धराया ।' यह चीज़ तेरी नहीं । आहाहा ! मैं पुण्यवन्त हूँ, मैं पुण्य का करनेवाला हूँ, वह सब परघर की भ्रमणा है । ' निज घर कबहु न आये ।' तेरी चीज़ आनन्द का नाथ प्रभु, जिसकी नजर करने से आनन्द आता है, और परद्रव्य पर नजर करने से दुःख होता है । लो ! भगवान और भगवान की वाणी, उस ओर लक्ष्य करने से राग होता है । राग होता है, दुःख होता है ।

मुमुक्षु : हमारी नजर आपकी ओर है, वह राग है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है । सेठ स्पष्टीकरण कराते हैं । सुनने में भी विकल्प है न ? भगवान ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, प्रभु !

मुमुक्षु : राग तो है नहीं, दुःख कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग कहो या दुःख कहो, भगवान !

मुमुक्षु : आता है तो आनन्द ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द मानता है । है कहाँ ? आहाहा !

बालक होता है न ? छह महीने का बालक हो और उसकी माँ ने ज्येष्ठ महीने में दोगुना दूध पिलाया हो, बहुत दूध पिलाया हो । फिर उसे दस्त हो जाये जंगल, पतली दस्त हो जाये । ठण्डा, तो गर्मी के दिन में उसे ठण्डा लगे । सुना है ? देखा है ? वह चाटता है । मजा है न ? बहुत बार दृष्टान्त देते हैं । बालक बैठा हो न ? और पतली दस्त हो जाये । दूध एक-दो बार अधिक पिलाये और गर्मी के दिन हों तो दस्त हो जाये । नग्न शरीर हो । बालक है न ? तो उसे ऐसे ठण्डा लगे । हाथ लगाये तो ठण्डा लगे । ऐसे चाटे । आहाहा ! उसी प्रकार भगवान ! राग का भोग, वह विष्टा का चाटना है । समझ में आया ? राग में मजा ऐसा है । वह विष्टा चाटे और मजा माने, ऐसा मजा है । आहाहा !

आनन्द का नाथ प्रभु, जिसका अनादर करके राग के प्रेम में फँसा, वह व्यभिचारी जीव है । समझ में आया ? परस्त्री का व्यभिचारी, वह तो स्थूल व्यभिचार है । यहाँ तो राग के एकत्व में मजा माने, वह व्यभिचारी है । मिथ्यादृष्टि व्यभिचारी है । आहाहा !

समझ में आया ? ऐसी बात है, प्रभु ! तेरी चीज़ में आनन्द तो पड़ा है न, नाथ ! आहाहा ! उस ओर का झुकाव छोड़कर, पर में झुकाव (करता है) ।

यहाँ तो यह कहते हैं कि विकल्प जालों को छोड़कर... आहाहा ! तुझे राग में ठीक लगता हो तो वह छोड़ दे, प्रभु ! भगवान ! तुझे कलंक है । समझ में आया ? जिससे भव मिले, वह भव जीव में कलंक है । योगसार में आया है । शर्मजनक जन्म । आहाहा ! माता के स्तन का दूध पीना, वह कलंक है । आहाहा ! प्रभु ! तुझमें आनन्द पड़ा है न ! जैसे गाय और भैंस की आउ होता है न ? उसमें दूध भरा हुआ है । उसे निकालते हैं । निकालने की भी एक कला होती है । ऐसे नहीं निकालते, ऐसे निकालते हैं । यहाँ खड्डा हो न, वहाँ रखे । ऐसे निकालने से यहाँ खड्डा पड़ जाता है तो उसकी भैंस के क्या कहलाता है वह ? आँचल । उसमें खड्डा पड़ जाता है । समझ में आया ? हमने तो बहुत देखा है । हमारी बहिन के घर में भैंस थी न तो बहिन करती थी । गारियाधार में एक वर्ष रहे थे । छोटी उम्र की बात है । तेरह वर्ष की उम्र की । ८७ वर्ष पहले । यह तो ७४ वर्ष पहले की बात है । तब बहिन थी, गारियाधार । वह ऐसे खींचे ।

इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द की आउ भरा है । उसमें एकाग्र होकर अन्दर से दूध को खींच न । प्रभु ! तेरी ऋद्धि तेरे पास है न ? पास है क्या, तू ही है । आहाहा ! समझ में आया ? यह सब करोड़पति दुःखी है, हों ! पोपटभाई कहते हैं कि हम सुखी हों तो क्यों यहाँ आयें ? ऐसा कहते हैं ।

मुमुक्षु : उसे दुःखी कहते हो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वे कहते हैं । आकुलता है । यह हसमुख के भाई देखना और वह इतने पैसे पैदा करे... (वह सब) आकुलता है । गृहस्थ है । क्या हुआ धूल में ?

यहाँ तो अनन्त लक्ष्मी पड़ी है । करोड़ में करोड़ और अरब कहते हैं इतना । आहाहा !

मुमुक्षु : आप चाबी तो दे दो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चाबी ।

भगवान ! तेरी चीज़ के सन्मुख तुझे सन्मुख करना है न, प्रभु ! करनेवाले को करने का है न ! कोई भगवान कर दे ? और जो पर्याय इसकी है, तो पर्यायवान में से पर्याय निकलती है । समझे ? आहाहा ! एक शब्द नहीं आता ? नियमसार में आता है । है

न ? पर्यायवान् द्रव्य । (गाथा) १५ । पर्यायी आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है । क्या कहते हैं ? पर्यायी ऐसा आत्मा । पर्यायी ऐसा आत्मा । उसके ज्ञान बिना आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है । राग-द्वेष आदि पर्याय अपनी है, ऐसा माननेवाला है । आहाहा ! समझ में आया ? १५-१५ पर्यायी आत्मा के... आहाहा ! पर्यायवाले आत्मा के, पर्यायस्वरूप आत्मा के ज्ञान बिना आत्मा पर्यायस्वभाववाला होता है—पर्यायदृष्टिवाला होता है, ऐसा कहते हैं । रागवाला और एक समय की पर्यायवाला, उससे चार गति में भटकता है । समझ में आया ? नियमसार, प्रवचनसार सबमें एक-एक गाथा में समुद्र भरा है । लोगों को अभ्यास चाहिए । वह अभ्यास करे मेट्रिक और एल.एल.बी. के लिये कितने वर्ष करते हैं ? पाप है, अज्ञान है अकेला ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने से इसे लक्ष्य होता है । शास्त्र लक्ष्य कराता है । अन्तर में जाना, इतना लक्ष्य कराता है । परन्तु इस लक्ष्य से अन्दर नहीं जाया जाता । शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं, ऐसा पाठ है । आनन्दघनजी कहते हैं । समझ में आया ? शास्त्र दिशा दिखाकर दूर रहे । और श्रीमद् में आता है । अन्त में आता है । 'लक्ष्य होने को उसका ।' 'लक्ष्य होने को उसका कहे शास्त्र सुखदायी ।' मात्र लक्ष्य कराने के लिये । यह तो लक्ष्य का प्रश्न था न । यह लक्ष्य अर्थात् इसके ख्याल में आवे परलक्ष्यी, इतनी बात । 'लक्ष्य होने को उसका कहे शास्त्र सुखदायी ।' इसके ख्याल में यह आवे कि यह शास्त्र ऐसा कहते हैं कि तेरी दृष्टि—लक्ष्य वहाँ ले जा । उसका लक्ष्य करावे, बस, इतना । परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर अन्दर में जाये तो लक्ष्य हुआ, ऐसा कहा जाये । अमरचन्दभाई ! भाई ! यह तो वीतराग का मार्ग है । अभी कहेंगे । ७२ गाथा में । भव—तीर पूरा करने का रास्ता—मार्ग यह है । चौरासी के अवतार बन्द करना । समझ में आया ?

यहाँ तो दूसरा कहना है । व्यवहार से निश्चय होता है, इसका यहाँ निषेध किया है । **विकल्प जालों को छोड़कर...** कहा । वे कहते हैं कि व्यवहार से होता है । व्यवहार तो विकल्प-राग है । आहाहा ! जैसे दोपहर में ८५ (गाथा) चली कि प्रत्येक द्रव्य की जो क्रिया है, वह सब परिणामस्वरूप है । और परिणामस्वरूप है, वह परिणाम से क्रिया भिन्न नहीं है । तब तो अपनी पर्याय अपने हुई, ऐसा कहते हैं । कोई निमित्त से होती है, ऐसा है नहीं । आहाहा ! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि **विकल्प जालों को छोड़कर...**

अनुभव होता है। राग के विकल्प से निश्चय होता है, (ऐसा नहीं है)। यह दो बड़े विवाद हैं। निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है और क्रमबद्ध नहीं। बस, इतना। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध पाँच का विवाद है। आहाहा! भाई! इस विवाद में एक-एक स्पष्टीकरण...

एक बार ऐसा निर्णय कर कि पर्याय क्रमसर होती है। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। तो ऐसे क्रमसर का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञायक पर जाती है। ज्ञायक पर दृष्टि जाती है, तब क्रम का निर्णय होता है। क्रम के निर्णय में भी व्यवहार से लक्ष्य वहाँ गया, ऐसा भी रहा नहीं। क्रमबद्ध का निर्णय करने में पाँचों का निर्णय हो जाता है। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध। समझ में आया? गुण जो है, वह विस्तार (स्वरूप) ऐसे अक्रम हैं। गाथा है न ९४? प्रवचनसार में। विस्तारक्रम, आयतक्रम। आयत सामान्य, विस्तार सामान्य। परन्तु यहाँ गुण विस्तार लेना है। वस्तु में जो अनन्त गुण हैं, वे ऐसे विस्तार अक्रम एक साथ हैं। पर्याय है, वह एक साथ क्रमसर है। इसका अर्थ ऐसा कि आगे-पीछे नहीं। जैसे अक्रम है। अनन्त गुण जैसे एक द्रव्य में अक्रम विस्तार से है, वैसे पर्याय आयत विस्तार है।

मुमुक्षु : काल की अपेक्षा से लम्बाई होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बाई होती है। परन्तु वह एक के बाद एक होती है, इसलिए उसे आयत कहते हैं। समझ में आया? वह क्रमसर है, ऐसा निर्णय करे, तब तो पर्याय में क्रमसर है, इसका निर्णय पर्याय में द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! द्रव्य के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय हुआ तो पाँचों का न्याय आ गया। आहाहा! निमित्त से होता नहीं, क्योंकि क्रमसर पर्याय है। अब क्रमसर का निर्णय करने के लिये द्रव्य पर गया तो जो व्यवहार-राग है, उसका लक्ष्य छोड़ दिया। वहाँ गया, तो व्यवहार से निश्चय होता है, यह भी रहा नहीं। और क्रमबद्ध है, ऐसा साबित हो गया। एक शब्द में पाँचों का स्पष्टीकरण है। आहाहा! परन्तु क्या करे? प्रभु! किसे कहें? आहाहा!

अरे! एक बार श्रीमद् कहते थे। गृहस्थाश्रम में थे। आत्मज्ञान हुआ था। संसार में जवाहरात का लाखों का व्यापार था। जवाहरात का। श्रीमद् राजचन्द्र एक बार कहते थे कि अरे! मेरे वचन का नाद कौन सुनेगा? मैं जो तत्त्व कहता हूँ, वह नाद कौन सुनेगा?

क्योंकि लोग बाहर की रुचि में पड़े हैं और मैं अभी गृहस्थाश्रम में हूँ। बाहर के त्यागवाले के वचन का माहात्म्य अभी लोगों को लगता है। भले अज्ञानी हो। ऐसा कहते थे। अरे! ज्ञानी थे न! सम्यग्दृष्टि थे। एकावतारी हो गये। एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। श्रीमद् राजचन्द्र अभी स्वर्ग में है। स्वयं ने कहा है और ऐसा ही है।

‘अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे, इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।’ ऐसा लगता है कि अभी कर्म को, राग को भोगना पड़ता है। अभी राग पूर्ण छूटता नहीं। ‘अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे।’ थोड़े काल राग को भोगना, ऐसा काल देखते हैं। ‘इससे देह एक धारकर...’ एकाध देह भविष्य में, वह भी मनुष्य का। स्वर्ग के देह को गिनने में नहीं आता। समझ में आया? साधक का भव मनुष्य का गिनने में आता है। यहाँ से तो स्वर्ग में गये। परन्तु फिर ‘देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।’ अपना स्वरूप असंख्य प्रदेशी भगवान स्वदेश, उसमें हम एक भव करके समा जायेंगे, लो! गृहस्थाश्रम में थे। उसमें क्या? अन्दर आत्मा में कहाँ गृहस्थाश्रम था? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो वह विकल्पजाल आया न? तो व्यवहार से भी निश्चय होता नहीं, ऐसा यहाँ कहा। विकल्प का, व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अन्तर में जा। प्रभु! **परमसमाधि में स्थिर होकर...** देखा! विकल्पजाल कहा, वह दुःख है और इस ओर गया तो परमसमाधि शान्ति है। आहाहा! **परमसमाधि में स्थिर होकर...** क्या कहते हैं? ध्यान रखो! **निज आत्मा का ही ध्यान कर...** तब तुझे आत्मा उपादेय हो जाएगा। आहाहा! तेरी अनुभूति की परिणति से आत्मा का अनुभव कर, तब आत्मा अनुभव में आनेवाला यह आत्मा, ऐसे आयेगा। आहाहा! समझ में आया? यह तो कल कहा था न? राग के अनुभव के काल में अकेला राग का अनुभव है। उसे भगवान आत्मा हेय है। आहाहा! समझ में आया? अकेला राग का-पुण्य का अनुभव है और उस पुण्य की रुचि में पड़ा है, उसे भगवान आत्मा हेय हो गया। आहाहा! और जिसे आत्मा उपादेय हो गया, परिणति में आत्मा उपादेय हो गया, उसे राग हेय है, ऐसा कहना नहीं पड़ा। भिन्न रह गया। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तेरा मार्ग ऐसा है। वीतराग का मार्ग कहो या तेरा मार्ग कहो, दोनों एक ही है। आहाहा! यह ७१ (गाथा) हुई।

गाथा - ७२

अथ देहे छिद्यमानेऽपि भिद्यमानेऽपि शुद्धात्मानं भावयेत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रं प्रतिपादयति -

७२) छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ जोइय एहु सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ जिं पावहि भव-तीरु॥७२॥
छिद्यतां भिद्यतां यातु क्षयं योगिन् इदं शरीरम्।
आत्मानं भावय निर्मलं येन प्राप्नोषि भवतीरम्॥७२॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ जोइय एहु सरीरु छिद्यतां वा द्विधा भवतु भिद्यतां वा छिद्भीभवतु क्षयं वा यातु हे योगिन् इदं शरीरं तथापि त्वं किं कुरु। अप्पा भावहि णिम्मलउ आत्मानं वीतरागचिदानन्दैकस्वभावं भावय। किंविशिष्टम्। निर्मलं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितम्। येन किं भवति। जिं पावहि भवतीरु येन परमात्मध्यानेन प्राप्नोषि लभसे त्वं हे जीव। किम्। भवतीरं संसारसागरावसानमिति अत्र योऽसौ देहस्य छेदनादिव्यापारेऽपि रागद्वेषादिकोभमकुर्वन् सन् शुद्धात्मानं भावयतीति संपादनादर्वाङ्मोक्षं स गच्छतीति भावार्थः॥७२॥

आगे जो देह छिद जावे, भिद जावे, क्षय हो जावे, तो भी तू भय मत कर, केवल शुद्ध आत्मा का ध्यान कर, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर सूत्र कहते हैं -

हे योगी! इस तन का छेदन भेदन हो अथवा क्षय हो।

तू भव-सागर पार करेगा ध्याये यदि शुद्धात्मा को॥७२॥

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, [इदं शरीरम्] यह शरीर [छिद्यतां] छिद जावे, दो टुकड़े हो जावे, [भिद्यतां] अथवा भिद जावे; छेद सहित हो जावे, [क्षयं यातु] नाश को प्राप्त होवे, तो भी तू भय मत कर, मन में खेद मत ला, [निर्मलं आत्मानं] अपने निर्मल आत्मा का ही [भावय] ध्यान कर, अर्थात् वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव तथा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित अपने आत्मा का चिंतवन कर, [येन] जिस परमात्मा के ध्यान से तू [भवतीरम्] भवसागर का पार [प्राप्नोषि] पायेगा॥ जो देह के छेदनादि कार्य होते भी राग-द्वेषादि विकल्प नहीं करता, निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ शुद्ध आत्मा को ध्याता है, वह थोड़े ही समय में मोक्ष को पाता है॥७२॥

गाथा - ७२ पर प्रवचन

७२। बहत्तर कहते हैं न? कल आया था। बहत्तर। ... भगवान का न? कल स्तुति में आया था। दोपहर में। ७२। भगवान महावीर की आयुष्यस्थिति ७२ (वर्ष) थी। ७० और २। कल दोपहर में स्तुति में आया था। भगवान के देह की स्थिति ७२ वर्ष की। यह ७२ गाथा है।

आगे जो देह छिद जावे,... वह तो जड़ है। छिद जाये तो तुझे क्या है? तू तो आत्मा है। आहाहा! **भिद जाये...** छिद जाये का अर्थ टुकड़े हो जाये, भिद अर्थात् चूरा, ऐसे चूण हो जाये। **तो भी तू भय मत कर...** प्रभु! तू भय न कर। तू उसमें छिदता नहीं। गीता में आता है। 'न छिदन्ती, न भेदन्ती।' उसकी तो किसी समय ऐसी बात कहते हैं। सत्य बात नहीं। किसी समय ऐसा कहा। आहाहा! यह शब्द आते हैं। और अपने निर्जरा अधिकार में आते हैं। भाई! निर्जरा अधिकार में आते हैं। न छेदन्ती, न भेदन्ती, निर्जरा अधिकार में आते हैं। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य ने जो गाथा और पद बनाये, उनका अनुकरण बहुत पण्डित आचार्यों ने किया है। क्योंकि वह तो भगवान के पास गये थे। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने भगवान के पास या दूसरे कोई भगवान के पास ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे दूसरे भगवान के पास गये थे, यह व्यवहार और अपने भगवान के पास रहकर गये थे। आहाहा! प्रभु विराजते हैं। सीमन्धर भगवान महाविदेह में समवसरण में विराजते हैं। आहाहा! वहाँ गये थे। आठ दिन सुना। उसमें अपनी अप्रतिहत... सम्यग्दर्शन तो पंचम काल के साधु थे तो क्षायिक नहीं होता, परन्तु वहाँ गये तो क्षायिक नहीं हुआ, किन्तु जोड़नी क्षायिक हो गया। क्षायिक होगा ही। उन्हें क्षयोपशम (सम्यग्दर्शन) गिर जायेगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह समयसार की ३८ गाथा में आता है। ३८ में, ९२ में। समयसार की ३८ वीं गाथा में, प्रवचनसार की ९२वीं (गाथा में)। ओहोहो! वहाँ गये। भगवान के दर्शन किये। क्षायिक नहीं हुआ। पंचम काल के प्राणी हैं न!

मुमुक्षु : काल ने बाधा दे दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। उनकी योग्यता ऐसी है। पंचम काल के

प्राणी की योग्यता ऐसी है कि केवलज्ञान और क्षायिक नहीं होते। अपने कारण से; काल के कारण से नहीं। अपना स्वकाल ऐसा है। समझ में आया ?

यहाँ तो दूसरा कहना है। भगवान के पास गये थे परन्तु भले क्षायिक समकित न हुआ, परन्तु अप्रतिहत क्षायिक हो गया। उस क्षयोपशम में से क्षायिक ही होगा, गिरेगा नहीं। स्वर्ग में गये हैं, वहाँ से मनुष्य होकर क्षायिक केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जायेंगे। समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो निर्जरा अधिकार में यह लिया है। छेदन्ती, भेदन्ती पर की दरकार छोड़ दे। आहाहा !

यहाँ यह शब्द है। **भय मत कर, केवल शुद्ध आत्मा का ध्यान कर,...** आहाहा ! शरीर के खण्ड काल में, शरीर के चूर्ण होने के काल में, उससे लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा ! वह तेरी चीज़ नहीं, तुझमें नहीं, तू उसमें नहीं। आहाहा ! तू तो आत्मा का का ध्यान कर उस समय। आहाहा ! समझ में आया ? दूसरे में आता है कि ऐसी कोई विषयवासना आदि विकल्प आ जाये तो अन्तर में स्वरूप का ध्यान करना, तो छूट जायेगा। ऐसा आता है। समझ में आया ? यह शास्त्र में है कहीं। समाधितन्त्र में, नहीं ? समाधितन्त्र में। गाथा-बाथा याद नहीं। समाधितन्त्र में है। तुझे वासना आदि हो जाये, छद्मस्थ है, अभी वीतराग नहीं, तो इस ओर ध्यान लगा देना। समझ में आया ? तेरी वह विषयवासना छूट जायेगी। आहाहा ! भगवान आनन्द के नाथ प्रभु का ध्यान लगा दे। समझ में आया ? यह कहते हैं।

ऐसा अभिप्राय मन में रखकर सूत्र कहते हैं— देखो ! आहाहा !

(७२) छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ जोइय एहु सरीरु ।

अप्या भावहि णिम्मलउ जिं पावहि भव-तीरु ॥७२ ॥

हे धर्मात्मा ! हे योगी ! यह शरीर छिद जावे, दो टुकड़े हो जावे, ... छेद अर्थात् टुकड़े होना। भिद जावे; छिद्रसहित हो जावे, ... अर्थात् चूर्ण हो जाये। नाश को प्राप्त होवे, ... अभाव हो जाये। लो ! छेदन, भेदन और अभाव। तीन शब्द लिये हैं। टुकड़े हो जाये, चूर्ण हो जाये, छिद्र पड़ जाये या अभाव हो जाये। आहाहा ! तो भी तू भय मत कर, मन में खेद मत ला, ... 'निर्मल आत्मानं भावय' भगवान अपने निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर, अर्थात् वीतराग चिदानन्द... आहाहा ! देखो ! इसमें भी आया।

वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव... भगवान् आत्मा का वीतराग चिदानन्द ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव तथा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित... देखो ! भावकर्म अर्थात् विकल्प जो व्यवहार है, उससे रहित है। द्रव्यकर्म से तो रहित है। एक चीज़ में दूसरी चीज़ का अभाव होता है। एक अस्ति में दूसरी चीज़ की नास्ति है। ऐसा निश्चय से तो व्यवहाररत्नत्रय के राग की भी स्वभाव में नास्ति है। आहाहा ! स्वभाव में अस्तिरूप से तो आनन्द का नाथ प्रभु है और राग की उसमें नास्ति है। नास्ति है, उससे आत्मा को लाभ हो—ऐसा कैसे बने ? आहाहा ! यह लोगों को (नहीं बैठता) ।

पंचास्तिकाय में आता है न कि व्यवहार भिन्न साध्य-साधन। पंचास्तिकाय में आता है। वह तो निमित्त का कथन है। यह तो दोपहर में कहा न ? कि व्यवहार मोक्षमार्ग निमित्त अथवा सहचर देखकर उपचार से व्यवहार कहा। ऐसे साधन को, निश्चय साधन साधनेवाले को राग को उपचार करके सहचर देखकर निमित्त होने से व्यवहार कहने में आया। ऐसी बात है। भिन्न साध्य-साधन में भी ऐसी बात है। पाठ तो ऐसा है और मोक्ष अधिकार में तो ऐसा भी आया है कि व्यवहार प्रतिक्रमण आदि हैं, वह क्रम-क्रम से राग को घटाते हैं। ऐसा आया है। मोक्ष अधिकार। ऐसा क्यों कहा ? राग (घटाने में) निश्चय की दृष्टि जिसे हुई, उसकी बात है। अज्ञानी को शुभराग में अशुभराग घटता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यह प्रश्न मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। उस शिष्य ने प्रश्न किया कि शुभ करते हैं, उसमें अशुभ घटता है न ? कि यह तत्त्वज्ञानपूर्वक हो तो तेरी बात सच्ची है। सम्यग्दर्शन आत्मा के अनुभव वीतरागस्वभाव की प्रतीति और अनुभव हुए हों, उसके लिये शुभभाव में अशुभराग घटता है, यह बात बराबर है। परन्तु अज्ञानी को शुभभाव में अशुभराग घटता (है, ऐसा नहीं है)। वह तो स्वयं शुभ को अपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे अशुभराग कहाँ से घटे ? समझ में आया ? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। और समयसार मोक्ष अधिकार में लिया कि निश्चयरत्नत्रय सम्यग्दर्शन, ज्ञान का भान हुआ, परिणमन हुआ, उसे शुभराग में क्रम-क्रम से राग घटता है, ऐसा पाठ लिया है। समय-समय। धीरे-धीरे घटता है। परन्तु वह सम्यग्दृष्टि की बात है। उसकी दृष्टि स्वभाव पर है और थोड़ा विशेष आश्रय लिया तो शुभ है। यदि थोड़ा आश्रय हो तो अशुभ हो।

विशेष आश्रय लिया तो शुभ हुआ। विशेष आश्रय हो तो अकेला शुद्ध हो जाये। समझ में आया? इसलिए धीरे-धीरे कहा। परन्तु उस शुभभाव से राग घटा, वह स्वभाव की दृष्टिवन्त की बात है। अज्ञानी शुभभाव में से राग घटाकर आगे बढ़ता है, यह बात तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, परन्तु लोगों को ऐसा कठिन लगे। क्या हो? भाई! तेरी महिमा न आवे और राग की महिमा आवे, यह तो प्रभु का अनादर है। समझ में आया? शुभराग में कुछ लाभ तो है न? परन्तु किसे?

मुमुक्षु : ज्ञानी को तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी को तो कहा न, वह अशुभ घटा, इस अपेक्षा से। है वह तो दुःख है, जहर है। अशुभराग घटा, परन्तु किस प्रकार? कि बिल्कुल आत्मा में राग नहीं, ऐसी दृष्टि और अनुभव हुआ है, उसे शुभभाव में अशुभ घटा है। आश्रय के कारण से घटा है। शुभभाव है, वह तो जहर और दुःख है उसे भी। समझ में आया? जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तो ऐसा शुभभाव आया, उसमें से अशुभराग घटा। उस सम्यग्दृष्टि को धर्मात्मा भावलिंगी मुनि की बात है वहाँ। सम्यग्दृष्टि की बात है। उसे शुभभाव में अशुभराग घटता है और क्रम-क्रम से अशुभ घटा, फिर क्रम से शुभ घटाकर स्व का आश्रय लेगा, तब नाश होगा। शुभराग का भी नाश होगा। परम्परा जो कहा है... वह अभी आया न? जगनमोहनलालजी का कथन आया है, शास्त्र में व्यवहार को परम्परा मोक्ष का कारण कहा है। बड़ा लेख है। परन्तु किसे? सम्यग्दृष्टि नहीं, उसका व्यवहार परम्परा मोक्ष का कारण, वह तो बात ही नहीं। उसका व्यवहार तो निन्द्य अनर्थ का कारण है। यह बारह भावना में कुन्दकुन्दाचार्य आस्रव भावना में कहते हैं। बारह भावना है न? उसमें आस्रव भावना में लिया है।

मिथ्यादृष्टि का आस्रव परम्परा निन्द्य का कारण है, अनर्थ का कारण है। और सम्यग्दृष्टि का जो व्यवहार कहा, उसे परम्परा मोक्ष का कारण क्यों कहा? कि अभी अशुभराग घटा है और फिर विशेष आश्रय लेकर शुभराग घटायेगा, इस अपेक्षा से व्यवहारनय को आरोप करके उससे परम्परा मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग से परम्परा मोक्ष हो? समझ में आया? जगनमोहनलालजी का बड़ा लेख आया है। गड़बड़ का। मतभेद ऐसा हो गया है। ऐई! पण्डितजी! यह पण्डित तो सोनगढ़ के कहलाते हैं।

लोग ऐसा कहकर निकाल डालते हैं। अरे! प्रभु! यह कहाँ किसी की बात है? यह तो अन्तर की बात है। सत्य बात का न्याय तो यह है। उसमें कोई पक्ष की बात नहीं। यहाँ कहते हैं....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। पहले अशुभ घटा न। सम्यग्दृष्टि है, अनुभव है, आनन्द का अनुभव है, तो शुभ में अशुभ घटा है। इस आनन्द के कारण से। शुभ में अशुभ घटा और फिर शुभ घटायेगा।

मुमुक्षु : परम्परा मोक्ष का कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा। यह कहा। यह सुना है। यह पण्डितजी ने सुना है। ऐसा कि पहले आत्मा का अनुभवी है, आनन्द का अनुभव है, निश्चयमोक्षमार्ग है। उसे जो शुभ है तो वर्तमान अशुभ घटा और फिर शुभ घटाकर शुद्ध हो जायेगा। इस अपेक्षा से कहा है। अरे! राग, वह कहीं मुक्ति का कारण होगा? राग तो दुःख का कारण है, बन्ध का कारण है। वह अबन्ध का कारण होगा? वह तो व्यवहारनय का उपचार का कथन है। वह भी सम्यग्दृष्टि की बात है। आत्मा का भान नहीं और व्यवहार से परम्परा हो जायेगा, ऐसी बात है ही नहीं, भगवान! क्योंकि ऐसा शुभभाव तो नौवें ग्रैवेयक (गया तब भी हुआ था)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ऐसे शुभभाव से तो कोई समकित हुआ नहीं, मोक्ष हुआ नहीं। वह उत्कृष्ट शुभभाव था। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आत्मज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? कि व्यवहाररत्नत्रय टालकर नौवें ग्रैवेयक गया, वह दुःख था, राग था। 'आत्मज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' क्या कहा? पण्डितजी! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आत्मज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' तब इसका अर्थ क्या हुआ? कि व्यवहाररत्नत्रय निश्चय बिना का अकेला शुभभाव अकेला दुःख का कारण है। आत्मज्ञान हो तो आनन्द आता है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अभव्य का तो दृष्टान्त लिया है। हमको खबर है। अभव्य का तो दृष्टान्त दिया है। भव्य की एक बात है। बन्ध अधिकार में अभव्य का दृष्टान्त लिया

है न? अभव्य पंच महाव्रत पालता है, ऐसा पालता है, परन्तु उसे मुक्ति नहीं होती।

मुमुक्षु : वह अभव्य को लागू पड़े, भव्य को लागू न पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते हैं न, खबर है। वह तो अभव्य का तो दृष्टान्त दिया है। सिद्धान्त तो दोनों को लागू पड़ता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भावलिंग की बात है।

यह चर्चा हुई थी, (संवत्) १९९७ में। आये थे न क्या कहलाते हैं? शान्तिसागर। शान्तिसागर आये थे। ऐसे प्रकृति नरम बेचारे की, हों! उन्होंने यहाँ प्रवचन में ऐसा कहा कि बत्तीस बार द्रव्यचारित्र आवे तो भावचारित्र आवे। ऐसा कहा। उस समय एकान्त में... द्रव्यचारित्र तो अनन्त बार आ गया। गोम्मटसार में बत्तीस बार कहा, वह तो भावलिंग की बात है। गोम्मटसार में। हमको खबर है। परन्तु उन बेचारे को खबर नहीं। बेचारा नरम व्यक्ति, हों! ऐसे विवाद करे, ऐसा नहीं। शान्तिसागर। बत्तीस बार द्रव्यचारित्र आवे तो एकबार भावचारित्र आवे, ऐसा गोम्मटसार में कहा है। कहा, ऐसा नहीं, महाराज! ऐसा नहीं। वहाँ तो भावलिंग की बत्तीस बार की बात है।

मुमुक्षु : भावलिंगी कैसे होते हैं, उसका एकाध नमूना तो दिखाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ है? ऐसा कहते हैं, तुम दिखाओ। परन्तु हमारे में कहाँ ऐसी शक्ति है। बात सच्ची है, हों! ऐसा कहते हैं। तुम तो बताओ। भगवान! आहाहा! यह चारित्र, बापू! गजब बात! यह परमेश्वर पद है, भाई! आहाहा! जिसे गणधर नमस्कार करे, वह पद कैसा होगा, भाई! 'णमो लोए सव्वसाहूणं' चार ज्ञान (के धारी) और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले, उसमें 'णमो अरिहंताणं' लिखते हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। सन्त! तेरे चरण में मेरा नमस्कार! गणधर कहते हैं। प्रभु! यह णमो लोए सव्व साहूणं, वे साधु कैसे होंगे!

मुमुक्षु : गणधर करते हैं, आप क्या करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हम तो नमस्कार करते हैं। यह तो सामान्य बात है। यह तो गणधर करते हैं। चार ज्ञान के धनी तीर्थकर के वजीर। तीर्थकर दरबार, राजा, बादशाह, उनके दीवान गौतम गणधर। यहाँ तो उत्कृष्ट बात कहनी है।

मुमुक्षु : आप मुनि को मानते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को... आहाहा! मुनि के तो हम दास हैं। मुनि तो धन्य मुनि महाराज! परन्तु मुनिपना होना चाहिए न? आहाहा! धन्य अवतार भगवान! मुनिपना तो क्या... जिसे अन्तर अनुभवपूर्वक आनन्द की धारा चलती है। कहा न वहाँ पाँचवीं गाथा में? कुन्दकुन्दाचार्य (ने)। हम हमारे वैभव से समयसार कहेंगे। हमारा वैभव कैसा है? आहाहा! आनन्द का झरना जिसमें है। ऐसा अनुभव, जिसमें आनन्द की मोहरछाप है। ऐसी मुद्राछाप, पाठ है। आहाहा! मुद्रा शब्द है। पाँचवीं गाथा संस्कृत में। हमारे मोक्ष के मार्ग में आनन्द की छाप पड़ी है। यह पोस्ट छाप नहीं लगाते? यह पोस्ट-पोस्ट में छाप लगाते हैं न; उसी प्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारे मोक्षमार्ग की वैभव की परिणति में आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। आनन्द आता है। अकेले पालन करते हैं, पालन करते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :बाहर की अलग बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच महाव्रत अलग हैं। वह तो राग है, दुःख है। जिसे आत्मा का अनुभव होता है, उसे तो आनन्द की मोहरछाप अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है।

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में नहीं कहा? कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि एकदेश व्यक्त होते हैं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया? और केवलज्ञान को ज्ञानादि सर्वदेश पूर्ण प्रगट हो गये। आहाहा! तो छठवें में इस प्रमाण। चौथे गुणस्थान में भी जब ज्ञानादि एक अंश अनन्त गुण की व्यक्तता व्यक्त हुई है। तो आनन्द की दशा भी एक अंश व्यक्त हुई है। चौथे गुणस्थान में। आहाहा! समझ में आया? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। तो छठवें गुणस्थान की क्या बात करना! आहाहा! सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी, उनसे पंचम गुणस्थान की दशा अनन्तगुणी ऊँची। छठवें गुणस्थान की दशा को गणधर नमस्कार करे। अहो! सन्त! तेरे चरण में मेरा नमस्कार! आहाहा! लो!

भय मत कर, मन में खेद मत ला, अपने निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर,...
विशेष कहेंगे..... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ९, बुधवार
दिनांक-०४-०८-१९७६, गाथा-७२-७३, प्रवचन-५३

७१ गाथा। भावार्थ। यह शब्द आ गया। अन्तिम थोड़ा रहा था।

जिस परमात्मा के ध्यान से तू भवसागर का पार पायेगा। यह शब्द रह गया था। क्या कहते हैं? आत्मा परमात्मस्वरूप ही है, उसका द्रव्यस्वभाव अनन्त ज्ञानादि गुण की राशि है। उस परमात्मा का ध्यान करने से शरीर में छेदन होओ, भेदन होओ, नाश होओ, उसकी चिन्ता नहीं करना, ऐसा कहते हैं। वह तो परवस्तु है। होने की चीज़ तो उसमें से होगी ही। तुम्हारा ध्यान और तुम्हारा लक्ष्य चिदानन्दस्वरूप भगवान की ओर होना चाहिए। ऐसी बात है। शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु... यह कहा न? जिस परमात्मा के ध्यान से... जो आत्मा, वह परमात्मा, हों! दूसरे परमात्मा नहीं। अपना निज परमात्मा। जिस परमात्मा के ध्यान से... शब्द तो ऐसा है न! जिस परमात्मा के ध्यान से... वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव, वीतराग ज्ञानानन्द शुद्धस्वभाव, ऐसी जो अपनी चीज़ है... आहाहा! यह भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म जड़ है, नोकर्म जड़ है, भावकर्म पुण्य-पाप का राग है। यहाँ तो यह कहा कि व्यवहाररत्नत्रय भी राग है। उसका लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अपना शुद्ध चैतन्य आत्मा, वहाँ ध्यान लगा। आहाहा! ऐसी बात है। तब तेरे भवसागर का अन्त आयेगा। क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि परिणाम से... वह तो राग है। उससे तो संसार गति मिलेगी। चार गति मिलेगी। स्वर्ग मिले कदाचित्, परन्तु वह कहीं आत्मगति नहीं। आहाहा!

भावार्थ:—जो देह के छेदनादि कार्य होते भी... कार्य तो उसका—जड़ का है, ऐसा कहते हैं। शरीर का छेदन हो-भेदन हो। आहाहा! क्या कहा जाता है उसे? कैंसर। कैंसर की व्याधि होती है न? वह तो देह का—जड़ का कार्य है। उसे कोई रोक नहीं सकता, उसे टाल नहीं सकता। (कि) है उसे छोड़ दूँ। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप का ध्यान करे तो भव का अन्त आयेगा। आहाहा! समझ में आया? जो देह के छेदनादि कार्य होते... हैं। कार्य होते हैं, ऐसा लिया न? वह तो जड़ का कार्य है। आहाहा! छेदन-टुकड़े हों, भिद जाये-छिद्र हो जाये, नाश हो, वह सब तो जड़ के कार्य हैं।

आहाहा! उस कार्य को आत्मा करता नहीं, उस कार्य को आत्मा छोड़ सकता नहीं। वह तो उसका कार्य है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न!

राग-द्वेषादि विकल्प नहीं करता,... शरीर में छेदन-भेदन होने पर भी राग-द्वेष आदि विकल्पजाल नहीं करता। आहाहा! निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ... क्या कहते हैं? कि ध्यान कब होता है? कि राग से रहित निर्विकल्प भाव हो, तब ध्यान होता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन बातें! और यह निर्विकल्प काल में ही आत्मा का ध्यान होता है। समझ में आया? बालक हो या वृद्ध हो, अन्तर भगवान तो पूर्णानन्द का नाथ है। शरीर की चेष्टा आदि क्रिया, वह तो सब जड़ क्रिया है। आहाहा! उसका आकर्षण छोड़ दे। अन्दर भगवान का आकर्षण कर, ऐसी बात है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय परमात्मा है, वहाँ ध्यान लगाना, ऐसी बात करते हैं। समझ में आया?

निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ शुद्ध आत्मा को ध्याता है,... भाषा कैसी है! निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ शुद्ध आत्मा को ध्याता है,... उसमें है। समझ में आया? विकल्परहित, रागरहित निर्विकल्प ध्यान से निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ शुद्ध आत्मा को ध्याता है,... आहाहा! रागरहित भाव होता है, तब शुद्धात्मा को ध्याता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! द्रव्यसंग्रह ४७ गाथा में कहा है न यह? 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा' निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग, स्वरूप के ध्यान के काल में प्राप्त होते हैं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (सिद्धान्तिदेव कृत) ४७ गाथा। ४ और ७। सैंतालीस कहते हैं? 'दुविहं पि मोक्खहेउं' निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, सत्य चारित्र ध्यान में प्राप्त होता है। आहाहा! स्वरूप-सन्मुख का झुकाव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, जिसमें आनन्द की अल्पता नहीं, ज्ञान की अल्पता नहीं, विकारता तो नहीं, आहाहा! शरीरादि संयोग तो नहीं। विकार नहीं और अल्पज्ञ, अल्पदर्शी, अल्पवीर्य, वह भी जिसमें नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान ध्यान में मोक्षमार्ग प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि त्रिकाली भगवान की ओर निर्विकल्प ध्यान में जब आया, तब वहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसी बात है।

अब इसे लोग यह व्यवहार से होता है.... व्यवहार से होता है, (ऐसा कहते हैं)।

उसका तो यहाँ निषेध करते हैं। व्यवहार से होता ही नहीं। व्यवहार तो विकल्प है, राग है। आहाहा! पहले ज्ञान में निर्णय तो करे कि सत्य चीज़ तो यह है। ज्ञान में विकल्प से निर्णय किये बिना अन्दर सत्य में कहाँ से जा सकेगा? जहाँ सत्य का निर्णय नहीं, विकल्प से, कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, अपना स्वरूप ही यह है, उस ओर झुकाव करना, वह निर्विकल्प ध्यान में ही झुकाव होता है। आहाहा! और यह निश्चयमोक्षमार्ग स्वरूप के ध्यान के काल में प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और व्यवहारमोक्षमार्ग भी स्वरूप भगवान (आत्मा) पूर्णानन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, (उसके ध्यान में प्रगट होता है)। आहाहा!

जैसे शकरकन्द होता है न? शकरकन्द नहीं कहते? (गुजराती में) शक्करिया कहते हैं। शकरकन्द है। शकरकन्द उसमें पतली लाल छाल है, उसका लक्ष्य छोड़ दो तो पूरा शकरकन्द शक्कर अर्थात् चीनी के पिण्ड से भरपूर है। चीनी की मिठास का पिण्ड भरपूर है। इस कारण से शकरकन्द कहते हैं। समझ में आया? यह थोड़ी लाल छाल-छिलका है, उसका लक्ष्य छोड़ दे तो शकरकन्द शक्कर की मिठास का वह पिण्ड है। शक्कर का दल है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान पुण्य-पाप के विकल्प की छाल का लक्ष्य छोड़ दे, आहाहा! मार्ग बहुत... अलौकिक मार्ग है, भाई!

यह विकल्प की छाल छोड़ दे तो पीछे पूरा आत्मा आनन्दकन्द है। यह तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के दल की प्रतीति किसे होती है? उसका स्वीकार कब होता है? कि निर्विकल्प ध्यान में उसका स्वीकार होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह निश्चय... निश्चय लोगों को कठिन लगता है न, परन्तु मार्ग तो यह है, प्रभु! भव पार होने का उपाय तो यह है। अन्तर के स्वरूप में निर्विकल्प के ध्यान के काल में आत्मा प्राप्त होता है, और निर्विकल्प ध्यान ही निश्चयमोक्षमार्ग है। साथ में जो अबुद्धिपूर्वक का थोड़ा राग रहता है, उसका आरोप करके मोक्ष का व्यवहारमार्ग कहा। ध्यान में प्राप्त हुआ उसे। अकेले व्यवहार करते-करते होगा, इस बात से अभी बहुत गड़बड़ चली है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहा, वस्तु भगवान अकेला ज्ञान का प्रकाशरूपी सूर्य है वह। ज्ञान के नूर के तेज का वह पूर है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, उसका नूर अर्थात् तेज, उसका पूर—प्रवाह है। ध्रुव प्रवाह कहना है, हों! ध्रुव को प्रवाह कहते हैं। पूर्ण

ज्ञानरूपी ध्रुव, उसका पूर, उसका प्रवाह। पूर्ण ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ध्रुव प्रवाह चलता जाता है अन्दर। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग वीतरागी पर्याय से होता है। वीतराग का मार्ग राग से नहीं होता। आहाहा! और वीतरागी मार्ग चारों अनुयोग का सार तो वीतरागभाव है। वीतराग मार्ग में चारों अनुयोग का सार वीतराग पर्याय—भाव है। वह वीतरागभाव कब होता है? कि स्वरूप-सन्मुख स्व का आश्रय करे, तब उसे वीतरागभाव प्रगट होता है। इसका अर्थ कि चारों अनुयोग में स्व का आश्रय करना, यह तात्पर्य है। यह यहाँ बताते हैं। घड़ी-घड़ी में बताने का हेतु यह है। समझ में आया? पूरी दिशा पलटानी है, भगवान! परसन्मुख की दिशा का झुकाव है, वह दशा मिथ्यात्व-अज्ञान की है। स्वदिशा सन्मुख की स्वदशा, स्वदिशा सन्मुख की दशा, वह वीतरागी दशा है। समझ में आया?

निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ शुद्ध आत्मा को ध्याता है,... इस शब्द में ऐसा भरा है कि आत्मा कब प्राप्त होता है? कि निर्विकल्प ध्यान के काल में प्राप्त होता है। आहाहा! व्यवहार के विकल्प में पड़ा है और आत्मा की श्रद्धा होती है और व्यवहार के विकल्प से परम्परा आत्मा का अनुभव होता है, प्रभु! ऐसा नहीं है, हों! लोगों को बाहर की बात ठीक लगे, परन्तु ऐसा है नहीं। यह कहते हैं। **निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ...** आहाहा! भगवान आत्मा, वह पूर्ण आनन्दकन्द, आनन्ददल अकेले आनन्द का दल ही है। दल के लड्डू होते हैं। तुम्हारे हिन्दी लोगों में होते हैं? दल के लड्डू। वे दल के लड्डू आये थे। तिथि में कोई आये थे। लड्डूकों को दे दिये। हम तो (लेते नहीं)। कोई लाया था। कौन सी तिथि थी? दल के लड्डू थे। व्याख्यान में आया था न। यह बोर्डिंग है न हमारे? लड्डूकों को दे दिये। हम नहीं खाते। हम तो चार फुल्के—रोटी।

मुमुक्षु : कभी-कभी तो खाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी नहीं खाते। कभी-कभी क्या, कभी नहीं। शक्कर नहीं, गुड़ नहीं, पकवान नहीं, लापसी नहीं, मैसुब नहीं। कोई चीज़ नहीं।

मुमुक्षु : हमने तो सुना है कि आप रोज खाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : खूब खाते हैं, ऐसा कहते हैं। एक आदमी आया था। गोडा भाई! नहीं? प्राणभाई गोडा, अभी... रुपये भराये थे। यह तुम्हारे तीर्थ में। प्राणभाई

गोडा है न? स्थानकवासी का प्रमुख। अब यहाँ आये थे। तो वे प्राणभाई गोडा पहले हम कोल्हापुर गये थे, कोल्हापुर। वहाँ दडवाना थे लक्ष्मीचन्दभाई वहाँ रहते हैं। उनके यहाँ हम भोजन करते थे। वहाँ देखने आया। महाराज का शरीर बहुत अच्छा लगता है तो लड्डू-बड्डू खाते होंगे, इसलिए बैठे। चार रोटियाँ लीं। अरे! महाराज! तुम यह खाते हो? इतनी उम्र में तुम्हारा शरीर कितना अच्छा लगता है, तुम तो लड्डू-बड्डू खाते होंगे। कहा, भाई! यहाँ तो चार फुल्के खाते हैं और घी भी ऊपर चोपड़ ऊपर नहीं। चोपड़े बस इतना घी। शक्कर नहीं, पकवान नहीं, कुछ नहीं। दूधपाक नहीं। दूध भी सवेरे लेते हैं तो बिना शक्कर का लेते हैं। प्राणभाई को नहीं? वहाँ... गत वर्ष। नहीं? (संवत्) २०१५ में कोल्हापुर गये थे न? कोल्हापुर। वहाँ अपने लक्ष्मीचन्दभाई थे। दडवावाले। गुजर गये। नहीं?

मुमुक्षु : गुजर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे गुजर गये। खबर है। वे थे। उनके यहाँ आहार करने बैठे तो देखने बैठे। यह खाते हो तुम? प्रतिदिन यह खाते हो? ...शरीर कुछ भोजन के आधार से रहता है? आहाहा!

मुमुक्षु : लड्डू तो आप रोज खाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के लड्डू खाते हैं। आहाहा!

आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु तेरे पास स्थित है न! अरे! वह तू ही है न! आहाहा! उसके ऊपर लक्ष्य करने से तुझे आनन्द होगा। आहाहा! बाहर के विकल्प के काल में तो सब दुःख है। उस दुःख के काल में भगवान प्राप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं, निर्विकल्प अर्थात् ध्यान और आनन्द की अवस्था में वह प्राप्त होता है। आहाहा! निर्विकल्प कहा है न? तो वह आनन्द है। निर्विकल्प भाव, वह आनन्दभाव है। आहाहा! रागभाव, वह दुःखभाव है, आकुलताभाव है। आहाहा! मार्ग तो बहुत अलौकिक है, प्रभु! उसका फल भी यह कहते हैं न? देखो!

वह थोड़े ही समय में मोक्ष को पाता है। भव का अन्त होता है। संसार का अन्त होता है। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' मोक्ष अर्थात् शुरुआत हुई—सादि, परन्तु अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त समाधि। 'सादि-अनन्त अनन्त

समाधि सुख में, अनन्त ज्ञान दर्शन अनन्त सहित जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?’ श्रीमद् का वाक्य है। इसका हिन्दी हो गया है। भाई ने हिन्दी किया है। नहीं? भोपालवाले राजमलजी पवैया। राजमलजी पवैया है न? उन्होंने हिन्दी किया है। है तो ऐसा कि ‘अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?’ गुजराती है। इसका हिन्दी किया है। ‘अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?’ वह यहाँ है। हिन्दी बनाया है। जब हिन्दी में प्रवचन करते हैं, तब उसमें से वाँचते हैं। भगवान का दीक्षा कल्याणक, दीक्षा कल्याणक होता है न? तब हिन्दी लोग होते हैं, तब वह लेना पड़ता है। आहाहा! मोक्ष अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति और अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन, उसकी पर्याय में प्राप्ति (होना), इसका नाम मोक्ष है और पूर्ण दुःख से मुक्त होना, और पूर्ण (सुख की) पर्याय की प्राप्ति होना, इसका नाम मोक्ष है। आहाहा! उस मोक्ष का उपाय यह है।

निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ... आहाहा! शुद्ध आत्मा को ध्याता है,... सम्यग्दर्शन भी ध्यान की पर्याय है। आहाहा! अन्तर्मुख होता है, वह निर्विकल्प ध्यान है और उसका नाम ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो जो निर्विकल्प ध्यान पर्याय है, वस्तु ही निर्विकल्प स्वरूप त्रिकाल है। समझ में आया? जैसे निर्विकल्प ध्यान, वह मोक्षमार्ग की पर्याय है, तो वह निर्विकल्प ध्यान है, वह तो एक समय की पर्याय है, परन्तु वस्तु त्रिकाल निर्विकल्पस्वरूप है। त्रिकाल निर्विकल्पस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा!

यह कहा था न? प्रायश्चित। परिणति—पर्याय में निश्चय प्रायश्चित। राग बिना की दशा, वीतरागी पर्याय हो, उसे प्रायश्चित कहते हैं। तो कहते हैं कि प्रायश्चित तो पर्याय की बात की, परन्तु वस्तु ही प्रायश्चितस्वरूप है। नियमसार में है। वह प्रायश्चित की निर्मल वीतरागी पर्याय आयी कहाँ से? वह प्रायश्चितस्वरूप त्रिकाल भगवान में से आयी है। समझ में आया? शास्त्र में ऐसा शब्द लिया है। वीतराग पर्याय हुई, तो आयी कहाँ से? वीतराग स्वरूप में से आयी। शान्ति आयी कहाँ से? शान्ति स्वरूप में से आयी। केवलज्ञान की पर्याय आयी कहाँ से? केवलज्ञान में से। समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु में से?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु में से ही आती है। वह महागुरु आत्मा है न। गुरु अर्थात् बड़े।

भगवान् आत्मा प्रायश्चित्तस्वरूप, ऐसा लिया है। प्राय अर्थात् ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। आत्मा के परमात्मस्वरूप को प्रायश्चित्त कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि **निर्विकल्पभाव को प्राप्त हुआ...** पर्याय में। **शुद्ध आत्मा को ध्याता है,...** तो वह वस्तु ही निर्विकल्प ध्यान का विषय पूरी निर्विकल्प चीज़ है। समझ में आया ? **वह थोड़े ही समय में मोक्ष को पाता है।** लो ! यह ७२ हुई।

यहाँ तो मार्ग प्रभु वीतराग का है। कषाय से, राग से लाभ होता है, वह चीज़ वीतरागमार्ग में नहीं है। राग से संसार मिलता है। व्यवहाररत्नत्रय भी शुभराग है। उसमें तो संसार मिलता है। अथवा वह शुभराग ही संसाररूप है। आहाहा ! समझ में आया ? एक बार कहा था न ? मोक्ष अधिकार है न, समयसार नाटक में। उसमें कहा है कि मुनि ने अपने स्वरूप के आश्रय से जो निर्विकल्पता प्रगट की, पूर्णानन्द नहीं परन्तु पूर्णानन्द के आश्रय से पूर्णानन्द प्राप्ति का उपाय प्राप्त किया, ऐसी जो ज्ञान, आनन्द की पर्याय है, वह तो शुद्ध है। परन्तु मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प उठता है। वह जगपंथ है। समझ में आया ? बताया था।

मुमुक्षु : ४० वाँ दोहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४०वाँ दोहा। बताया था। 'या कारण जगपंथ इत...' ओहोहो ! मुनि को जो व्यवहार का विकल्प आता है, वह जगपंथ है। गजब बात है। तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह जगपंथ है। इस जगपंथ से भवपंथ का अन्त आवे, यह उससे आवे ? आहाहा ! भव का अन्त लाना, वह जगपंथ से आता है ? जगपंथ संसार है। उससे संसार का अन्त आता है ? देखो ! 'ता कारण जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर।' भगवान् पूर्णानन्द का नाथ, उसके आश्रय से जो निर्विकल्प शान्ति उत्पन्न हुई, वह शिव का मार्ग है। आहाहा ! भगवान् पूर्णानन्द के नाथ के आश्रय से निर्मल निर्विकारी वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई, वह शिवपंथ है। और उस काल में जितना राग आता है, वह मुनि को भी जगपंथ है। पोपटभाई ! ऐसा मार्ग है, भगवान् ! आहाहा ! तेरी स्थिति का क्या कहना ? भगवान् स्वरूप परमात्मा। आहाहा !

'परमादी जगकौं धुकै,...' छठवें गुणस्थान में जो विकल्प उठे, वह प्रमाद है। यह जग की ओर का झुकाव है। आहाहा ! एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि को अशुद्धता नहीं। वह किस अपेक्षा से ? दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा से। परन्तु

पर्याय में जो कमजोरी है, वह तो मुनि को राग आता है तो वह जगपंथ है। जग की ओर झुकते हैं। आहाहा! एकान्त खींच ले कि सम्यग्दर्शन हो तो अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा नहीं है। यह क्या कहा ?

छठवें गुणस्थान में मुनि आनन्द के झूले में झूलनेवाले, आनन्द के झूले में झूलनेवाले। नीचे आनन्द जरा कम है। छठवें-सातवें में। अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार मुनिराज छठवें-सातवें में आते-जाते झूलते हैं। इसलिए छठवें गुणस्थान में आवे तो कहते हैं प्रमाद है, जगपंथ है। आहाहा! अब यह निश्चयवाले को, अनुभवी को विकल्प आया, उसे जगपंथ कहते हैं। जगत की ओर झुका हुआ है, ऐसा कहते हैं। तो अज्ञानी को अभी निश्चय का भान नहीं, उसे व्यवहार से मुक्ति होगी, परम्परा हो जायेगी, ऐसा सिद्ध करते हैं। भाई! अज्ञानी को तो व्यवहार कहते ही नहीं। भले दया, दान, व्रत, भक्ति आदि हो। मिथ्यादृष्टि के (राग को) व्यवहार कहते ही नहीं। व्यवहार तो उसे कहते हैं कि जब आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, तब जो राग आया, उसे व्यवहार कहते हैं। तो उस समकिति के व्यवहार को परम्परा मोक्ष का कारण कहा, वह राग कारण नहीं है। राग का अभाव होता है, इसलिए व्यवहार का उपचार किया। व्यवहार का लक्षण ऐसा है कि अन्यथा कहता है। आता है न? आया न तुम्हारे कल आया। निमित्तादि की अपेक्षा लेकर अन्यथा कहता है। आहाहा!

‘अपरमादि सिव ओर।’ देखो! अप्रमाददशा मोक्ष की ओर है; प्रमाद, वह संसार की ओर है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : महाराज! जगपंथ का अर्थ जग को बढ़ानेवाला या जग में रोकनेवाला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। जगपंथ अर्थात् संसारपंथ है।

मुमुक्षु : बढ़ानेवाला.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह संसार ही है। राग, वह संसार है। राग, वह संसार है। यह पहले नहीं आया कि जो पुण्य संसार में प्रवेश करावे, उस पुण्य को भला कैसे कहें ? तो पुण्यभाव, वह संसार में प्रवेश कराता है। पुण्यभाव संसार है। ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! यह तो परमात्मा के घर की बात है, प्रभु! किसी के पक्ष की बातें करे तो वह बात यहाँ है नहीं। आहाहा!

गाथा - ७३

अथ कर्मकृतभावानचेतनं द्रव्यं च निश्चयनयेन जीवाद्भिन्नं जानीहीति कथयति -

७३) कम्महं केरा भावडा अण्णु अचेयणु दव्वु।
जीव-सहावहं भिण्णु जिय णियमिं बुज्झहि सव्वु॥७३॥
कर्मणः संबन्धिनः भावा अन्यत् अचेतनं द्रव्यम्।
जीवस्वभावात् भिन्न जीव नियमेन बुध्यस्व सर्वम्॥७३॥

कम्महं केरा भावडा अण्णु अचेयणु दव्वु कर्मसम्बन्धिनो रागादिभावा अन्यत् अचेतनं देहादिद्रव्यं एतत्पूर्वोक्तं अप्पसहावहं भिण्णु जिय विशुद्धज्ञानदर्शनस्वरूपादात्म-स्वभावातिश्चयेन भिन्न पृथग्भूतं हे जीव णियमिं बुज्झहि सव्वु नियमेन निश्चयेन बुध्यस्व जानीहि सर्वं समस्तमिति। अत्र मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिवृत्तिपरिणामकाले शुद्धात्मोपादेय इति तात्पर्यार्थः॥७३॥

आगे ऐसा कहते हैं, जो कर्मजनित रागादिभाव और शरीरादि परवस्तु हैं, वे चेतन द्रव्य न होने से निश्चयनयकर जीव से भिन्न हैं, ऐसा जानो -

कर्मों से सम्बन्धित हैं जो एवं अन्य अचेतन हैं।
भिन्न सदा हैं जीव भाव से नरने भिन्न जीव भी हैं॥७३॥

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [कर्मणः संबन्धिनः भावाः] कर्मोंकर जन्य रागादिक भाव और [अन्यत्] दूसरा [अचेतनं द्रव्यम्] शरीरादिक अचेतन पदार्थ [सर्वम्] इन सबको नियमेन निश्चय से [जीवस्वभावात्] जीव के स्वभाव से [भिन्न] जुदे [बुध्यस्व] जानो, अर्थात् ये सब कर्म के उदय से उत्पन्न हुए हैं, आत्मा का स्वभाव निर्मल ज्ञान दर्शनमयी है। जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगों की निवृत्तिरूप परिणाम हैं, उस समय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ॥७३॥

गाथा - ७३ पर प्रवचन

७३। आगे ऐसा कहते हैं, जो कर्मजनित रागादि भाव... देखो! कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न हुए रागादिभाव और शरीरादि परवस्तु हैं, वे चेतन द्रव्य न होने से... वे चेतनद्रव्य नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, वह चेतनद्रव्य नहीं। आहाहा! आता है, ज्ञानी को भी व्यवहार आता है, परन्तु हेयबुद्धि से आता है। ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : उपादेयबुद्धि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेयबुद्धि नहीं। उपादेय तो परमात्मा शुद्ध चैतन्यघन है।

नियमसार की ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है कि केवलज्ञान की पर्याय, संवर की पर्याय, निर्जरा की पर्याय, वह सब नाशवान है, इसलिए हेय है। नियमसार की ३८वीं गाथा। एक उपादेय परमात्मा त्रिकाली शुद्ध चिदानन्द, वह एक उपादेय है। बाकी आठ पर्याय राग, आस्रव, बन्ध—भावबन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि नाशवान होने से केवलज्ञान की पर्याय, संवर-निर्जरा की पर्याय हेय है। व्यवहार की तो बात क्या करना? परन्तु संवर-निर्जरा की पर्याय (हेय है)। समझे? आहाहा! है या नहीं? मोक्षमार्ग... क्या कहलाता है? (सात) तत्त्वों का समूह परद्रव्य। संवर, निर्जरा और केवलज्ञान पर्याय, वह परद्रव्य है।

जीवादि सात तत्त्व... मूल पाठ है, हों! उसमें है वहाँ ऊपर। 'जीवादिबहिर्त्तच्चं हेयमुवादेयमप्यणो अप्या' आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष। आस्रव, पुण्य-पाप और बन्ध, वह तो हेय है ही, परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष; यह मोक्ष का मार्ग और मोक्ष पर्यायस्वरूप है, इसलिए हेय है। आहाहा! भगवान! तेरे द्रव्य का क्या माहात्म्य! जिसके समक्ष केवलज्ञान भी हेय है। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य कहा, देखा? आहाहा!

कलश में ऐसा लिया है, देखो! सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है। केवलज्ञान की पर्याय से भगवान आत्मा दूर है। जिसका ध्रुवरूप त्रिकाल, वह परमात्मा अपना स्वरूप, वह केवलज्ञान की पर्याय से दूर है। आहाहा! दूर का अर्थ एक समय की पर्याय से भिन्न वह चीज़ है। समझ में आया? यह

दूर की व्याख्या फिर बहुत हुई थी मुम्बई में। अपने थोड़े अभ्यासी हैं न? घाटकोपर। एक मण्डली है। युवक मण्डली है। तत्त्व का बहुत सूक्ष्म अभ्यास करते हैं। यह दूर आया तो एक ने पूछा कि दूर कितना है? तो कहे, एक ओर वैतालपर्वत तथा एक ओर... इतना दूर है। विशेष ले गये। है?

एक सार भगवान तत्त्व चैतन्यमूर्ति नित्यानन्द प्रभु निर्विकल्प शान्त का कन्द आत्मा का आनन्द का कन्द प्रभु एक ही उपादेय है। **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है।** आहाहा! यह शुद्धात्मा जयवन्त है। ऐसा कहकर क्या कहा? कि हमारी पर्याय में शुद्धात्मा जयवन्त वर्तता है, ऐसा आ गया है। शुद्ध जयवन्त वर्तता है, ऐसा कथन— भाषामात्र नहीं, परन्तु हमारी पर्याय में त्रिकाल जयवन्त वर्तता है, ऐसा अनुभव हो गया है। इसलिए हम कहते हैं कि यह त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द के नाथ की अस्ति का स्वीकार हमारी पर्याय में हो गया है। हमारी पर्याय संवर, निर्जरा हेय है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य ध्यान में आ गया है। उसका परम अस्तित्व, परम माहात्म्य, परम ज्ञायकभाव की अचिन्त्य शक्ति, यह सब हमारी पर्याय में उसका अस्तित्व आ गया है। तो हम ऐसा कहते हैं कि यह अस्तित्व जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह वीतरागमार्ग तो देखो! कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, **जो सुखसागर का पूर है और क्लेशोदधि का किनारा है,...** त्रिकाली वस्तु, हों! शुद्ध ज्ञान का अवतार है... आहाहा! शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही भगवान है। आहाहा! **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** काम की वासना जिसमें है ही नहीं। आहाहा! और जिसने उसका आश्रय लिया, उसे काम की दुर्वासना नाश होती है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भगवान! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं। यह तो आत्मकथा है। भगवत्स्वरूप प्रभु की बात है। पण्डितजी! ठीक आया तुम्हारे। दूर से आये हैं। पण्डितजी बहुत नरम हैं। व्याख्यान करते थे परन्तु लोग समझते नहीं थे। पाव घण्टे उनकी भाषा में करते थे। तुम थे न? बँगलोर। और दूसरा एक पण्डित। दो पण्डित थे। नरम थे। दोनों पण्डित नरम थे।

यहाँ कहते हैं कि... आहाहा! क्या तत्त्व की बात! जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वह एक ही स्वतत्त्व है। वही उपादेय है। अर्थात् निर्विकल्प दृष्टि के काल में वही उपादेय हो जाता है। उस काल में पर्याय उपादेय नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया? देखो न! यह शास्त्र, ओहोहो! दिगम्बर शास्त्र अमृतसागर के भण्डार हैं। अमृतसागर से भरपूर हैं शास्त्र। कोई श्लोक, कोई पद लो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! दिगम्बर अर्थात् यह। आत्मा ही दिगम्बर है। विकल्प नहीं, वृत्ति नहीं। यह वृत्ति और विकल्प बिना का आत्मा दिगम्बर है। बाह्य में दिगम्बर तो छठवें गुणस्थान में नग्न होता है, तब बाह्य नग्न दिगम्बर सन्त कहा जाता है। वस्तु ही दिगम्बर है। आहाहा! जिसमें विकल्प की वृत्ति का त्रिकाल अभाव है, विकल्प के कपड़े जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान पूर्णानन्द, वह एक ही उपादेय है। यह कहते हैं, देखो!

७३। **कर्मजनित रागादिभाव...** देखो! कर्मजनित क्यों कहा? यह निमित्त है न? अपने स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं हुए। निमित्त के आश्रय से वश होकर उत्पन्न हुए हैं, इसलिए उन्हें कर्मजनित कहा जाता है। **कर्मजनित रागादिभाव...** रागादि अर्थात् पुण्य और पाप, दया, दान, हिंसा, झूठ इत्यादि परिणाम चैतन्यभगवान से भिन्न है। परमात्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु आनन्द का दल और ज्ञान के प्रकाश का पूर, उससे राग—व्यवहार राग है, वह भिन्न है। आहाहा!

लोगों ने तो और... अभी और यह प्रेमचन्दजी का लेख आया है। विशेष पुण्य है। समकिति का पुण्य चमत्कारी पुण्य है। परन्तु उसमें क्या हुआ? तीर्थकरप्रकृति हो तो भी क्या? उसमें आत्मा को लाभ है? जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव तो राग है। और प्रकृति बँधी, उससे आत्मा को लाभ है? वह तो जड़ है। क्या लाभ है? उससे आत्मा को क्या? वह तो जब शुभराग, जिसके कारण तीर्थकरगोत्र बँधा था, उस राग का नाश करके जब केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब तीर्थकरप्रकृति का उदय आकर समवसरण आदि बनते हैं। उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया? वहाँ तेरहवें गुणस्थान में समवसरण, (तीर्थकर) प्रकृति का उदय आता है।

मुमुक्षु : वहाँ तक ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तक तीर्थकरप्रकृति का उदय नहीं। सत्ता में है। आहाहा! समझ में आया ?

शुभभाव से जो तीर्थकरगोत्र बँधा, उस भाव का नाश करके जब केवलज्ञान होगा, तब उस प्रकृति का बन्ध पड़ा, उसका उदय आयेगा। उसमें आत्मा को क्या हुआ ? तब समवसरण आदि होंगे। उसमें क्या हुआ ? आहाहा! और उस तीर्थकरगोत्र का बन्ध पड़ा तो भाव में दो भव बढ़ गये। दो भव करने पड़ेंगे। क्योंकि बन्ध पड़ा, इसलिए यहाँ से स्वर्ग में जायेगा और वहाँ से मनुष्यभव होगा। दो भव करना पड़ेंगे। उस भव में केवलज्ञान नहीं पायेगा। जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, उस भाव का नाश किये बिना केवलज्ञान नहीं होगा। तो उस भाव का नाश उसी भव में नहीं होगा। राग को... आहाहा! 'षोडश तीर्थकर भावना भाय...' नहीं आता ? तीर्थकर पद पाये, ... प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। उसमें क्या है ? आहाहा!

मुमुक्षु : तीर्थकरप्रकृति भव बढ़ानेवाली है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव ही राग संसार है न! उसके दो भव बढ़ गये। आहाहा!

अरे! अपने दृष्टान्त नहीं देते ? पालीताणा। पाँच पाण्डव ध्यान में बैठे थे। यहाँ से चौदह मील दूर है। पाँच पाण्डव ध्यान में थे। दुर्योधन का भानेज आया। लोहे के मुकुट और लोहे के गहने पहनाये। तो तीन मुनि तो ध्यान में मस्त बनकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पधारे। दो मुनि जो (छोटे) थे—सहदेव और नकुल, (उनको) भाई को कैसे होगा, ऐसा विकल्प आया। तीनों बड़े भाई थे न ? धर्मराजा, भीम और अर्जुन। अर्जुन बाणावली कहलाते थे। अरे! महामुनि सहोदर—एक पेट से जन्मे और साधर्मी और सन्त, उन्हें लोहे के गहने पहनाये। मुनि को जरा शुभविकल्प हुआ। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। दो भव बढ़ गये। समझ में आया ? सन्त की कैसी बात है, ऐसा विकल्प आया कि कैसे होगा ? तो उन्हें दो भव बढ़ गये। राग है न ? आहाहा! भाई! बात थोड़ी सूक्ष्म है, प्रभु!

मुमुक्षु : वह राग बुद्धिपूर्वक आया था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिपूर्वक आया है। ख्याल में है और आया है। अस्थिरता है न!

मुमुक्षु : इसलिए राग को हेय कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो हेय ही है। परन्तु यह तो राग आया और उसका फल यह आया, ऐसा कहते हैं। उसका फल आया दो भव। तीनों उसी भव में मोक्ष गये। और इन्हें साधर्मी के प्रति एक विकल्प आया कि अनुकूल होगा न? उन्हें कैसे होगा? इतना (विकल्प आया)। दो भव बढ़ गये। तैतीस सागर का आयुष्य। तैतीस सागर किसे कहते हैं, भाई! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। क्या कहा? तैतीस सागर। उसमें एक सागरोपम, उसमें दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। उसके एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। कितना लम्बा काल हुआ? आहाहा! मार्ग तो वीतराग है, बापू! वीतरागभाव से आत्मा को लाभ होता है। रागभाव से संसार मिलता है। मुनि को राग आया साधर्मी (मुनि) के प्रति, उसमें दो भव बढ़ गये। अब उस राग से परम्परा से लाभ होता है? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कर्मजनित रागादिभाव और शरीरादि परवस्तु हैं, वे चेतन द्रव्य न होने से निश्चयनयकर जीव से भिन्न हैं,... भगवान आत्मा से पुण्यभाव हुआ, वह भिन्न है। आहाहा! वह संसार का कारण है। ज्ञानी को भी राग संसार का कारण है। परन्तु उसमें लिखा है, उसमें से उन्होंने लिया। देवचन्दजी का है। समकित्ती को ऐसा पुण्य होता है। परन्तु वह तो निमित्त का कथन है। समकित्ती के पुण्य में मुनि के दो भव बढ़ गये। उसमें लाभ क्या हुआ? और कदाचित् कोई तीर्थकरप्रकृति बँधे तो उसमें आत्मा को क्या (लाभ) हुआ? उस प्रकृति का फल—उदय तो केवलज्ञान होने के बाद आता है। उसमें आत्मा को क्या लाभ है? समझ में आया?

एक बार यह चर्चा बहुत चली थी। (संवत्) १९८१ में। १९८१-८१ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ५१। ५१ वर्ष पहले चर्चा चली थी। हमारे मूलचन्दजी के पास वहाँ एक सेथंली है। एक सेथंली को दीक्षा दी है अभी, बोटाद में। उस बोटाद के पास एक

सेथंली गाँव है। वहाँ बहुत वर्षा आयी थी और हमारे गढडा में चातुर्मास करने जाना था। ८१ की बात है। हम बाहर मकान में उतरे थे। वहाँ से एक व्यक्ति आया। एक भूरोभाई है। अभी अहमदाबाद में है। खाडिया के पास उसकी दुकान है। खाडिया है न अपने मन्दिर ? वहाँ उसकी दुकान है। भूरोभाई गोपाणी है। वह बेचारा छोटी उम्र का था। वैयावृत्य करने से आत्मा को धर्म होता है, लाभ होता है। कहा, कहाँ है ? वैयावृत्य करने से तीर्थकरगोत्र बाँधे, ऐसा कहा है। वह समकित्ती हो उसे। समकित्ती हो, वह सन्त, साधु की, धर्मात्मा की वैयावृत्य करे तो शुभविकल्प है। तीर्थकरगोत्र बाँध जाता है, उसमें आत्मा को क्या ? वैयावृत्य का लाभ हुआ ? पर की वैयावृत्य करना, वह तो शुभभाव है और शुभभाव में तीर्थकरगोत्र बाँधे तो दूर हो गया। दो भव दूर हुआ। इतनी लम्बी बात तब नहीं की थी।

वह ऐसा कहता था कि मुनि और धर्मात्मा की वैयावृत्य करने से लाभ होता है। किसका (लाभ होता है) ? कि तीर्थकरगोत्र बाँधता है। देखो ! कहा, उसमें लाभ कहाँ हुआ ? वह तो शुभभाव है। प्रवचनसार में आता है, मुनि वैयावृत्य करते हैं, शुभभाव आता है। विकल्प आया और कोई रोगी आदि हो तो वैयावृत्य करे। परन्तु उसमें हुआ क्या ? वह तो शुभभाव है। पुण्य बाँधेगा। यह तो १९८१ के वर्ष की बात है। यह मार्ग नहीं, बापू ! कहा, भाई ! ऐसा नहीं है। ऐसा कि ऐसे मुनि की वैयावृत्य करे तो भी इतना लाभ—धर्म नहीं ? परद्रव्य है... उस समय परद्रव्य की खबर नहीं थी। परन्तु कहा, वैयावृत्य करे, उसमें तीर्थकरगोत्र बाँधे, वह तो शुभभाव हुआ। और शुभभाव से तो बन्ध हुआ। उसमें धर्म कहाँ हुआ ? उस समय (कहा था)। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, देखो ! शुभभाव जीव से भिन्न है। जीव से भिन्न है, उससे आत्मा को लाभ होगा ? आहाहा ! उसका स्वभाव पड़ा है, तो स्वभाव से आत्मा को लाभ होगा। परन्तु स्वभाव बिना की परचीज से आत्मा को लाभ होगा ? आहाहा ! यह व्यवहारश्रद्धा में भी विपरीतता है। व्यवहारश्रद्धा। निश्चयनयकर जीव से भिन्न हैं,...

मुनि भिक्षा (आहार) लेने जाते हैं न ! सुना है ? कोई बालक रोवे तो वापस चले जाते हैं। सुना है ? शिखरचन्दजी ! मुनि भिक्षा के लिये जाये और कोई बालक को रोते देखे सुने (तो वापस चले जाते हैं)। हम शान्ति के पन्थ में चलते हैं, उसमें यह क्या ?

लो, बालक को तो खबर भी न हो बेचारे को। परन्तु हम आनन्द के पन्थ में चलते हैं, उसमें कलकलाहट क्या? आहार छोड़ दे। जंगल में चले जाते हैं। एक महीने के उपवास हो। मासखमण, समझे? और ऐसा देखे तो चले जाते हैं। हम तो शान्ति को साधनेवाले हैं, उसमें यह क्या? सुना है न? भगवान! आता है या नहीं? आहाहा! चक्रवर्ती हो, राजकुमार हो और सुन्दर शरीर हो, हजारों रानियाँ छोड़ी हों, मासखमण के उपवास हों। भिक्षा लेने जाते हुए कुछ भी ऊपर से कौआ निकले और चरक पड़ जाये... हम तो मोक्ष के पन्थ साधनेवाले। यह क्या? समझ में आया? आहाहा!

जीव से भिन्न हैं, ऐसा जानो— ७३ है न?

(७३) कम्महँ केरा भावडा अण्णु अचेयणु दव्वु।

जीव-सहावहँ भिण्णु जिय णियमिं बुज्झहि सव्वु ॥७३ ॥

आहाहा! भाषा तो देखो इनकी!

हे जीव! कर्मोकर जन्य रागादिक भाव... 'भावडा' है न? इसका संस्कृत 'भावडा' किया है न। यह संस्कृत का अर्थ है इसमें। मूल श्लोक है, उसकी संस्कृत छाया बनायी है, संस्कृत छाया का शब्दार्थ है। मूल श्लोक का नहीं। हे जीव! कर्मोकर जन्य रागादिक भाव और दूसरा शरीरादिक अचेतन पदार्थ... आहाहा! यह राग अचेतनपदार्थ। आहाहा! समयसार की ७२ गाथा में आया है। पुण्य और पाप—आस्रव, वह अशुचि है; भगवान आत्मा पवित्र अत्यन्त पवित्र है। पुण्य के भाव, वे जड़ हैं—आस्रव जड़ है। क्योंकि वह अपने को जानता नहीं। दूसरे के द्वारा जानने में आता है, इसलिए जड़ है। आहाहा! लो! शुभभाव को जड़ कहा। भगवान विज्ञानघन है, ऐसा भेदज्ञान... विशेष आयेगा....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल १०, गुरुवार
दिनांक-०५-०८-१९७६, गाथा-७३-७४, प्रवचन-५४

परमात्मप्रकाश, ७३ गाथा, इसका भावार्थ ।

भावार्थ यह है कि मिथ्यात्व—विपरीत मान्यता, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग । यह पर्याय में जो पाँच प्रकार के मलिनभाव हैं, उनकी निवृत्तिरूप परिणाम । अर्थात् एक समय में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के परिणाम मलिन पर्याय में है । परमात्मप्रकाश है न ? उनकी दृष्टि छोड़कर ज्ञायकभाव जो त्रिकाल, उस समय शुद्धात्मा ही उपादेय है । है ? उस समय... जिस समय में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के परिणाम पर्याय में हैं, उन्हें द्रव्यबुद्धि से छोड़कर अनुभव की दशा में आत्मा अकेला उपादेय है । आहाहा ! सूक्ष्म बात है ।

ऐसा आत्मा परमानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन उपादेय है, ऐसा मानना वह तो शास्त्र के वचन से धार लिया है । वह कहीं उसमें उपादेय नहीं हुआ । पर्याय में उपादान, पर्याय में उपादेय (हो, तब यथार्थ कहलाये) । भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द का कन्द है । पूर्णानन्द के रस का स्वभाव है । उस ओर की दृष्टि करने में पर्याय में जो मिथ्यात्व आदि है, उससे निवृत्त होकर... आहाहा ! समझ में आया ? यह पाँच बन्ध के कारण हैं पर्याय में ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसा कहते हैं यहाँ तो । पर्याय में हो । परन्तु उससे दृष्टि हटाकर । पाँचों बन्ध के परिणाम पर्याय में भले हों, परन्तु उससे रुचि हटाकर... आहाहा !

यहाँ तो परमात्मप्रकाश है न ! भगवान आत्मा का स्वभाव पूर्ण परमात्मप्रकाश ही है । तो वह पूर्ण आत्मा प्रकाशक किस समय में आदरणीय कहा जाता है ? किस काल में वह पूर्णानन्द प्रभु उपादेय कहा जाता है ? आहाहा ! जिस समय में वह मिथ्यात्व व्रतादि के जो परिणाम हैं, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर, उनसे निवृत्त होकर, ऐसा कहा न ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन में इन पाँचों ही प्रकार के परिणामों की निवृत्ति होती है । सूक्ष्म बात है, भगवान ! आहाहा ! सम्यग्दर्शन, उसमें मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय के परिणाम जो

पर्याय में हैं, वह सम्यग्दर्शन उनसे निवृत्त करके अन्तर में पूर्णानन्द का नाथ जिस समय में पर से निवृत्ति के काल में (उपादेय होता है)। यह तो वीतरागमार्ग, भगवान! यह बात बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

कहते हैं कि पर्याय में मिथ्यात्व, अब्रत, प्रमाद, कषाय, योग ऐसी दशा होने पर भी धर्मी जीव उससे निवृत्ति करके... आहाहा! उस ओर के प्रेम की, रुचि से हटकर। उस समय... ऐसा शब्द है न? निवृत्तिरूप परिणाम है उस समय। आहाहा! अलौकिक बात है, पण्डितजी! परमात्मप्रकाश दे दिया। पण्डितजी को दिया। बैंगलोरवालों को।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर से उपेक्षा हो गयी। पर्यायबुद्धि हट गयी, ऐसा कहते हैं।

परिणाम में पाँच प्रकार के भावबन्ध की पर्याय होने पर भी उससे निवृत्ति की। पर्यायबुद्धि छोड़ दी। सूक्ष्म है। और निवृत्ति काल में शुद्ध चिदानन्द आत्मा परमानन्द प्रभु, वह पाँच प्रकार की पर्याय से निवृत्ति के काल में आत्मा उपादेय है। आहाहा! इसके बिना उपादेय नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे काल में वह उपादेय नहीं हो सकता। दूसरे काल में ऐसा मान ले कि आत्मा उपादेय है और राग हेय है, वह धारणा कर ले, उसमें उपादेय नहीं हुआ। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! यह तो परमात्मप्रकाश है। आत्मा का मूलस्वरूप ही परमात्मा है। यह परमात्मा उपादेय, आदर, ग्रहण किस समय में होता है? कि जिस समय में मिथ्यात्व आदि के परिणाम से हटकर, निवृत्ति करे, उस समय में आत्मा उपादेय हो जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। ऐसे के ऐसे धार लेना, शास्त्र से धार लेना, वह मिथ्यात्व आदि भाव हेय है और स्व आत्मा उपादेय है, परन्तु कब? समझ में आया? धर्मलालजी!

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह कि शुद्ध परिणाम हो तब न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ निवृत्ति हो, तब शुद्ध परिणाम में उपादेय होता है। ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है, भाई! भगवान पूर्णानन्द प्रभु के समीप किस प्रकार जाना?— कि मिथ्यात्व आदि भाव से निवृत्ति होकर उसके समीप जाना। भले सम्यग्दर्शन में पाँचों की निवृत्ति है, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : पाँचों की निवृत्ति है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों की निवृत्ति है। मिथ्यात्व से निवृत्ति है, अत्रत से उतने अंश में निवृत्ति है, प्रमाद से भी निवृत्ति है, कषाय की निवृत्ति है, योग के कम्पन से भी उतनी निवृत्ति है। यह आया है। समयसार में आया है। भावार्थ में लिखा है। योग की निवृत्ति हो जाती है इतनी। इस ओर जो कम्पन है,... भाई! सूक्ष्म है, प्रभु! वीतराग जिनेश्वरमार्ग और वह भी दिगम्बर मार्ग। आहाहा! यह दिगम्बर मार्ग कोई पक्ष-वाडा नहीं है। वस्तु का स्वरूप बताते हैं। भगवान आत्मा वस्तु ही दिगम्बर है। अर्थात् कि मिथ्यात्व आदि विकल्प से रहित है। उस विकल्प की वृत्ति इसमें नहीं। दिगम्बर दर्शन की यह परिभाषा। चारित्र की परिभाषा दूसरी। चारित्र की परिभाषा तो १६वीं गाथा में, १४वीं गाथा में आता है कि तीन कषाय का अभाव और खड़े-खड़े आहार लेना, वस्त्रादि नहीं, नग्नपना, खड़े-खड़े आहार करना अर्थात् पात्र भी नहीं। गाथा है। समझ में आया? अष्टपाहुड़ (में गाथा है)।

यह अष्टपाहुड़, देखो! 'दुविहं पि गंथचायं' यह मुनि की बात है। बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो,... 'तीसु वि जोएसु संजमो' मन-वचन-काया ऐसे तीनों योगों में संयम हो... हटकर। 'णाणम्मि करणसुद्धे' आहाहा! देखो! जहाँ बाह्याभ्यन्तर भेद से दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों से संयम हो तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान हो,... ज्ञान में अशुद्धता का अनुमोदन न हो। अज्ञान का कराना न हो। अकेला शुद्ध ज्ञान। करना, कराना और अनुमोदन से, पर से रहित। आहाहा! ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों, वह ज्ञान हो, तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपने को न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इस प्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है। यह जैनदर्शन है। आहाहा! समझ में आया ?

जैनदर्शन वस्तु में है, कहीं बाहर नहीं। (समयसार) १५वीं गाथा में कहा न? जो कोई भगवान आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखता है, सामान्य देखता है, निश्चय में देखता है और संयोगी पुण्य-पाप के विकल्प के दुःखभाव से रहित देखता है, उसने जैनशासन देखा। यह तो वस्तु ऐसी है। समझ में आया? पर्याय में वीतरागता हुई, तब अबद्धस्पृष्ट की दृष्टि हुई। आहाहा! यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात है। यह (अष्टपाहुड़वाली) मुनिपने की चारित्र की बात है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में भगवान आत्मा... यहाँ पाँच बन्ध लिये न? पाँच बोल लिये हैं न? तो आत्मा अबद्ध है, ऐसा वहाँ कहा है। तो इन पाँच पर्याय का बन्ध नहीं। समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्व, अत्रत, प्रमाद, कषाय, योग, यह बन्ध का भाव है। भगवान अबद्धस्वरूप है—ऐसा १५वीं गाथा में लिया। अर्थात् वही यह बात है। इन पाँच प्रकार की मिथ्यात्व आदि की पर्याय को छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव निर्मल परिणाम द्वारा उस समय में उपादेय हुआ। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है न, भाई! लो! देखा! ... यह जैनदर्शन। इसका नाम जैनदर्शन। जैनदर्शन कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं रहता। जैनदर्शन आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं रहता है। आत्मा की निर्विकल्प पर्याय, वह जैनदर्शन है और उस निर्विकल्प पर्याय में बन्ध आदि भाव की निवृत्ति है और त्रिकाल आत्मा उपादेय है। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों ने दूसरे प्रकार से कर दिया है। मूलमार्ग की शुरुआत कहाँ से होती है? यहाँ से होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ ऐसा कहा कि अबद्धस्पृष्ट देखे। यहाँ ऐसा कहा कि पाँच प्रकार की बन्ध पर्याय से निवृत्त होकर। अपने परिणाम में, वीतरागी परिणाम में तब वह उपादेय हुआ। तब आदरणीय हुआ। यहाँ से छोड़ा तो यहाँ आदरणीय हुआ। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भगवान! चारित्र का दोष हो परन्तु सम्यग्दर्शन में दोष नहीं होना चाहिए। यह बात करते हैं। समझ में आया?

अष्टपाहुड़ में ऐसा कहते हैं। 'दंसणभट्टा ण सिज्झांति' दर्शनभ्रष्ट नहीं सीझता। 'सिज्झांति चरियभट्टा' आहाहा! चारित्र में दोष हो, अस्थिरता हो, चारित्र न हो। आहाहा! तो भी दर्शनभ्रष्ट नहीं है, इस कारण से सिद्ध / मुक्ति प्राप्त करेगा। अल्पकाल

में उसे चारित्र आयेगा, परन्तु जो दर्शनभ्रष्ट है (अर्थात्) जो राग को उपादेय मानता है, आत्मा को हेय जानता है, वह तो दर्शनभ्रष्ट है।

मुमुक्षु : दोनों में कौन बड़ा ? दर्शन या चारित्र ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र हो तो चारित्र ही बड़ा है। परन्तु यहाँ तो कहना है कि दर्शन और चारित्र से भ्रष्ट हो। दर्शन से भ्रष्ट न हो तो भी मुक्ति के योग्य है।

मुमुक्षु : आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयेगा। दर्शन में प्रतीति हुई है कि इसमें स्थिर होना, वह चारित्र है। १७-१८वीं गाथा में नहीं आया ?

भगवान आत्मा मिथ्यात्व आदि से हटकर ज्ञाता-दृष्टा, अबद्ध—मुक्तस्वरूप ऐसा अनुभव में आया, तो उसकी उपादेयता में उसमें स्थिर होना, वह चारित्र है, ऐसी श्रद्धा आ गयी है। ऐसे स्वरूप में लीन होना, वह चारित्र है, ऐसा श्रद्धा में आया है। १७-१८ गाथा में आया है। समयसार की १७-१८ गाथा। सम्यग्दर्शन में यह श्रद्धा आ गयी है। आहाहा! समझ में आया ? यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप, ऐसा निर्मल परिणति के काल में, अशुद्ध परिणति की निवृत्ति के काल में, शुद्ध परिणति के काल में यह भगवान उपादेय है। आहाहा! समझ में आया ?

चारित्र न हो परन्तु चारित्रसहित जो दिग्म्बरपना है, वह तो अलौकिक बात है। यहाँ यह कहा। तीन कषाय का अभाव हो, खड़े-खड़े आहार हो। '...' ऐसा क्यों कहा ? कि उन्हें पात्र नहीं होता। पात्र न हो तो वस्त्र भी नहीं होता। वस्त्र-पात्र न हो तो खड़े-खड़े आहार लेते हैं। अन्तर में आनन्द में झूलते हैं। तीन कषाय के अभाव से अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हैं और अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप मुनिपने में है। आहाहा! तथापि व्यवहार में पंच महाव्रत का विकल्प आता है। खड़े-खड़े आहार लेने का भाव होता है। ऐसा उन्हें वस्त्र और पात्र नहीं होता। समझ में आया ? उसे जैनदर्शन कहते हैं। तीन कषाय का (अभाव होता है)। इसलिए कहा न ?

मुमुक्षु : इसमें हाथ में खाये तो सब दुल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ दुलता नहीं। ऐसे बराबर करे तो बराबर रहे। अरे! यह तो उसकी योग्यता ही ऐसी होती है। आहाहा! देखो न!

भगवान का दसवाँ भव सिंह का, महावीर प्रभु का दसवाँ भव सिंह का। ऐसे हिरण को थाप मारते थे। ऊपर से मुनि चले आते हैं। उसकी वृत्ति उस काल में ऐसी हो गयी कि यह क्या? हम जहाँ हों वहाँ से लोग नजदीक हों तो दूर चले जाते हैं। पशु नजदीक हों तो दूर चले जाते हैं। और यह ऊपर से नीचे मेरे निकट आये हैं, यह क्या? ऐसे वृत्ति स्थिर हो गयी। आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं कि... सिंह किस भाषा में समझा, मुनि ने किस भाषा में कहा, यह योग्यता तो देखो! आहाहा! वह सिंह, यह मुनि। ऊपर चले जा रहे थे। विद्या थी न! आहाहा! क्या कहते हैं? उसकी योग्यता कैसी होगी कि मुनि की भाषा समझ गया! समझ में आया? मुनि की भाषा तो उनके जैसी होती है। परन्तु पात्र है, वहाँ वह समझ गया। ओहो! मुझसे दूर जाते हैं, वे मेरे नजदीक आकर खड़े रह गये! ऐसी बुद्धि में निर्मलता हो गयी। तो मुनिराज जो कुछ कहते हैं कि अरे! सिंह! प्रभु! तुम तो दसवें भव में तीर्थकर होनेवाले हो। आहाहा! वह भाषा किस प्रकार समझे? देखो तो सही, क्या कहते हैं! आहाहा! प्रभु! तुम तो दसवें भव में तीर्थकर होनेवाले हो, और यह क्या? चाहे जिस भाषा में बोले होंगे, वह समझ गया। आँख में से आँसू की धारा (बहती जाती है) और ऐसे हाथ जोड़ता है, दो पैर से नीचे बैठ गया। आँख में आँसू की धारा। उस समय में... आहाहा! जातिस्मरण होता है। सिंह को जातिस्मरण। अब हिरण को मारकर खाये, वहाँ जातिस्मरण? अरे! भाई! परिणाम को पलटने में देर कितनी? समझ में आया? आहाहा! अभी तो खाता है। पेट में थोड़ा पड़ा होगा। आहाहा!

प्रभु! तुम महावीर हो। प्रभु! तुम दसवें भव में तीर्थकर होनेवाले हो। हमने केवली के निकट सुना है। आहाहा! समझ में आया? कैसे भरोसा हुआ? कैसी बात की होगी? आहाहा! आँसू की धारा बहती जाती है। अरे! भगवान परमात्मा अपना आत्मा, उससे मैं भिन्न हो गया! और कर्तव्य यह! एकदम गुलाँट खा जाता है। गुलाँट समझे? पलटा मारता है, एकदम। लोग कहते हैं न कि सौ चूहे मारकर बिल्ली पाट पर बैठी। यह ऐसा अब। चूहे मारे वह तो पहले। परन्तु बाद में पलटा खाने में देर कितनी? समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। यह तो मुनिपने की बात है। यहाँ परमात्मप्रकाश में (जो बात) चलती है, वह सम्यग्दर्शनसहित मोक्षमार्ग की चलती है। दूसरे में है न यह?

सूत्रपाहुड़ १४। सूत्रपाहुड़ १४। १४ नहीं। धर्म के प्रति उत्साह। है न? भावना। भावनासम। प्रश्न किया है। 'पसंससेवा सुदंसणे' सम्यग्दर्शनी जीव को सम्यग्दर्शन में उत्साह होता है, भावना होती है, प्रशंसा होती है। स्वरूप की सेवना होती है। 'ण जहादि जिणसम्मत्तं' वह जिनसमकित को नहीं छोड़ता। परन्तु जिसे परमत में उत्साह, भावना, सेवना है, वह मिथ्यादृष्टि समकित को छोड़ देगा। समझ में आया? अन्यमत में, जैनदर्शन के अतिरिक्त चाहे तो चाहे जो दर्शन हो, उसके प्रति उत्साही होना, प्रशंसा होना, समझ में आया? भावना होना, उसकी सेवा, उस (भाव से) सम्यग्दर्शन से वम जायेगा। मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया? १३-१४ है, हों! और बोधपाहुड़। १४ है न? देखो! १४।

आगे दर्शन का स्वरूप कहते हैं:—दर्शन किसे कहते हैं? जैनदर्शन किसे कहते हैं?

पदंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजम सुधम्मंच।

णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं ॥१४॥

आहाहा! जो दर्शनमार्ग में समकित, संयम, ज्ञान सहित हो। ज्ञानमय कहा न? और 'णिग्गंथं' आहाहा! निर्ग्रन्थदशा। राग की गाँठ नहीं अन्दर में, बाहर में वस्त्र-पात्र नहीं। समझ में आया? देखो!

पदंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संजम सुधम्मंच।

णिग्गंथं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं ॥१४॥

जिनमार्ग में इसे जैनदर्शन कहते हैं। बोधपाहुड़, (गाथा) १४। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने तो एक-एक ग्रन्थ में बहुत बात की है। गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर...

यहाँ आया। पाँचों ही मिथ्यात्व के भाव का अभाव तो केवली में भी होता है। केवली में भी योग तो रहता है, ऐसा नहीं। सुन तो सही, कहते हैं। पर्याय में पाँच भाव है, उसकी दृष्टि उड़ गयी है। हो, सर्वथा अभाव चौदहवें गुणस्थान में होगा। परन्तु दृष्टि में से उसे हटा दिया। मिथ्यात्व आदि पर्याय में पाँच मिथ्याभाव थे, उस ओर से निवृत्ति ले ली। अन्दर में जाने को उससे निवृत्ति ले ली। पलटा खाया, ऐसा कहते हैं। समझ में

आया ? आहाहा ! पाँचों भाव से निवृत्ति । गजब है । सम्यग्दर्शन में योग से भी आंशिक निवृत्ति है । आहाहा ! प्रमाद से निवृत्ति है, कषाय से निवृत्ति है, आंशिक उसमें सबमें निवृत्ति है । आहाहा !

उस समय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है । आहाहा ! अन्तर में उस क्षण में निर्मल वीतराग परिणति के काल में, उस मिथ्यात्वादि की पर्याय से परिणाम ने पलटा मारा, उस निर्मल परिणाम के काल में परमात्मा का आदर किया । आत्मा का आदर उस काल में किया, उस काल में आत्मा का सत्कार किया । आहाहा ! समझ में आया ? अनादि से अनादर करता था । यह तो कहा न पहले ? कि जिसे मिथ्यात्व तो ठीक, परन्तु राग की रुचि है, वह मिथ्यात्व है । पुण्य परिणाम का राग है, उसकी रुचि है, वह मिथ्यात्व है । आहाहा ! ऐसे मिथ्यात्व के काल में, राग-रुचि के काल में भगवान आत्मा हेय है । समझ में आया ? आहाहा ! स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, राज-पाट, विषय, भोग में जिसे सुखबुद्धि है... आहाहा ! उसे आत्मा हेय हो गया ।

मुमुक्षु : पठन-पाठन की रुचि ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पठन-पाठन की रुचि राग की रुचि हो । पठन-पाठन का विकल्प आता है । परन्तु उसकी रुचि हो कि यह चीज़ ठीक है (तो) उसे आत्मा हेय है । पठन-पाठन वह शुभभाव है । वह लिखा नहीं ? निकाला नहीं था अपने ? अष्टपाहुड़ न ? नियमसार ? नहीं कलशटीका । पठन, पाठन, भक्ति, स्तुति, वन्दन, यह सब शुभभाव है । कलशटीका में है । है न कहीं ? कहाँ है, यह खबर नहीं ?

मुमुक्षु : कलश १८९ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश १८९ । यह कहा था पहले । वह यह आया, १९८ । पहले निकाला था । किसी ने लिख लिया है ।

पठन-पाठन, स्मरण, चिन्तन, स्तुति, वन्दना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प विष समान (जहर) कहे हैं, ... 'विष प्रणीतं' है । प्रतिक्रमण की व्याख्या है । प्रतिक्रमण के काल में जो शुभभाव को जहर कहा न ? समयसार, मोक्ष अधिकार में । शुभभाव को वहाँ विषकुम्भ कहा है । जहर का घड़ा । यह बात है । विषकुम्भ का भाव जो शुभ है,

उसकी जिसे रुचि है, वह भगवान अनाकुल आनन्द के नाथ को हेय करता है। उसे छोड़ देता है—दृष्टि में से छोड़ देता है। तेरी कीमत नहीं। मुझे तो इस शुभभाव की कीमत है। कहो, ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जो कहते हैं, वह सन्त कहते हैं। यह तो कहा न? अपने नहीं आया था? कल ही आया था न! 'जिणवरु एउँ भणेइ' परमात्मप्रकाश ६८ गाथा। 'जिणवरु एउँ भणेइ' आहाहा! यह जीव, बन्ध और मोक्ष के परिणाम का कर्ता नहीं। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि बन्ध और मोक्ष के परिणाम तथा बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम, उसका वह जीव कर्ता नहीं, उसे जिनवर जीव कहते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश की ६८ गाथा में आया है। समझ में आया? है न? यहाँ चलता है।

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।

जिउ परमत्थेँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८ ॥

जिनवर ऐसा कहते हैं कि हे आत्मा! जो आत्मा, बन्ध और मोक्ष के परिणाम करे नहीं, उसे हम जीव और आत्मा कहते हैं। आहाहा! 'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ' उत्पाद पर्याय में जीवद्रव्य आता नहीं। जन्मता नहीं प्रभु, मरता नहीं प्रभु। और 'बंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ' जिनवर उसे जीव कहते हैं। जो दृष्टि का विषय है, उसे जीव कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसकी कीमत कितनी प्रभु तुझे! आहाहा!

कहते हैं, हे योगी! परमार्थ से उसे जीव कहते हैं। शिष्य को कहते हैं। प्रभाकर भट्ट है न? उसे योगीन्द्रदेव कहते हैं। हे योगी! 'जिणवरु एउँ भणेइ' तीन लोक के नाथ दिव्यध्वनि में ऐसा कहते थे। हम उसे जीव कहते हैं कि जो जीव, बन्ध और मोक्ष के परिणाम और मोक्ष के मार्ग के परिणाम, बन्ध के मार्ग के परिणाम करे नहीं, उसे हम जीव कहते हैं। परिणाम करे नहीं। सुकौशलजी! ऐसा है, भगवान! तेरी क्या बलिहारी, नाथ! तू कैसी चीज़ है, इसकी तुझे खबर नहीं। बाहर में जरा पैसे हुए, धूल मिली, कुछ पाप के परिणाम में से पुण्य के परिणाम हुए, वहाँ ओहोहो! कषायअग्नि में जल गया। आहाहा!

भगवान आत्मा अकेला शान्तरस, अकषायरस, वीतरागरस, ज्ञानरस, आनन्दस्वरूप।

ऐसा भगवान आत्मा, जिसने पाँच पर्याय से निवृत्ति लेकर अन्दर में... ओहोहो! सम्यग्दर्शन में पाँच से निवृत्ति होकर... सर्वथा अभाव नहीं हुआ, परन्तु उससे निवृत्ति ली। समझ में आया? आहाहा! देखो न! परमात्मप्रकाश। अरे! प्रभु! आग्रह किसका? व्यवहार से यह होता है। प्रभु! वह तो जहर है। जहर से अमृत होता है? कोई कहता था। व्यवहार करते-करते तो परम्परा से निश्चय होगा न? राग जहर करते-करते अमृत होगा? वह तो दूसरी चीज़ है। प्रभु! वह तो आत्मा जिसे अनुभव में आया है, उसे जो शुभभाव होता है, उस शुभराग के काल में भगवान आत्मा को स्वभाव का अनुभव है, इस कारण से अशुभ से निवृत्त हुआ है और फिर शुभ से निवृत्त होगा। अभाव करेगा, इस अपेक्षा से परम्परा कहने में आया है। समझ में आया? यह व्यवहारनय का वचन है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विजातीय है। भिन्न है न, भाई! आता है, होता है परन्तु उससे आत्मा को लाभ है, (ऐसा नहीं)। वह तो नुकसान करनेवाला है। आहाहा! अरे! कहाँ जाना प्रभु तुझे?

चिदानन्द भगवान... भाषा कैसी है! परमात्मप्रकाश की भाषा ऐसी है कि उस समय में शुद्ध आत्मा उपादेय है। यह प्रत्येक गाथा में बहुत लेते हैं। आहाहा! जिस समय सम्यग्दर्शन के परिणाम पर से हटे, स्वभाव सन्मुख हुआ, उसी काल में आत्मा है, ऐसा माना, उसका स्वीकार किया और उपादेय माना। आहाहा! समझ में आया?

एक प्रश्न हुआ था न? प्रभु! आत्मा कारणपरमात्मा है न? यहाँ यह प्रश्न हुआ था। त्रिभुवनभाई वारिया, विरजीभाई का पुत्र। कारणपरमात्मा कहते हो तो कार्य आना ही चाहिए। आत्मा कारणपरमात्मा है। वस्तु से कारणपरमात्मा है। आयेगा। बाद में आयेगा। कार्यसमयसार और कारण। यह ७४ में आयेगा। जब तुम ऐसा कहते हो कि प्रभु आत्मा तो अनादि-अनन्त ध्रुव कारणपरमात्मा है। तो कारण हो तो कार्य आना चाहिए। कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं आता? ऐसा प्रश्न किया। राजकोट, वीरजीभाई, जामनगर, वीरजीभाई का पुत्र है न त्रिभुवन? सुनो!

भगवान! यह कारणपरमात्मा है। किसे? जिसे स्वीकार आया उसे। जिसे

कारणपरमात्मा की दृष्टि हुई, उसे कारणपरमात्मा है। है, उसे माना नहीं, जाना नहीं, उसे कारणपरमात्मा कहाँ से आया? समझ में आया? आत्मा को कारणजीव कहते हैं, कारणपरमात्मा कहते हैं। कारणजीव कहते हैं। कारण है तो कार्य आना चाहिए। परन्तु किसे? यह कारणभगवान त्रिकाल है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई है, उसका स्वीकार किया है, उसे कारणपरमात्मा है। तो उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कारणपरमात्मा तो होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है। दृष्टि पलटानी है। दूसरी ओर शोधना नहीं है, कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? यह तो जिनवर मार्ग, बापू! और वह दिगम्बर दर्शन। उसमें कुन्दकुन्दाचार्य मार्गानुसारी। आहाहा! केवली के मार्गानुसारी। आहाहा! भगवान का मार्ग आड़तिया होकर दुनिया को कहते हैं। भगवान का माल यह है। आहाहा! इतने शब्द में इतना भरा है। ओहो! इसमें ४० मिनट हो गये।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगों की निवृत्तिरूप परिणाम है। योग कम्पन की बुद्धि हट गयी है। कम्पन हो, राग हो, परन्तु उसकी रुचि निवृत्त हो गयी है। समझ में आया? उस समय शुद्ध आत्मा ही उपादेय है। यह ७३ (गाथा) हुई।

गाथा - ७४

अथ ज्ञानमयपरमात्मनः सकाशादन्यत्परद्रव्यं मुक्त्वा शुद्धात्मानं भावयेति निरूपयति-

७४) अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु परायउ भाउ।

सो छंडेविणु जीव तुहुं भावहि अप्प-सहाउ ॥७४॥

आत्मानं मुक्त्वा ज्ञानमयं अन्यः परः भावः।

तं त्यक्त्वा जीव त्वं भावय आत्मस्वभावम् ॥७४॥

अप्पा मिल्लिवि णाणमउ अण्णु परायउ भाउ आत्मानं मुक्त्वा। किंविशिष्टम् ज्ञानमयं केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणराशिं निश्चयात् अन्यो भिन्नोऽभ्यन्तरे मिथ्यात्वरागादिबहिर्विषये देहादिपरभावः सो छंडेविणु जीव तुहुं भावहि अप्पसहाउ तं पूर्वोक्तं शुद्धात्मनो विलक्षणं परभावं छंडयित्वा त्यक्त्वा हे जीव त्वं भावय। कम्। स्वशुद्धात्मस्वभावम्। किंविशिष्टम्। केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टय-व्यक्तिरूपकार्यसमयसारसाधकमभेदरत्नत्रयात्मककारण-समयसार-परिणतमिति। अत्र तमेवोपादेयं जानीहीत्यभिप्रायः ॥७४॥

आगे ज्ञानमयी परमात्मासे भिन्न परद्रव्यको छोड़कर तू शुद्धात्माका ध्यान कर, ऐसा कहते हैं -

ज्ञानमयी आत्मा से भिन्न विभिन्न प्रकार सभी परभाव।

उन्हें छोड़कर हे चेतन तुम भावो नित निज आत्म स्वभाव ॥७४॥

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव [त्वं] तू [ज्ञानमयं] ज्ञानमयी [आत्मानं] आत्मा को [मुक्त्वा] छोड़कर [अन्यः परः भावः] अन्य जो दूसरे भाव हैं, [तं] उनको [छंडयित्वा] छोड़कर [आत्मस्वभावम्] अपने शुद्धात्म स्वभाव को [भावय] चिंतवन कर।

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनंतगुणों की राशि आत्मा से जुड़े जो मिथ्यात्व रागादि अंदर के भाव तथा देहादि बाहिर के परभाव ऐसे जो शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं, उनको छोड़कर केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयरूप कार्यसमयसार का साधक जो अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है, उस रूप परिणत हुए अपने शुद्धात्म स्वभाव को चिंतवन कर और उसी को उपादेय समझ ॥ ७४॥

गाथा - ७४ पर प्रवचन

७४ (गाथा) आगे ज्ञानमयी परमात्मा से... भगवान तो ज्ञानमयी आत्मा है। आनन्दमय, ज्ञानमय। ज्ञानमय कहने में मुख्य ज्ञान है न? वह ज्ञान अपने को जानता है और परगुण को जानता है। परगुण स्वयं को जानता नहीं। सम्यग्दर्शन-चारित्र-आनन्द वह अपने को जानते नहीं, पर को जानते नहीं। अस्तित्व रखते हैं। ज्ञान का अस्तित्व है, और ज्ञान स्व-पर को जानता है, इतनी उसकी सामर्थ्य है। समझ में आया? ज्ञानमय... ज्ञानमय, ऐसा क्यों कहा? कि ज्ञानस्वरूप ही ऐसी चीज़ है जो अपने को जाने, 'है' ऐसा जाने, पर को है ऐसा जाने। आहाहा! वह दर्शन-चारित्र-आनन्द-अस्तित्व में यह शक्ति नहीं। है, ऐसा जानने की शक्ति इनमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस कारण से ज्ञानमयी परमात्मा, ऐसा कहा। नहीं तो अनन्त गुणमय है। अभी टीका में आयेगा। तथापि वह ज्ञान, भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है। जिस ज्ञान के साथ अविनाभावी अनन्त गुण रहे हैं अर्थात् कि ज्ञान है, वहाँ अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण है वहाँ ज्ञान है। ऐसा होने पर भी ज्ञानमय आत्मा, ऐसा कहने में आता है।

उससे भिन्न परद्रव्य को छोड़कर... आहाहा! तू शुद्धात्मा का ध्यान कर,... प्रभु! आहाहा! शुद्धात्मा शास्त्र से जान लेना, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। शुद्धात्मा का ध्यान कर,... समझ में आया? शास्त्र से सुना कि यह आत्मा शुद्धात्मा है, ज्ञानमय है, ऐसे विकल्प से जान लिया, वह चीज़ नहीं। अन्तर में जाकर, परद्रव्य को छोड़कर शुद्धात्मा का ध्यान कर। आहाहा! चारों ओर से विकल्प को हटाकर... आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु तू है। उसे ध्यान का विषय बना, ध्यान करो। उसे ध्यान का विषय बनाओ। देखो तो सही! आहाहा!

'ध्यान विषय कुरु।' अध्यात्म तरंगिणी में (आता है)। भाई! अध्यात्म तरंगिणी है न? टीका में है। हम तो वाँचते-वाँचते ऐसे बोल हों वहाँ चिह्न कर लेते हैं। हजारों शास्त्र पढ़े हों, बारम्बार कहाँ वाँचे? 'ध्यान विषय कुरु', ऐसा शब्द है वहाँ। परम अध्यात्म तरंगिणी है न? कलशटीका। यह कलशटीका राजमलजी की है, वह शुभचन्द्राचार्य की कलशटीका (परम अध्यात्म तरंगिणी) है। संस्कृत। 'ध्यान विषय कुरु'। प्रभु! तेरे

ध्यान में आत्मा ले ले। लोग नहीं कहते कि ध्यान रख। ऐसा कहते हैं या नहीं? ध्यान रख। यहाँ कहते हैं कि ध्यान रख। किसका? तेरा।

मुमुक्षु : परन्तु जाने बिना ध्यान कैसे रखें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं न कि विकल्प से पहले जानने में आता है। नय, निक्षेप, प्रमाण से, विकल्प से पहले जानने में आता है। परन्तु वह चीज़ नहीं। समयसार की १३वीं गाथा में आया न? पहले नय से, निश्चय से-व्यवहार से, अन्यमत से भिन्न भगवान क्या कहते हैं, ऐसा नय से जाने, निक्षेप से जाने और प्रमाण से जाने, तथापि वह अभूतार्थ चीज़ है। है उसमें? १३वीं गाथा में है। 'भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा' नय का विषय है। शान्तिसागर आये थे यहाँ। कहा, यह गाथा कौन सी है? यह प्रमाण की गाथा है। मूल अभ्यास ही नहीं, तत्त्व का अभ्यास ही नहीं। यह गाथा है निश्चयनय की। समझ में आया?

नौ तत्त्व में धारावाही अन्वय रहनेवाला भगवान आत्मा, वह भूतार्थ है। जीव, अजीव, पुण्य-पाप आदि नौ तत्त्व हैं न पर्याय? सबमें एकरूप अन्वय रहनेवाला सामान्य, वह जीव है। आहाहा! उस जीव की वहाँ व्याख्या है। 'भूदत्थेणाभिगदा' वे नाम आये न नौ? 'भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्यपावं च' १३वीं गाथा। परन्तु वह तो व्यवहार का विषय कहा। परन्तु उसे जाननेवाला भूतार्थ एक ही आत्मा है। अन्वयरूप से (एक ही आत्मा है)।

कल कहा था न? पंचास्तिकाय में ऐसा लिया है। पहले श्लोक है। है वहाँ? 'जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्' भाषा जरा सूक्ष्म है। 'ततो नवपदार्थानां व्यवस्था मतिपादिता ॥५॥' यहाँ पहले सूत्रकर्ता ने... आहाहा! पश्चात् (दूसरे अधिकार में) जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नौ पदार्थों की—जीव-अजीव की दो की सात पर्यायें, ऐसे नौ लिये न? इन नौ पदार्थों के—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं... नौ तत्त्वों का कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार का है। आस्रव, पुण्य, पाप, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। नौ का भिन्न कार्य। श्लोक है। 'चित्रवर्त्मनाम्' अर्थात् क्या इसका अर्थ? विचित्र। मार्ग। आहाहा! पाँचवाँ श्लोक है। पंचास्तिकाय। श्लोक नम्बर पाँच। पहले कलश-कलश। गाथा नहीं, गाथा नहीं। यह तो शुरुआत की न? पाँचवाँ श्लोक।

नौ तत्त्व का नौ ही का कार्य भिन्न-भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव का कार्य दुःखरूप है, भगवान का कार्य आनन्दरूप है और संवर का कार्य शान्तिरूप है, निर्जरा का कार्य हितरूप और सुख की वृद्धि का कार्य है, मोक्ष का कार्य पूर्ण शुद्धि का वृद्धि का है। समझ में आया? शुभभाव, वह तो रागरूपी कार्य है, दुःखरूप कार्य है। यह तत्त्व का मार्ग, वह कार्य है। पाठ में मार्ग कहा है। पाठ में मार्ग लिया है। नौ तत्त्व का मार्ग अर्थात् नौ तत्त्व का कार्य। समझ में आया? आहाहा! अब जो पुण्य-पाप, आस्रव का कार्य तो दुःखरूप है। वह आत्मा के संवर-निर्जरा का कार्य हो जायेगा उससे? समझ में आया? यह तो कार्य शब्द पड़ा था न, भाई! मार्ग।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-बाद में है कहाँ वहाँ? यह नौ तत्त्व की पर्याय के जीव-अजीव का भेद, दो तत्त्व, उसके भेद सात। नौ का कार्य भिन्न-भिन्न है। पहले से यह निर्णय करना चाहिए। आहाहा! पण्डितजी! शास्त्र पुकार करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दुःख का अनुभव कारण होता है? दुःख का अनुभव सम्यग्दर्शन में कारण होता है? सम्यग्दर्शन तो सुख का कारण है। आहाहा! छहढाला में आया न? त्याग-वैराग्य... क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं-नहीं, यह तो श्रीमद् में। यह तो ढाल में—छहढाला में आता है।

मुमुक्षु : आतम हित हेतु विराग-ज्ञान ते लखे आपको कष्टदान।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'आतम हित हेतु त्याग वैराग्य...' दुःख का कारण माने। चारित्र, आनन्द, ज्ञान, उसे कष्टदान मानता है। वह तो आनन्ददायक है। आहाहा! आता है न यह? छहढाला। पहले के पण्डितों ने बहुत अच्छा किया है। यह तो वर्तमान में फेरफार हो गया। पहले के पण्डित साधारण छहढाला करनेवाले ने गागर में सागर भर दिया है। यह तो पाठशाला में चलता है न, पण्डितजी! उसमें ऐसा लिखा है, लो! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे क्या ? हम तो भगवान मार्ग कहते हैं, वह कहते हैं। पण्डित हो, न हो हमारे साथ।

मुमुक्षु : आपका विरोध....

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारा विरोध नहीं करते। किसी का कोई विरोध कर नहीं सकता। यहाँ तो मार्ग है, ऐसा है। तीर्थकर के समय भी विरोध था।

एक भाई ने तो लिखा है। हितैषी, दिल्लीवाले। प्रकाशचन्द्र हितैषी है न दिल्लीवाले ? उन्होंने तो एक बार लिखा था। हमने तो कुछ पढ़ा नहीं, परन्तु उन्होंने लिखा था कि महावीर के समय इतने हजारों, महावीर के विरोधी महावीर जहाँ-जहाँ जाये, वहाँ-वहाँ वे जाते थे। ऐसा लिखा है। आहाहा! यह तो इतने विरोधी भगवान जहाँ जाये, वहाँ विरोध करने जाते। ऐसा कुछ लाये थे। हमने तो देखा नहीं। दूसरे शास्त्र में... वे लाये थे। भाई हितैषी है न ? सन्मति सन्देश प्रकाशित करते हैं न ? दिल्ली। वे कहीं से लाये थे। कितने हजार महावीर के विरोधी, महावीर जहाँ जाते थे वहाँ विरोध करने जाते थे। यह तो जगत के साथ... उसमें कुछ विशेष नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। अब ७४ गाथा।

(७४) अप्पा मेल्लिवि गाणमउ अण्णु परायउ भाउ।

सो छंडेविणु जीव तुहुं भावहि अप्प-सहाउ ॥७४ ॥

अन्वयार्थः—हे जीव! तू ज्ञानमयी आत्मा को... परमात्मा अर्थात् आत्मा। छोड़कर अन्य जो दूसरे भाव हैं, उनको छोड़कर,... समझे ? ज्ञानमय आत्मा को, अन्य जो दूसरे भाव हैं, उनको छोड़कर अपने शुद्धात्मस्वभाव को चिन्तवन कर। 'मुक्तत्वा' वह राग से मुक्त है मूल तो।

भावार्थः—केवलज्ञानादि अनन्त गुणों की राशि... आहाहा! भगवान तो अनन्त गुण की राशि-ढेर है। ढग है न, ढग ? क्या कहते हैं ? ढेर। यह राशि कहा न ? केवलज्ञानादि... केवलज्ञान अर्थात् पर्याय की बात नहीं। अन्तर अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, अकेली ईश्वरता, अकेली कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ये शक्तियाँ जो हैं अकेली अत्यन्त परिपूर्ण निर्मल है।

मुमुक्षु : केवल शब्द एक बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बताता है। केवलपर्याय (पर्याय) की बात यहाँ नहीं है।

केवलज्ञानादि... है ? केवलज्ञानादि... ज्ञान से लिया है न ? ज्ञानमय है न मूल पाठ में ? अनन्त गुणों की राशि... अनन्त गुण की राशि। भगवान अनन्त गुण का ढेर। आहाहा! एक समय की पर्याय में भूल है। एक समय की। वस्तु त्रिकाली, भूल एक समय की। दो समय रहती नहीं। पहले समय में नाश हो, दूसरे समय में उत्पन्न होती है। एक समय की संसार की भूल है। आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणों की राशि आत्मा से जुदे... ऐसा कहते हैं। उससे भिन्न। कौन ?

मिथ्यात्व रागादि अन्दर के भाव... मिथ्यात्व, राग-द्वेष अन्दर के भाव। वे भी अनन्त गुण की राशि आत्मा से भिन्न। आहाहा! तथा देहादि बाहिर के परभाव... शरीर, वाणी, मन आदि सब। ऐसे जो शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं,... देखो! शुद्धात्मा भगवान जो अनन्त गुण की राशि, उससे विलक्षण... विपरीत लक्षणवाले। आहाहा! वह शुभराग भी स्वभाव के लक्षण से, भगवान के स्वरूप से विलक्षण है, विपरीत लक्षणवाले हैं। आहाहा! बन्धभाव है। बन्धभाव है न ? रागभाव बन्धभाव है। सर्वविशुद्ध में आया है। आहाहा!

आत्मा से जुदे जो मिथ्यात्व रागादि अन्दर के भाव तथा देहादि बाहिर के परभाव ऐसे जो शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं, उनको छोड़कर... आहाहा! कैसे छोड़ना ? भाई! यह तो एक समय की पर्याय में है। द्रव्य पर दृष्टि देने से वह सब छूट जाता है। समझ में आया ? माहात्म्य तो प्रभु आत्मा का है। परमात्मस्वरूप भगवान, उस ओर जहाँ झुकाव हुआ, यह सब (मलिन) पर्याय दूर रह गयी। मलिन पर्याय दूर रह गयी। अनुभव में और अनुभव के विषय में यह नहीं आये। क्या कहा ? आहाहा!

उनको छोड़कर केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप... देखो! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, ऐसे कार्यसमयसार का... यह कार्यसमयसार पर्याय। द्रव्य कारणसमयसार। त्रिकाली भगवान, वह कारणसमयसार। त्रिकाली। उस कारण के दो भेद हैं। एक त्रिकाली कारणसमयसार और मोक्ष का मार्ग वह कारणसमयसार। लो, समय हो गया। हों! विशेष आयेगा....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल ११, शुक्रवार
दिनांक-०६-०८-१९७६, गाथा-७४, प्रवचन-५५

प्रथम णमो अरिहंताणं ऐसा आता है न? उसमें ऐसा आता है कि णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व अरिहंताणं। पूरा पाठ ऐसा है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ओहोहो! धवल में ऐसा पाठ है। फिर संक्षिप्त शब्द करके णमो लोए सव्व साहूणं, यह चार पद में ले लिया। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। पाठ तो ऐसा है। फिर त्रिकालवर्ती ऐसा बढ़ा देना। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। आहाहा! कितनी व्यापकता है, देखो! करते हैं। शास्त्र की रचना में प्रथम णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। अभी तो यह अरिहन्त होनेवाले हैं। वे तो अब अभी नरक में (भी) होते हैं, एकेन्द्रिय में होते हैं वे तो। आहाहा! परन्तु भविष्य में होनेवाले हैं, उन्हें अभी नमस्कार करते हैं। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती—तीन काल में वर्तनेवाले। क्योंकि तीन काल में त्रिकाल को जाननेवाले का जगत में विरह नहीं है। आहाहा! अनादि से सर्वज्ञ चले आये हैं। तो कहते हैं कि अनादि-अनन्त काल सर्वज्ञ होंगे। आहाहा! अभी तो अनन्त काल (में) होंगे। भविष्य का अन्त नहीं। आहाहा! उसमें भी जो अरिहन्त होंगे... यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! मैं तो त्रिकाल णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! मैं तो प्रभु! आपकी स्तुति करने में पहले णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। आहाहा! अभी तो सिद्ध हुए भी नहीं, परन्तु भविष्य में होंगे। उन्हें भी गणधर देव शास्त्र रचने के काल में प्रथम नमस्कार करते हैं।

यहाँ दूसरी बात कहनी है कि अनन्त अरिहन्त भूतकाल में हुए, वर्तमान में संख्यात लाखों हैं, भविष्य में अनन्त होंगे। सबकी सत्ता की प्रतीति आ गयी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनन्त सिद्ध हुए। वर्तमान में अनन्त सिद्ध हैं। वर्तमान संख्यात होते हैं और भविष्य में अनन्त होंगे। प्रभु! मैं सर्व त्रिकालवर्ती सिद्धों को नमस्कार करता हूँ। आहाहा!

निर्मल पर्याय प्राप्त अनन्त सिद्ध भूत, वर्तमान, भविष्य की सत्ता का जिसने स्वीकार किया। आहाहा! नमस्कार करनेवाले की बात है। आहाहा! समझ में आया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। यह तीसरा पद है। णमो—नमस्कार प्रभु मेरा। लोक में, सर्व काल में वर्तनेवाले आचार्य। आहाहा! जिन्हें गणधर नमस्कार करे। अरिहन्त और सिद्ध दो तो पूर्ण परमात्मा हैं। परन्तु यह तो छद्मस्थ हैं। आहाहा! भाई! यह पद कोई अलौकिक है। लोग साधारण मान बैठे, ऐसी चीज़ नहीं है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। गणधर रचना करने के काल में... आहाहा! स्वयं से छोटे आचार्य हों, उन्हें बाहर में वन्दन न करे, परन्तु भविष्य में (होंगे), (अभी) हुए नहीं, अभी होंगे और वर्तमान आचार्य स्वयं से छोटे हों, उन्हें णमो लोए में से निकाल नहीं देते। समझ में आया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। आहाहा! भविष्य में अनन्त आचार्य होंगे, उनकी सत्ता का यहाँ स्वीकार किया है। समझ में आया? यह नीम को बालक तोड़ते हैं, उसमें असंख्य जीव हैं। आहाहा! पूर्व के माता-पिता भी असंख्य उसमें पड़े हैं। लोगों को सत्ता का स्वीकार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

चौथे पद में, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं। वे उपाध्याय कैसे होंगे? समझ में आया? आहाहा! जिन्हें गणधर धर्म के तीर्थकर, जो धर्म के बादशाह, उनके वजीर, गणधर अर्थात् बादशाह तीर्थकर के वजीर, दीवान। आहाहा! वर्तमान सत्ता के स्वीकार की महिमा में यह बात आयी है। वह भी हम पहले एकान्त में करते हैं, उसमें यह करते हैं। फिर यह बोलते हैं न बाहर में? णमो लोए सव्व, अन्दर में पहले यह शुरुआत करते हैं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहन्ताणं। ऐसे णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। आहाहा! साधुपद किसे कहते हैं, भगवान! जिसे गणधर नमस्कार करे। चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में होनेवाले गणधर, वे भी साधु को, वर्तमान में छोटे साधु हों, अन्तर्मुहूर्त में साधु हुए हों और भविष्य में होंगे, (उन्हें नमस्कार करते हैं)। आहाहा! भाई! वह पद क्या है? नवकार पद महामन्त्र है। समझ में आया? है तो विकल्प। पंच पद को नमस्कार करना, वह है तो विकल्प परन्तु शुभभाव में ऐसा आता है। आहाहा! समझ में आया?

अहो! साधु मौजूद नहीं और भविष्य में होंगे अपने रत्नत्रय साधन करके। यह

अधिकार आया है। ७४ (गाथा) आयी है। आहाहा! कहते हैं कि मैं तो भविष्य में होऊँगा। वर्तमान में वह जीव भले निगोद में हो। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! मैं तो त्रिकालवर्ती लोक में विराजमान सन्त के चरण में मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान! यह पाँच पद क्या है! समझ में आया? अब अपने यहाँ ७४ (गाथा) आयी है।

मुमुक्षु : लोक में सब साधुओं को नमस्कार है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी सत्ता है। उनकी सत्ता का स्वीकार करके नमस्कार किया है।

मुमुक्षु : लोक में जितने भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार किया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन के साधु। दूसरे साधु हैं कहाँ? यह यहाँ कहते हैं। अब आयेगा। जैन का अर्थ कि जो स्वरूप का साधन करे, जो पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा अपना स्वरूप, उसका अभेदरत्नत्रय से साधन करते हैं, वे साधु हैं।

मुमुक्षु : स्वयं अपने आप को नमस्कार करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में। यह निश्चय। यह तो व्यवहार की बात चलती है। व्यवहार नमस्कार में इतनी सत्ता का स्वीकार करके नमस्कार करते हैं, यह बात चलती है। समझ में आया? निश्चय नमस्कार तो अपने में निर्विकल्प अनुभव में अपने में नमस्कार होना, वह निश्चय नमस्कार है। परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द से विराजमान अपनी सत्ता, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वीकार करके नम जाना। नमः समयसाराय। यह पहला शब्द है न? पहला है। यह मैं समयसार पूर्णानन्द का नाथ परमात्मस्वरूप हूँ, वह मेरी दृष्टि, ज्ञान, चारित्र से उसे मैं नमस्कार करता हूँ। पण्डितजी! आहाहा! वीतराग का... तो देखो! धर्मी को वीतरागता ही भासित होती है। अरिहन्तों में, सिद्धों में, आचार्यों में, उपाध्यायों में, साधुओं में। आहाहा! भविष्य में वीतरागता होगी, उन्हें वर्तमान में नमस्कार कर देते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ अपने चलता है।

७४ (गाथा) फिर से।

भावार्थ :—केवलज्ञानादि अनन्त गुणों की राशि आत्मा... लो! यह परमात्मा—आत्मा। क्योंकि जो परमात्मपर्याय होनेवाली है, वह परमात्म की पर्याय कहाँ से आयेगी ?

द्रव्यस्वरूप परमात्मा ही है। पर्याय में परमात्मा होगा, अभेद रत्नत्रय की आराधना से होगा। समझ में आया? है? ७४, भावार्थ। ७४ का भावार्थ। गाथा ७४। ७० और ४। पहला भाग। **केवलज्ञानादि...** केवलज्ञान अर्थात्? यहाँ पर्याय की बात नहीं। केवल ज्ञान—अकेला ज्ञान। अकेला पूर्ण ज्ञान, अकेला पूर्ण आनन्द, अकेली पूर्ण श्रद्धा त्रिकाल, हों! आहाहा! समकित है, वह तो पर्याय है। यह तो त्रिकाल सम्यक् श्रद्धा, पूर्ण श्रद्धा का स्वभाव, वह गुणरूप है। पूर्ण वीर्य स्वभाव, पूर्ण वीर्य, अकेले वीर्य का पिण्ड स्वभाव, ऐसे अनन्त गुण का पूर्ण स्वभाव, ऐसी राशि। **अनन्त गुण की राशि...** आहाहा! भाई! भाव का भासन होना चाहिए। ऐसे का ऐसा करे, वह कोई चीज़ नहीं। भाव में उसकी प्रतीति और आस्था आनी चाहिए। और भाव में वह चीज़ क्या है, ऐसी सत्ता का भासन होना चाहिए।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु, यह आत्मा है। आत्मा अपने से अपने को समझाता है, वह गुरु है। तब पर को निमित्त से गुरु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञानादि अनन्त गुणों की राशि... यह परमात्मा। आहाहा! यह परमात्मा पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है। यह **अनन्त गुणों की राशि आत्मा से जुड़े...** आहाहा! मिथ्यात्व रागादि अन्दर के भाव... देखो! विपरीत मान्यता और रागादि अन्तर के भाव और तथा देहादि कर्मादि बाहिर के परभाव ऐसे जो शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं,... आहाहा! अपना अनन्त गुण राशि परमात्मा, उससे भिन्न रागादि, शरीरादि सब परभाव, स्वभाव से विलक्षणवाले सब परभाव हैं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मा से विलक्षण परभाव हैं,... भाषा तो देखो! ओहोहो! भगवान आत्मा अनन्त गुणराशि प्रभु, यह उसका स्वाभाविक लक्षण और इस स्वभावलक्षण से विपरीत मिथ्यात्व राग-द्वेष, शुभ रागादि, वे सब स्वभाव से विलक्षण—विपरीत लक्षणवाले रागादि सबको परभाव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **उनको छोड़कर...** आहाहा! अनन्त ज्ञानादि पूर्ण स्वभाव परमात्मा गुण की राशि, उससे विरुद्ध रागादि और शरीरादि स्वभाव से विपरीत लक्षणवाले वे भाव। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह आत्मा के स्वभाव से विलक्षणवाला भाव है। विलक्षण समझे? विपरीत लक्षण। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त ज्ञानादि गुण की राशि, उसका ऐसा स्वभावलक्षण है, उसे पुण्य और पाप के भाव से मानकर बाहर से ही सब (मानना), वह स्वभाव के लक्षण से विपरीत लक्षण है। आहाहा! ऐसे विपरीत लक्षणवाले परभाव हैं, उनको छोड़कर... देखो! आहाहा! केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप... अब यह केवलज्ञान आया, यह पर्याय आयी। पहले जो केवलज्ञानादि थे वे अनन्त गुण थे, वे केवल—मात्र गुण लिये। अब ऐसे परमात्मा को—ऐसा भगवान आत्मा अनन्त गुणराशि प्रभु, उसे केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप कार्यसमयसार का साधक... भाषा देखो! ऐसा जो परमात्मा है, उसे जो अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि चतुष्टय कार्यसमयसार पर्याय, पर्याय की बात होती है, कार्यसमयसार वह पर्याय है। कारणसमयसार, वह त्रिकाली परमात्मद्रव्य है। समझ में आया? उस कारण का यह कार्य है। ऐसा न देखकर।

यहाँ तो ऐसा जो कारणपरमात्मा है, उसकी कार्य परमात्मा जो समयसार दशा, उसका साधक अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है,... आहाहा! देखो! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी पर्याय में केवलज्ञानादि प्रगट हुए, वह कार्यसमयसार है। उसका साधक, उसका साधक, उसका कारण... आहाहा! उसका साधक अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है,... यहाँ व्यवहाररत्नत्रय को साधक नहीं कहा। आहाहा! लोगों को व्यवहार की इतनी पकड़ है न कि व्यवहाररत्नत्रय परम्परा से कारण है। प्रभु! यह परम्परा व्यवहाररत्नत्रय तो राग है। वह परम्परा कारण कहा है, वह तो उपचार, व्यवहारनय का कथन है। समझ में आया? यह अभी बहुत चला है। अरे, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयरूप कार्यसमयसार का साधक... केवलज्ञानादि मोक्षदशा का साधक। आहाहा! कौन? अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार। यह कहा है। अपना शुद्ध परमात्मस्वरूप का निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय ज्ञान और निश्चय वीतरागता—चारित्र—यह अभेदरत्नत्रय कार्यसमयसार का यह साधक है। तब वे कहें, नहीं; व्यवहार को इष्ट कहा है, व्यवहार साधक है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। वह साधक है ही नहीं। समझ में आया? साधक के कथन दो प्रकार के होते हैं परन्तु साधक दो प्रकार के हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! इतना स्पष्ट है। प्रभु! तू समझकर निर्णय कर। आहाहा! व्यवहार से हो तो राग से वीतरागता होती है? राग से केवलज्ञान पर्याय होती है? आहाहा!

भगवान परमात्मप्रकाश के टीकाकार कहते हैं। आहाहा! देखो! कहते हैं कि केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप... केवलज्ञान में अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है न? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। जो शक्तिरूप है, वह व्यक्तिरूप होने में अभेदरत्नत्रय साधक है। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तेरी प्रभुता पूर्ण पड़ी है, उसकी प्रभुता पर्याय में पूर्ण पर्याय प्रगट करने का साधन अभेदरत्नत्रय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कारण-कार्य एक जाति के हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक जाति के होते हैं। यह तो निमित्त से कथन है। व्यवहाररत्नत्रय, वह रत्नत्रयरूप से वस्तु ही नहीं है। परन्तु निश्चय अभेदरत्नत्रय के साथ ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प देखकर, सहचार देखकर, साधक व्यवहार से-उपचार से कहा गया है। ज्ञान कराने के लिये कि इस काल में राग की मन्दता किस प्रकार की है। आहाहा! यह बड़ा झगड़ा। सोनगढ़ के नाम से विरोध करते हैं। अरे! प्रभु! विरोध नहीं होता। प्रभु! तेरा विरोध होता है, भाई! आहाहा!

अनन्त सन्त, अनन्त आचार्य, उपाध्याय ने क्या कहा? अनन्त चतुष्टय जो भगवान की केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त चतुष्टय जो प्रगट होता है, वह कार्यसमयसार है। उस कार्यसमयसार का साधक कौन? उस कार्यसमयसार का पर्याय कारण कौन? द्रव्य तो कारण त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा! उस **कार्यसमयसार का साधक जो अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है,...** देखो! यह कारण। आहाहा! भगवान! तेरे वीतरागकार्य में तो वीतरागता कारण होती है न? या राग कारण होता है? समझ में आया? पूर्ण वीतरागता प्रगट करने में वीतरागता कारण होती है या सराग कारण होता है? यह बड़ी गड़बड़ है अभी। यह तो सत्य भगवान के पास से आयी हुई बात है। आहाहा! माने, न माने जगत स्वतन्त्र है। 'जामे जितनी बुद्धि है, इतनी दिये बताय, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये।' आहाहा!

भगवान! कहते हैं कि भगवान! तेरा स्वरूप ही भगवान है। अब पर्याय में भगवान होने में साधक कौन? पर्याय में भगवान होने में साधक कौन? कि अभेदरत्नत्रय

साधक । अब इतनी स्पष्टता तो करते हैं, तथापि उसे क्या झगड़ा करने का ? तेरा त्रिकाली वीतरागी स्वभाव, पर्याय में वीतरागता प्रगट करने का वीतरागभाव साधक है । तीनों ही वीतराग हो गये । समझ में आया ? वस्तु वीतरागस्वरूप ही है । त्रिकाल वीतराग परमात्मा कहो या वीतरागस्वरूप कहो, अकषायस्वरूप कहो, शान्तस्वरूप कहो । निश्चय चतुष्टय सहित कहो । आहाहा ! ऐसा वीतरागभावस्वरूप परमात्मा तू है । उसकी पर्याय में वीतरागता... वीतरागता अर्थात् केवलज्ञान । कार्यसमयसार, वीतरागता कार्यसमयसार प्राप्त करने में वीतराग पर्याय कारणसमयसार होती है । आहाहा ! कहो, सुकौशलजी ! ऐसी बात है । आहाहा ! यह बाहर की चीज़ देह, वाणी ऐसी कोई चीज़ नहीं प्रभु तेरी । वह तो जगत की चीज़ है, जगत में रहेगी । तुझसे पृथक् रहेगी । पृथक् रहेगी अभी भी पृथक् है और पृथक् ही रहेगी । आहाहा ! यह सब तेरी चीज़ नहीं, प्रभु ! तुझमें राग होता है, वह तेरी चीज़ नहीं । आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव / राग, वह भी तेरी चीज़ नहीं । उसे तो परभाव कहा । तेरे स्वभाव से विलक्षण परभाव कहा । तेरे लक्षण से विपरीत लक्षणवाला राग को कहा । आहाहा ! वह साधक कैसे होगा ? समझ में आया ? यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा) ।

मोक्षमार्गप्रकाशक में आया नहीं ? कि निश्चयमोक्षमार्ग है, वह एक ही मोक्षमार्ग है । एक कलश में आता है । मोक्षमार्ग तो एक ही है । परन्तु साथ में सहचर में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह मिथ्यात्व नहीं । देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह विकल्प है, राग है । राग को अपना मानना, वह मिथ्यात्व है और राग से अपने में धर्म होता है, कारण भिन्न और कार्य भिन्न, तो इस कारण से यह कार्य (होता है, ऐसा) व्यवहारनय कहता है । ऐसी मान्यता करे तो वह मिथ्यात्व है । समझ में आया ? यह मान्यता करने के लिये नहीं कहा । बीच में ऐसा निमित्त आता है, उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहाररत्नत्रय का आरोप करके कहा है । आहाहा ! परन्तु उसे मान ले कि वही धर्म का साधन है (तो) मिथ्यात्व है । आ गया ? मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवें अध्याय में । ओहोहो !

भाई ! यह तो सत्यमार्ग है । प्रभु ! सत्य को असत्य के आश्रय की आवश्यकता नहीं । राग असत्य है । स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य, अद्रव्य है । समझ में आया ?

स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य भगवान भी अद्रव्य है। उसकी अपेक्षा से द्रव्य है, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है। इस क्षेत्र की अपेक्षा से वह परक्षेत्र, अक्षेत्र है। आहाहा! स्वकाल—त्रिकाल की अपेक्षा से परकाल की पर्याय आदि अकाल है। काल नहीं। और अपने भाव की अपेक्षा से परभाव, अभाव है। देखो! यह परभाव जो कहा... आहाहा! समझ में आया? स्वभाव से विलक्षण राग को परभाव कहा। वह वास्तव में तो स्वभाव की अपेक्षा से अभाव है। वह उसकी अपेक्षा से है। समझ में आया? परन्तु त्रिकाल भगवान के स्वभाव की अपेक्षा से राग अभाव है। आहाहा!

जैसे अपने स्वभाव की अपेक्षा से सब त्रिकाल का भाव अभाव है... आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा के पूर्णानन्द स्वभाव की अपेक्षा से राग, स्वभाव की अपेक्षा से अभाव है। दोनों के लक्षण ही भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया? बात यह है। वाद-विवाद करे तो (पार नहीं आता)। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' किसका वाद करना, प्रभु! आहाहा! तेरी अभिन्न वस्तु वह साधक और अभेदरत्नत्रय से ही प्राप्त होती है। समझ में आया? निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान-स्वसंवेदन, निर्विकल्प चारित्र—वीतराग परिणति, ये तीनों अभेदरत्नत्रय वीतरागपर्याय के साधक हैं। मोक्ष का साधक यह है। आहाहा! समझ में आया? दो साधक कहना, यह तो दूसरे का उपचार करके 'है नहीं', उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। आहाहा! कितनी स्पष्टता है! अरे! भगवान! शास्त्र के अर्थ करने में भी विपरीतता। शास्त्र में जो कहना है, ऐसी दृष्टि करना चाहिए न? या अपनी दृष्टि से शास्त्र का अर्थ करना?

मुमुक्षु : शास्त्र को जो कहना है, वैसी दृष्टि करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वैसी दृष्टि करना चाहिए। आहाहा! जिस दृष्टि से भगवान, सन्तों ने कहा, वह दृष्टि लगाना चाहिए। अपनी कल्पना की दृष्टि नहीं लगाना चाहिए।

मुमुक्षु : हम तो जो शास्त्र में लिखा है, वही वाँचते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या वाँचते हो? परन्तु किस नय का वाक्य है, यह समझे बिना? प्रत्येक गाथा में शब्दार्थ करना, नयार्थ करना कि यह किस नय का वाक्य है।

आगमार्थ करना कि आगम की शैली यह है, अन्यमति की शैली यह है। और भावार्थ। इसमें सार में उपादेय क्या है? उपादेय वीतरागभाव है। और वीतरागभाव का उपादेय वीतराग तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? इतना लिखा है। देखो!

अनन्त चतुष्टयस्वरूप कार्यसमयसार का... आहाहा! कौन कार्यसमयसार? अनन्त चतुष्टयस्वरूप वीतराग केवलज्ञान वह कार्यसमयसार। उसका साधक कौन? **जो अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है,**... आहाहा! अभेदरत्नत्रय कारणसमयसार, वह कार्य का कारण—साधक है। उसे दूसरा कारण कहना... यह तो आया था न तुम्हारे? व्यवहारनय कारण-कार्य की मिलावट करके बात करता है। आहाहा! ऐसा है नहीं। निश्चय तो जैसा है, वैसा यथार्थ कहता है। व्यवहार, ऐसा है नहीं, उसे उपचार से कहता है। ऐसा मान लेना, व्यवहारनय की श्रद्धा मान लेना, वह मिथ्यात्व है। जानने के लिये बराबर है। समझ में आया? अरे! ऐसा सब अब ज्ञान कब करना? बनिया धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता। मुश्किल से घण्टे-दो घण्टे मिलते हों, उसमें सुनने जाये वहाँ ऊपर (सुनानेवाला) कहे कि, वह जय नारायण। आहाहा!

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! ऐसा अवसर मिलना मुश्किल, प्रभु! आहाहा! पृथ्वी, अग्नि, वायु, एकेन्द्रिय, निगोद में से त्रस होना मुश्किल; त्रस में से पंचेन्द्रिय होना मुश्किल; पंचेन्द्रिय में मनुष्य होना मुश्किल; मनुष्य में जैनदर्शन में जैन सम्प्रदाय में उत्पन्न होना मुश्किल और उसमें सत्य बात सुनना मुश्किल और सुनकर अन्दर अनुभव की प्रतीति करना मुश्किल और प्रतीति करने के बाद स्वरूप की स्थिरता—चारित्र्य करना वह मुश्किल। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : जैनधर्म इतना कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म इतना सरल है। सत् सरल है, सहज है, (सुगम है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति है)। श्रीमद् का वचन है। श्रीमद् का यह वचन है। सत् सर्वत्र है, सरल है.... अपना स्वरूप ही सत् है। बाहर में कहाँ शोधना है? है, उसे स्वीकार करना है, उसमें दूसरी क्या चीज़ है? आहाहा! समझ में आया? अनादि अनभ्यास के कारण दुर्लभ कहा है। आहाहा!

शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि ज्ञानियों को विषय दुर्लभ है। अज्ञानी को विषय सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानियों को विषय दुर्लभ है। क्योंकि उसके ऊपर से रुचि उठ गयी है। अज्ञानियों को विषय सुलभ है, धर्म दुर्लभ है। ज्ञानियों को अपना स्वभाव सुलभ है, विषय दुर्लभ है। शास्त्र में यह शब्द है, हों! आहाहा! आधार इतने सब याद न हों। है यह शास्त्र की भाषा। सिद्धान्त की भाषा है। बारह भावना में है। समझ में आया? आहाहा!

कार्यसमयसार का साधक... यहाँ तो अपने साधक के ऊपर वजन आया न? आहाहा! **अभेदरत्नत्रयरूप कारणसमयसार है...** यह साधक तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि **उसरूप परिणत हुए...** आहाहा! स्वभावसन्मुख की सम्यग्दर्शनदशा, सन्मुख की ज्ञानदशा स्व और चारित्र, ऐसे अभेदरत्नत्रयरूप परिणत हुआ। अभेदरत्नत्रय साधक है... साधक है... ऐसा कथन नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **उसरूप परिणत हुए...** सम्यग्दर्शन—निश्चय—ज्ञान—चारित्ररूप परिणत हुआ—परिणमन में ऐसा भाव आया। **अपने शुद्धात्मस्वभाव को चिन्तवन कर...** आहाहा! क्या कहते हैं? कार्यसमयसार का साधक अभेदरत्नत्रय, निश्चय सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र, वह निश्चय सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्ररूप परिणत हुए **अपने शुद्धात्म स्वभाव को चिन्तवन कर...** आहाहा! समझ में आया?

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।

जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥५॥

स्वभाव से एकत्व, राग से विभक्त, ऐसे आत्मा को 'तं एयत्तविहत्तं दाएहं' दिखाऊँगा। आहाहा! 'दाएहं अप्पणो सविहवेण' अपने वैभव की परिणति से मैं दिखाऊँगा। आहाहा! भगवान कहते हैं, ऐसा मैं कहूँगा - ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में ऐसा पाठ है। कहते हैं, ऐसा नहीं। मैं तो मेरे अनुभव निज वैभव से कहूँगा। भगवान कहते हैं, इसलिए कहूँगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! शैली तो देखो! सन्तों की शैली तो देखो! आहाहा! यह दिग्म्बर सन्त!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेदरत्नत्रय कहा। उस अभेदरत्नत्रय से परिणत हुआ।

उसका ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। अभेदरत्नत्रय से परिणत होकर उसका ध्यान कर, उसका अनुभव कर। आहाहा! समझ में आया या नहीं कुछ? सेठ! भाषा तो थोड़ी सादी है। भाव भले गहरे हों। रामबाण है। राम का बाण फिरे नहीं। यह वाणी जिसे परिणमे...

परिणत हुए अपने शुद्धात्म... अर्थात् त्रिकाली। **स्वभाव को चिन्तवन कर...** चिन्तवन का अर्थ अनुभव। चिन्तवन अर्थात् विकल्प से चिन्तवन, ऐसा नहीं। समझ में आया? भाई! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा... त्रिकाली अरिहन्त, त्रिकाली सिद्ध, त्रिकाली आचार्य। उन्होंने कहा हुआ मार्ग है, वह कौन कहे! आहाहा! उसकी महिमा का पार नहीं। भगवान... साधु भी अभेदरत्नत्रय में आये, उनकी महिमा क्या! जिन्हें रात्रि... 'पिछली रयनि में' आया न? छहढाला में। पिछली रयनि में... आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है, आनन्द की धारा जिनकी मोहरछाप अन्दर है, उनकी निद्रा भी एक आसन ... बदले नहीं। आहाहा! देखो तो सही! यह परमेश्वरी पद है। परमेश्वर पद में सम्मिलित हैं। उनको नींद भी इतनी आती है। यहाँ तो दो-दो, चार घण्टे निद्रा ले और हम साधु हैं। अरे! प्रभु! क्या कहें? भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं। तीनों काल के साधु की दशा ही ऐसी है। समझ में आया? ऐसा कि यह तो चौथे काल के साधु की बात है, ऐसा लोग कहते हैं। पण्डितजी स्पष्टीकरण करते हैं।

मुमुक्षु : अवसर्पिणी काल....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आत्मा को क्या है? आत्मा को काल लागू नहीं पड़ता। आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में कहा है। काल निमित्त है, परन्तु काल हेय है। द्रव्यसंग्रह में लिया है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। द्रव्यसंग्रह में, हों! बहुत वर्ष पहले। (संवत्) १९८४ के वर्ष (की बात है)।

मुमुक्षु : अपनी निर्बलता का स्वीकार तो करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार तो करे, भगवान! १९८४ के वर्ष में वाँचते थे। यहाँ

तो बहुत वर्ष हुए न! १६ और ३२ = ४८ वर्ष हुए। तो वह द्रव्यसंग्रह हम वाँचते थे। वहाँ एक भाई दामनगर रहते हैं न, दामोदर सेठ गृहस्थ है। यह उनके साथ बात करते थे कि काल में होना हो वह होता है। ऐसा होता है, अमुक होता है, ढींकणा होता है। उस समय ही मैं बराबर सामने यह द्रव्यसंग्रह वाँचता था। (संवत्) १९८४ के वर्ष की बात है। ज्येष्ठ महीने की। १९८४ के वर्ष में चातुर्मास करने के लिये राणपर जाना था। राणपर है न? वहाँ चातुर्मास था, तो वहाँ द्रव्यसंग्रह वाँचते थे। ४८ वर्ष पहले की बात है। उसमें ऐसा आया कि काल हेय है। चीज़ है परन्तु वह हेय है। आश्रय करनेयोग्य, लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। भगवान आत्मा का आश्रय करना। आहाहा! समझ में आया? उस समय तो बहुत चर्चा चली थी।

मुमुक्षु : ४८ वर्ष पहले?

पूज्य गुरुदेवश्री : ४८ वर्ष पहले, ५४ वर्ष पहले।

मुमुक्षु : तो द्रव्यसंग्रह यहाँ से प्रकाशित हुआ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तुम्हारा प्रकाशित किया हुआ है। हमारे पास कहाँ था? हम तो उसमें (—मुँहपत्ती में) थे। समयसार, प्रवचनसार सब वाँचन किया। १९७८ के वर्ष। यह १९८४ के वर्ष। यह तो वाँचते थे तब काल हेय है। इससे पहले भी द्रव्यसंग्रह तो वाँचते थे। परन्तु बराबर अधिकार काल हेय का आया था। द्रव्यसंग्रह में है। समझ में आया? हम दरवाजे में बैठे थे। बारणा समझे? दरवाजा। ऐसे दरवाजे के बाहर बैठे थे, वहाँ जीवराजजी बैठे और सेठ उनकी बात करते थे। ... क्योंकि हमारे साथ राणपुर चातुर्मास करने आनेवाले थे। इसलिए जरा गड़बड़ कराने... अरे, भगवान! क्या करता है? प्रभु! काल तो हेय है। आहाहा! निश्चय से त्रिकाली वस्तु वह काल है। क्या कहा? त्रिकाली वस्तु, वह स्वकाल है और एक समय की पर्याय, वह परकाल है। यह बात आ गयी है। कलशटीका! (२५२ कलश) क्या कहते हैं?

स्वद्रव्य आत्मा। स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु। स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। वस्तु का प्रदेश कहा। वस्तु में प्रदेश, ऐसा नहीं। वस्तु के प्रदेश एकवचन है। 'और स्वकार्य...' अर्थात् वस्तुमात्र की मूलदशा। मूलदशा अर्थात् त्रिकाल। स्वभाव

अर्थात् वस्तु की मूल की शक्ति। परद्रव्य अर्थात्? अब परद्रव्य की व्याख्या। **सविकल्प भेदकल्पना...** अखण्डानन्द प्रभु में विकल्प करना कि यह द्रव्य है, यह भाव है, ऐसा भेद विकल्प करना, वह परद्रव्य है। भेदकल्पना परद्रव्य है। आहाहा! है?

परक्षेत्र अर्थात् वस्तु का आधारभूत प्रदेश एकरूप त्रिकाल। निर्विकल्प वस्तुमात्र कहा था। वह प्रदेश सविकल्प भेद। सविकल्प भेद करना कि यह असंख्य प्रदेश है। यह भेद करना, वह परक्षेत्र है। आहाहा! कलशटीका में है। राजमल की टीका। लोगों को वाँचन नहीं, स्वाध्याय नहीं, निश्चय पक्ष की बात क्या है, वह समझे नहीं। व्यवहार है परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं है। दो नय का विषय है। दो नय का कथन जैनशासन में है। परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि व्यवहारनय का विषय है, परन्तु व्यवहारनय का विषय निश्चय को मदद करनेवाला है, ऐसा नहीं है। दो नय तो विरुद्ध है। विरुद्ध आता है न? विरोध्वंसिनी। उभयनय विरोध्वंसिनी। चौथा पद आता है, चौथा कलश (समयसार)।

यहाँ दूसरा कहना है। परकाल द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था। अवस्था अर्थात् वस्तु त्रिकाल। त्रिकाल को स्वकाल कहते हैं। आहाहा! ऐसे देखो तो द्रव्य त्रिकाल है, क्षेत्र त्रिकाल है चतुष्टय में,.... नय। काल वर्तमान की अवस्था है और भाव त्रिकाल भाव है, ऐसा है। परन्तु यहाँ तो अभेद लेकर त्रिकाल वस्तु को स्वकाल कहा। एक समय की पर्याय को यहाँ परकाल कहा। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! ऐसा उत्तराधिकार छोड़ गये हैं सन्त और उस उत्तराधिकार का ज्ञान भी न करे। आहाहा! पिता कुछ पूँजी छोड़ जाये तो लड़के एकदम पैसे ले लेते हैं। उन्हें निकालने से पहले चाबी-बाबी ले लेते हैं। चाबी ले ले। सन्त ऐसा उत्तराधिकार छोड़ गये हैं, उसकी सम्हाल तो करो। आहाहा!

क्या कहा? यह अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना परकाल। आहाहा! गजब बात है। परकाल तो यहाँ है नहीं। यहाँ तो परकाल त्रिकाल वस्तु जो है, वह स्वकाल और उसकी एक समय की वर्तमान अवस्था, वह परकाल। आहाहा! समझ में आया? परकाल की तो यहाँ बात ही नहीं करते। आहाहा! तेरी चीज़ प्रभु त्रिकाल वस्तु है, वही तेरा स्वकाल है। समझ में आया? द्रव्य की मूल की अवस्था। अवस्था शब्द से वस्तु, हों! यहाँ।

अवस्था शब्द से पर्याय नहीं। त्रिकाल अवस्थ। वस्तु त्रिकाल अवस्थ, वह अवस्था। और एक समय की द्रव्य की पर्याय, उसे यहाँ परकाल कहा है। देखो! परकाल द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्था भेद कल्पना परकाल स्वभाव। आहाहा! राजमलजी टीका (करनेवाले) गृहस्थ पण्डित भी कैसी करते हैं! पहले के पण्डित अर्थात्... आहाहा! टोडरमल, बनारसीदास, राजमल, मोक्षमार्ग (प्रकाशक), समयसार नाटक में बनारसीदास ने लिखा है। 'राजमल जैनधर्मी, जैनधर्म के मर्मी।' नाटक समयसार में है। जैनधर्म के मर्मी। बनारसीदास ने लिखा है और उसमें से यह समयसार नाटक बनाया है। आहाहा! और जिनवाणी घर-घर में समयसार नाटक कथा घर-घर में ऐसी बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : उसका आपने किया। घर-घर में आपने पहुँचाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो बहुत चला है। समयसार तो बहुत चला। वस्तु यह है और उसमें चारों अनुयोगों का सार आ जाता है।

मुमुक्षु : समयसार, प्रवचनसार पहले वाँच लिया। परमात्मप्रकाश वाँचने का बाकी था तो अब वाँचते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वाँचन किया है पहले। व्याख्यान में आ गया है पहले। यह तो अभी एकाध—दो बार हो गया। खबर नहीं। एक बार तो वाँचन हो गया है। छह—सात वर्ष पहले। यह तो अभी लिया। कहा, यह लो भाई यहाँ। विहार करके आये न? सवेरे समयसार, दोपहर में परमात्मप्रकाश। देखो!

परभाव। परभाव किसे कहते हैं? परद्रव्य का परभाव यह नहीं; राग का परभाव, यह नहीं। आहाहा! है? 'परभाव द्रव्य की सहज शक्ति का पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेद कल्पना' वह परभाव। आहाहा! वस्तु जो भाव त्रिकाल भाव एकरूप है, उसमें एक भाव की भिन्न कल्पना करना कि यह ज्ञान और दर्शन, वह परभाव है। समझ में आया? देखो! यह व्याख्या! ज्ञानचन्दजी! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चार की व्याख्या। यह राजमलजी गृहस्थ थे, हों! गृहस्थ क्या, आत्मा या समकित में अन्तर है? तिर्यच का समकित और सिद्ध के समकित में बिल्कुल अन्तर नहीं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है न? रहस्यपूर्ण

चिट्ठी में। टोडरमलजी (कृत) तिर्यंच का समकित हो और सिद्ध का हो। समकित में क्या अन्तर है? स्थिरता—चारित्र में अन्तर हो, वह दूसरी बात है। समझ में आया? पहली वस्तु का ही जहाँ ठिकाना नहीं, वहाँ चारित्र कहाँ से आया तुझे? आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं समझते।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय की तो कहाँ से खबर हो। आहाहा! २५२ है। कलशटीका में। कलशटीका है न? उसमें से समयसार नाटक बनाया।

यहाँ कहते हैं कि **और उसी को उपादेय समझ**। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु त्रिकाल, उसमें से वीतरागी पर्याय केवलज्ञान प्राप्त करने को, कार्यसमयसार प्रगट करने को अभेदरत्नत्रयरूपी कारणसमयसार, वह साधक है। तो अभेदरत्नत्रय में परिणत होकर भगवान आत्मा को उपादेय करके उसका ध्यान कर। आहाहा! पहले ज्ञान में निर्णय तो करे कि यह बात ऐसी है। आहाहा! लो! **उसी को उपादेय समझ**। परन्तु कहाँ? किस काल में? कि उसरूप परिणत हो, उस काल में। समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि-ज्ञान और रमणता, ऐसे अभेदरत्नत्रय के काल में भगवान (आत्मा) उपादेय है। आहाहा! यह ७४ गाथा हुई। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७५

अथ निश्चयेनाष्टकर्मसर्वदोषरहितं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसहितमात्मानं जानीहीति कथयति-

७५) अट्टहं कम्महं बाहिरउ सयलहं दोसहं चत्तु।
दंसण-णाण-चरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु।।७५।।
अष्टभ्यः कर्मभ्यः बाह्यं सकलैः दोषैः त्यक्तम्।
दर्शनज्ञानचारित्रमयं आत्मानं भावय निश्चितम्।।७५।।

अट्टहं कम्महं बाहिरउ सयलहं दोसहं चत्तु अष्टकर्मभ्यो बाह्यं शुद्धनिश्चयेन ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मभ्यो भिन्नं मिथ्यात्वरागादिभावकर्मरूपसर्वदोषैस्त्यक्तम्। पुनश्च किंविशिष्टम्। दंसणणाणचरित्तमउ दर्शनज्ञानचारित्रमयं शुद्धोपयोगाविनाभूतैः स्वशुद्धात्म सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रैर्निवृत्तं अप्पा भावि णिरुत्तु तमित्थंभूतमात्मानं भावय। दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूप-निदानबन्धादिसमस्तविभावपरिणामान् त्यक्त्वा भावयेत्यर्थः। णिरुत्तु निश्चितम्। अत्र निर्वाण-सुखादुपादेयभूतादभिन्नः समस्तभावकर्मद्रव्यकर्मभ्यो भिन्नो योऽसौ शुद्धात्मा स एवाभेदरत्नत्रय-परिणतानां भव्यानामुपादेय इति भावार्थः।।७५।। एवं त्रिविधात्मप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये पृथक् पृथक् स्वतन्त्रं भेदभावनास्थलसूत्रनवकं गतम्।

आगे निश्चयनयकर आठ कर्म और सब दोषों से रहित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी आत्मा को तू जान, ऐसा कहते हैं -

जो है आठों कर्म रहित एवं समस्त दोषों से भिन्न।
दर्श ज्ञान चारित्रमयी शुद्धात्म भावना करो सभी।।७५।।

अन्वयार्थ :- [अष्टभ्यः कर्मभ्यः] शुद्धनिश्चयनयकर ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से [बाह्यं] रहित [सकलैः दोषैः] मिथ्यात्व रागादि सब विकारों से [त्यक्तम्] रहित [दर्शनज्ञानचारित्रमयं] शुद्धोपयोग के साथ रहनेवाले अपने सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप [आत्मानं] आत्मा को [निश्चितम्] निश्चयकर [भावय] चिंतवन कर।

भावार्थ :- देखे, सुने, अनुभवे भोगों की अभिलाषारूप सब विभाव-परिणामों को छोड़कर निजस्वरूप का ध्यान कर। यहाँ उपादेयरूप अतीन्द्रियसुख से तन्मयी और सब भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मसे जुदा जो शुद्धात्मा है, वही अभेद रत्नत्रय को धारण करनेवाले निकटभव्यों को उपादेय है, ऐसा तात्पर्य हुआ।।७५।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल १४, रविवार
दिनांक-०८-०८-१९७६, गाथा-७५-७६, प्रवचन-५६

७५ गाथा। आगे निश्चयनयकर... त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि रखनेवाला नय, उससे आठ कर्म और सब दोषों से रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी आत्मा को तू जान,... सूक्ष्म विषय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान तीन का उपयोग स्वभाव में लग जाए, तब उसे रत्नत्रय की आराधना में आत्मा उपादेय है, ऐसा आया। क्या कहते हैं? देखो! गाथा।

(७५) अट्टहं कम्महं बाहिरउ सयलहं दोसहं चत्तु।
दंसण-णाण-चरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु ॥७५ ॥

शुद्धनिश्चयनयकर... त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से देखनेवाला नय। यह ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित... प्रभु आत्मा है।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या, अब।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उसमें आठ कर्म का तो अभाव है। परद्रव्य है। आठ कर्म परद्रव्य है। वर्तमान में आत्मस्वरूप में उनका अभाव है। आहाहा! और दोषरहित मिथ्यात्व रागादि सब विकारों से रहित... अभी, हों! आहाहा! यहाँ तो भावना के समय के काल की बात लेनी है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र निश्चय, उसके उपयोग को आत्मा में लगाकर आत्मा का ध्यान करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। उसके अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों को शुद्ध चैतन्य का उपयोग लगाने से, तीन अकेले नहीं। उपयोगसहित। उपयोग के साथ में तीन जो बोल हैं, उनसे आत्मा का आश्रय करके ध्यान करना। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? शुद्धोपयोग के साथ... है न? क्या कहते हैं? कि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो है, परन्तु जब विकल्प है तब तो उपयोग पर में है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

जो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की श्रद्धारूप प्रतीति, अन्तर का स्वसंवेदन ज्ञान और स्वस्वरूप में स्थिरता—आचरण, इन तीन में उपयोग को लगाकर। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? तीनों को, परन्तु तीनों में अन्तर में उपयोग लगाकर ध्यान करना। तीन है और शुभ आदि विकल्प है, उन्हें छोड़कर, यहाँ कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात बात, भाई!

शुद्धोपयोग के साथ... अर्थात् शुद्ध चैतन्यघन परमात्म। यह परमात्मप्रकाश है न! परमात्मस्वरूप जो शुद्ध चैतन्यरसकन्द, उसके स्वसन्मुख की प्रतीति दर्शन, स्वसन्मुख का स्वसंवेदन ज्ञान और स्वसन्मुख की रमणता, ये तीनों। परन्तु अपने उपयोग में लेकर, तीन का उपयोग में ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं ?

ये तीनों हुए हैं। त्रिकाली ज्ञायकभाव की प्रतीति, ज्ञान और आनन्द की दशा निश्चयरत्नत्रय हुआ है, परन्तु जब तक उस निश्चयरत्नत्रय की अस्ति होने पर भी उसका उपयोग विकल्प और शुभभाव में है, तब तक यहाँ शुद्धोपयोग नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अलौकिक मार्ग है, भाई! आहाहा! **शुद्धोपयोग के साथ...** अकेला निश्चयरत्नत्रय है, उसके साथ अन्दर ध्याता, ध्यान (और ध्येय के विकल्प को) भूलकर अन्तरस्वरूप में उपयोग लगाकर। आहाहा!

अपने सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप आत्मा को निश्चयकर चिन्तवन कर। चिन्तवन कर का अर्थ ध्याता है। जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी, हों! परमात्मस्वरूप जो पूर्णानन्द है—स्वद्रव्य, जो ज्ञानमय, अकेली सर्वज्ञ ज्ञानमय वस्तु, उसकी स्वसन्मुख की प्रतीति.... आहाहा! स्वसन्मुख का स्वसंवेदनज्ञान और स्वसन्मुख में आनन्द में रमणता, इन तीनों को अभेदरत्नत्रय कहा जाता है। निश्चयरत्नत्रय—वास्तविक मोक्षमार्ग। परन्तु वह भी उपयोग को जोड़ देना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! क्या कहते हैं ? कि सम्यक् भगवान का अभेद निश्चयरत्नत्रय हुआ परन्तु उस समय जो राग दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभ विकल्प का उपयोग हो, तब तक उसका पूर्ण साधन नहीं है। यह कहते हैं। उस विकल्प को छोड़कर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम में ध्रुव में उपयोग लगाकर, अभेदरत्नत्रय का उपयोग अन्दर लगाकर। आहाहा! कठिन बात, बापू! मार्ग तो यह है, प्रभु!

पर्याय में संसार है, उसे छोड़कर। एक समय की पर्याय है, उसकी बुद्धि भी

छोड़कर। क्योंकि परद्रव्य है, वह तो भिन्न है ही, परन्तु राग है, वह वास्तव में परद्रव्य है। अरे! एक समय की पर्याय भी त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है। आहाहा! उस परद्रव्य की दृष्टि छोड़कर अर्थात् संयोग की, राग की और पर्याय की (दृष्टि छोड़कर)। समझ में आया? यह मार्ग। आहाहा! इसके ज्ञान में इस बात का निश्चय अभी नहीं है। यह किस ओर झुकता है और किस ओर के झुकाव से मानता है? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान स्वद्रव्य ज्ञानविग्रह—अकेला ज्ञान जिसका शरीर। संयोग नहीं, राग नहीं, अल्पज्ञपना नहीं, पर्याय नहीं। आहाहा! त्रिकाली परमब्रह्म प्रभु, परम ईश्वरस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि अन्तर्मुख करके, अन्तर्मुख का ज्ञान करके। आहाहा! शास्त्र ज्ञानादि नहीं। समझ में आया? और अन्तर्मुख की रमणता प्रगटी होने पर भी शुद्ध उपयोग में लगाकर आत्मा में उपयोग लगा दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! भगवान का मार्ग बहुत दुर्लभ है। यह एकान्त है। समझ में आया? सुकौशलजी! (सम्यक्) एकान्त है। आहाहा!

त्रिकाली भगवान आत्मा में स्वभाव के दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य हुए हैं, तदुपरान्त उपयोग उसमें लगा दे। तीन में। समझे? तीन का भाव हो और राग में उपयोग हो, तब तक उसके उपयोग में आत्मा साधक नहीं हुआ। वह यह दशा कहते हैं। पहले ऊपर आया था न? ७४ में आया था न?

अपने शुद्धात्म स्वभाव को चिन्तवन कर और उसी को उपादेय समझ। नहीं? अनन्त चतुष्टयरूप कार्यसमयसार का साधक... परसों आया था न? आहाहा! परम वीतराग प्रभु आत्मा, वह वीतरागमूर्ति प्रभु है, अनादि, उस वीतराग प्रभु को कारणसमयसार गिनकर, उसका कार्य केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द वह कार्यसमयसार। उस कार्यसमयसार का कारण अभेदरत्नत्रय उसका साधक। समझ में आया? उसे यहाँ ऐसा कहा कि अभेदरत्नत्रय है तो भी उसे उपयोग में अन्दर में जोड़ दिया। उस काल में जो आराधक है, उसे उत्कृष्ट साधक कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात अब। समझ में आया?

शुद्धोपयोग के साथ रहनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान। अकेले निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए, परन्तु उसमें अन्तर में उपयोग लगाकर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य उपयोग के साथ लगाकर। आहाहा! ऐसी बात कहते हैं, भगवान! वेदन तो पर्याय का होता है न?

समझ में आया ? ध्रुव का वेदन नहीं होता। संसार का दुःख का वेदन भी पर्याय में है, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का वेदन भी पर्याय में है और सिद्ध का वेदन भी पर्याय में है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा (के ऊपर) नजर लगा दे। त्राटक समझते हो ? नहीं समझते ? यह घड़ी के लोलक में ऐसे-ऐसे टक... टक... टक... (होता है)। टकटकी लगा दे। लक्ष्य में एक ओर एकाकार हो जाना, उसे त्राटक कहते हैं। यह भगवान आत्मा त्रिकाल को उपयोग में लेकर उसमें टकटकी लगा दे। आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो!

भाई! यह मनुष्यदेह मिली। इसमें प्रथम तो सम्यग्दर्शन ही कर्तव्य है। तदुपरान्त ज्ञान-चारित्र भी होता है। अकेले सम्यग्दर्शन से कहीं मुक्ति नहीं होती तथा अकेले ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन-ज्ञान अन्तर में हुआ, तदुपरान्त अन्तर में लीनतारूपी चारित्र हो, तब मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त यहाँ तो इतनी बात की है। आहाहा! भगवान आत्मा के निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, परन्तु वह मात्र हुआ, ऐसा नहीं, उसके साथ अन्दर उपयोग में जोड़। उपयोग के साथ तीनों रत्न आ जाते हैं, उसका नाम साधक। आहाहा!

मुमुक्षु : क्रमबद्धपर्याय में उपयोग लगा देना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में लगाना है। पर्याय में कहाँ लगाना है ?

दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय है, वह तो पर्याय है। और वह पर्याय उत्पन्न हुई, तथापि जब तक शुभउपयोग में विकल्प है, तब तक रत्नत्रय का शुद्ध उपयोग अन्दर में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! यह ऐसी बात है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय तो झूठा है ही, वह तो नहीं ही... आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा का निश्चयरत्नत्रय हुआ, स्वभाव की सन्मुखता से पूर्णानन्द के नाथ के अनुभव में प्रतीति हुई, अनुभव-ज्ञान हुआ और चारित्र-लीनता भी हुई, परन्तु उस उपयोग के साथ तीनों रत्नत्रय को जोड़ दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसकी बात करते हैं। निर्विकल्प।

मुमुक्षु : उपयोग किसे कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपयोग निर्विकल्प हो, उसे उपयोग कहते हैं।

मुमुक्षु : निर्विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता ? व्यवहार के विकल्प का भी लक्ष्य छोड़कर, जो उपयोग विकल्प में है; परिणति है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय परिणति तो है, परन्तु जब तक अभी विकल्प में है, तब तक उसका उपयोग अन्दर में नहीं। आहाहा! यह उत्कृष्ट बात लेते हैं। गजब शैली है। दिगम्बर मुनियों की ऐसी बात... आहाहा! लोग वाड़ा में रहे, उन्हें खबर भी नहीं होती। अमरचन्दभाई! यह तो एक सम्प्रदायरूप से। दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म हुआ, वह भी एक भाग्य तो है न! दूसरे सम्प्रदाय में तो मिथ्यादृष्टि के सम्प्रदाय है। इस एक सत्यदर्शन में जन्म तो हुआ। पश्चात् इसका भान हो या न हो, यह बाद में। इतना तो भाग्य। आहाहा! परम जैनदर्शन दिगम्बर दर्शन में जन्म हुआ। परन्तु उससे क्या ? कहते हैं।

यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर, भगवान आत्मा के निश्चयरत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके भी... आहाहा! वहाँ उपयोग लगा दे। सेठ! आहाहा! कहो, पण्डितजी! भगवान! तेरे सुख का पंथ यह है। तेरा पंथ यह है। वे तेरापंथी कहते हैं न? स्थानकवासी में तेरापंथी। अपने (दिगम्बर में) तेरापंथ और बीसपंथ दो कहते हैं। यह तेरा पंथ है, प्रभु! समझ में आया ? आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! भगवान! यह तो तेरे निहाल होने का रास्ता है। यह पैसा-बैसा धूल मिले, वह निहाल नहीं। वह तो सब... लक्ष्मी हमारी (माननेवाले तो सब) पागल हैं। यहाँ तो पर्याय मेरी और पर्याय जितना (मैं), वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पर मेरा, राग मेरा और पर्याय जितना मैं हूँ, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

एक समय की पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। नियमसार में ५० वीं गाथा में। क्योंकि एक समय की पर्याय में कहीं पूर्ण वस्तु आयी नहीं। एक अंश है, वह तो व्यवहार आत्मा है। आहाहा! निश्चयआत्मा तो त्रिलोकनाथ परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! पूर्ण स्वरूप एक समय में जो अनादि का है, उस पूर्ण स्वरूप सन्मुख की दृष्टि (हुई), वह कहीं साधारण बात है, भाई! समझ में आया ? आहाहा!

यह श्रीमद् में आता है। श्रीमद् में। ४५९ पृष्ठ पर बहुत सरस है। कल कहा था। सर्व से सर्व प्रकार से मैं एक भिन्न चीज़ हूँ। पर्याय से भी भिन्न हूँ। ऐसी निर्विकल्प चीज़

आनन्द का धाम प्रभु आनन्द सागर आत्मा वह मैं हूँ। निर्विकल्प हूँ। शुद्ध चैतन्यघन हूँ। उसमें विकल्प क्या? विक्षेप क्या? खेद क्या? आहाहा! समझ में आया? भगवान आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय प्रभु, उस ओर के झुकाववाले को विकल्प क्या? खेद क्या? आहाहा! कहो, शशीभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! आचार्य गजब काम करते हैं न! ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय। अर्थात्? त्रिकाली नहीं। वर्तमान में दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, उसमय। उसमय अर्थात् वहाँ उपयोग लगा दिया। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब गाथायें हम याद कर लें....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी गाथा? कौन याद करे? किसी को याद करे तो विकल्प आता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, परन्तु जब तक इसका लक्ष्य शास्त्र वाँचना, सुनना, उसमें हो, तब तक तो विकल्प है। वस्तु है। परन्तु अभी विकल्प में है। उपयोग विकल्प में है। उपयोग को वहाँ से छोड़कर निर्विकल्प में लगा देना।

मुमुक्षु : वह भी छोड़ देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह कहते हैं। आया न? 'अष्टभ्यः कर्मभ्यः सकलैः दोषैः' आया या नहीं पहले? आया न! राग, वह दोष है।

मुमुक्षु : कर्म की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म नहीं, राग। दो आये। अष्टकर्म से रहित और सर्व दोष से रहित, दो आये हैं। समझ में आया? आहाहा!

बाल-गोपाल भगवान विराजता है। आहाहा! समयसार की १७वीं गाथा में तो ऐसा कहा कि ऐसा अनुभूति भगवान स्वभावभाव त्रिकाल... आहाहा! वह सदा सर्व को ज्ञान की पर्याय में वही अनुभव में आता है। आहाहा! क्या कहा? ज्ञान की जो प्रगट पर्याय है, अज्ञानी की भी, उस पर्याय में त्रिकाली ज्ञायक अनुभूतिस्वरूप भगवान त्रिकाल, वही एक समय की पर्याय में अनुभव में आता है। क्योंकि पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। तो ज्ञान की पर्याय में भगवान स्वप्रकाशक का भान आता है।

अज्ञानी को भी (आता है), परन्तु अज्ञानी की दृष्टि पर्याय के ऊपर है, द्रव्य के ऊपर नहीं। समझ में आया? क्या कहा यह? कि जो अनादि की ज्ञान की पर्याय प्रगट है... विशेष तो क्षयोपशमवाले जीव लिये हैं न मनुष्यरूप से? वह ज्ञान की पर्याय जो है, उस पर्याय में त्रिकाली वस्तु ही अनुभव में आती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : क्षयोपशम ज्ञान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षयोपशम ज्ञान में। वह पर्याय है, उसका स्वभाव क्या? पर्याय ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। तो पर्याय में स्वप्रकाशक आता है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उसके ऊपर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! क्या काम किया है न!

‘सदा सबको...’ ऐसा पाठ है। सौ समझते हो? सबको। सदा सबको **आबाल-गोपाल सबको सदाकाल...** बालक से लेकर वृद्ध सबको अपनी ज्ञानपर्याय में भगवान पूर्णानन्द का नाथ ही अनुभव में आता है। क्योंकि पर्याय का स्वभाव स्वप्रकाशक और परप्रकाशक है। तो स्वप्रकाशक पर्याय में स्वअनुभव आता है। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है, इसलिए वह अनुभव में आता है, उसका उसे ख्याल नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो मोक्ष के मार्ग की क्रीड़ा है। आहाहा!

यह तो नटवा की बात याद आयी। वह आता है न? ऐलचीकुमार डोरी पर नाचता है न? डोरी (के ऊपर)। वह कन्या तो है उसकी... क्या कहलाती है? नट की। नट की स्त्री थी न कन्या? नट की कन्या बहुत रूपवान थी। ऐलचीकुमार सेठ का पुत्र था। तो उस कन्या के साथ विवाह करने का भाव हुआ, तो उसके पिताजी कहे... नटनी के पिता। समझ में आया? एकबार ऐसा नाच करो कि राजा भी प्रसन्न हो जाये। नाचता है। ऐसा नाचता है। सेठ का पुत्र। राजा प्रसन्न नहीं होता। क्योंकि राजा की नटनी के ऊपर दृष्टि थी। समझे? यदि यहाँ प्रसन्न हो जाऊँ, पास हो तो कन्या उसको जाये। मुझे कन्या नहीं आवे और उसे—राजा को विवाह करने का भाव (था)। आहाहा! राजा को प्रसन्न करने के लिये वह कितना नाचा परन्तु प्रसन्न नहीं हुआ। उसमें उसने ऊपर डोरी पर नाचते (नाचते) मुनि को देखा। नग्न मुनि दिगम्बर गृहस्थ के यहाँ आहार लेने गये। जवान कन्या बत्तीस वर्ष की सेठ की रूपवान पुत्री। ऐसे मुनि को आहार देती है। मुनि नजर नहीं करते। ऊपर से देखता है। आहाहा! और बाई और मुनि दोनों। बाई उन्हें

आहार देती है, कहते हैं न? आहार देती है। ऊपर नजर नहीं। आहाहा! यह ऐलची ने देखा। अरे रे! मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ, राजा को पसन्द नहीं। यह मुनि धन्य है। यह सामने जवान स्त्री रूपवान और सामने आहार देती है, नजर नहीं करते। आहाहा! ऐसे विचार में चढ़ गया। परन्तु वे लोग तो फिर कहते हैं, वह झूठी बात है। वहाँ केवल (ज्ञान) पाया, ऐसी बातें तो है नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर में ऐसा आता है। डोरी पर नाचे और केवलज्ञान कहाँ से हो वहाँ?

यहाँ दृष्टि में ऐसा आया कि ओहोहो! मैं इस कन्या को प्रसन्न करना चाहता हूँ तो मैं सेठ का पुत्र... नाचने से प्रसन्न हो, ऐसा तो नाचता हूँ। और इन धर्मात्मा को यह कन्या आहार देती है सेठ की पुत्री, (किन्तु) सामने नजर नहीं। धन्य अवतार! आहाहा! मनुष्यपने में कर्तव्य हो तो यह है। आहाहा! समझ में आया? फिर मुनिपना लिया। यहाँ तो केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान तो कहाँ है? नाचते-नाचते केवलज्ञान कहाँ से हो? परन्तु भाव ऐसा हुआ। आहाहा!

तीन लोक के नाथ में प्रसन्न हुए साधु स्त्री की प्रसन्नता में आते नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर की प्रसन्नता प्रगट हुई है, आनन्द के नाथ की (प्रसन्नता) प्रगट हुई है। 'जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं।' आहाहा! 'अज्ञान में अटपटा खेल देखे।' दरबार! आहाहा! यहाँ आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तीन रत्नत्रय है। कार्यसमयसार—केवलज्ञान का साधक है। परन्तु साधक की उत्कृष्टता तो तब होती है कि रत्नत्रय का उपयोग भी वहाँ लगा दे। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि विकल्प राग में जाता है, वहाँ तक साक्षात् साधक है, ऐसा नहीं। आहाहा! देखो! दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहाहा! नागा बादशाह से आघा। जिन्हें बादशाह की पड़ी नहीं। ऐसा कहते हैं तो समाज मानेगी या नहीं? सुगठित रहेगी या नहीं? यह क्या ऐसी-ऐसी बात करते हैं? ऐसा कहेंगे तो? वह तुम जानो तुम्हारी बात। समझ में आया? आहाहा! देखो!

शुद्धोपयोग के साथ... गजब बात की है न! चारित्रमय कहा न, भाई! अर्थात् यह कहा है, मय का अर्थ। आहाहा! समझे? ज्ञानचन्दजी! व्यवहाररत्नत्रय तो नहीं परन्तु निश्चयरत्नत्रय भी उपयोग अन्दर लगावे, तब साधन अन्दर उत्कृष्ट होता है। आहाहा! प्रभु! तुझे करना पड़ेगा, हों! मुक्ति चाहिए तो। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं

है, भाई! आहाहा! आत्मा को निश्चयकर... ध्यान करो। चिन्तवन करो... का अर्थ यह है। उपयोग लगाकर ध्यान करो, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ:—देखे, सुने, अनुभवे भोगों की.... जो भोग देखे हों, सुने हों, और अनुभव किये हों। आहाहा! उनकी अभिलाषारूप सब.... उसकी अभिलाषा छोड़ दे। देखे हों, अनुभव किये हों, भोगे हों, सुने हों, बड़े-बड़े भोग। ऐसे इन्द्राणी और यह। अरे! सब विभाव-परिणामों को छोड़कर निजस्वरूप का ध्यान कर। आहाहा! पूर्व में भोग लिये हों और उन भोग में इसे रति—मजा लगा हो। वह अभिलाषा छोड़ दे, प्रभु! उसमें कुछ नहीं है। सुना हो बड़े भोग ऐसे थे, राजा ऐसे और चक्रवर्ती के ऐसे। छियानवें हजार स्त्रियाँ और... आहाहा! समझ में आया? वे भोग छोड़ दे। अभिलाषा छोड़ दे।

एक राजा था न? राजा है। एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी। देश छोटा है परन्तु पेट्रोल के कुँए निकले हैं। पेट्रोल के कुँए। वह कहाँ गाँव है? कहीं है। देश छोटा है, एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी। मुझे तो दूसरा कहना है। उस राजा ने जब विवाह किया न? तो एक रात्रि के एक करोड़ खर्च किये। एक रात्रि के एक करोड़! पहली रात्रि भोग के पहले दिन। आहाहा! विवाह हुआ। विवाह की पहली रात्रि। तो क्या कहा जाता है उसे? सुहागी। ऐसा कुछ कहते हैं, भाषा ऐसी है। एक करोड़ रुपये खर्च किये, एक रात्रि में। अभी, हों! यह थोड़े वर्ष पहले। फिर उसे मार डाला है। उसके कुटुम्ब में से उसे मार डाला। यह तो पैसा बहुत, आमदनी बहुत और एक घण्टे में डेढ़ लाख। दिन में ३६ लाख। ऐसी आमदनी। सब नरकगामी हैं। आहाहा! उसके कुटुम्ब में से उसे मार डाला। वहाँ क्या हो? बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! पहले तेरे शुद्धोपयोग का दिवस-काल ऐसा होना चाहिए... आहाहा! आनन्द के अनुभव में तेरा उपयोग लगा दे। आहाहा! ऐसा अनुभव कहीं है नहीं। प्रतीति—श्रद्धा में तो ले कि मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! यह देखे, सुने, अनुभवे... सुने हो न बड़े-बड़े भोग। आहाहा! यह राजा है, उसे इतनी अधिक आदमनी... इतनी आमदनी है और घर में इतना सामान है। मोटरें बड़ी पाँच-पाँच लाख की, दस-दस लाख की। उसका पुत्र उस मोटर में जाये तो सामनेवाले को हट जाओ, ऐसा न कहे। मर जाये तो कहे, तुम क्यों हटे नहीं? हमारे राजकुमार निकले हैं न! तुमने क्यों

ध्यान नहीं रखा ? मर जाये तो उसकी फरियाद नहीं। आहाहा! ऐसा है। यहाँ कहते हैं, प्रभु! ऐसी कड़काई तूने अनन्त बार की है। अब नरम हो जा न! भगवान! तेरी चीज निधान पड़ा है न, प्रभु! आनन्द का धाम है न, नाथ! तेरे पास जो आनन्द है, वह आनन्द कहीं नहीं। आहाहा! भूल जा एक बार, प्रभु! और भगवान को सम्हाल अब, कहते हैं, उपयोग में, हों! आहाहा!

सब विभाव परिणामों को छोड़कर निजस्वरूप का ध्यान कर। यहाँ उपादेयरूप... देखो! अतीन्द्रियसुख से तन्मयी... आहाहा! और सब भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म से जुदा... यह शुद्धात्मा की व्याख्या है। कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? कि अतीन्द्रिय सुख से तन्मय। अतीन्द्रिय सुख से एकमेक आत्मा है। तादात्म्य है। आहाहा! और सब भावकर्म... देखो! विकल्प। चाहे तो दया, दान या व्रत के विकल्प व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प, वे भावकर्म हैं। द्रव्यकर्म, नोकर्म... द्रव्यकर्म जड़ और नोकर्म वाणी आदि। जुदा जो शुद्धात्मा है,... अन्दर अभी ऐसा है। यहाँ है... यहाँ है... यहाँ है। आहाहा!

वही अभेदरत्नत्रय को धारण करनेवाले... देखो! ऐसा जो आत्मा है, वह अभेदरत्नत्रय को धारण करनेवाले निकट भव्यों को उपादेय है,... आहाहा! उपयोग में उपादेय निकट भव्य जीवों को है। जिनका संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! आया न यह प्रवचनसार में? कुन्दकुन्दाचार्य की बात। जिन्हें संसार (का) किनारा निकट आ गया है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य के लिये। समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य ग्रन्थकर्ता हैं, वे कैसे हैं, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य मुनिराज कहते हैं। टीका करनेवाले मुनिराज, मुनिराज की पहिचान कराते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य कैसे हैं? आहाहा! अब संसार समुद्र का किनारा जिन्हें निकट है। एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। नजदीक है। संसार का अन्त आ गया है। आहाहा! अनादि संसार का अब अन्त आया है। आहाहा! और अनन्त काल रहेगी ऐसी मोक्षदशा जिन्हें नजदीक है। मुनि, मुनि की परीक्षा करते हैं? हजार वर्ष पहले की। छद्मस्थ हैं न? छद्मस्थ हैं तो क्या हुआ? मुनि पाँच महाव्रतधारी कहते हैं, हम कहते हैं कि उन्हें संसार का किनारा निकट आया है। आहाहा!

ऐसे आसन्नभव्य महात्मा सातिशय विवेक ज्योति जिन्हें प्रगट हुई है। आहाहा!

राग से भिन्न भगवान की भानदशा विवेक भेदज्ञान ज्योति सातिशय । आहाहा ! परन्तु वह भेदज्ञान प्रगट हुआ, वह हुआ । वे पूर्णानन्द में मिल जायेंगे । ऐसी सातिशय भेदज्ञानज्योति प्रगट हुई है । आहाहा ! देखो ! यह कुन्दकुन्दाचार्य । मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो—तीसरे नम्बर में आये । पहले भगवान, दूसरे में गणधर और तीसरे में कुन्दकुन्दाचार्य । मंगलं भगवान वीरो, मंगले गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं । तीसरे नम्बर में, गणधर के बाद आये । आहाहा ! उनकी यह वाणी है । समझ में आया ? बहुत लम्बा कर दिया ।

परम भेदज्ञान का प्रकार जिन्हें उत्पन्न हुआ है । समस्त एकान्तवाद की अविद्या का अभिनिवेश जिन्हें अस्त हो गया है । एकान्तवाद की विद्या जिन्हें नाश हो गयी है । आहाहा ! परमेश्वरी अनेकान्त विद्या को पाकर... आहाहा ! परमेश्वर जिन भगवान की अनेकान्त धर्म विद्या । स्वरूप से है, पररूप से नहीं । एक गुण, गुणरूप से है, दूसरे गुणरूप नहीं । एक पर्याय, पर्याय से है, दूसरी पर्याय से है नहीं । ऐसी अनेकान्त विद्या जिन्हें प्रगट हो गयी है । आहाहा ! देखो ! यह कुन्दकुन्दाचार्य । देखा !

समस्त ... परिग्रह शत्रु-मित्र के प्रति... छोड़ दिया है । यह मेरा मित्र है, यह मेरा शिष्य है, यह सब छूट गया है । आहाहा ! अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से आत्मा के अत्यन्त हिततम भगवन्त परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होने योग्य परमार्थ सत्य, अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से करते हुए... आहाहा ! पूर्णानन्द की मोक्षदशा जो मुझे उपादेय है, ऐसा कहते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? फिर लम्बी बात है । भगवान के प्रसाद से । उन भगवन्त परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य । भगवान त्रिलोकनाथ की प्रसन्नता । प्रसन्नता । मुझे प्रसन्नता हुई । भगवान की प्रसन्नता हुई । आहाहा ! तीन लोक के नाथ की कृपा हो गयी । वे तो वीतराग हैं । परन्तु उनके ज्ञान की पर्याय में मेरी दशा अभी ऐसी है, ऐसा आ गया है, यह भगवान की मुझ पर कृपा है । समझ में आया ? आहाहा ! 'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही सुगुरुगम की' भगवान की करुणा । करुणा का अर्थ ? मेरी आनन्द की दशा मुझे प्रगट हुई है, वह केवलज्ञान की दशा में ख्याल आती है । केवलज्ञान की दशा में वह है । यह मेरे ऊपर कृपा है । आहाहा !

मुमुक्षु : यह करुणा दूसरे प्रकार की है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे प्रकार की है । भगवान ! यहाँ तो बात... आहाहा ! ऐसा है ।

‘मोक्षलक्ष्मी के भी तीर्थ के नायक महावीरस्वामी भी भगवन्त... ’ नमस्कार करते हैं । ‘मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए...’ मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए यह शास्त्र बनाते हैं । आहाहा ! समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं । इसकी ध्वनि की सबमें छाप है । परमात्मप्रकाश में, समाधितन्त्र में सबमें भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की मोहरछाप है । उनका अनुकरण करके बहुत बात सबमें आयी है । मूल तो शासननायक हैं न ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, **अभेदरत्नत्रय को धारण करनेवाले निकट भव्यों को उपादेय है...** आहाहा ! जिसे अभेदरत्नत्रय प्रगट हो गया है और जिसने वहाँ उपयोग लगा दिया है, ... आहाहा ! उसे आत्मा उपादेय है । समझ में आया ? ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा ! अकेली बातें करे और जानपना करे, उसे यह उपादेय नहीं, कहते हैं । आहाहा ! जिसे सम्यग्दर्शन में उपादेय हुआ है । पश्चात् भी रत्नत्रय सहित... आहाहा ! उपयोग वहाँ द्रव्य पर जम गया है, उसे ही भगवान उपादेय, उस काल में है । समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात कहीं है नहीं, हों ! यह तो परमात्मा के घर में जाने की बात है । आहाहा ! समझ में आया ? **ऐसा तात्पर्य हुआ । ७५ (गाथा) हुई । ७५ हुई न ?**

गाथा - ७६

तदनन्तरं निश्चयसम्यग्दृष्टिमुख्यत्वेन स्वतन्त्रसूत्रमेकं कथयति -

७६) अप्पिं अप्पु मुणंतु जिउ सम्मादिट्ठि हवेइ।

सम्माइट्ठिउ जीवडउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ॥७६॥

आत्मना आत्मानं जानन् जीवः सम्यग्दृष्टिः भवति।

सम्यग्दृष्टिः जीवः लघु कर्मणा मुच्यते॥७६॥

अपिं अप्पु मुणंतु जिउ सम्मादिट्ठि हवेइ आत्मनात्मानं जानन् सन् जीवो वीतराग-स्वसंवेदनज्ञानपरिणतेनान्तरात्मना स्वशुद्धात्मानं जानन्ननुभुवन् सन् जीवः कर्ता सम्मादिट्ठि हवेइ वीतरागसम्यग्दृष्टिर्भवति। निश्चयसम्यक्त्वभावनायाः फलं कथ्यते सम्माइट्ठिउ जीवडउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ सम्यग्दृष्टिः जीवो लघु शीघ्रं ज्ञानावरणादिकर्मणा मुच्यते इति। अत्र येनैव कारणेन वीतरागसम्यग्दृष्टिः किल कर्मणा शीघ्रं मुच्यते तेनैव कारणेन वीतरागचारित्रानुकूलं शुद्धात्मानुभूत्यविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वमेव भावनीयमित्यभिप्रायः। तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यैर्मोक्षप्राभृते निश्चयसम्यक्त्व-लक्षणम्-‘सद्वृत्तरो सवणो सम्मादिट्ठी हवेइ णियमेण। सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठुकम्माइँ’॥७६॥

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के कहनेवाले प्रथम महाधिकार में जुदे जुदे स्वतंत्र भेद भावना के स्थल में नौ दोहा-सूत्र कहे। आगे निश्चयकर सम्यग्दृष्टि की मुख्यता से स्वतन्त्र एक दोहासूत्र कहते हैं -

शुद्ध आत्मा को आत्मा से जाने सम्यग्दृष्टि जीव।

कर्मबन्धनों से विमुक्त होते हैं सम्यग्दृष्टि शीघ्र॥७६॥

अन्वयार्थ :- [आत्मानं] अपने को [आत्मना] अपने से [जानन्] जानता हुआ यह [जीवः] जीव [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [भवति] होता है, [सम्यग्दृष्टिः जीवः] और सम्यग्दृष्टि हुआ संता [लघु] जल्दी [कर्मणा] कर्मों से [मुच्यते] छूट जाता है।

भावार्थ :- यह आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ अंतरात्मा होकर अपने को अनुभवता हुआ वीतराग सम्यग्दृष्टि होता है, तब सम्यग्दृष्टि होने के कारण से ज्ञानावरणादि कर्मों से शीघ्र ही छूट जाता है-रहित हो जाता है। यहाँ जिस हेतु

वीतराग सम्यग्दृष्टि होने से यह जीव कर्मों से छूटकर सिद्ध हो जाता है, इसी कारण वीतराग चारित्र के अनुकूल जो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व है, वही ध्यावने योग्य है, ऐसा अभिप्राय हुआ। ऐसा ही कथन श्री कुंदकुंदाचार्य ने मोक्षपाहुड ग्रंथ में निश्चयसम्यक्त्व के लक्षण में किया है 'सहव्वरओ' इत्यादि-उसका अर्थ यह है कि, आत्मस्वरूप में मगन हुआ जो यति वह निश्चयकर सम्यग्दृष्टि होता है, फिर वह सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ दुष्ट आठ कर्मों को क्षय करता है॥७६॥

गाथा - ७६ पर प्रवचन

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के कहनेवाले प्रथम महाधिकार में जुदे-जुदे स्वतन्त्र भेद भावना के स्थल में नौ दोहा-सूत्र कहे। आगे निश्चयनयकर सम्यग्दृष्टि की मुख्यता से स्वतन्त्र... सम्यग्दर्शन की मुख्यता से एक दोहा कहते हैं। आहाहा! ७६।

(७६) अपिं अप्पु मुणंतु जिंड सम्मादिट्ठि हवेइ ।
सम्माइट्ठिउ जीवडउ लहु कम्मइँ मुच्चेइ ॥७६ ॥

आहाहा! आनन्द का बाजा बजता है। आहाहा! ७६। ७५ हुई न? दूसरा भाग यह तो। पहला भाग। यह तो दूसरा भाग। यह ७५ कहाँ की? दूसरे भाग की? पहले भाग में ७५ आयी, ऐसा कहते हैं। ७६।

अपने को अपने से... भाषा देखो! अपने को भगवान त्रिलोकनाथ शुद्धात्मा को अपने से... अपनी निर्मल परिणति से... आहाहा! जानता हुआ। भगवान पूर्णानन्द के नाथ को अपने से... अर्थात् अपने निर्विकल्प शुद्धपरिणति से जानता हुआ यह जीव सम्यग्दृष्टि होता है,... उनको सम्यग्दृष्टि होता है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? अपने को अपने से जानता हुआ यह जीव सम्यग्दृष्टि होता है,... महा सिद्धान्त।

मुमुक्षु : अपने तो धर्म का स्वरूप बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या बताते हैं ?

अपने को... निर्विकल्पदशा, वह धर्म। उस निर्विकल्पदशा से अपने को जानता है, इसका नाम सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! क्या कहा? देखो! अपने को अपने से... ऐसा

आया न? आत्मा को आत्मा से। अर्थात् राग या विकल्प, वह आत्मा नहीं। आहाहा! अपने को अपने से... आत्मा वीतरागमूर्ति तो वीतरागपर्याय से आत्मा ज्ञात होता है। समझ में आया? आहाहा! परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त, जंगल में बसनेवाले। उन्हें जगत की पड़ी नहीं। जगत हमारा मानेगा या नहीं? तेरा तू जान। हमारा मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! दुनिया पागल कहे, एकान्ती कहे तो कहो। यह कहते हैं।

अपने को अपने से जानता हुआ... ऐसा हम कहते हैं। राग और विकल्प से ज्ञात होता है, ऐसा आत्मा नहीं है। दुनिया माने, न माने। व्यवहार से होता है, ढींकणा से होता है। समझ में आया? 'नाव तरे मोरी नाव तरे।' आहाहा! ऐसा आनन्द का धर्मात्मा खेल करे। आनन्द में खेल करे। आहाहा! मैं तो मुझे मेरे आनन्द की दशा से जाननेवाला हूँ। रागादि व्यवहाररत्नत्रय तो दुःख है। आहाहा! अमरचन्दभाई! रागादि तो दुःख है। व्यवहाररत्नत्रय तो दुःख है। वह आत्मा नहीं। व्यवहाररत्नत्रय आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। आहाहा!

अपने को अपने से जानता हुआ... कितने न्याय दिये हैं! आहाहा! भगवान! तू परमानन्द की मूर्ति नाथ है न! तू वीतरागपर्याय से ज्ञात होता है। वीतरागपर्याय, वह आत्मा है। व्यवहाररत्नत्रय आत्मा, वह तो अनात्मा है। अनात्मा में से आत्मा ज्ञात हो? आहाहा!

मुमुक्षु : क्या कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं कि विकल्प जो पूर्व में कहा था न आठ कर्म दोष। यहाँ वह विषय अब स्पष्ट करते हैं कि दोष जो व्यवहाररत्नत्रय है-राग है, वह दोष है। उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने को अपने से... दो शब्द पड़े हैं। पाठ में देखो, पाठ! 'अप्यिं अप्यु' पाठ है, देखो। ७६ गाथा का पहला शब्द है। 'अप्यिं अप्यु' आत्मा को आत्मा से। यह दो शब्द हैं। 'अप्यिं अप्यु मुणंतु' आहाहा! भगवान! यह तो मोक्ष के मार्ग की बात है। इसमें कुछ दौड़धाम... आहाहा! वह इसमें है नहीं। यहाँ तो विकल्प छोड़कर... आहाहा! 'अप्यिं अप्यु मुणंतु' भगवान आत्मा अपनी निर्विकल्प पर्याय को आत्मा कहा जाता है। रागरहित वीतरागी पर्याय को आत्मा कहा जाता है। राग तो अनात्मा है।

आहाहा! अनात्मा से आत्मा ज्ञात नहीं होता। वीतराग पर्याय से आत्मा ज्ञात होता है। क्योंकि वीतरागपर्याय, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात करते हैं न! एक-एक पद।

भाषा क्या है? 'अपिं अप्पु मुणंतु जिंड सम्मादिट्ठी हवेइ' समझ में आया? समयसार की ११वीं गाथा में यह कहा— भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो' वह यहाँ कहा। भगवान पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम नाथ, वह अपनी वीतरागी पर्याय से ज्ञात होता है, प्रभु! राग से ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! एक बार तो मीणो चढ़ जाये ऐसा है अन्दर। आहाहा!

अपने को अपने से जानता हुआ यह जीव सम्यग्दृष्टि होता है,... ऐसा नहीं कहा कि आत्मा राग से ज्ञात होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? निर्मल वीतरागीपर्याय वीतरागस्वरूप प्रभु है। आत्मा अनादि वीतरागस्वरूप ही है। वीतराग अकषायस्वरूप का पिण्ड है। अनादि वीतरागस्वरूप है। वस्तु तो वीतरागमूर्ति आत्मा है। वह आत्मा अपने से। तो उसमें से वीतरागीपर्याय हुई, वह आत्मा। वीतरागीपर्याय से आत्मा ज्ञात होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। कहो।

जवानों को यह समझ में आता है या नहीं? यह जवान-बवान तो शरीर जड़ है। यह जवानी तेरी झोला खाये, वृद्धावस्था में चली जाये। आहाहा! भगवान! वह वृद्धावस्था, जवान अवस्था, वह आत्मा कहाँ है? यह तो अपने पहले आ गया न? यह तो शरीर की-मिट्टी की अवस्था है। इसका तुझे प्रेम हो, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! तीन लोक का नाथ तीन लोक के नाथ की परिणति से ज्ञात हो, ऐसा है, ऐसा कहते हैं। उसे सम्यग्दर्शन होता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण शुक्ल १५, सोमवार
दिनांक-०९-०८-१९७६, गाथा-७६, प्रवचन-५७

आज रक्षा (श्रावणी पूर्णिमा) का दिन है। अकम्पनाचार्य मुनियों को लेकर हस्तिनापुर आये थे। उसमें मन्त्री है न? बली। उसने उपसर्ग किया। वह जैनदर्शन का विरोधी था। तो उस समय भी ऐसा चलता था। आहाहा! बाद में विष्णुकुमार को यह खबर पड़ी। विष्णुकुमार मुनि के साथ दूसरे एक मुनि थे। वह कोई क्षुल्लक बैठे थे उनके पास। मुनि ने कहा कि अकम्पनाचार्य को बहुत उपसर्ग है। उसे छुड़ाने की शक्ति तो अभी वर्तमान विष्णुकुमार के पास है। तो क्षुल्लक सुनकर विष्णुकुमार के निकट गये। उनके पास विक्रियालब्धि थी, उसकी भी (उन्हें) खबर नहीं थी। आहाहा! अपने आनन्द के ध्यान में मस्त! विक्रियालब्धि प्रगट हुई थी, उसकी भी जिन्हें खबर नहीं। आहाहा! आकर कहा, मुनिराज! आपको विक्रियालब्धि है। एक महाराज ने मुझे कहा है। हैं! ऐसे हाथ लम्बा किया वहाँ तो पृथ्वी और पानी के बीच लम्बा हाथ चला जाता है। ओहोहो! उनकी ऐसी शक्ति थी, परन्तु खबर नहीं थी। कितनी वीतरागता! समझ में आया? फिर वह वामन (बौना) रूप लेकर राजा के पास गये। यद्यपि मुनि को तो यह होता नहीं, कल्पते नहीं, परन्तु उनको वात्सल्यभाव की प्रधानता हो गयी। मुनिपना छोड़ दिया। वामनरूप धारण किया और वहाँ जाकर राजा के पास गये। अरे! राजन! तूने मन्त्री को राज देकर यह क्या किया? वह तो मुनि के ऊपर कुकर्म (उपसर्ग) करता है। महाराज! बात मेरे हाथ में नही रही। मैंने सात दिन का राज उसे दे दिया है। ठीक!

बली के पास गये। अरे, बली! क्या करते हो तुम? जाओ, साधु यहाँ से निकल जाओ। हम तो यहाँ रहेंगे तो उपसर्ग करेंगे ही। आहाहा! भाई! तीन पैर जमीन मुनि के लिये दो। लो, यह कपट किया। परन्तु सम्यग्दर्शन था। अनुभवदृष्टि में कुछ बाधा नहीं थी। चारित्र में... आहाहा! यह क्या किया? यहाँ से निकल जाओ। यहाँ रहोगे तो हम उपद्रव करेंगे। रहने के लिये तीन कदम जमीन दो। तीन कदम में क्या? ७०० मुनि हैं न। ऐसा लम्बा शरीर बनाया। एक पैर रखा मेरुपर्वत के ऊपर और दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर। तीसरा पैर कहाँ रखे? खाली जगह नहीं रही। अरे! यह क्या किया तुमने? महाराज! माफी माँगते हैं। आहाहा! ऐसा प्रसंग आता है। मुनि को भी ऐसा

प्रसंग आता है, होता है। फिर तो उन्होंने माफी माँगकर धर्म प्राप्त किया। ऐसी चीज़ जगत में बनती है। मुनि होकर ऐसा करे, वह भी उचित नहीं है परन्तु वात्सल्य—प्रेम के भाव से यह ऐसा भाव आ गया। बाद में तो फिर से मुनिपना ले लिया। आहाहा! ऐसी चीज़ चौथे काल में बनती है। यह तो बहुत आराधन दशा वीतरागता बढ़ी, उसके लिये है। यह यहाँ भी अपने कहते हैं। लो! ७६ (गाथा) चलती है न?

भावार्थ:— आहाहा! यह आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ... आहाहा! ७५ में कहा, उससे आगे विशेष लेते हैं। ७६-७६। ७-६, इसका भावार्थ। है न? पहले तो यह कहा कि अपना स्वरूप जो राग से भिन्न है, उसका सम्यग्दर्शन तो प्रगट किया ही है। समझ में आया? प्रथम जो चीज़ है, राग और पर्याय की रुचि से भिन्न चीज़ है, ऐसे पूर्णानन्द के नाथ की अनुभवदृष्टि तो चौथे गुणस्थान में हुई है। तदुपरान्त यहाँ बात करते हैं। कल तो आया था कि उपयोग के साथ अभेदरत्नत्रय को (लगाकर), अभेदरत्नत्रय तो है ही, परन्तु आत्मा की ओर उपयोग में लगा दिया। वह परमात्मदशा प्राप्त करने की उत्कृष्ट साधकदशा है। आहाहा!

यहाँ तो अब कहते हैं कि यह आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ... शास्त्र का ज्ञान नहीं, पर का नहीं। अपना भगवान आत्मा वीतरागी ज्ञान से भरपूर प्रभु, उसका स्वसंवेदनज्ञान। आहाहा! वस्तु से वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से परिपूर्ण आत्मा है। उसमें पर्याय में वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ... आहाहा! है? वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में परिणत हुआ अन्तरात्मा होकर... आहाहा! बात जरा ऊँची है। यह तो एक-एक गाथा करते ऊँची आगे ले जाते हैं न? उसे जानने में तो निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? आहाहा!

अपने को अनुभवता हुआ... भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु को अनुभव करता हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करता हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो विशेष अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करके। आहाहा! आगे ले जाना है न? वीतरागचारित्रसहित वीतराग समकित। समझ में आया? वहाँ ले जाना है। सम्यग्दर्शन चौथे (गुणस्थान) में होता है। है तो वीतरागी दर्शन। परन्तु वहाँ चारित्र नहीं। इस अपेक्षा से है तो समकित दृष्टि, वह वीतरागदृष्टि है, परन्तु राग चारित्र का दोष है, तो वहाँ सराग समकित, ऐसा कहा जाता

है। राग है, वह समकित नहीं है परन्तु रागवाला, दोषवाला है तो समकित तो वीतरागी पर्यायवाला है। आहाहा!

यहाँ तो अब चारित्र, वीतराग परिणति की चारित्रसहित समकित लेना है। यह वीतराग समकित। आहाहा! समझ में आया? देखो! वीतराग सम्यग्दृष्टि होता है, तब सम्यग्दृष्टि होने के कारण से ज्ञानावरणादि कर्मों से शीघ्र ही छूट जाता है... आहाहा! यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेनी है न? निज स्वरूप में एकदम आनन्द की लहर में तल्लीन है तो वीतराग चारित्र भी है और साथ में सम्यग्दर्शन है, उसे वीतराग सम्यग्दर्शन कहा जाता है। है तो सम्यग्दर्शन पहले से वीतराग ही। परन्तु यहाँ चारित्र जो अन्तर वीतराग हुआ है, उसके साथ समकित को भी वीतरागी समकित कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! चैतन्य की क्रीड़ा अलग है। आहाहा!

कहते हैं, यहाँ जिस हेतु वीतराग सम्यग्दृष्टि होने से.... क्या कहते हैं? वीतराग सम्यग्दृष्टि होने से यह जीव कर्मों से छूटकर सिद्ध हो जाता है,.... सम्यग्दर्शन पर्याय तो वीतरागी ही है। परन्तु यहाँ वीतरागी समकित लेने में अन्तर में चारित्रसहित का दर्शन लेना है। समझ में आया? ऐसी बात अब, सूक्ष्म बातें! भगवान! तुझे खबर कहाँ है? तू तो वीतरागमूर्ति है न, नाथ! इस वीतरागी दृष्टि से ही उसका पता लगता है। समझ में आया? राग से, विकल्प से उसका पता नहीं लगता। समझ में आया?

यहाँ तो उस वीतरागी पर्याय में आत्मा का अनुभव हुआ, तब तक तो उसे सम्यग्दृष्टि, चारित्र नहीं तो रागसहित समकितदृष्टि है तो सरागी कहा। समकित तो वीतरागी ही है। परन्तु चारित्र का दोष है न? इस कारण से उसे सराग समकित कहा। यहाँ तो आगे जाने पर... आहाहा! वीतरागचारित्र के अनुकूल... है? देखो! आहाहा! स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, अपना स्वरूप ही अतीन्द्रिय आनन्दकन्द है। प्रत्येक आत्मा आनन्दकन्द से भरपूर है। आहाहा! उसमें वीतरागीचारित्र प्रगट करके स्वरूप में स्थिरता वीतरागी प्रगट करके... आहाहा! वह वीतरागचारित्र के अनुकूल... है?

शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व है,.... भाषा देखो! आहाहा! प्रथम सम्यक् चौथे गुणस्थान में है, वह सम्यग्दर्शन अनुभूतिसहित है। परन्तु उसे राग का भाग चारित्र का दोष है, इस अपेक्षा से सराग समकित कहा। समकित सराग नहीं है, परन्तु चारित्र

के दोष को साथ में लेकर सराग समकित कहा। यहाँ आगे जाकर... ओहोहो! स्वरूप में मग्न हो जाता है। वीतरागीचारित्र, जहाँ... आहाहा! परमात्मा पूर्णानन्द के नाथ में लीन हो जाता है। ऐसे चारित्रसहित समकित को वीतराग समकित कहा गया है।

मुमुक्षु : अपने को खबर पड़ जाये (कि) अपने को समकित हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर न पड़े? अन्ध है? कहो, समझ में आया? निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती, ऐसी बात अभी (लोग करते हैं)। निश्चय समकित को खोटा सिद्ध करने के लिये (तथा) व्यवहार से भी होता है, ऐसा सिद्ध करने के लिये कहते हैं कि परन्तु निश्चय की खबर नहीं पड़ती। खबर नहीं पड़ती, वही मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया? क्या कहा? ऐसा कहा कि अपने को समकित है या नहीं? तो कहे, इस निश्चय की खबर नहीं पड़ती। वही (दिखलाता है कि) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! निश्चय सम्यक् चौथे (गुणस्थान) में आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है, आनन्द का स्वाद आता है और खबर न पड़े? लोगों को समकित क्या चीज़ है, उसकी कीमत नहीं। बस, यह व्रत, तप, अपवास, भक्ति और पूजा करना। करते-करते हो जायेगा।

मुमुक्षु : व्रत, तप करते-करते क्या होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करते-करते हो जायेगा, उसमें राग होगा, विकार होगा।

मुमुक्षु : संसार तो नहीं बढ़ेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार ही है। राग, विकार, व्रत, नियम जो विकल्प है, वह तो संसार ही है। धन्नलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

आचार्य कहाँ ले जाते हैं! प्रथम चौथे गुणस्थान में राग से भिन्न होकर अपनी अनुभूति के काल में सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहा था न? द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा। ४७ कहते हैं? ४ और ७, 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा' आहाहा! नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (सिद्धान्तिदेव) द्रव्यसंग्रह

में कहते हैं। द्रव्यसंग्रह। अभ्यास तो बहुत करे परन्तु तत्त्व की खबर नहीं। समझ में आया? वहाँ तो यह लिया। ४७ गाथा। 'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा' आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहार आरोपित मोक्षमार्ग दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं अर्थात् उपयोग जब आत्मा की ओर झुक गया है... आहाहा! तब अभेद रत्नत्रयपर्याय हुई, निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, वह ध्यान में, हों! ऐसे बाहर से श्रद्धा हो गयी है, वह नहीं। आहाहा! अपनी वर्तमान पर्याय को द्रव्य की ओर झुकाने से वर्तमान ज्ञान की पर्याय को जो प्रगट है, जो परसन्मुख झुकी हुई है, वह पर्याय तो वहाँ रही, परन्तु बाद की पर्याय प्रगट करके और वह पर्याय उस ओर झुकी। दोनों एक ही समय है। क्या कहा, समझ में आया?

जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान राग सन्मुख है, राग के लक्ष्य में है, वह तो मिथ्याज्ञान है। वह पर्याय मिथ्या है, परन्तु बाद की पर्याय... पहली पर्याय तो वहाँ परसन्मुख है, उसे तो स्वसन्मुख नहीं किया जा सकता... आहाहा! सूक्ष्म विषय है। बाद की पर्याय द्रव्य के आश्रय से जो प्रगट हुई, वह पर्याय उस द्रव्य की ओर झुकी, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! तब वहाँ आनन्द का वेदन आता है। अरे! संख्या से जितने अनन्त गुण हैं... अनन्त गुण! आकाश के प्रदेश, जो अनन्त आकाश का अन्त नहीं, अलोक चारों ओर कहीं अन्त नहीं, ऊपर-नीचे कहीं अन्त नहीं, ऐसा आकाश, उसके जो प्रदेश हैं, उससे भी अनन्त गुणे एक आत्मा में गुण है। आहाहा! स्वभाव है न? स्वभाव को क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं। क्षेत्र भले थोड़ा हो। समझ में आया? आहाहा! अरे! निगोद का जीव लो। आहाहा! लहसुन, प्याज के एक टुकड़े में असंख्य तो शरीर हैं। एक शरीर में सिद्ध से, अभी तक जितने सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं तो अभी तक जो मुक्ति की सिद्ध की संख्या हुई, उससे लहसुन और कन्दमूल, प्याज, क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : आलू?

पूज्य गुरुदेवश्री : आलू नहीं।

मुमुक्षु : प्याज?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्याज तो कहा। यह मूला-मूला। मूली का कन्द, हों! पत्ते

नहीं। पत्ते तो प्रत्येक (वनस्पति) है। पत्ते। परन्तु वह सफेद कन्द है न मूला का। उसके एक टुकड़े में असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) धारावाही मुक्ति को प्राप्त करते हैं। यहाँ न हो तो महाविदेह में, महाविदेह में हो और यहाँ हो तो यहाँ से छह महीने आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति पाते हैं। आहाहा! इतनी संख्या अभी तक सिद्ध की हुई, उससे एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में उससे अनन्त गुणे जीव। सिद्ध से अनन्त गुणे जीव (रहे हैं)।

मुमुक्षु : आलू और मूला....

पूज्य गुरुदेवश्री : आलू की बात तकरार है। आलू का नाम नहीं लिया। नाम नहीं लिया। कारण है न? आलू की चर्चा होती है। पत्रों में बहुत चर्चा होती है। आलू कन्दमूल है या प्रत्येक है? ऐसी चर्चा चली है। इसलिए मैंने नाम नहीं लिया। समझे? आलू ऊपर होते हैं न ऊपर? तो यह चर्चा पत्रों में बहुत चली है कि ऊपर होते हैं इसलिए उसे अनन्तकाय कैसे कहा जाये? इसलिए यह नाम नहीं लिया। मैंने तो लहसुन और प्याज कहा। समझ में आया? और यह मूला लिया। मूला, वह कन्दमूल सफेद है न? वह अनन्तकाय। भगवान! आहाहा! भगवान के मुख से एक-एक गुण कहे तो अनन्त गुण कहने के लिये समय नहीं, इसलिए अनन्त गुण कह नहीं सकते। इतने जीव निगोद में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें जो एक जीव के गुण की संख्या है, उतनी यह बाहर में गुण की संख्या पंचेन्द्रिय को भी है। उतनी संख्यावन्त जो गुण हैं, उनकी प्रतीति पूरे द्रव्य की... आहाहा! एक पर्याय में कितना जोर है! श्रद्धा की पर्याय में कितना जोर है! श्रद्धा की पर्याय, ऐसा अनन्त गुण सम्पन्न द्रव्य, उसे प्रतीति करती है। समझ में आया? यह क्या कहा?

जितने अनन्त गुण हैं—आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण हैं। उतने तो जीव कहे। उनसे एक-एक जीव में अनन्त गुण। तो सम्यग्दर्शन के काल में जितनी संख्या है, उतने व्यक्त, अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय का वेदन होता है। शक्तिरूप जो अनन्त है... आहाहा! अरे! समझ में आया? उसकी पर्याय में व्यक्तरूप—प्रगटरूप अनन्त गुण का व्यक्त अंश का वेदन होता है, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

मुमुक्षु : महाराज! आपने तो कठिन कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सरल हो गया। है, उसकी प्रतीति करना, उसमें क्या ? परन्तु लोगों को यह अभ्यास नहीं। अपनी शक्ति की चीज़ कितनी है, उसका माहात्म्य नहीं। और यह पर्याय के, राग के, निमित्त के माहात्म्य में घुस गये और स्वभाव का माहात्म्य रहा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो क्या कहना है ? इतने एक द्रव्य में गुण जो आकाश से अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा ! उन सब गुणों की सम्यग्दर्शन की पर्याय में 'सर्व गुणांश वह समकित।' ऐसा शब्द श्रीमद् ने लिया है। श्रीमद् का वाक्य अपने यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में है। बोर्ड है। 'सर्व गुणांश वह समकित।' जितने गुण हैं, उतनी पर्याय में व्यक्त, अनन्त गुण की पर्याय व्यक्त होती है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? अपने आया न इसमें ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह मोक्षमार्ग है ? इस प्रमाण। देखो !

चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट होते हैं। टोडरमलजी ने लिखा है। गृहस्थ थे। गृहस्थ हो तो क्या हुआ ? सम्यग्दर्शन सिद्ध का और तिर्यच का, समकित में कोई अन्तर है ? समझ में आया ? आहाहा ! तो कहते हैं कि **चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट होते हैं।** जितने ज्ञानादि अनन्त गुण हैं, उनका एक देश, एक देश, एक भाग प्रगट हुआ है और इससे तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादि गुण सर्वदेश प्रगट हुए हैं। सर्वदेश प्रगट हुए हैं। पूर्ण-पूरा। चौथे गुणस्थान में पूरे नहीं, एकदेश। आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण जो चीज़ है, उसका एक अंश तो प्रगट सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनन्द का अंश, वीर्य का अंश, कर्ता का अंश, कर्म का अंश, करण का अंश, वह जितने गुण हैं, उनका एक अंश पर्याय में प्रगट हुआ। आहाहा ! समझ में आया ?

तो यहाँ कहते हैं कि आगे जाकर वीतरागचारित्र होता है, वह बात यहाँ करते हैं। है तो वह वीतरागी पर्याय समकित। परन्तु चारित्र का दोष साथ में है, तो सराग समकित कहा गया है। समकित सराग नहीं है। पंचाध्यायी में बहुत स्पष्टीकरण किया है। समकित सराग-फराग होता ही नहीं। समकित तो अनन्त गुण वीतरागमूर्ति प्रभु का अंश प्रगट हुआ तो सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। परन्तु चारित्र के दोष को साथ में लेकर ऐसा कहा। वह यहाँ शिष्य कहता है। उस चारित्र के दोष का नाश होकर जो वीतराग चारित्र (प्रगट) होता है... है ? देखो !

वीतराग सम्यग्दृष्टि होने से यह जीव कर्मों से छूटकर सिद्ध हो जाता है, इसी कारण वीतराग चारित्र के अनुकूल... आहाहा! भले अभी है नहीं, परन्तु उसकी स्थिति का निर्णय तो उसे करना चाहिए न? समझ में आया? आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसके वीतराग चारित्र के अनुकूल जो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व। आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित वीतरागी चारित्र में जब रमणता करतो है... आहाहा! तब उसे चारित्र के अनुकूल... वीतराग। संस्कृत में है यह। 'वीतरागचारित्रानुकूलं शुद्धात्मानुभूत्यविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वमेव' यह तो ऐसा लेकर वे सब कितने ही निकालते हैं। समकित वीतराग ही होता है। यह तो यहाँ वीतराग चारित्रसहित के समकित को वीतराग समकित कहा है। समकित तो पहले से वीतरागी ही है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! परन्तु यहाँ राग का-चारित्र का दोष था, वह निकल गया तो उस चारित्र की जो निर्मल वीतरागी परिणति हुई, उसके साथ के समकित को वीतरागी समकित कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

वही ध्यावनेयोग्य है,... लो! है? आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित, वीतरागी चारित्र सहित वीतरागी समकित ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? उत्कृष्ट साधकपना बतलाना है। साधकपना वह पूर्ण केवलज्ञान कार्यसमयसार का साधक। ऐसा पहले आया था न? वह साधक की उत्कृष्टदशा की यह बात चलती है। समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा में अपनी पर्याय को अन्तर में लेकर जो सम्यग्दर्शन की पर्याय में अनन्तगुण की व्यक्त दशा हुई, उसे वीतराग समकित कहते हैं, परन्तु चारित्र का दोष है, इसलिए उसे सराग समकित कहते हैं। चारित्र के दोष का आरोप दिया है। समकित तो समकित ही है। आगे जाकर जब चारित्र अभेदरत्नत्रय हुआ, तब भी जब विकल्प पर में है, तब तक साधकपने की कमी है। तो शुद्धोपयोग लगाकर, अभेद रत्नत्रय में शुद्धोपयोगसहित लगाकर कार्यसमयसार का साधक है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो वीतराग चारित्रसहित जो समकित है, वही साधक है। कार्यसमयसार का वह साधक है। सूक्ष्म बात, भाई!

भगवान अनन्त गुण गम्भीर, अनन्त गुण गम्भीर समुद्र पड़ा है अन्दर। आहाहा! सागर में जैसे पानी उछलता है, वैसे शक्तियाँ सम्यग्दर्शन में आंशिक सब उछलती है। उछलती है, कहते हैं न? उछलती है। समझ में आया? और केवलज्ञान में अनन्त शक्ति

की व्यक्तता पूर्ण उछलती है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो केवलज्ञान से पहले जो स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र अन्दर प्रगट हुए हैं, उन चारित्रसहित के समकित को वीतराग समकित कहकर उसका ध्यान करनेयोग्य है (ऐसा कहा है)। है? उसका ध्यान करना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग भारी है, भाई!

मुमुक्षु : श्रद्धागुण में भी परिणमन दो प्रकार का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धागुण का कहाँ कहा? श्रद्धागुण तो वीतरागी पर्याय है। कहा न पहले? दो-तीन बार कहा, चार बार कहा। परन्तु साथ में चारित्र के दोष को गिनकर समकित को सराग कहा है।

यहाँ अब वीतरागी चारित्र के साथ समकित को वीतराग कहा। वह चारित्र की अपेक्षा से कहा है। समकित तो पहले से वीतराग ही है। समझ में आया? भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु। अकषाय रसकन्द है प्रभु, अकेला अकषाय रसकन्द अर्थात् वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा है। सबका, हों! उसकी दृष्टि करने से वीतरागी समकित ही होता है। परन्तु वह समकित वीतराग पर्याय होने पर भी जब तक चारित्र का दोष है, उस दोष का आरोप करके सराग समकित कहा गया है। समझ में आया? समकित तो वीतरागी ही है। परन्तु चारित्र का दोष सहित है तो इस अपेक्षा से सराग कहा और यहाँ कहा कि वीतराग चारित्र सहित समकित होता है, उसे वीतराग कहना। आहाहा!

मुमुक्षु : दो प्रकार के सम्यक्त्व होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित एक ही प्रकार का है। बात तो यही चलती है। चर्चा बहुत चलती है।

मुमुक्षु : वह उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उस राग की उपाधि के कारण से सराग कहा। समकित तो निरुपाधि निर्दोष ही है। समझ में आया?

यहाँ कहा... आहाहा! जैनदर्शन बापू बहुत सूक्ष्म, भाई! सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग यह है। दिव्यध्वनि में, भगवान की दिव्यध्वनि में आया, उसे सन्त प्रसिद्ध करते हैं। दिगम्बर सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। हमको भी जब वीतराग चारित्र सहित समकित होगा तो हम केवलज्ञान प्राप्त करेंगे और कर्म से छूटेंगे, ऐसा कहते हैं। समझ

में आया ? आहाहा ! मूल चीज़ की ही जहाँ खबर न हो और उसमें सब व्रत, नियम, अपवास, तपस्या और भक्ति करे, वह तो सब संसार है। समझ में आया ? कहा न ? पुण्य-पाप अधिकार में नहीं कहा ? तो पुण्य संसार में प्रवेश करावे, उसे भला कैसे कहें ? हम तो छूटने के मार्ग में हैं और वह राग संसार की ओर जाता है तो उसे भला कैसे कहें ? आहाहा !

मुमुक्षु : किसके लिये लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने लिखा है ? समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य, है या नहीं ? यह क्या है ? यह तो परमात्मप्रकाश है। (समयसार) १४५। 'कम्ममसुहं कुसीलं' कर्म अशुभ वह कुशील 'सुहकम्म चावि जाणह सुसीलं कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥१४५ ॥' इस शुभभाव को हम सुशील कैसे कहें ? कि जो संसार में प्रवेश करावे। शुभभाव संसार में प्रवेश कराता है, उसे हम भला कैसे कहें ? आहाहा ! पीछे तो 'सोवण्णियं' लिया है। सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी। लोहे की बेड़ी है, वह अल्प घिसावट करती है और सोने की बेड़ी तोलदार / वजनदार है। तो विशेष घिसावट करती है। पैर में घिसावट करती है। इसी प्रकार पुण्य के प्रेम में बड़ी नुकसान दशा है। समझ में आया ? यह सब तुम्हारे पैसे मिले, स्त्री, पुत्र,... आहाहा ! धूल भी नहीं अब। वह तो परचीज़ है। वह तेरी कब थी ?

मुमुक्षु : थोड़े समय के लिये तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े समय के लिये क्या, एक समयमात्र नहीं। पुण्य के फल के प्रेमियों को पुण्य के भाव का प्रेम है। क्या कहा ? जिसे पुण्यफल में पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, शरीर के फल में प्रेम है, उसका कारण ऐसे शुभभाव में प्रेम है, उसे संसार में प्रेम है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वीतराग (मार्ग)....

मुमुक्षु : पैसा होवे तो उड़ा डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उड़ावे ? वे जानेवाले हों तो जायें, रहनेवाले हों तो रहे। सेठ ! पैसा डाल देना, कहते हैं। डाल कौन दे ? वह पर का जाना, वह अपने अधिकार में है ? उसकी क्रियावतीशक्ति से लक्ष्मी जाती है तो उसके कारण से जाती है। आत्मा ऐसा माने कि मैं दे सकता हूँ तो वह मिथ्यात्व है। ऐसी बात है। आहाहा ! जड़ के

परमाणु, उसकी पर्याय मैं पर को देता हूँ। क्या दे सकता है ? विकल्प करता है। परन्तु उसे दे सकने की क्रिया तेरी है ? मैंने इतने पैसे दिये। ५० दिये, १०० दिये, पाँच हजार दिये। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहार से दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या व्यवहार से ? बोलने में है। हमारा ग्वालियर। ग्वालियर सेठ का कहाँ से हो गया ?

मुमुक्षु : आप हमारे गुरु नहीं ? आप हमारे गुरु हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से कहने में आता है, निश्चय समझे तो। यहाँ वस्तु में गुरु-शिष्य कहाँ है ? आहाहा! दिव्यध्वनि द्वारा भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि और मुनियों के शास्त्रों के अर्थ, वे सुनकर आत्मा जानने में नहीं आता। यह तो पहले आ गया है। आहाहा! पहले आ गया है इसमें— परमात्मप्रकाश।

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! है न ? अशुभकर्म कुशील है (—खराब है) और शुभकर्म सुशील है (—अच्छा है), ऐसा तुम जानते हो! वह सुशील कैसे हो जो (जीव को) संसार में प्रवेश कराता है ? आहाहा! होता है। ज्ञानी को भी शुभभाव तो आता है, होता है। परन्तु उसे भला कैसे कहें ? अब जिसे भला न कहें, उससे निश्चय हो, ऐसा कैसे बने ? आहाहा ?

मुमुक्षु : शुभ कहना और किसे धर्म

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ, वह शुभ ही नहीं, अशुभ है।

वास्तव में तो भगवान आत्मा... पुण्य-पाप अधिकार में आ गया है अपने शुद्धस्वरूप की अन्तर निर्मल दृष्टि, निर्मल ज्ञान, उस मोक्षमार्ग को ही हम शुभ कहते हैं। पुण्य-पाप अधिकार में आ गया है। समझ में आया ? शुभ तो हम उसे कहते हैं कि जिससे निर्जरा और संवर होता है, उस भाव को शुभ कहते हैं। शुद्ध को ही शुभ कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुण्य और पाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पुण्य को पाप कहते हैं। 'पाप को पाप सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' योगसार में आता है। अरे! लोगों को पुण्य का रस इतना अधिक और प्रभु का रस नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन पवित्र परमात्मा साक्षात् प्रभु है। उसका प्रेम छोड़कर पुण्य के प्रेम में रहे, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है। आहाहा! क्षणिक शुभभाव के प्रेमी हैं, उन्हें त्रिकाली भगवान के प्रति अरुचि और द्वेष है। ऐई! धन्नालालजी! यह सब सेठिया पैसादार हो जाये तो मानो ऐसा हम बड़े हो गये और बढ़ गये।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे और कौन ले ?

मुमुक्षु : रोज

पूज्य गुरुदेवश्री : आये। अभी बहिन को सम्मानित करेंगे, तब तो लोगों में खलबलाहट हो जायेगी। एक व्यक्ति चार हजार रुपये, पन्नालाल की बहिन। मोती। मोती से सम्मानित करेंगे। एक व्यक्ति ग्यारह हजार रुपये के हीरे से सम्मानित करेंगे। ऐसा सुना है। और दूसरा कोई पाँच हजार से सम्मानित करनेवाला है। बीस हजार रुपये के तो तब सम्मान करनेवाले हैं। दूज के दिन (जन्मजयन्ती के दिन)। परन्तु उसमें बीस हजार क्या? करोड़ की कहाँ कीमत है? धूल में है क्या?

यह तो बहिन जैसे का जन्मदिवस है, इसलिए धर्मरत्न माता है। यहाँ तो बहिन कहते हैं, पुत्री कहते हैं, माँ कहते हैं सब वह है हमारे तो। उनका दिन है, इसलिए लोग तो... उनको कहाँ कुछ पड़ी है? वह तो मुर्दे की तरह खड़े हों। यहाँ तो पैसा देनेवाले हैं, इतना कहना है। वह पैसा देने में शुभभाव होता है। बस। पैसा दे सके, ले सके, वह आत्मा की क्रिया नहीं। समझ में आया?

यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है कि जो लेने-देने की क्रिया होती है, वह नहीं परन्तु उसके अनुसार जो शुभभाव होता है, वह इसका है। इसका अर्थात् इसकी पर्याय में है, ऐसा। इतना। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। समझ में आया? देने-लेने की क्रिया का यह कर्ता नहीं। समझ में आया? उसमें ग्रहण-त्याग का जो शुभभाव आया, वह शुभ इसका, परन्तु उसमें तो यहाँ तक कहा है कि शुभ, वह मेरा है, ऐसा ममत्व करना,

ममत्व करना अर्थात् वह मेरा है। लक्ष्मी देने-लेने की ममता नहीं करना, वह पर की क्रिया है। उसमें लिखा है कि शुभभाव, वह ममता करना, मेरा है। ममता का अर्थ वहाँ किया है, मेरा है, मेरी पर्याय में मुझसे हुआ है। ममता करना, ऐसा पाठ है। किस अपेक्षा से बात है ?

टोडरमलजी ने तो गजब काम किया है। एक-एक बात का स्पष्टीकरण। ओहोहो! इस बात को मानते नहीं। अब ललितपुर में पण्डितों ने इकट्ठे होकर उनकी निन्दा की, टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भांग पीकर नाच रहे थे। अररर! अरे! प्रभु! ऐसा नहीं कहा जाता, भाई! यह नहीं शोभता, प्रभु! सोनगढ़ का अनादर करने के लिये, उनका अनादर करें तो इनका अनादर होगा। अरे! प्रभु! ऐसा रहने दे, भाई! टोडरमल और बनारसीदास... आया था, पत्रिका में आया था, अध्यात्म की भांग पीकर नाचते थे, वैसे सोनगढ़वाले अध्यात्म की भांग पीकर नाचते हैं, ऐसा कहना था। अरे! भगवान! प्रभु! ऐसा शोभा नहीं देता, ऐसा नहीं बोला जाता। ऐसी बात नहीं की जाती। भगवान आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : मूल बात की खबर न हो तो क्या हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या हो ? आहाहा! इसलिए उस व्यक्ति के प्रति द्वेष करनेयोग्य नहीं। व्यक्ति के प्रति तो प्रेम चाहिए। आत्मा है।

मुमुक्षु : राग था। द्वेष नहीं, उनको ... राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वेष नहीं होता। वैर विरोधी कोई जीव वैर में है कहाँ ? अपना विकारभाव वैरी है, अनिष्ट है और निर्विकारभाव, वह इष्ट है।

प्रवचनसार में लिया है। प्रवचनसार में पहले अधिकार में। अनिष्ट और इष्ट की व्याख्या की है कुन्दकुन्दाचार्य ने। अनिष्ट कौन ? कोई परचीज नहीं। विकारभाव, वह अनिष्ट है। उस अनिष्ट भाव को छोड़कर परमात्मा ने इष्ट भाव प्राप्त किया। इष्ट अर्थात् शुद्ध परिणति, वह इष्ट है। समझ में आया ? आहाहा! व्याख्या ही सब अलग। वीतरागमार्ग है। यह वीतराग के सन्तों की बात है। दिगम्बर सन्त अर्थात्... आहाहा! केवलज्ञान के पथानुगामी, उत्तराधिकार छोड़ गये हैं ऐसा... ओहोहो! जो सम्हाले, वह एकावतारी हो जाये, ऐसी बात है। समझ में आया ? आहाहा! देखो! यह आया। इसी गाथा में है, हों!

शुभ (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय... है। देखो! उसमें है। १४५ गाथा। शुभ (अर्थात्) (अच्छा) ऐसा मोक्षमार्ग तो केवल जीवमय... देखो! जीवमय अर्थात् शुद्ध परिणति जो वीतरागी है, वह जीवमय है, उसे शुभ कहते हैं, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। इसका अर्थ भी भूल करके दूसरा करते हैं। ऐसा कि शुभ ऐसा मोक्षमार्ग व्यवहार, वह जीवमयी है। ऐसा करते हैं। फूलचन्दजी। खबर है। ऐसा नहीं। १४५ में है। आहाहा! बन्धमार्ग तो केवल पुद्गलमय होने से... झूठा है। आहाहा! यह पुण्य और पाप के दोनों भाव पुद्गल के, बन्ध के कारण हैं। इसलिए वह झूठा मार्ग, मार्ग ही है नहीं। आहाहा! शुभ तो उसे कहते हैं, परमात्मा-सन्त ऐसा कहते हैं... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, अनन्त सन्त शुभ तो उसे कहते हैं, शुभ, अन्तर के वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति को शुभ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! संस्कृत है। अमृतचन्द्राचार्य का पाठ है।

हमारे पण्डितजी ने शुभ का अर्थ फिर वहाँ कर डाला, अच्छा। कोई और ऐसा कहता है कि शुभ अर्थात् पुण्य। पुण्य का तो यहाँ निषेध किया है। संसार में प्रवेश कराये, उसे अच्छा कैसे कहें? तो फिर यहाँ अच्छा किसे कहा? शुभ किसे कहा? संसार के प्रवेश रहित मोक्षमार्ग की परिणति को शुभ कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? वह शुद्धपरिणति, शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र का अंश, उसे यहाँ शुभ कहा जाता है। शुभ और अशुभ दोनों भाव को अशुभ कहा जाता है। योगीन्द्रदेव तो योगसार में कहते हैं कि पुण्य को पाप कहते हैं। परन्तु यह क्या कहा? अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य यह पुकारते हैं। आहाहा!

अरे! आत्मा की किसे पड़ी है, बापू! यह आत्मा कहाँ जायेगा? आहाहा! यह कहीं अभी... चलता था बहुत। ऐसे से ऐसे होता था। अरे रे! उसे कहा कुछ खबर है? जीवांत थी कोई? ऐसे-ऐसे किया करे। वेग में और वेग में। ... लगता है। यह ... छोटा जीव। कुछ खबर नहीं बेचारे को। आहाहा! अब कब वह मनुष्य हो? कब जैनकुल में अवतार हो? और कब जैन की सच्ची बात सुनने को मिले? बापू! उसका विचार करे तो दुर्लभ है, भाई! यह पैसा मिलना और राजपना मिलना, देवपना मिलना, वह दुर्लभ नहीं। वह तो अनादि से मिल रहा है, वह सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? दुर्लभ तो एक

भगवान आत्मा, उसके पूर्णानन्द के नाथ की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता होना, वह दुर्लभ है। आहाहा! दुर्लभ है, उसे सुलभ कर डालना। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

देखो! यहाँ शुभ कहा, देखो! (समयसार) १४५ गाथा में। (पुण्य-पाप अधिकार की) पहली ही गाथा में है। यह पाठ में है ऐसा, हों! देखो! 'शुभाशुभौ मोक्षबन्धमार्गौ तु प्रत्येकं केवलजीवपुद्गलमयत्वाद्देकौ, तदनेकत्वे सत्यपि' लो! आहाहा! 'शुभाशुभौ' है न?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : 'शुभाशुभौ या फलपाकः केवलपुद्गलमयत्वादेकः, तदेकत्वे सत्यनुभावाभेदादेकं कर्म। शुभाशुभौ मोक्षबन्धमार्गौ' वहाँ गड़बड़ की है। शुभ कहा न पहला? शुभ मोक्षमार्ग अर्थात् शुभ का व्यवहार मोक्षमार्ग, ऐसा। ऐसा नहीं है। यह शुभ मोक्षमार्ग, अशुभ बन्धमार्ग। इतना लाईन में आया है। 'शुभाशुभौ मोक्षबन्धमार्गौ' बस, इतना संस्कृत शब्द है। 'शुभाशुभौ मोक्षबन्धमार्गौ' शुभ, वह मोक्षमार्ग और अशुभ, वह बन्धमार्ग। आहाहा! वह शुभ परिणाम भी अशुभ और बन्धमार्ग है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधता है, वह शुभभाव, वह अशुभभाव बन्ध का कारण। आहाहा! यह वीतरागी मार्ग में ऐसा है। समझ में आया? इतने टुकड़े में है, लो!

शुभ अर्थात् इसका अर्थ ऐसा करे न भाई! यह शुभ अर्थात् शुभ मोक्षमार्ग व्यवहार, ऐसा। और अशुभ अर्थात्... ऐसा करे। ऐसा नहीं है। यह है। 'शुभो मोक्ष अशुभौ बन्ध' बस! मोक्षमार्ग को शुभ कहते हैं, बन्धमार्ग को अशुभ कहते हैं। आहाहा! १४५ गाथा। संस्कृत टीका। मध्यस्थ होकर वाँचना चाहिए। अपनी दृष्टि रखकर नहीं। शास्त्र की क्या दृष्टि है, ऐसा लेना चाहिए। समझ में आया? योगीन्द्रदेव ने कहा, पाप को पाप तो सब कहते हैं, हम तो पुण्य को भी पाप कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने यहाँ यह कहा और वहाँ पुण्य-पाप के अन्तिम अधिकार में, अन्तिम अधिकार है न? व्यवहाररत्नत्रय को तो हम पाप ही कहते हैं। यह है न? संस्कृत नहीं इसमें? संस्कृत नहीं इसमें? जयसेनाचार्य की टीका इसमें नहीं है। आहाहा! अपने तो यह लेना है।

वीतराग चारित्र के अनुकूल जो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व है, वही ध्यावनेयोग्य है, ऐसा अभिप्राय हुआ। ऐसा ही कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षपाहुड

ग्रंथ में (१४ गाथा) निश्चयसम्यक्त्व के लक्षण में किया है। देखो! गाथा है, हों! अन्दर है।

सहृव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी हवेइ णियमेण।

सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्टुक्कम्माइं ॥१४॥

आहाहा! आत्मस्वरूप में मग्न... देखो! 'सहृव्वरओ' स्वद्रव्य आनन्द का नाथ प्रभु में 'रओ' अर्थात् लीन है, वह मोक्ष को पाता है। है? 'सहृव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी' उस श्रमण को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! जिसमें अन्य द्रव्य की मिलावट नहीं। अकेला 'सहृव्वरओ' चिदानन्द का नाथ प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा 'सहृव्वरओ' स्वद्रव्य 'रओ'। उसमें लीन है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। परद्रव्य में लीन है, इसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इसके बाद की गाथा में आयेगा। टीका में आयेगा बाद की गाथा में। इस गाथा में यह आया।

'सहृव्वरओ' आत्मस्वरूप में मग्न... यह इसका अर्थ किया। शब्द तो इतना है कि 'सहृव्वरओ' सत्द्रव्य जो अपना ज्ञायकभाव चिदानन्द ध्रुव, उसमें जो लीन है, उस ओर मग्न है, उस ओर का आश्रय है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आचार्य ने टीका... यह मोक्षपाहुड़ की गाथा-१४वीं है। १४वीं गाथा है। १३वीं आती है। बहुत प्रभु!

तेरा चैतन्यद्रव्य जो भगवान विकार बिना की तेरी चीज़ है, उसमें लीन होना, वही मोक्ष का मार्ग है और वह समकिति है, ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य में लीन, वह समकिति है और परद्रव्य में लीन, वह मिथ्यादृष्टि है। यह बाद की गाथा में संस्कृत में आयेगा। परद्रव्य में अर्थात् शुभराग में भी प्रीति और रुचिवाला है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। लोगों को ऐसा लगे। यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... भगवान! निश्चय अर्थात् परम सत्य। व्यवहार अर्थात् तो उपचार है, प्रभु! व्यवहार के कथन वे सब औपचारिक हैं। परन्तु किसे? जिसे निश्चय अनुपचार प्रगट हुआ है, उसे उपचार से व्यवहार को कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले निश्चय के कथन आप करते हो, वह एकान्त है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहते हैं। सम्यक् एकान्त, वही धर्म है। सम्यक् एकान्त बिना अनेकान्त का यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, इतना जानना, इसका नाम अनेकान्त। व्यवहार है, यह जानना, वह अनेकान्त। परन्तु व्यवहार से होता है, वह अनेकान्त नहीं, (यह तो) एकान्त हो गया। आहाहा! निमित्त है, ऐसा जानना वह अनेकान्त है, परन्तु निमित्त से— परद्रव्य से परद्रव्य में कार्य होता है, यह एकान्त है।

मुमुक्षु : यह तो

पूज्य गुरुदेवश्री : आज कहा है? पहले से हम तो यही कहते आये हैं।

आचार्य ने कहा नहीं? 'ववहारोऽभूदर्थो' कहा? यह तो आचार्य ने कहा। व्यवहार अभूतार्थ है। इसका अर्थ? त्रिकाल की अपेक्षा से गौण करके अभूतार्थ कहा। पर्याय अपेक्षा से पर्याय है। पर्याय की अपेक्षा से भूतार्थ है। है इतना, हों! उसका आश्रय करना, यह प्रश्न नहीं। व्यवहार है। मुनि को भी व्यवहार आता है। है तो सही न! परन्तु उससे निश्चय होता है, ऐसा नहीं। यह कहा, देखो!

आत्मस्वरूप में मग्न हुआ जो यति वह निश्चयकर सम्यग्दृष्टि होता है,.... है? आहाहा! यह तो मोक्षपाहुड़ की गाथा है। फिर वह सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ.... आहाहा! अपने शुद्ध समकित की जहाँ दृष्टि हुई, फिर समकित शुद्धरूप से स्वभाव का परिणमन करते-करते **कर्मों को क्षय करता है**। यह कर्मों का क्षय करता है। व्यवहार से होता है, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। शुद्ध स्वभाव के सम्यग्दर्शन से परिणत होकर विशेष-विशेष परिणत होकर सम्यग्दर्शन में कर्म का क्षय करता है। कर्म के क्षय का यह उपाय है। दूसरा कोई अपवास-बपवास वह कर्म के क्षय का उपाय नहीं है। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७७

अत ऊर्ध्वं मिथ्यादृष्टिलक्षणकथनमुख्यत्वेन सूत्राष्टकं कथ्यते तद्यथा-

७७) पञ्जय-रत्तउ जीवडउ मिच्छादिद्वि हवेइ।

बंधउ बहु-विह-कम्मडा जें संसारु भमेइ॥७७॥

पर्यायरक्तो जीवः मिथ्यादृष्टिः भवति।

बध्नाति बहुविधकर्माणि येन संसारं भ्रमति॥७७॥

पञ्जयरत्तउ जीवडउ मिच्छादिद्वि हवेइ पर्यायरक्तो जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति परमात्मा-
नुभूतिरुचिप्रतिपक्षभूताभिनिवेशरूपा व्यावहारिकमूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलान्तर्भाविनी मिथ्या
वितथा व्यलीका च सा दृष्टिरभिप्रायो रुचिः प्रत्ययः श्रद्धानं यस्य स भवति मिथ्यादृष्टिः। स
च किंविशिष्टः। नरनारकादिविभावपर्यायरतः। तस्य मिथ्यापरिणामस्य फलं कथ्यते। बंधइ
बहुविहकम्मडा जें संसारु भमेइ बध्नाति बहुविधकर्माणि यैः संसारं भ्रमति, येन मिथ्यात्वपरिणामेन
शुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिपक्षभूतानि बहुविधकर्माणि बध्नाति तैश्च कर्मभिर्द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूपं
पञ्चप्रकारं संसारं परिभ्रमतीति। तथा चोक्तं मोक्षप्राभृते निश्चयमिथ्यादृष्टिलक्षणम्-‘जो पुणु
परदव्वरओ मिच्छादिद्वी हवेइ सो साहू। मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठकम्महिं॥’ पुनश्चोक्तं
तैरेव-‘जे पज्जएसु णिरदा जीवा परसमइग त्ति णिहिट्ठा। आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया
मुणेयव्वा॥’ अत्र स्वसंवित्तिरूपाद्वीतरागसम्यक्त्वात् प्रतिपक्षभूतं मिथ्यात्वं हेयमिति
भावार्थः॥७७॥

इसके बाद मिथ्यादृष्टि के लक्षण के कथन की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं-

लीन रहें जो पर्यायों में वे मिथ्यादृष्टि होते।

बहुविध कर्मों से बँधते हैं, इसीलिए जग में भ्रमते॥७७॥

अन्वयार्थ :- [पर्यायरक्तः जीवः] शरीर आदि पर्याय में लीन रहता हुआ जो
अज्ञानी जीव है, वह [मिथ्यादृष्टिः] मिथ्यादृष्टि [भवति] होता है, और फिर वह
[बहुविधकर्माणि] अनेक प्रकार के कर्मों को [बध्नाति] बाँधता है, [येन] जिनसे कि
[संसारं] संसार में [भ्रमति] भ्रमण करता है।

भावार्थ :- परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख जो आठ मद, आठ मल,
छह अनायतन, तीन मूढता, इन पच्चीस दोषोंकर सहित अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व

परिणाम जिसके हैं, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। वह मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभाव-पर्यायों में लीन रहता है। उस मिथ्यात्व परिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से पराङ्मुख अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है, जिनसे कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूपी पाँच प्रकार के संसार में भटकता है। ऐसा कोई शरीर नहीं, जो इसने न धारण किया हो, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, कि जहाँ उपजा न हो, और मरण किया हो, ऐसा कोई काल नहीं है, कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों, ऐसा कोई भव नहीं, जो इसने पाया न हो, और ऐसे अशुद्ध भाव नहीं हैं, जो इसके न हुए हों। इस तरह अनंत परावर्तन इसने किये हैं। ऐसा ही कथन मोक्षपाहुड़ में निश्चय मिथ्यादृष्टि के लक्षण में श्रीकुंदकुंदाचार्य ने कहा है-‘जो पुण’ इत्यादि। इसका अर्थ यह है कि जो अज्ञानी जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप परद्रव्य में लीन हो रहे हैं, वे साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही हैं, सम्यग्दृष्टि नहीं और मिथ्यात्वकर परिणामते दुःख देनेवाले आठ कर्मों को बाँधते हैं। फिर भी आचार्य ने मोक्षपाहुड़ में कहा है-‘जे पज्जयेसु’ इत्यादि। उसका अर्थ यह है, कि जो नर नारकादि पर्यायों में मग्न हो रहे हैं, वे जीव परपर्याय में रत मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा भगवान् ने कहा है, और जो उपयोग लक्षणरूप निजभाव में लिप्त रहे है वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानो। सारांश यह है, कि जो परपर्याय में रत हैं, वे तो परसमय (मिथ्यादृष्टि) हैं और जो आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं, वे स्वसमय (सम्यग्दृष्टि) हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं है। यहाँ पर आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है, वह त्यागने योग्य है।७७।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १, मंगलवार
दिनांक-१०-०८-१९७६, गाथा-७७, प्रवचन-५८

परमात्मप्रकाश। ७७ गाथा है। ७६ गाथा में अन्त में यह आया न कि सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणामता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय करता है। अपना शुद्ध चैतन्य आठ कर्म से रहित और पुण्य-पाप के भाव के दोष से रहित और ज्ञानविग्रहं—ज्ञानस्वभाव जिसका शरीर है अथवा ज्ञान जिसका स्वरूप है। आत्मा का शरीर ज्ञान है। ऐसे अपने आत्मा के सन्मुख होकर अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वरूप परिणामता हुआ.... इस पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति और ज्ञान में रमणता

करता हुआ आठ कर्मों का क्षय करता है। इतने अपवास करे और इतनी तपस्या करे और कर्म घटे यह बात यहाँ नहीं ली है। समझ में आया? तपस्या ही उसे कहते हैं, भगवान आनन्दस्वरूप में... जैसे स्वर्ण को गेरु लगाने से सोना ओपता है-शोभता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा चिदानन्दस्वभाव के उग्र पुरुषार्थ द्वारा शुद्धपरिणति जो प्रगट करता है, उसका नाम तपस्या कहते हैं। आहाहा! यह यहाँ कहा न? **सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ....** अर्थात् पूर्ण स्वरूप... यह मोक्षप्राभृत में है।

क्या करते हैं? व्याख्यान सुनने में भी विनय चाहिए। यह तो वीतराग की वाणी है, भाई! समझ में आया? आहाहा! इसमें कलकलाहट नहीं होना चाहिए। दूसरी ओर के विचार नहीं होना चाहिए। परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की यह वाणी है। आहाहा! इन्द्र भी जहाँ एकावतारी जिसे ऐसे नीचे पैर रखकर ऐसे हाथ जोड़कर सुनते हैं। पैर पर पैर रखकर नहीं सुनते। यह अविनय है। पैर ऐसे रखे न? पैर पर पैर रखे, वह अविनय है। समझ में आया? ... आहाहा! इन्द्र और गणधर भी अपने पैर नीचे रखकर सुनते थे। यह विनय से (सुनते हैं)। यह तो वाणी है, भाई! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि यह क्या अधिकार चलता है? भगवान पूर्ण स्वरूप अपना स्वद्रव्य, उसकी व्याख्या मोक्षपाहुड़ में की है। 'अप्पणो सहव्व' अपना स्वद्रव्य कैसा है? है, उसमें है। यह 'सहव्वरओ' आया है न? 'सहव्वरओ' मोक्षप्राभृत। १८ वीं गाथा है। मोक्षपाहुड़ (गाथा) १८। 'दुट्टुकम्मरहियं' दुष्ट आठ कर्म से रहित भगवान स्वद्रव्य आत्मा है। अभी, हों! अभी। 'दुट्टुकम्मरहियं अणोवम' जिस स्वद्रव्य की कोई उपमा नहीं। समझ में आया? 'णाणविग्गहं' लो! देखो! ज्ञानशरीर जिसका है। आहाहा! जैसे माँस और हड्डियों का जड़ का शरीर है, उसी प्रकार भगवान आत्मा का शरीर अर्थात् स्वरूप... यहाँ तो शरीर लिया। 'णाणविग्गहं' ज्ञान जिसका शरीर है। आहाहा! चैतन्य प्रतिबिम्ब पूरा स्वरूप उसका है। आहाहा! 'णिच्चं' और जो नित्य है। 'सुद्धं' शुद्ध है। 'जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सहव्वं' जिनेश्वर ने उसे स्वद्रव्य आत्मा कहा है। आहाहा! समझ में आया? देखो! शब्द है न?

संसार के दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक दुष्ट अष्टकर्मों से रहित और जिसको

किसी की उपमा नहीं, (ऐसा अनुपम), जिसको ज्ञान ही शरीर है और जिसका नाश नहीं है ऐसा अविनाशी नित्य... नित्य, हों! शुद्ध अर्थात् विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान सर्वज्ञ ने कहा है, वह ही स्वद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? यह स्वद्रव्य आत्मा। यह यहाँ कहा न?

सम्यक्त्वरूप परिणमता... ऐसा लिया न? सम्यक्त्व दृष्टि, जिसे ऐसे स्वद्रव्य की दृष्टि हुई है, ऐसा स्वद्रव्य, हों! आहाहा! वह सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ... जैसा शक्तिरूप स्वभाव है, वैसी प्रतीति और ज्ञान में परिणमता हुआ, पर्याय में वैसा परिणमन करता (हुआ)। यह बात कहीं साधारण नहीं है! आठ कर्मों को क्षय करता है। लो! यह ७६ गाथा हुई। अब ७७। इससे विरुद्ध।

इसके बाद मिथ्यादृष्टि के लक्षण के कथन की मुख्यता से आठ दोहा कहते हैं— आठ दोहे हैं। ७७।

(७७) पञ्जय-रत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्टि हवेइ ।
बंधउ बहु-विह-कम्मडा जँ संसारु भमेइ ॥७७ ॥

‘पर्यायरक्तः जीवः’ आहाहा! पर्याय शब्द से अपनी एक समय की पर्याय, शरीर, राग आदि सब पर्यायदृष्टि का विषय है। उसमें लीन रहता हुआ... आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव को छोड़कर एक समय की अवस्था, राग और निमित्त, उस सब पर्याय में रत है। आहाहा! ऐसा जो अज्ञानी जीव है, वह मिथ्यादृष्टि होता है,... आहाहा! त्रिकाली जो ज्ञायकभाव स्वद्रव्य जो कहा, उससे विरुद्ध एक समय की पर्याय शुभाशुभभाव और संयोगी त्रिलोक के नाथ आदि परद्रव्य सब। समझ में आया? उस पर्याय में लीन रहता हुआ जो अज्ञानी जीव है, वह मिथ्यादृष्टि होता है,... आहाहा! और फिर वह अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधता है,... सम्यग्दृष्टि परिणमता हुआ आठ कर्मों का नाश करता है, तो मिथ्यादृष्टि परिणमता हुआ आठ कर्मों को बाँधता है। यह दो ही बात ली है। जिनसे कि संसार में भ्रमण करता है।

भावार्थ :- परमात्मा की... अर्थात् स्वद्रव्य की अनुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख... आहाहा! अपना परमात्मा जो स्वद्रव्य कहा, अनुपम, नित्य, शुद्ध, ज्ञानशरीर... ओहोहो! और जिसकी कोई उपमा न हो सके, ऐसी चीज़ भगवान स्वद्रव्य है। ऐसे स्वद्रव्य से

विरुद्ध मिथ्यादृष्टि अपनी दृष्टि से अनेक प्रकार के कर्मों को बाँधता है। वह परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा से विमुख... आहाहा! परमात्मा कौन? अपना निज आत्मा। पर परमात्मा तो पर में जाते हैं—परद्रव्य में जाते हैं। आहाहा!

अपना परमात्मा, ऐसा ही सीधा शब्द लिया है। आहाहा! परमस्वरूप भगवान् स्वद्रव्य ध्रुव, नित्य, शुद्ध। 'जिणेहिं सद्द्वं भणियं' जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने उसे स्वद्रव्य कहा है। आहाहा! उससे विरुद्ध सचित-अचित-मिश्र, यह भी वहाँ लिया है, हों! परद्रव्य किसे कहते हैं? समझ में आया? स्वद्रव्य की व्याख्या हुई न? यहाँ परद्रव्य की—स्वद्रव्य की व्याख्या है। १७ गाथा। 'आदसहावादणं' भगवान् स्वद्रव्य जो ऐसी चीज कही, उससे अन्य। 'सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि' सचित निगोद का जीव, सचित सिद्ध के जीव, सचित परमेश्वर का जीव, वह अपने द्रव्य से भिन्न है। समझ में आया? सचेत-अचेत शरीरादि। मिश्रित—शरीरसहित आत्मा, वह मिश्रित। ये सब परद्रव्य हैं,... आहाहा! सचेत सर्वज्ञ परमेश्वर, वीतराग परमेश्वर अरे! पंच परमेष्ठी। सचेत, वे भगवान् स्वद्रव्य से अन्य द्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमेष्ठी कहलाते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमेष्ठी तो व्यवहार से है। अपनी अपेक्षा से, उनकी अपेक्षा से निश्चय है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम इष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम इष्ट व्यवहार से है। परम इष्ट तो अपना भगवान् आत्मा है। यह तो कहा न, देखो न! परमात्मा शब्द पड़ा है न! यहाँ यह कहा।

'सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि। तं परद्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं।' सर्वदर्शी जिनेश्वरदेव परमात्मा ने अपना स्वद्रव्य शुद्ध चैतन्यघन नित्यानन्द से (भरपूर देखा है)। परमेश्वर, पंच परमेष्ठी, निगोद, केवली, साधक जीव, समकिति आदि पाँचवें गुणस्थानवाले, मुनि, ये सब सचेत परद्रव्य हैं। आहाहा! 'सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।' समझ में आया? (पहले) गाथा में 'सद्द्वरओ' (आया), 'परद्द्वरओ' आयेगा। आहाहा! यह भगवान् आत्मा से विरुद्ध सब परद्रव्य 'अवितत्थं' यथार्थरूप से सर्वज्ञ

भगवान ने परद्रव्य कहा है और परद्रव्य का लक्ष्य करने से राग ही होता है। समझ में आया? आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से निर्विकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। समझ में आया? यह मोक्ष अधिकार है न? इसमें है। यहाँ परमात्मा कहा न?

परमात्मा की... अर्थात् अपना स्वद्रव्य जो परमात्मस्वरूप ज्ञानविग्रहं अनुपमं शुद्धं नित्यं... आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो अपना परमात्मा, वह द्रव्य त्रिकाली स्वद्रव्य, उसकी अनुभूति, वह पर्याय है। सूक्ष्म मार्ग है, पन्नालालजी! ऐसा नहीं कि पैसे से मिल जायेगा। पैसा परद्रव्य है। भगवान परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? परमात्मा—परम आत्मा। परमात्मा (अर्थात्) सिद्ध परमात्मा, वह नहीं। यह तो अपना परमात्मा, कि सिद्ध की पर्याय से भी अनन्त गुणी अधिक दशा आत्मा की है। दशा अर्थात् उसकी स्थिति। समझ में आया? वस्तु की अवस्था अर्थात् अव अर्थात् निश्चय, स्थ—रहना। यह अवस्था। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं। समझ में आया? नित्य अवस्थ। ध्रुव ज्ञानघन वज्रबिम्ब। आहाहा! जिसमें निर्मल पर्याय का भी प्रवेश नहीं। विकार का तो प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान वज्र, ज्ञानवज्रबिम्ब नित्य प्रभु ध्रुव। उस स्वद्रव्य में स्वद्रव्य को यहाँ परमात्मा कहते हैं। पर्याय के अतिरिक्त, हों! पर्याय के अतिरिक्त, पर्याय रहित। आहाहा! उसकी अनुभूति, वह पर्याय। समझ में आया? आहाहा! अनुसरण होकर अनुभूति। त्रिलोक के नाथ के सन्मुख अनुसरकर जो आनन्द की दशा प्रगट हुई, ज्ञान की—सम्यग्ज्ञान की दशा प्रगट हुई, सम्यक्चारित्र दशा, समकित की प्रगट हुई, उसे यहाँ अनुभूति कहते हैं।

अनुभूतिरूप श्रद्धा से... भाषा देखो! समझ में आया? 'परमात्मानुभूति-रुचिप्रतिपक्ष' ऐसा कहते हैं। टीका में ऐसा है। 'अनुभूतिरुचि' यहाँ अर्थ किया है कि अनुभूतिरूप श्रद्धा। समझ में आया? आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञायकमूर्ति ध्रुव चिदानन्द परमात्मस्वरूप की अनुभूतिरूप श्रद्धा, ऐसा कहते हैं। अकेली श्रद्धा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **परमात्मा की अनुभूतिरूप श्रद्धा से...** आहाहा! मिथ्यात्व लेना है न? तो परमात्मा, अपनी अनुभूतिस्वरूप श्रद्धा, उससे मिथ्यात्व विपरीत भाव है। आहाहा! समझ में आया?

श्रद्धा से विमुख जो आठ मद,... रहित। समझ में आया? यह जो वस्तु है, वह

यह आठ मद सहित मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि का आत्मा आठ मद रहित है। तब मिथ्यादृष्टि का आत्मा आठ मद सहित है। राग (मेरा), मेरा पुण्य, मेरा पाप, मेरा मद, अहंकार, पर का अभिमान। आहाहा! जाति मेरी, कुल मेरा, बल मेरा, ईश्वरता—बड़े राजा आदि हों न? तो दूसरे से अधिकता, वह ईश्वरता, वह मद मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को चक्रवर्ती के राज का भी अभिमान नहीं, मद नहीं। आहाहा! छियानवें हजार रानियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, अड़तालीस लाख पाटण, बहत्तर हजार नगर। छियानवें करोड़ गाँव, छियानवें करोड़ सैनिक, यह हमारा नहीं, हम इसमें नहीं। यह चीज़ हमारे में नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को इन सबका मद है ही नहीं। हमारा उत्तम कुल, माता-पिता, जाति... आहाहा! हम बड़ी माता के पुत्र हैं, बड़े राजा के हम राजकुमार हैं। आहाहा! ऐसे अभिमान का जिसमें अभाव है। अज्ञानी के अभिमान में... है। आहाहा! आठ मद लिये हैं न? जाति, कुल इत्यादि आते हैं न?

आठ मल,... शंका, कांक्षा, ... निःशंक आदि आठ निर्दोष हैं न? निःशंक आदि समकित के आठ गुण, उनसे विरुद्ध आठ दोष मल। शंका, कांक्षा आदि। उन मल सहित मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **छह अनायतन,...** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को माननेवाले, ये छह अनायतन हैं। ये धर्म के स्थान नहीं। ये तो अधर्म के छह स्थान हैं। आहाहा! कुगुरु, कुशास्त्र और कुधर्म और उनके माननेवाले, ये छह। यह अनायतन है। ये धर्म के स्थान हैं नहीं। यह धर्म का स्थान है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि मल सहित है। आहाहा! यह अनायतन। **तीन मूढ़ता,...** देव, गुरु और शास्त्र में मूढ़ता। समझ में आया? आहाहा! **इन पच्चीस दोषोंकर सहित...** मिथ्यादृष्टि है। इन पच्चीस दोषों से रहित सम्यग्दृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : समन्वय का भाव करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके साथ समन्वय करे? अभी लोगों में यह चलता है। भगवान! किसी को दुःख न लगे। क्या कहे? समझ में आया?

एक दिगम्बर परम सत्य धर्म सिवाय दूसरे सब कुधर्म हैं। उनके कुशास्त्र हैं,

उनके देव कुदेव हैं। उन्हें माननेवाले वे सब मिथ्यादृष्टि हैं, वे धर्म के स्थान नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी ऐसी हवा चली है। समन्वय करो... समन्वय करो... किसी का विरोध नहीं। किसी के प्रति विरोध नहीं। यह भगवान आत्मा है। भूल है तो एक समय की भूल है। आहाहा! उसके प्रति, तत्त्वेषु तो मैत्री। किसी के साथ विरोध नहीं। परन्तु दृष्टि में वह धर्म का अस्थान है। यह मान्यता समभाव की है। समझ में आया? और यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, वह तो मिथ्यादृष्टि की मिथ्यात्व भावना है। समझ में आया? सच्चे देव, वे देव, कुदेव वे भी देव; कुधर्म, वह भी धर्म, सुधर्म भी धर्म; कुशास्त्र भी शास्त्र, सुशास्त्र भी शास्त्र, यह तो मिथ्यादृष्टि है। विनय मिथ्यादृष्टि है। बात ऐसी है, भाई!

मुमुक्षु : बिना सब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा बिना नहीं। दूसरे भगवान आदि सुदेव हैं, सर्वज्ञ परमात्मा सुदेव हैं। परन्तु वह तो परद्रव्य है, यह दूसरी बात है। है सुदेव। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ सन्त मुनि दिगम्बर सच्चे भावलिङ्गी हैं परद्रव्य, परन्तु हैं सच्चे गुरु। समझ में आया? वे तो परद्रव्यरूप से दूसरी बात है और परद्रव्य, वह कुदेव ही है, ऐसा नहीं। सुदेव, वह भी परद्रव्य है। समझ में आया? यह तो बात कही न? अपने आत्मा के अतिरिक्त सचेत भगवान, वे परद्रव्य हैं। परन्तु परद्रव्य है तो कुदेव है, ऐसा नहीं। अरे! लोगों को... समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

जन्म-मरण रहित चौरासी के अवतार, पंच अवतार... अभी कहेंगे। पंच परावर्तन से रहित होना और पंच परावर्तन सहित रहना, इन दोनों की दृष्टि में अन्तर है। आहाहा! बाहर की अनुकूलता में प्रसन्न होना, वह सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं, ऐसा है। आहाहा! बाह्य की अनुकूल चीज़ पुण्य के कारण से शरीर सुन्दर, कीर्ति, यशकीर्ति बड़ी और बाहर में सामग्री साधु को शिष्य आदि, गृहस्थ को पुत्र आदि, वह सब पर है। उन्हें अपना मानना और वह सब अपनी चीज़ है, वह सब मिथ्यात्व है। परद्रव्य अपना कहाँ से हुआ? सुदेव भी परद्रव्य अपना नहीं। इसी प्रकार सुशिष्य धर्मात्मा सन्त भी परद्रव्य अपने नहीं। समझ में आया? अपने नहीं, इसलिए सब कुदेव और कुगुरु हैं, ऐसा नहीं है। वे तो सुदेव, सुगुरु हो परद्रव्य। समझ में आया? और कुदेव, कुगुरु हो परद्रव्य।

परद्रव्य में आते हैं। परन्तु वे परद्रव्य सब कुदेव, कुगुरु ही हैं, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात। यह तो साधारण शुरुआत की (बात है)। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

आठ मद, आठ मल,... मल समझे? शंका, कांक्षा। छह अनायतन, तीन मूढ़ता,... लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता। इन पच्चीस दोषोंकर सहित अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व परिणाम जिसके हैं, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभाव-पर्यायों में लीन रहता है। लो! पर्यायलीन है न? अपने शरीर में, वाणी में (लीन रहते हैं)। आहाहा! यह शरीर तो जड़ है, मिट्टी-धूल, पुद्गल है। उसमें जिसकी बुद्धि लीन है... आहाहा! मेरा शरीर... मेरा शरीर... मेरा शरीर। मैं शरीर में ऐसे रहता हूँ। आहाहा! वह तो जड़ है। आहाहा! उस मिट्टी की धर्मशाला में भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! धर्मशाला नहीं कहा? मोहतिमिर की धर्मशाला। उसमें कहा। सुधा, उसमें है। 'सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला...' वीतराग वाणी और वीतराग का भाव। वाणी निमित्त से और भाव जो है, वह निश्चय से। 'सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला, सुधा ताप निरनाशनी मेघमाला।' अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने के लिये मेघमाला वीतराग की वाणी और वीतराग भाव है। आहाहा! 'महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी, महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी...' वीतरागी परिणति मोक्षदानी और वीतरागी वाणी व्यवहार से मोक्षदानी। 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' वीतराग की वाणी, यह दिगम्बर में है, वह जैनवाणी है। दूसरे में कहीं जैनवाणी नहीं। समझ में आया?

'नमो देवी वागेश्वरी...' वागेश्वरी अर्थात्? वे लोग वागेश्वरी कहते हैं, वह नहीं। वाक् ईश्वरी। वचन-वचन। वचन में ईश्वरी जिनवाणी है। आहाहा! दिव्यध्वनि भगवान की और वीतराग परिणति। आहाहा! जिनवाणी है। ऐसे बोल लिये हैं अन्दर। 'अखे वृक्ष शाखा अभिलाषा तथा सुसंस्कृता प्राकृता' संस्कृत हो, प्राकृत हो, देशभाषा। वीतराग की वाणी तो प्रत्येक में होती है। सादी भाषा में होती है परन्तु वह है तो जिनवाणी। समझ में आया? संस्कृत की जिनवाणी, प्राकृत की जिनवाणी, देशभाषा जिनवाणी। देश—प्रचलित भाषा में हो, परन्तु वह है तो जिनवाणी, त्रिलोक के नाथ की वाणी है।

यह लोग कहते हैं कि उसे छोड़ दो। उनकी वाणी डाल दो। अरे! भगवान! अमृतचन्द्राचार्य वीतराग की वाणी यह है। सोनगढ़ के साहित्य को फेंक दो। अरे! भगवान!

क्या करता है तू? अरे! प्रभु! और उन्होंने लिखा न भाई ने—कैलाशचन्दजी ने। तुम ऐसा करते हो तो उनकी वाणी में तो अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी है। समझे? साहित्य में। सब फैंक दो, जला डालो। अरे! भाई! यह क्या है? भाई! आहाहा! ऐसी अनीति न सम्भवे, नाथ! ऐसी अनीति को कैसे चलाये? आहाहा!

यह तो 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी...' चारों ओर देखो। धर्मशाला में। जिनवाणीरूपी धर्मशाला बैठे हैं। ऊपर-नीचे (सर्वत्र जिनवाणी है)। आहाहा! 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी...' भूपाल अर्थात् राजा। चिदानन्दरूपी राजा की राजधानी यह वाणी और वाणी का भाव है। 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी' बड़ी व्याख्या है, हों! अपने यह प्रकाशित है। बनारसीदास में है। बनारसी विलास। बनारसी विलास पुस्तक है न? वह तो हमने बहुत वर्ष पहले देखा है। कौन से वर्ष? अपने गये न यह राजकोट, (संवत्) १९९५। ९५ न? ९५, ९५। वह १९९५ में प्रकाशित है। ॐ लिखा है न? स्वाध्यायमन्दिर में ॐ (लिखा है वह) पत्थर इटली का है। बहुत ऊँचा पत्थर है। उसमें ॐ पधराया था, फाल्गुन महीने में। ॐ, समझे? १९९५ के वर्ष। उस समय बनाया था। हजारों पुस्तकें प्रकाशित कीं। यह तो एक यहाँ रखी है।

मुमुक्षु : आपको ॐ बहुत प्रिय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो आहाहा!

मुमुक्षु : सब पुस्तकों में ॐ लिखते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाखों में ॐ लिखा है। भगवान की वाणी है। ॐ भगवान की वाणी है। उसमें लिखा है न, देखो!

'ॐकार ध्वनि सुनि, ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! वह यहाँ आया। 'बनारसीदास... दास विचार्या अमे।' ॐकार में बारह अंग भरे हैं, ऐसा कहते हैं। बारह अंग का विचार उसमें भरा हुआ है। बारह अंग। 'बनारसीदास अंग द्वादश विचार्या में ऐसे ॐकार कण्ठ पाठ तो ही आयो है।' ऐसे कण्ठ में अन्दर ॐ आया है, उसमें तो बारह अंग भरे हुए हैं। बारह अंग का रहस्य भरा हुआ है। यह बनारसी विलास में है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, मिथ्यादृष्टि नर नारकादि विभाव-पर्यायों में लीन रहता है। उस मिथ्यात्व परिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से पराडमुख.... भगवान आनन्द के नाथ के सन्मुख का अनुभव, उससे विमुख रागादि के अनुभवी मिथ्यादृष्टि जीव... आहाहा! अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है, जिनसे.... यह कर्म से क्या होता है? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूपी पाँच प्रकार के संसार में भटकता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन से विमुख, मिथ्यादर्शन से कर्म बाँधता है और आठ कर्म बाँधने से पाँच परावर्तन में अनन्त बार भटकता है। आहाहा! यह अर्थ करते हैं। अब पाँच का अर्थ करते हैं।

ऐसा कोई शरीर नहीं, जो इसने न धारण किया हो,... आहाहा! मिथ्यात्व से परिणमकर जो कर्म बँधा, उससे ऐसा कोई शरीर नहीं कि जो शरीर मिला नहीं। आहाहा! निगोद के, एकेन्द्रिय के, दो इन्द्रिय के, तीन इन्द्रिय के, चौ इन्द्रिय के, हजार योजन मच्छ का और अंगुल के असंख्यवें भाग के तिर्यच के (शरीर), अंगुल का असंख्य भाग जितना छोटा शरीर होता है। तो कहते हैं कि ऐसा कोई शरीर नहीं... आहाहा! कि जो इसने धारण न किया हो। है? अनन्त शरीर धारण किये। २५-५० कमरे हों और एक दीपक ऐसे-ऐसे चलावे। उसी प्रकार अनन्त शरीररूपी कमरों में भगवान दीपक समान चला आता है। समझ में आया? लो! इसने धारण किया हो,...

ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है,... चौदह ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं। आहाहा! नारकी के क्षेत्र में भी अनन्त बार नारकी हुआ है। आहाहा! जिसकी आदि नहीं। भगवान कहाँ रहा? मिथ्यात्व के कारण अनुभूति की श्रद्धा से विपरीत मिथ्यात्व के कारण कर्म बँधा और ऐसा कोई क्षेत्र नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्मा न हो। आहाहा! सिद्ध क्षेत्र में भी निगोदरूप से अनन्त बार जन्मा है। निगोदरूप से। निगोद है न वहाँ? सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ (भी) निगोद है। उनके पेट के आत्मा में निगोद है। अनन्त निगोद एकेन्द्रिय है। आहाहा! भगवान अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं और उनके पेट में अनन्त निगोद है, वे अनन्त दुःख को अनुभव करते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? जो क्षेत्र भगवान सिद्ध का है, वही क्षेत्र अन्दर में निगोद का है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! पेट शब्द से आत्मा का क्षेत्र है उसमें। क्षेत्र तो उनका भिन्न है। आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था कि मैं भगवान चक्रवर्ती को मिला हूँ। कब? कि हमने बड़ा गुनाह किया था, तब हमको फाँसी देने की तैयारी थी, तब हम कोर्ट में गये। वहाँ है न वह? गुनेहगार का खड़ा रखते हैं। कठहरे में। उसमें खड़े थे, तब हमने चक्रवर्ती को देखा था। राजा से मिले थे। कब? कि हमने बड़ा गुनाह किया था, तब अन्दर बन्द करते हैं न? कठहरा। अपने क्या कहते हैं भाई? पांजरुं। पिंजड़े में। पिंजरे में खड़ा रखे। गुनेहगार को पिंजरे में रखे। इस गुनेहगार ने पिंजरे में चक्रवर्ती को देखा था। ऐसा कहे।

हमारे भी एक अफीम का केस चला था। (संवत्) १९६३ के वर्ष में। झूठा (केस)। बड़ोदरा कोर्ट में। १९६३ के वर्ष की बात है। ६३। कितने वर्ष हुए? ६९-७० वर्ष पहले हमारी दुकान थी तो बक्शीश लेने आया था। हमने कहा कि हम तो व्यापारी हैं। ६३ के वर्ष। तब तो उम्र छोटी। पिताती थे। १७ वर्ष की उम्र। तो हमने आठ आना दिये। तो (वह) कहे, हम रुपया लेंगे। उसमें हुई तक़रार। उस बड़ोदरा कोर्ट में उसने फरियाद की। मेरे पिताजी को और बड़े भाई को ले गये। हमारे मनसुखभाई के पिता कुंवरजीभाई। कुंवरजीभाई नहीं। ... शिवलालभाई नहीं थे। पाँच थे। परन्तु वह व्यक्ति ऐसा। तब तीन हजार मासिक वेतन, हों! (संवत्) १९६३ के वर्ष में तीन हजार वेतन। उस समय तीन हजार। परन्तु हमको देखकर कहा, इन लोगों को कठघरे में खड़े नहीं रखना। खुल्ले में खड़े रखो। ये गुनेहगार नहीं लगते। यह तो बनिया दिखते हैं। बड़ी कोर्ट, हों! बड़ोदरा में बाहर (थी)। तब महीने का तीन हजार वेतन। क्या कहा जाता है भाई उन लोगों को?

मुमुक्षु : प्रेसीडेन्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेसीडेन्ट। तीन हजार वेतन उस समय। अभी तो १९६३ के वर्ष। परन्तु हम जैसे कोर्ट में गये, वहाँ बाहर खड़े रहो। कठघरे में नहीं। संसार की अफीम की खोटी बात थी। रुपया-आठ आने का विवाद। वह अफीम लेकर निकले थे,

ऐसा झूठा सिद्ध किया। एक महीने और सात दिन (केस चला)। सात सौ का खर्चा हुआ। उसे—प्रेसीडेन्ट को (लगा), केस खोटा है। यह तो बनिये हैं। इनका मुख तो देखो! हमारी तो तब १७ वर्ष की उम्र। १० और ७। तीन घण्टे हमारी ली... क्या कहलाता है? (जुबानी)। कोर्ट में तीन घण्टे, हों! हम तो कुछ उलझते नहीं। हमने तो जैसा था, वैसा बराबर कहा था। हमारे भाई थे नानालालभाई। हमारे यह मनहर आया है न, इसके पिता। पिता थे। कानजी क्या हुआ तुझे?

मुमुक्षु : हिन्दी में कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना तो समझो। तीन घण्टे हमारे कोर्ट में पूछताछ (चली), इतनी भाषा नहीं समझते?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जुबानी। तीन घण्टे ली। हमारे छोटे भाई थे, वे कहते थे कि भाई! कैसे हुआ? मैंने कहा, कुछ हुआ नहीं। छोटी उम्र न हमारी? १७ वर्ष की उम्र और रूपवान सुन्दर शरीर। कुछ हुआ नहीं। मैंने तो तीन घण्टे जैसा था वैसा कह दिया है। और फिर कोर्ट वहाँ लाये। जहाँ केस हुआ था, वहाँ कोर्ट लाये। बड़ोदरा से पालेज। बड़ोदरा। केस बड़ोदरा चला था। केस लाये और केस एकदम साफ (हो गया)। यह केस एकदम खोटा है। यह अभी हमारे ऊपर केस चलता है न? यह सोनगढ़ का खोटा है। अरे! मर जायेगा। भगवान! यह तेरा केस खोटा है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : यह सच्चा

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो न हो तो हुआ है ही यहाँ। सत् को तीन काल में आँच नहीं।

यहाँ कहते हैं कि... आहाहा! ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, कि जहाँ उपजा न हो,... आहाहा! सिद्ध के क्षेत्र में अनन्त बार जन्मा है। सातवें नरक में अनन्त बार जन्मा है। नित्यनिगोद में अनन्त बार (काल) जन्मा है। आहाहा! ऐसा कोई काल नहीं है कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों,... असंख्य अनन्त अवसर्पिणी गया तो प्रत्येक समय में अनन्त बार जन्मा और मरा है। आहाहा! यह तो ठीक। अब यह आया।

और ऐसे अशुद्ध भाव नहीं हैं, जो उसके न हुए हों। क्या कहते हैं, देखो अब। ऐसे अशुद्ध भाव नहीं हैं, जो उसके न हुए हों। अनन्त बार अशुद्ध भाव। क्या? सम्यग्दृष्टि बिना के। सम्यग्दृष्टि को जो अशुद्ध हो, वह यहाँ गिनने में नहीं आते। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तो शुद्धभाव होते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। रागादि अशुद्ध आते हैं, परन्तु यहाँ तो शुद्धभाव होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। रागादि अशुद्ध आते हैं, परन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शन बिना मिथ्यादृष्टि के काल में ऐसा कोई अशुद्धभाव नहीं रहा कि अनन्त बार न किया हो। तो शुभभाव अनन्त बार किया। अशुद्धभाव का अन्तरगर्भित भाग शुभभाव। अनन्त बार शुभभाव किये।

ऐसा अशुद्ध भाव नहीं है, जो इसके न हुए हों। तो उस शुभभाव से धर्म हो तो शुभभाव तो अनन्त बार किये। यह कहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान! तेरी मिथ्यादृष्टि से, शुद्धात्मा की अनुभूति की श्रद्धा से विपरीत दृष्टि से इतने कर्म बँधे कि उन कर्मबन्धन में ऐसा कोई शुभभाव नहीं रहा कि अनन्त बार न किया हो। आहाहा! अमरचन्दभाई! शुभभाव। यह अशुद्ध का अन्तर्भेद है न? ऐसा अशुद्ध भाव नहीं है, जो इसके न हुए हों। ऐसे अशुद्धभाव नहीं कि जो अज्ञानी को अनन्त काल में न हुए हों। आहाहा! ऐसा शुभभाव कैसा? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, समवसरण में पूजा, भव-भव में पूजा, भगवान की अस्ति साक्षात् विराजते हों, वहाँ मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) जय नारायण, जय भगवान (किया), ऐसे शुभभाव अनन्त बार किये। ऐई, शिखरचन्दजी!

मुमुक्षु : क्या मिला?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मिला? शुभभाव मिला। भवभ्रमण मिला। आहाहा! समझ में आया? लो, है?

ऐसा अशुद्ध भाव नहीं है, जो इसके न हुए हों। इसके अर्थ में आता है या नहीं यह? अशुद्धभाव के दो प्रकार—शुभ और अशुभ। शुभ और अशुभ ऐसे (बाकी) नहीं रहे कि जो इसने अनन्त बार न किये हों। ओहोहो! यदि शुभभाव से धर्म होता हो, तो अनन्त बार हो गया। कहते हैं कि शुभ करते-करते किसी को हो जायेगा। परन्तु किसी को हो जाये, यह सिद्धान्त ही कहाँ है? ऐसे शुभभाव तो अनन्त बार किये। मनुष्यरूप

से साधु होकर अनन्त बार किये। समझे? यह कहीं है साधु का। है, इसमें ही है। इसमें है, देखो!

इस तरह अनन्त परावर्तन इसने किये हैं। ऐसा ही कथन मोक्षपाहुड़ में (गाथा-१५) निश्चय मिथ्यादृष्टि के लक्षण में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है—देखो! है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में। यह तो है। नहीं, इसकी बात नहीं। बाद में यह तो आयेगा। यह तो श्लोक है। श्लोक है न?

जो पुणु परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।

मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठकम्महिं॥१५॥

यह श्लोक है अन्दर। समझे? यह १५वाँ श्लोक है। १५ न? मोक्षपाहुड़ अभी चला नहीं? मोक्षप्राभृत। १५वाँ श्लोक है न? १४-१५। 'जो पुणु परदव्वरओ' पहले १४वाँ था। 'सहव्वरओ' यह 'परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू। मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठकम्महिं।' आहाहा! यह परद्रव्य किसे कहते हैं, यह बात आ गयी अपने। आया न? 'आदसहावादणं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं' परद्रव्य, भगवान सर्वज्ञ भी अपने से सचेत परद्रव्य है। आहाहा! परद्रव्य में लीन है तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को शुभराग भक्ति आता है। भगवान की भक्ति आदि (का भाव आता है)। परन्तु उसमें लीन नहीं। भाव आता तो है, परन्तु उसमें एकाग्र होकर यह धर्म है, ऐसी दृष्टि समकित्ती की नहीं है। भक्ति करे, अरे! इन्द्र एक भवतारी। शकेन्द्र एक भवतारी है। नन्दीश्वर द्वीप है न? आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप। बावन जिनालय शाश्वत्। एक-एक जिनालय में १०८ रत्न की प्रतिमा। भगवान की रत्नमय प्रतिमा शाश्वत है। इन्द्र एक भवतारी आठ दिन जाते हैं और भगवान के समक्ष घुंघरुं बाँधकर नृत्य करते हैं। जानते हैं कि यह शरीर की—जड़ की क्रिया है। यह शुभभाव होता है, वह बन्ध का कारण है। बाहर में हर्ष भी दर्शाते हैं परन्तु अन्दर में उस शुभराग के प्रति खेद है। आहाहा!

मुमुक्षु : लीन नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लीनता नहीं।

मुमुक्षु : तो भक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग आ जाता है। वह भक्ति जड़ की क्रिया है। भाव आवे इतना।

मुमुक्षु : लीनता बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : लीनता नहीं होती, यह बात है। वह ज्ञाता होता है। धर्मलालजी! समकिति राग में आता है परन्तु उसे ज्ञाता-दृष्टा होकर जानता है। अज्ञानी राग में लीन होकर जानता है। बहुत अन्तर है, भाई! आहाहा! समझ में आया? भक्ति करता है। यह भगवान का जन्म हो, तब इन्द्र आता है। एक आँख से देखने में तृप्ति नहीं होती। हजार आँखें बनाता है। राग तो आया परन्तु राग को जानता है, राग में लीन नहीं है।

मुमुक्षु : हजार आँखें जड़ की क्रिया करने का राग है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आया। वह तो जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : जड़ की क्रिया बनाने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाने का नहीं। बना है। जड़ की क्रिया। राग आया कि मैं भगवान को ऐसे देखूँ। भगवान का सुन्दर शरीर। उनके आत्मा की तो क्या बात करना? शरीर की कोमलता, नम्रता, कोमलता इतनी एक-एक अंग में। ओहोहो! हजार आँख बनाकर देखे। अन्दर राग है, शुभराग है। परन्तु उस राग में लीन नहीं। धर्मी राग को ज्ञातारूप से जानता है। राग तो आता है या नहीं? मुनि को आता है। भगवान की भक्ति (करता है)

मुमुक्षु : महाव्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत राग है, शुभराग है। आता है। आये बिना रहता है? कोई (पूर्ण) वीतराग हो गये हैं? आता है परन्तु उसमें एकाकार नहीं। ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया? यह १५वीं गाथा। देखो! अपने १५वीं आयी न? यहाँ कितनी आयी? ७७। यह १५वीं। गाथा १५-१५। मोक्षप्राभृत की। ऐसा कहा, देखो! क्या कहा?

उसका अर्थ यह है कि जो नर नारकादि पर्यायों में मग्न हो रहे हैं, वे जीव

परपर्याय में रत मिथ्यादृष्टि हैं,.... समझ में आया ? पहले ऊपर है। अज्ञानी जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप परद्रव्य में लीन हो रहे हैं,.... देखो ! है ? अज्ञानी नोकर्म—शरीर, भावकर्म—राग, द्रव्यकर्म—जड़। उनमें लीन रहता है। है ? साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही हैं,.... महाव्रत धारण किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' आता है ? भाई ! छहढाला में। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत धारण किया। पंच महाव्रत, वह दुःखरूप है। आस्रव है। 'लेश सुख न पायो...' इसका अर्थ क्या हुआ ? पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह तो दुःख है, राग है। आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि दुःख में लीन नहीं। राग आता है। अज्ञानी उसमें लीन होकर (जानता है कि) बस, यह राग, वह धर्म है और इससे मुझे धर्म होगा। सूक्ष्म बात है, भाई ! अरे... ! अनन्त काल से शल्य रह गया है। मुनिव्रत अनन्त बार धारण किये। आहाहा ! नग्न दिगम्बर, एक-एक महीने के अपवास, दो-दो महीने के समाधिमरण। परन्तु मिथ्यादृष्टि राग में प्रेम है। उस क्रिया का कर्ता होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

साधु के व्रत धारण करने पर भी मिथ्यादृष्टि ही हैं,.... देखो ! व्रत धारण करने पर भी.... राग में लीन है। सम्यग्दर्शन है नहीं। आत्मा की अनुभूति से श्रद्धा होनी चाहिए, वह है नहीं। विपरीत श्रद्धा में व्रत आदि धारण किये, वह सब संसार मिथ्यादृष्टि है। और प्रवचनसार की अन्तिम पाँच गाथाओं में ऐसा लिया है कि दिगम्बर साधु हुआ, समझ में आया ? दिगम्बर साधु हुआ, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (पालन किये) परन्तु उसे राग का प्रेम है तो वह संसारी जीव है। संसारतत्त्व, ऐसा लिया है। प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका)की अन्तिम पाँच गाथायें हैं। पंच रत्न। संसारतत्त्व है। दिगम्बर साधु, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार। अभी तो अट्ठाईस मूलगुण भी नहीं। उनके लिये बनाया हुआ भोजन लेते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्रत नामधारी। व्रत थे कब ? लोग ऐसा कहते हैं न कि यह व्रतधारी है। कहा न ? पाँच महाव्रत लेते हैं, हजारों रानियाँ छोड़ते हैं, एक महीने-महीने के उपवास करते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि राग से (भिन्न आत्मा की) अनुभूति

तो है नहीं। भगवान आत्मा आनन्द के नाथ की अनुभूति की श्रद्धा से तो विपरीत वह श्रद्धा है। उस राग में ही धर्म मानता है। देश सेवा करो, ऐसा करो... ऐसा करो... भगवान की सेवा करो, धर्म होगा। यह सब मिथ्यादृष्टि है। उसकी प्ररूपणा ही मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास किये न। यह पाप है न! शुभभाव है, वह निश्चय से पाप है। अपवास अर्थात् क्या वहाँ? उपवास तो उसे कहते हैं, अपने आनन्द के नाथ के उप अर्थात् समीप बसना। आनन्द का भोजन करना, इसका नाम उपवास है। आनन्द के भोजन बिना अकेले राग का भोजन करे, वह उपवास नहीं, वह तो लंघन है। समझ में आया? आहाहा! लिया है न? देखो!

साधु के व्रत धारण करने पर भी.... शुभराग से धर्म होता है। तुम भी शुभराग करो तो उसमें धर्म होगा। परम्परा धर्म होता है मिथ्यादृष्टि को। यह सब मिथ्या प्ररूपणा है। यह परम्परा मोक्ष कहा, वह तो सम्यग्दृष्टि को राग में एकता नहीं है, स्वभाव में एकता है। राग आये बिना रहता नहीं। तो उस राग में अशुभराग अभी टला है। पश्चात् शुभराग टालकर स्वभाव में शुद्धता करेगा। इसलिए परम्परा कहा है। अभाव करने के लिये परम्परा कहा है। सम्यग्दृष्टि अभाव करेगा ही। समझ में आया? मिथ्यात्व का अभाव किया है तो राग का अभाव करेगा ही। इसलिए कहा है। नहीं कि शुभराग से मुक्ति होगी। ऐसा है नहीं। आहाहा! प्ररूपणा में बहुत अन्तर, मान्यता में बड़ा अन्दर।

कहते हैं, देखो! **सम्यग्दृष्टि नहीं और मिथ्यात्वकर परिणामते दुःख देनेवाले आठ कर्मों को बाँधते हैं।** देखो! यह व्रतधारी मिथ्यादृष्टि (जिसे) सम्यग्दर्शन का भान नहीं। वह दुःखी होकर **आठ कर्मों को बाँधते हैं।** आहाहा! यद्यपि पंच महाव्रत निरतिचार है, वह तो अभी है नहीं। नौवें ग्रैवेयक में साधु होकर गया था... 'मुनिव्रत धार...' ऐसा शुभभाव तो अभी है नहीं। वह भाव भी मिथ्यात्व का कारण है। समझ में आया? **आठ कर्मों को बाँधते हैं।** बाद में दृष्टान्त मोक्षपाहुड़ में कहा, वह दिया न? यह मोक्षपाहुड़ में कहा है। यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण २, बुधवार
दिनांक-११-०८-१९७६, गाथा-७७-७८, प्रवचन-५९

फिर भी आचार्य ने मोक्षपाहुड़ में कहा है—यह भी आचार्य ने मोक्षपाहुड़। इस मोक्षपाहुड़ का अर्थ वहाँ जरा प्रवचनसार, यह भूल से छप गया है। दूसरा भाग है न? मोक्षपाहुड़ में कहा है—मोक्षपाहुड़ नहीं चाहिए वहाँ। वहाँ प्रवचनसार चाहिए। आहाहा! मोक्षपाहुड़ की पहले गाथा आ गयी है। यह प्रवचनसार की है। परन्तु छपने में भूल है। यह उक्तं अन्त में है न पाठ में? उक्तं है। पुनः उक्तं, ऐसा कहकर। यह मोक्षपाहुड़ की गाथा नहीं। प्रवचनसार की गाथा है। देखो!

मुमुक्षु : प्रवचनसार की ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार। प्रवचनसार की गाथा आती है।

यह प्रवचनसार अध्याय दूसरा, गाथा दूसरी। 'जे पज्जएसु णिरदा' यह गाथा। है? 'जीवा परसमइग त्ति णिद्धिटा। आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणोयव्वा ॥' प्रवचनसार अध्याय दूसरा, गाथा-२। टीका में जरा भूल हो गयी है। मोक्षपाहुड़ की गाथा (लिखा) है, परन्तु है प्रवचनसार की। देखो! क्या कहते हैं? जो कोई प्राणी... स्वसमय और परसमय की व्याख्या है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिव्यध्वनि सुनकर आये थे। आठ दिन भगवान के पास रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया। उसमें यह गाथा ली। प्रवचनसार, दूसरा भाग, गाथा-२। क्या कहते हैं?

जो नर नारकादि पर्यायों में मग्न हो रहे हैं,... जो कोई प्राणी 'पज्जयमूढा' यह शब्द है यहाँ। इनकी टीका श्वेताम्बर में हुई है कि 'पज्जयमूढा' तो वेदान्त हो जाता है। पर्याय नहीं? समझ में आया? पर्याय है। परन्तु एक समय की पर्याय में मूढ है। यशोविजयजी ने इस गाथा की ऐसी टीका की है कि भाई 'पज्जयमूढा' पर्याय तो है। वेदान्त हो जाता है। ऐसा नहीं। यहाँ ऐसा नहीं। एक समय की पर्याय को ही अपना आत्मा मानता है और पर्याय पर दृष्टि है, तो उसकी दृष्टि लम्बाती है तो राग और पर के ऊपर जाती है। शरीर को भी पर्याय कहा जाता है। तो पर्याय, अपना एक अंश और शरीर इतनी मेरी चीज़ है, ऐसा माननेवाले परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनदृष्टि नहीं। समझ में आया?

भगवान पूर्णानन्द का नाथ एक समय में पूर्ण स्वरूप है, उसकी दृष्टि छोड़कर... वह तो इसमें आया है। समयसार नाटक में आता है। पर्यायबुद्धि नहीं। समयसार नाटक में आता है। पर्यायबुद्धि का मूल तो यह है। फिर अर्थ ऐसा करते हैं कि शरीरबुद्धि नहीं। परन्तु वास्तव में तो एक समय की पर्याय की समकिति की बुद्धि है ही नहीं। जाने सही। परन्तु बुद्धि में पर्याय नहीं, त्रिकाली दृष्टि का विषय है। समझ में आया? वस्तु भगवान पूर्णानन्दस्वरूप... यह बाद में कहेंगे। पहले यह लिया। पर्यायमूढा—एक समय की पर्याय में जिसकी मूढ़ता है.... आहाहा! वह व्यवहारमूढ़ है। पर्याय है, वह निश्चय से व्यवहार है। द्रव्य है, वह निश्चय से निश्चय है। त्रिकाली वस्तु है, वह निश्चय है और एक समय की पर्याय व्यवहार है। आचार्य को ऐसा अभिप्राय लेना है कि आत्मा की एक समय की पर्याय, उसमें जो मूढ़ है, फिर यहाँ स्पष्टीकरण ऐसा किया नर नारकादि पर्यायों में मग्न हो रहे है,...

वे जीव पर्याय में रत... आहाहा! वह जीव परपर्याय में रत। निश्चय से तो एक समय की पर्याय भी पर है। समझ में आया? निश्चय से तो त्रिकाली जो ज्ञायकभाव स्वकाल है, त्रिकाल, उसकी अपेक्षा से एक समय की पर्याय भी परकाल है। समझ में आया? त्रिकाली वस्तु जो है, वह स्वकाल है और एक समय की पर्याय, वह परकाल है। आहाहा! एक समय की पर्याय, वह परद्रव्य है। त्रिकाली स्वद्रव्य की अपेक्षा से। आहाहा! एक ही समय की पर्याय में पर्यायमूढा। (समयसार गाथा) ४१३ में ऐसा कहते हैं कि व्यवहारमूढा। जो पर्याय और राग में मूढ़ है। अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव मूल निधि, मूल निधि, उसकी दृष्टि नहीं, उसका अन्तर स्वीकार नहीं, वह एक समय की पर्याय का स्वीकार करता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया?

समयसार नाटक में नहीं आया? पर्यायमूढा, पर्यायबुद्धि नहीं आत्म गवेषी न गृहस्थ, न यति है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव न गृहस्थ है, न मुनि है। सम्यक्त्व चौथे (गुणस्थान में) आहाहा!

स्वार्थ के साचे परमार्थ के साचे चित्त,
साचे साचे वेण कहे, साचे जैन मति है,
काहू के विरोधि नाही, परजायबुद्धि नाहि,...

समझ में आया ? धन्नालालजी ! कहीं भी धन्धे में निवृत्ति कहाँ है ? निवृत्ति लेनी पड़ेगी । वरना भव बिगड़ जायेगा । ऐसी बात है । आहाहा ! एक बार गजराजधर ने कहा था । तुम्हारा गजराजधर ने व्याख्या में । बेटा ! खबर है वहाँ कलकत्ता में ? रात्रि में बैठे थे । कुछ समझ में आता है ? आहाहा !

भगवान आत्मा सम्यग्दृष्टि कैसे होते हैं ? 'काहू के विरोधि नहीं, परजायबुद्धि नाही ।' एक समय की पर्याय की बुद्धि, उसे पर्यायबुद्धि नहीं । आहाहा ! 'आतमगवेषी ।' वह तो भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी गवेषणा—शोधक है । वह तो आतमगवेषी है । समझ में आया ? 'आतमगवेषी न गृहस्थ है, न जति है । सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसै...' आहाहा ! अनन्त आनन्द की शक्ति ऋद्धि अपने में दिखती है । बाहर में यह धूल की ऋद्धि, वह आत्मा की नहीं । समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि को अपनी ऋद्धि अपने में दिखती है । आहाहा !

मुमुक्षु : अज्ञानी को कहाँ दिखती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को बाहर में दिखती है । स्त्री, कुटुम्ब, शरीर, पैसा, इज्जत, यह हमारी ऋद्धि । मूढ है । पोपटभाई ! पैसा और पुत्र अधिक है । ऐसा कि अब उसमें... आहाहा !

यह प्रभु ! तू कौन है ? अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का दल है । तू दल है । अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है । आहाहा ! उसकी दृष्टि होने से आनन्द का झरना झरता है । समझ में आया ? आहाहा ! एक समय की पर्याय और शरीरादि में मूढ है, उसे तो दुःख के झरने, दुःख का वेदन है । आहाहा ! बाहर में कोई संयोग से दुःख है या संयोग के विरह से दुःख है, दुश्मन के विरह से सुख है, स्त्री के विरह से दुःख है, ऐसा नहीं है । समझ में आया ? आहाहा ! एक समय की पर्याय और राग को और शरीर को अपना मानना, बाहर की ऋद्धि को अपना मानना, वह मिथ्यादृष्टि बहुत दुःखी है । समझ में आया ? और समकिति 'सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसै..' अपने स्वरूप में पूर्ण आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसी ऋद्धि धर्मी अपने में देखता है । सिद्धि । वह सिद्धदशा की प्राप्ति होना, वही अपनी सिद्धि है । कोई वचन की सिद्धि हो, यह नहीं । आहाहा ! अपने परमात्मस्वरूप की सिद्धि दृष्टि में आयी, वही उसकी सिद्धि हो गयी ।

‘सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसै..’ आहाहा! शुद्ध चैतन्य की पर्याय में वृद्धि दिखती है। वस्तु तो वस्तु है। परन्तु वस्तु की दृष्टि होने पर... लोग नहीं कहते? अभी हम तो बहुत बढ़ गये। पैसे से, इज्जत से। हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। क्या कहा जाता है वह? ... भाषा है कुछ। यह कुछ भाषा है। चडती टोच, ऐसा कुछ कहते हैं। चडती डेगरी, समझ में आया? चडती डेगरी नहीं तोड़ना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हमारे चडती बेल कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेल कहते हैं। वह तो सही। चडती डेगरी, ऐसा कि इज्जत में बढ़ते हैं, ऐसे बढ़ते हैं, ऐसे बढ़ते हैं। समझ में आया? चडती डेगरी। हमारे तो सीधा शब्द आया था न। जब बड़े भाई का विवाह था। हमने कहा कि हमारा नाम नहीं लेना विवाह करने में। हमें तो ब्रह्मचर्य लेना है। लोग एकदम भड़के। (संवत्) १९६८ के वर्ष, माघ महीना। भाई का विवाह हुआ। अरे! चडती डेगरी तोड़ डालते हो तुम, ऐसा कहे। यह बाहर की।

मुमुक्षु : दूसरी चडनी थी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल भी नहीं। आहाहा! इज्जत बढ़ती है, उसमें चोट पड़ती है। आहाहा! क्या (चोट) पड़ती है?

यहाँ तो ‘सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसै...’ आहाहा! क्षण-क्षण में शुद्धता की वृद्धि दिखती है। आहाहा! अर्थात् कि शुद्धता का भान हुआ और जो शुद्धता प्रगट हुई, उतना तो संवर है और क्षण-क्षण में शुद्धता बढ़ती है, उसका नाम निर्जरा है। और शुद्धता की पूर्णता होती है, उसका नाम मोक्ष है। आहाहा! यह चडती डेगरी है। आगे बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान (होगा)। आहाहा! यह कहा था न एक बार? धवल में ऐसा आता है। अपने स्वरूप का जहाँ भान हुआ कि मैं पूर्णानन्द प्रभु हूँ। उसमें जो मति और श्रुतज्ञान हुआ, अपने जाननभाव से, वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। चन्दुभाई! आओ प्रभु। केवलज्ञान मेरी पर्याय की ऋद्धि नजदीक आओ। आहाहा! करोड़ और लाख करोड़ और अरब और यह। आहाहा!

अपना स्वरूप चिदानन्द का जहाँ मतिज्ञान में ज्ञान हुआ, सम्यग्ज्ञान (हुआ), वह

ज्ञान आत्मा को जानने में प्रत्यक्ष होता है। पर के विकल्प की, निमित्त की, मन की सहायता नहीं। वह मतिज्ञान ऐसी पुकार करता है—अन्दर वीर्य उछलता है। आहाहा! केवलज्ञान को बुलाता है। केवलज्ञान नहीं है न? अन्दर शक्तिरूप से है न? बाहर आओ... बाहर आओ। पूर्ण आओ... पूर्ण आओ। मैं पूर्ण ऋद्धि-सिद्धिवाला हो जाऊँ। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। ऐसी चीज़ को भूलकर पर्याय में मूढ़ है। मग्न कहा है। मूढ़ है। वे जीव परपर्याय में रत मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वे जीव परपर्याय में रत। यह शरीर कहो या पर्याय एक क्षण की है, वह भी वास्तव में द्रव्य से पर है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान ने कहा है,... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में गणधर और एकभवतारी इन्द्रों के बीच भगवान की यह वाणी थी। असंख्य देव एक विमान में, ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी शकेन्द्र और उसकी इन्द्राणी एकभवतारी है। पति-पत्नी दोनों एकभवतारी हैं। उनकी सभा में उपस्थिति भगवान की यह वाणी थी। आहाहा! समझ में आया? अर्ध लोक के स्वामी शकेन्द्र। इस ओर ईशान इन्द्र अर्धलोक के स्वामी, उत्तर के। वे दक्षिण। आहाहा! भरतक्षेत्र के पूरे चक्रवर्ती। यह तो कहते हैं कि अर्धलोक के स्वामी। समझ में आया? वह भगवान की वाणी सुनने समवसरण में आते हैं। आहाहा! बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। वह वैभव मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! मेरी चीज़ का वैभव तो आनन्द का नाथ। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? मैं निज वैभव से कहूँगा। मैं समयसार निज वैभव से कहूँगा। प्रभु! तुम्हारा निज वैभव क्या है? कि हमारा निज वैभव अन्तर में आनन्द का झरना हुआ, प्रचुर स्वसंवेदन हुआ... आहाहा! उससे हमारी आत्मलक्ष्मी—आनन्द की पर्याय में प्राप्ति हुई। आहाहा! वह हमारा निजवैभव है। जो हमारी पर्याय के अनुभव में आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। आहाहा! हमारे अनुभव में, हमारे वैभव में आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पोस्ट में नहीं लगाते ?

यह कहते हैं, भगवान! आहाहा! प्रभु! हमारा वैभव तो यह है। पूर्णानन्द के नाथ

में आनन्द झरता है। आहाहा! वह हमारा झरना और वह हमारी निधि है। आहाहा! पर्वत में से जैसे पानी झरे, वैसे आनन्द के नाथ में से एकाग्र होकर आनन्द झरे, वह हमारा वैभव है। उस वैभव से हम समयसार कहेंगे। आहाहा! भगवान कहते हैं और कहूँगा, ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में ऐसा आता है। पहले श्लोक में। '....' सुधर्म इन्द्र। है न सुधर्म? सुधर्म क्या कहलाये? सुधर्म गणधर जम्बू को कहते हैं, हे जम्बू! भगवान ने मुझे जो कहा है, वह मैं तुमको कहता हूँ। यहाँ कहते हैं, ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं, मैं मेरे निज वैभव से कहता हूँ। आहाहा! भगवान ने कहा, वह मैं कहता हूँ, ऐसा नहीं है। विशेष समझाना हो तो ऐसा कहे कि भगवान ऐसा कहते थे। जिनवरदेव ऐसा कहते हैं। 'जिणवरु एउँ भणेइ' ऐसा नहीं आया? 'जिणवरु एउँ भणेइ' आहाहा! जिसे जिनवर जीव कहे, वह जीव तो मोक्ष के मार्ग और मोक्ष की पर्याय से भिन्न है। जिसे भगवान ने जीव कहा। आहाहा! भगवान आत्मा जिसे भगवान ने कहा। वहाँ तो जीव शब्द प्रयोग किया है। क्योंकि दूसरे कहते हैं कि जीव अर्थात् अल्पज्ञ नहीं, आत्मा पूर्ण निर्लेप है। ऐसा नहीं है। आत्मा कहो या जीव कहो (एकार्थ है)।

'जिणवरु एउँ भणेइ' भगवान, (ऐसा कहते हैं), मोक्ष और मोक्ष के मार्ग को जीव करता नहीं। आहाहा! वह पर्याय है। पर्याय को करता नहीं, उस जीव को हम जीव कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! राग को करे और शरीर की अवस्था को करे, वह तो जीव नहीं, वह तो जड़ है। आहाहा! समझ में आया? देखो तो वाणी वीतराग सन्तों की! आहाहा! दिगम्बर सन्त, वे केवलज्ञान के पथानुगामी! केवलज्ञान प्रवाहित किया है अकेला! आहाहा!

सिद्धान्त में ऐसा आता है न कि तीर्थकर जो उपदेश देते हैं, वह भावश्रुत का उपदेश है। वाणी में भावश्रुत (आया है), ऐसा कहते हैं। वह केवलज्ञान का उपदेश देते हैं, ऐसा नहीं। चन्दुभाई! धवल में है। आहाहा! तीर्थकर भगवान भावश्रुतज्ञान से उपदेश देते हैं। भावश्रुतज्ञान तो है नहीं। परन्तु उस वाणी में द्रव्यश्रुतपना आया, उससे सुननेवाले को भावश्रुत होता है। आहाहा! गणधर को जहाँ... भावश्रुत में निमित्त है। भावश्रुत तो उससे होता है, परन्तु निमित्त है तो उस वाणी को ही भावश्रुत कहा। भगवान की वाणी केवलज्ञानी को भावश्रुत। उन्हें श्रुतज्ञान है नहीं, परन्तु कथन में भावश्रुत से आता है, ऐसा कहने में आया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भावश्रुत की महिमा बतलायी।

यहाँ कहते हैं कि वह मूढ़ जीव भगवान ने कहा। आहाहा! और जो उपयोग लक्षणरूप निजभाव में लिप्त रहे हैं... लो! भाषा इतनी ली थी। मिथ्यादृष्टि। परन्तु परसमय शब्द है। परसमय। परसमय अर्थात् अनात्मा। आहाहा! जो कोई एक समय की पर्याय और राग में रत है, वह अनात्मा है। समझ में आया? पूर्ण स्वरूप को छोड़कर एक समय की पर्याय में और राग में रत है, वह परसमय अनात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, अमरचन्द्रभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया?

तब स्वसमय किसे कहते हैं? आत्मा किसे कहते हैं? कि उपयोग लक्षणरूप निजभाव... देखो! त्रिकाली जो उपयोगभाव, वह निजभाव। आहाहा! उसमें लिप्त रहे हैं... निज भाव में स्थिर हैं। राग में स्थिर हैं, पुण्य में स्थिर हैं, वे तो अनात्मा मिथ्यादृष्टि है। अरे! भगवान! अब यहाँ (लोग) कहते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है, पण्डितों के यह लेख (आते हैं)। आहाहा! बापू! वीतराग के मार्ग में ऐसा जुल्म नहीं चलता। आहाहा!

मुमुक्षु : जुल्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जुल्म है।

यहाँ तो कहते हैं, उपयोग लक्षणरूप निजभाव में लिप्त रहे हैं... उपयोग लक्षण जिसका है, ऐसा भगवान आत्मा, उसमें जो स्थिर होते हैं, रमते हैं, जमते हैं, वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है,... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय में रमते हैं और स्थिर होते हैं, वे तो अनात्मा हैं, ऐसा कहते हैं। वह तो परसमय है। आहाहा! यह वीतराग की वाणी, सन्तों की बात (यह) है। यह कोई व्यवहार साधन और निश्चय साध्य कहा होता है न? वे (वहाँ) लग पड़े। पंचास्तिकाय में कहा न! परन्तु वह तो साधन के दो प्रकार, वह कथन है। व्यवहार साधन तो कथनमात्र है, यथार्थ साधन नहीं। जैसे मोक्षमार्ग के कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग दो नहीं; उसी प्रकार साधक का कथन दो प्रकार का है। साधक दो प्रकार के नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, निजभाव में लिप्त रहे हैं... देखो! रागादि, पुण्यादि निज भाव नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह निज भाव नहीं। उपयोग, वह निज भाव है। जानना-

देखना, ऐसा उपयोग निज भाव है। उसमें जो रमते हैं, स्थिर होते हैं... आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि की व्याख्या ? उसे कहते हैं सम्यग्दृष्टि ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। स्वसमय उपयोग में रमता है, दृष्टि पड़ी है और रमता है, इसका नाम स्वसमय है। आहाहा! पर शरीर आदि, लक्ष्मी आदि में तो नहीं, परन्तु पुण्य के दया, दान, व्रत के विकल्प में भी रमता नहीं। वह तो ज्ञाता का व्यवहार ज्ञेय है। धर्मी का व्यवहार ज्ञेय अर्थात् परज्ञेय है। राग। (वह) स्वज्ञेय से भिन्न है और धर्मी स्वज्ञेय ऐसा आत्मा उपयोग में (स्थिर होता है)। आहाहा! मार्ग कठिन है, भाई! वस्तुस्थिति अशक्य नहीं परन्तु दुर्लभ तो है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने सुलभ कर दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है।

उपयोग जो चैतन्य का उपयोग है, त्रिकाली उपयोग है, आहाहा! उसमें स्थिर होना, समझ में आया ? परन्तु पर्याय में नहीं। त्रिकाली उपयोगस्वरूप। ध्रुव उपयोग है न ? नियमसार में कहा है। उपयोग त्रिकाली है, उसे भी हम उपयोग कहते हैं। नियमसार। त्रिकाली, हों! ध्रुव। ज्ञान-दर्शन जो ध्रुव, उसे भी उपयोग कहते हैं। परिणति नहीं। समझ में आया ? आहाहा! स्थिर होता है, वह वर्तमान पर्याय। परन्तु स्थिर होती है किसमें ? त्रिकाली उपयोग आत्मा में। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! जन्म-मरण के अन्त का यह वीतरागमार्ग है। अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! अरे! इसे ऐसा मनुष्यपना मिला, अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्यपना मिले, उसमें भी जैनधर्म सुनने को मिले, जैनधर्म के कुल में अवतार हो, वह महादुर्लभ है। उसमें ऐसी सत्य वाणी वीतराग की कान में पड़े।

प्रभु! तुम कौन हो ? आहाहा! प्रभु! तू हमारी वीतरागी पर्याय सिद्धि की, उससे भी अनन्तगुणी शक्ति तेरी अन्दर है। ऐसा त्रिकाल ज्ञान-दर्शन उपयोगमय प्रभु, उसमें रमना। रमना, वह पर्याय है। परन्तु द्रव्य-गुण जो त्रिकाल है, उसमें रमना। आहाहा! समझ में आया ? प्रवचनसार दूसरा अध्याय है न ज्ञेय अधिकार ? ज्ञेय अधिकार का अर्थ ही जयसेनाचार्य ने लिया है—दर्शन अधिकार—समकित अधिकार। पहली ९२ गाथा,

ज्ञान अधिकार । फिर ९३ गाथा से ज्ञेय अधिकार—दर्शन अधिकार, पश्चात् चरणानुयोग की (२०१ से २७५ गाथा) । यह चारित्र—चरणानुयोग का अधिकार । आहाहा ! अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ऐसे तीन अध्याय हैं । प्रवचनसार । यह बीच के अध्याय की गाथा है । दर्शन अधिकार की । समझ में आया ? बात तो थोड़ी परन्तु माल बहुत बड़ा है । समझ में आया ?

त्रिकाली भगवान आत्मा, जो उपयोगस्वरूप त्रिकाल, उपयोगलक्षण निश्चय । आता है ? तत्त्वार्थसूत्र । तत्त्वार्थसूत्र । उपयोगलक्षणं । भगवान उपयोग लक्षण । तत्त्वार्थसूत्र में आता है । ... नित्य उपयोग लक्षण जिसका त्रिकाल । परन्तु वह लक्षण ध्रुव है, उसकी पर्याय में उस लक्षण का ज्ञान होता है । वह पर्याय लक्षण है, इसलिए पकड़ती है । तो वास्तव में तो पर्याय लक्षण हुई । वह ध्रुव है, वह तो लक्ष्य में आता है, परन्तु वह लक्ष्य करता नहीं । समझ में आया ? आहाहा ! लक्ष्य करती है, वह तो पर्याय करती है । ध्रुव उपयोग लक्षणं भगवान तो है । उस पर्याय को वहाँ जमा दे । आहाहा ! उसे आनन्द का भोजन करने दे । आहाहा ! धन्नालालजी ! यह सब दुःख के भोजन, हों ! तुम्हारे सब । पैसे और पुत्र और स्त्री बैठे हों मानो, ... बैठे हों चारों ओर । छह लड़के, छह बहुएँ, उनके फिर विवाह-बिवाह हो, उसके साले और ससुर और ऐसे सब आये हों । आहाहा !

मुमुक्षु : बहुत मजा आवे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत मजा आवे दुःख का । आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं... यह दूसरी गाथा है । आहाहा ! टीका में भूल हो गयी है । यह तब लिखा था वाँचते हुए, हों ! वाँचते हुए लिखा है । उस समय लिखा है । पहली गाथा है न, वह मोक्षप्राभृत की १५वीं है । पहली है वह । 'परदव्वरओ' परद्रव्य में रक्त है, वह मिथ्यादृष्टि है । 'मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्टुकम्महिं ।' है न ? मोक्षप्राभृत है । 'परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू । मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्टुकम्महिं ।' पहली गाथा थी, वह मोक्षप्राभृत की थी । और यह है प्रवचनसार की । प्रवचनसार—दिव्यध्वनि का सार । आहाहा !

जो कोई अपना उपयोग लक्षणरूप निजभाव में... आहाहा ! व्यवहाररत्नत्रय का

भाव, वह निज भाव नहीं। आहाहा! कठिन बात है। लोगों को ऐसा लगता है न कि यह सोनगढ़वाले तो निश्चय को ही मोक्षमार्ग कहते हैं। व्यवहार को तो साधन कहते ही नहीं। एकान्त है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य क्या कहते हैं? व्यवहार, वह निज भाव ही नहीं। और निज भाव में लीन होना, उसमें व्यवहार में लीन होना आता नहीं। व्यवहार से छूटता है। आहाहा!

स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है,... क्या कहा यह? भगवान आनन्द का नाथ प्रभु। यहाँ लक्षण लिया है। उपयोगलक्षण। जानना-देखना है न? आनन्द और श्रद्धा आदि जानते-देखते नहीं। इसलिए जानन-देखन उपयोग लिया है। जानन-देखन शक्ति उपयोगरूपी आत्मा। **अपने में लिप्त रहे हैं, वे स्वसमयरूप सम्यग्दृष्टि है,...** वह घर में रमता है। राग में रमता है, वह परघर में जाता है—व्यभिचारी। समझ में आया? चाहे तो शुभराग में रमो, है तो व्यभिचार। संयोगी भाव है न? कर्ता-कर्म (अधिकार) में राग को संयोगी कहा न? संयोगी भाव है। जैसे दूसरी स्त्री के साथ विषय लेना, वह व्यभिचार है, उसी प्रकार यह संयोगीभाव है, वह तेरा भाव नहीं। उसके साथ रमना, वह व्यभिचार है। आहाहा! ऐसी बातें, पोपटभाई! आहाहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है, बापू! यह हो...हा... हो...हा... बाहर में। समझ में आया? आहाहा! बहिन को इस बाहर की बात में कोई रस नहीं।

मुमुक्षु : आप कुछ फरमाओ बहिन (बहिनश्री) के विषय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा था न! ६१ के वर्ष में भोजन करने गये। भाई थे न? दोनों व्यक्ति थे। महाराज! ६१ के वर्ष में। पिचहत्तर हजार ... आहार करने गये, महाराज! यह कहाँ? हम तो आत्मा का करते हैं। बहिन! तुम्हारे तो देखना। आहाहा! (लोग) जो करते हैं, वह मेरे हिसाब से तो बहुत कम करते हैं। तब तो खड़े रहे मुश्किल से। मुर्दे की भाँति खड़े थे। देखा न अभी देखा न!

मुमुक्षु : हिन्दी लोग बहुत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत है। इसलिए हिन्दी बोलो ऐसा कहते हैं। इतनी भाषा कहो।

मुमुक्षु : बहिनश्री के विषय में हिन्दी भाईयों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, बहिन के सम्बन्ध में कहा न!

६१ वीं जन्मजयन्ती जब विशाल महोत्सव हुआ था, वहाँ भोजन करने गये तो बहिन ऐसा बोले कि महाराज! यह सब क्या? मैंने कहा, बहिन! तुम्हारे देखना-जानना। मैं तो ऐसा कहता हूँ कि लोग करते हैं, वह कम करते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! ऐई! चन्दुभाई! तुमको इतना मान दे, वह मुझे तो अल्प लगता है। समझ में आया? बोले नहीं, खड़े रहे। नहीं खड़े भी न रहे।

यहाँ तो आत्मा में जहाँ रस है, उसमें बाहर में रस कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया? भगवान के समवसरण में तो इन्द्र देव पुष्पवृष्टि करते हैं। नहीं? वैमानिक देव। उसमें भगवान को प्रसन्नता है? वे तो केवली हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जो प्राणी... आहाहा! भगवान आत्मा उपयोगलक्षण स्वरूप, उपयोग स्वभाव स्वरूप, उसमें जो अन्तर में रमता है, रहता है। वहाँ रहता है, घर में रहता है। आहाहा! राग में रहने जाये, वह परघर में जाता है। समझ में आया?

भजन में नहीं कहा? गाते नहीं थे? 'अब हम कबहूँ निज घर आये, परघर भ्रमत अनेक नाम धराये। परघर भ्रमत...' राग-द्वेष में भ्रमते हुए 'अनेक नाम...' पुण्यवन्त, पापी और देव और नारकी, यह बड़े प्रधान पुरुष हैं और राजा हैं, ऐसे नाम पराधीन में धराये। आहाहा! 'अब हम कबहूँ न निज घर आये।' वह निजघर यह। अपना उपयोग अपने में रहे, उसमें रमना... आहाहा! दृष्टि लगाकर स्थिर होना, वह निजघर में आया है। निजघर में आया, उसे अब परघर की कुछ पड़ी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! इस मार्ग की कोई धमाधम (करे), इसलिए धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

यशोविजयजी कहते हैं न यह? 'धाम धूमे धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर।' बाहर में धामधूम। विशाल रथ निकले, लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करे। मन्दिर बने। ऐसा मानो कि यह धर्म है। 'धाम धूमे धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर।' भगवान आत्मा उपयोगमार्ग अन्दर है। आहाहा! जिसके जन्म-मरण का अन्त आनेवाला है, उसे यह बात बैठती है। ऐसी बात है, भाई! बाकी तो भगवान का अनेकान्तमार्ग है, इसलिए निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, ऐसा नहीं है। यह अनेकान्त है ही

नहीं। निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यह बड़ी गड़बड़ है अभी। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार, प्रसिद्ध जिन्दगी में प्रसिद्धि करते हैं। आहाहा! उनकी तो अस्ति थी न? जिन्दगी के जीवन में—अस्ति में पुकार किया है। प्रभु! तेरी अस्ति आनन्दकन्द शुद्धोपयोग है। वहाँ रह, वहाँ स्थिर हो। उसे भगवान स्वसमय, स्वआत्मा सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान तक स्वसमय नहीं है। और स्वसमय की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी पुस्तक में लिखा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। किसी पुस्तक में ऐसा नहीं है। बारहवें गुणस्थान तक अभी परसमय कहा है। अपूर्ण है न? इस अपेक्षा से। अकेला परसमय नहीं। परन्तु सूक्ष्म परसमय है। पंचास्तिकाय में है न? आहाहा! पंचास्तिकाय में है। अन्तिम गाथा। यह और याद आ गया। अन्दर है, हों! पंचास्तिकाय में है। जो कोई देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से धर्म मानता है, वह तो परसमय मिथ्यादृष्टि है। परन्तु सम्यग्दर्शनसहित भी भक्ति में आता है, इतना परसमय है। मिथ्यादृष्टि नहीं। समझ में आया? आहाहा! पंचास्तिकाय में है। अभी वाँचन नहीं किया।

सिद्धि के साधनभूत ऐसे अर्हतादि भगवन्तों के प्रति भक्तिभाव से अनुरंजित चित्तवृत्ति को यहाँ शुद्धसम्प्रयोग कहा है। अब, अज्ञानवल के आवेश से यदि कोई ज्ञानवान भी उस शुद्धसम्प्रयोग से मोक्ष होता है, ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद पाता हुआ... आहाहा! भगवान की भक्ति द्वारा भी मुक्ति होगी। ऐसा खेद प्राप्त करता हुआ उसमें (शुभोपयोग में) प्रवर्ते, तो वहाँ तक वह भी रागलव के सद्भाव के कारण... अल्प भी वह राग है। परसमयरत कहा जाता है। आहाहा! तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतरजन क्या परसमयरत नहीं कहलायेगा? क्या कहते हैं?

जो कोई सम्यग्दृष्टि स्वसमय में है, वह भी जब भक्ति में है, उसे मोक्ष का पंथ

रुक जाता है तो उससे मोक्ष जाने तो परसमयरत है। यदि माने तो मिथ्यादृष्टि है। और इतना हो तो वह सूक्ष्म परसमय है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह सोनगढ़ में प्रकाशित हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रकाशित हुआ है ? पुस्तक चाहे जहाँ की हो। वाणी तो पहले की है। वाणी तो है, वह है। १६५ गाथा, पंचास्तिकाय। परसमय की व्याख्या है।

और जो आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं,.... आहाहा! वे स्वसमय (सम्यग्दृष्टि) है,.... है ? सारांश यह है कि जो परपर्याय में रत हैं, वे तो परसमय (मिथ्यादृष्टि) हैं और जो आत्म-स्वभाव में लगे हुए हैं, वे स्वसमय (सम्यग्दृष्टि) हैं,.... देखो! स्वसमय की व्याख्या सम्यग्दृष्टि की है। और वे स्वसमय में सम्यग्दृष्टि कहते हैं,.... नहीं, इसलिए उसे स्वसमय ऊपर होता है, नीचे नहीं। समझ में आया ? अरे रे! तत्त्व का विरोध कर डालना। स्वयं पालन न कर सके, यह अलग बात है। मार्ग है, ऐसा तो मानना चाहिए। अनादि मार्ग है भगवान का।

यहाँ तो यह कहा, देखो! तात्पर्य यह है कि परपर्याय में रत हैं, वे तो परसमय (मिथ्यादृष्टि) हैं और जो आत्मस्वभाव में लगे हुए हैं,.... आहाहा! रुचि और ज्ञान में उस ओर का झुकाव है। आहाहा! वे स्वसमय (सम्यग्दृष्टि) हैं,.... सम्यग्दृष्टि को यहाँ स्वसमय कहा है। भले अंश है परन्तु है स्वसमय न ? समझ में आया ? रयणसार में बारहवें गुणस्थान तक परसमय लिया है। बारहवें गुणस्थान तक, तेरहवें में स्वसमय। बस। फिर परसमय नहीं। विद्यानन्दजी वहाँ दिल्ली में कहते थे, चौदहवें गुणस्थान तक परसमय है। सिद्ध में स्वसमय। ऐसा नहीं है। वह जिनेन्द्रवर्णी बैठे थे। कहा, यह क्या कहते हैं ? कोई अपेक्षा से कहते हैं। शास्त्र में यह शब्द ही नहीं है। ऐसा कि जरा वह अघाति का उदयभाव है न ? परन्तु उसके कारण वह परसमय नहीं। समझ में आया ? वह तो आत्मा के आनन्द में केवलज्ञानी परमात्मा पूर्ण हुआ है। अपने स्वसमय में ही है। समझ में आया ? विपरीत पर्याय है इतनी, तथापि उसके ज्ञान में ज्ञान हुआ, आनन्द हुआ, उसमें वह लीन है। उसे जरा भी परसमय नहीं। चौदहवें गुणस्थान तक परसमय है नहीं। सिद्ध में स्वसमय। वे सब... लोगों को अनुकूल लगाने के लिये... कैलाशचन्द्रजी

थे, वे बोले थे, ओहो! बहुत सरस व्याख्यान है। लो, ठीक! सरस व्याख्यान है। आहाहा! अरे! भगवान!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को ही स्वसमय कहते हैं। यहाँ पर आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है,.... लो! क्या कहा और? आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से... अर्थात् चौथे गुणस्थान में वीतराग समकित लिया है। वीतराग चारित्रसहित यह आया था। वीतराग चारित्रसहित जो सम्यग्दर्शन है, वह उत्कृष्ट साधक है। यह आया था पहले। इसमें आया था न? वीतराग चारित्र के अनुकूल.... यह ७६ गाथा में है। वीतराग चारित्र के अनुकूल जो शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग सम्यक्त्व है,.... यह वीतराग समकित है। परन्तु वह रागरहित बतलाना है, वीतराग चारित्रसहित है, उसे वीतराग चारित्र।

यहाँ जो कहा, वह वीतराग समकित राग हो, परन्तु सम्यग्दर्शन है, उसे स्वसमय सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? इसका बड़ा विवाद है। ऐसा कहे पहले वीतरागता होती नहीं, सराग समकित है। चौथे गुणस्थान में सराग समकित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका में आता है। परन्तु वह तो चारित्र के दोषवाला समकित है। समकित के दोषवाला, ऐसा नहीं। समझ में आया? चारित्र का दोष है, इसलिए समकित को सरागसमकित कहा। समकित सराग है ही नहीं। वीतरागी समकित, वह समकित है। पंचाध्यायी में सराग समकित का बहुत स्पष्टीकरण किया है। पंचाध्यायी में। सराग समकित-बमकित है ही नहीं। समकित तो वीतराग पर्याय है। आहाहा!

आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से पराङ्मुख... यहाँ तो ऐसा लिया, भाई! लो! आत्मज्ञान से पराङ्मुख को मिथ्यादृष्टि कहा। और आत्मज्ञान से वीतराग समकित से पराङ्मुख कहा। इसलिए निश्चय चारित्र में वीतराग समकित से पराङ्मुख... लोगों को कुछ न कुछ अपनी कल्पना से... आहाहा!

यहाँ तो आत्मज्ञान, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्दस्वरूप। आठ वर्ष की बालिका हो। बालिका तो शरीर की अवस्था है। आत्मा कहाँ बालिका है। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा अन्दर में... आहाहा! बाहर की हड्डियाँ आदि की सुन्दरता जिसे

लगे, उसे अन्तर की सुन्दरता नहीं लगती। समझ में आया ? बाहर की सुन्दरता में जिसे आकर्षण होता है, शरीर ऐसा और ऐसा और यह। अरे ! बाहर की सुन्दरता में आकर्षण ! स्वभाव से विभाव हो जाता है। समझ में आया ?

शरीर जवान हो, २०-२५ वर्ष की उम्र हो, गृहस्थ हो, खाने-पीने में ठीक हो, कपड़े पहने हों, गहने-वहनें... आहाहा! दागीना समझे ? जेवर। आहाहा! गृहस्थ भी फूल डालते हैं न फूल ? आदमी भी फूल पहनते हैं। भगवानलाल कान में नहीं पहनते ? उनके भाई पहनते हैं। वे स्वयं नहीं पहनते। कान में रखते हैं। सेठ ! ऐसा रखे। हमारे गांडाभाई थे। इस मनहर के पिता के पिता। वे रखते थे फूल, हों ! मनहर ! उन्हें देखा था गांडाभाई को ? नहीं देखा होगा। देखा हो परन्तु वे फूल रखते, फूल। कान में फूल रखते। पहले आदत थी। इस धूल के शृंगार-मुर्दे के शृंगार हैं। आहाहा ! आत्मा का शृंगार तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। उसकी यह शोभा है। इस धूल को यह रंगे और यह करे... मारवाड़ में नहीं, यहाँ सब सोने के डाले। धूल में भी नहीं यह।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, **आत्मज्ञानरूपी वीतराग सम्यक्त्व से....** वजन यहाँ देना है। यह आत्मज्ञान चौथे गुणस्थान में वीतराग समकित ही है। आहाहा ! उससे **पराङ्मुख जो मिथ्यात्व है, वह त्यागनेयोग्य है। पर्यायबुद्धि, रागबुद्धि छोड़नेयोग्य है। व्यवहारबुद्धि छोड़नेयोग्य है। निश्चयबुद्धि आदरनेयोग्य है। आहाहा !**

यह ७७ कही। अब जरा... सब मिथ्यात्व की गाथा है न ?

गाथा - ७८

अथ मिथ्यात्वोपार्जितकर्मशक्तिं कथयति -

७८) कम्मइं दिढ-घण-चिक्कणइं गरुवइं वज्ज-समाइं।
णाण-वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिं ताइं॥७८॥

कर्माणि दृढघनचिक्कणानि गुरुकाणि वज्जसमानि।

ज्ञानविचक्षणं जीवं उत्पथे पातयन्ति तानि॥७८॥

कम्मइं दिढघणचिक्कणइं गरुवइं वज्जसमाइं कर्माणि भवन्ति। किंविशिष्टानि। दृढानि बलिष्ठानि घनानि निबिडानि चिक्कणान्यपनेतुमशक्यानि विनाशयितुमशक्यानि गुरुकाणि महान्ति वज्जसमान्यभेद्यानि च। इत्थंभूतानि कर्माणि किं कुर्वन्ति। णाणवियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिं ताइं ज्ञानविचक्षणं जीवमुत्पथे पातयन्ति। तानि कर्माणि युगपल्लोकालोकप्रकाशक-केवलज्ञानाद्यनन्तगुणविचक्षणं दक्षं जीवमभेदरत्नत्रयलक्षणान्निश्चयमोक्षमार्गात्प्रतिपक्षभूत उन्मार्गे पातयन्तीति। अत्रायमेवाभेदरत्नत्रयरूपो निश्चयमोक्षमार्ग उपादेय इत्यभिप्रायः॥७८॥

आगे मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से यह जीव संसार-वन में भ्रमता है, उस कर्मशक्ति को कहते हैं -

चिकने घने और दृढ़ भारी वज्र समान अभेद्य कहे।

कर्म, कुपथ में प्रेरित करते ज्ञान विचक्षण चेतन को॥७८॥

अन्वयार्थ :- [तानि कर्माणि] वे ज्ञानावरणादि कर्म [ज्ञानविचक्षणं] ज्ञानादि गुण से चतुर [जीवं] इस जीव को [उत्पथे] खोटे मार्ग में [पातयन्ति] पटकते (डालते) हैं। कैसे हैं, वे कर्म [दृढघनचिक्कणानि] बलवान हैं, बहुत हैं, विनाश करने को अशक्य हैं, इसलिये चिकने हैं, [गुरुकाणि] भारी हैं, [वज्जसमानि] और वज्र के समान अभेद्य हैं।

भावार्थ :- यह जीव एक समय में लोकालोक के प्रकाशनेवाले केवलज्ञान आदि का अनन्त गुणों से बुद्धिमान चतुर है, तो भी इस जीव को वे संसार के कारण कर्म ज्ञानादि गुणों का आच्छादन करके अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत खोटे मार्ग में डालते हैं, अर्थात् मोक्ष-मार्ग से भुलाकर भव-वन में भटकते हैं। यहाँ यह अभिप्राय है, कि संसार के कारण जो कर्म और उनके कारण मिथ्यात्व रागादि परिणाम हैं, वे सब हेय हैं, तथा अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग है, वह उपादेय है॥७८॥

गाथा - ७८ पर प्रवचन

आगे मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से... परन्तु भाषा यह मिथ्यात्वभाव से उपार्जन किये हुए कर्म, उस कर्म की शक्ति बहुत है। ऐसा। मूल तो भावशक्ति। यहाँ विरोध किया मिथ्यात्व का, उससे कर्म हुए। पहले कहा न? आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो परसों कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर भी बँधे कैसे? बँधे कहाँ? मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से... वजन यहाँ है न? पहली लाईन।

मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से... यहाँ वजन है। अकेले कर्म, ऐसा नहीं लिया। मिथ्यात्वभाव से बँधे हुए कर्म, उसमें शक्ति है। उसकी विपरीत मान्यता हुई न? आहाहा! मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये... वजन यहाँ है। समझ में आया? देखो! ऊपर है ७८ में संस्कृत। 'मिथ्यात्वोपार्जितकर्मशक्ति' ऐसा है। ऊपर। ऊपर है। 'मिथ्यात्वोपार्जितकर्मशक्ति' ऐसा कहा है। बाद में तो कर्म से बात करेंगे। परन्तु उसका कारण तो मिथ्यात्व / विपरीत भाव था। वास्तव में तो विपरीत भाव है, वह कर्मशक्ति है वास्तव में। वह शक्ति है। वह इसे रोकती है। द्रव्यकर्म तो निमित्त से कथन है। जड़ क्या रोके?

मुमुक्षु : कर्मशक्ति तो सही?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मशक्ति किसकी? भावकर्म की। मिथ्यात्व भावकर्म किया, उसमें से उपार्जन हुए कर्म तो उनमें शक्ति कही। उसका जोर यहाँ है। विपरीत मान्यता के जोर से जो कर्म बँधे, उस कर्म में शक्ति है, ऐसा व्यवहार कहा है। आहाहा! लो! है?

यह जीव संसार-वन में भ्रमता है,... आहाहा! चौरासी लाख के अवतार, महा भवसिन्धु, भवसागर, भवसमुद्र। आहाहा! विपरीत मान्यता से उपार्जित कर्म। आहाहा! जोर यहाँ है। फिर कर्म की शक्ति ली है। परन्तु जोर तो यहाँ है। उससे उपार्जित कर्म। आहाहा! उस कर्मशक्ति से यह जीव संसार-वन में भ्रमता है,... वन विशाल। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, चौरासी लाख योनि भवसिन्धु। उस

एक-एक योनि में अनन्त-अनन्त अवतार। मिथ्यात्व से बँधे हुए कर्म, उनसे वन में भ्रमता है। यह कहते हैं, है न ?

(७८) कम्मइँ दिढ-घण-चिक्कणइँ गरुवइँ वज्ज-समाइँ।

णाण-वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिँ ताइँ ॥७८ ॥

भगवान तो बहुत चतुर हैं, ऐसा कहते हैं। आत्मा। परन्तु विपरीत मिथ्यात्व से कर्म बँधे तो इसे गिरा डालते हैं। है ? वे ज्ञानावरणादि कर्म ज्ञानादि गुण से चतुर... भगवान। भगवानआत्मा तो ज्ञानादि गुण से चतुर है। परन्तु विपरीत मान्यता से उत्पन्न हुए कर्म चतुर को भी भ्रमाते हैं।

मुमुक्षु : कर्म बलवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : बलवान तो उसका विपरीत भाव है, वह बलवान हुआ। समझ में आया ? आहाहा ! इसलिए तो पहले टीकाकार ने उपोद्घात बाँधा है। आहाहा !

खोटे मार्ग में पटकते (डालते हैं)। ज्ञानादि गुण से चतुर... ज्ञानगुण से चतुर। श्रद्धा, समकित पर्याय नहीं, त्रिकाल। श्रद्धागुण से चतुर, आनन्दगुण से चतुर, स्वच्छता... स्वच्छता... स्वच्छतागुण से चतुर, ईश्वरगुण से चतुर। ऐसे आत्मा की विपरीत मान्यता से कर्मबन्धन हुआ, ऐसे चतुर को भी चार गति में भटकाते हैं। समझ में आया ? 'दृढघनचिक्कणानि' बलवान हैं, बहुत हैं,... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ३, गुरुवार
दिनांक-१२-०८-१९७६, गाथा-७८, प्रवचन-६०

.... एक समय में 'क' बोलने में असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय में अनन्त... जाने, ऐसा ज्ञान ... ऐसे अनन्त आनन्द आदि गुणों से चतुर आत्मा है। अपने को भूलकर मिथ्यात्वभाव से... कल आया न? मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से... यह भी निमित्त से कथन है। उसमें मिथ्यात्व आदि भाव तो निमित्त थे। समझ में आया? मिथ्यात्व—विपरीत मान्यता, राग-द्वेष जीव ने किये और कर्म ... बँधे। यहाँ अपराध के निमित्त से हुआ है, ऐसा व्यवहार से कथन है। इसी प्रकार कर्म आत्मा को भटकाते हैं, यह भी व्यवहार से कथन है। समझ में आया?कहा था न?

मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार.... समझे? अभी तो अव्रत, प्रमाद ... मिथ्यात्व पहले.... विपरीत मान्यता अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु त्रिलोकनाथ चैतन्य महाप्रभु, उसे भूलकर पुण्य-पाप के भाव और उनका फल, उसे अपना मानकर मिथ्यात्व के भाव सेवन करता है, वह कर्म उपार्जित करता है। जीव ने उपार्जित किये, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

एक ओर दोपहर में ऐसा चलता है कि मिथ्यात्व आदि परिणाम जीव करे परन्तु कर्म की पर्याय आत्मा / जीव करे नहीं। दोपहर में ऐसा चलता है। दर्शनमोह की पर्याय जड़ की जड़ से होती है। और मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव आत्मा से आत्मा में होता है। तो यह सिद्धान्त रखकर यहाँ बात की है। समझ में आया? अपने स्वरूप को भूलकर, है तो ज्ञानबुद्धि विचिक्षण, चतुर। तीन काल—तीन लोक को एक समय में जाने, ऐसा विचिक्षण—चतुर है। परन्तु अपनी पर्याय में मिथ्यात्व आदि में रुककर नये कर्मबन्धन में निमित्त हुए, वह बन्धन आत्मा में अपनी परिणति विकाररूप से करता है। भटकते समय भी अपनी पर्याय से भटकता है। क्या कहा? नहीं तो कर्म से भटकता है, ऐसा कहते हैं। कहा न पहले मिथ्यात्वभाव से कर्म उपार्जित किये, इसका अर्थ क्या हुआ? कर्म तो जड़ से हुए हैं। उनकी पर्याय उनसे हुई है। परन्तु उसमें मिथ्यात्वभाव निमित्त था। निमित्त से उपार्जित कर्म, जो कर्म अपनी विकारी पर्याय भटकने में निमित्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा! है?

तो भी जीव को यह संसार के कारण कर्म ज्ञानादि गुणों का आच्छादन करके... देखो! अब इसमें लोग कहे, ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है। क्या कहते हैं? जैसे मिथ्यात्व और अज्ञान परिणाम से आत्मा परिणत होने पर नये कर्म उपार्जित किये, ऐसा कहा। नये कर्म तो उनके कारण से बँधे हैं। इस प्रकार वे कर्म अपने में मिथ्यात्व, ज्ञान का आच्छादन करते हैं, वह भी निमित्त से कथन है। अपनी ज्ञानपर्याय अपने से हीन करता है, उसमें ज्ञानावरणी निमित्त कहा जाता है। जैसे मिथ्यात्वभाव से कर्म उपार्जित किये, ऐसा कहने में आया, उसी प्रकार कर्म से आत्मा भटकता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अब दोपहर में चलता है, उसका निर्णय करना या यह.... ?

दोपहर में तो ऐसा चले, मिथ्यात्व, अज्ञान, अब्रत, कषाय, वे अपने परिणाम आत्मा अपने से अपने भाव से अपने कर्ता, कर्म, करण, साधन से करता है। और कर्म की पर्याय, पर्याय में उसके पुद्गल कर्ता, कर्म, करण से वह पर्याय होती है। पुद्गल की पर्याय में षट्कारक परिणमन है। आहाहा! और जीव की पर्याय में मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष में भी षट्कारक का परिणमन है। उसे उपार्जित किया कहा, वह भी व्यवहार से है। इसी प्रकार कर्म आत्मा को आच्छादन करता है, यह भी निमित्त से कथन है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहा कि मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष, वह तो अपनी पर्याय में अपने से होते हैं। उस पर्याय में षट्कारक का परिणमन विकार विकार का कर्ता, विकार कर्म, विकार का साधन विकार, विकार से विकार हुआ, विकार करके रखा और विकार के आधार से विकार हुआ, ऐसे अपनी पर्याय में विकार हुआ है और उससे कर्म हुए, उस कर्म की पर्याय में भी, कर्म की विकारी पर्याय जो ज्ञानावरणी की पर्याय है, वह पर्याय भी अपने षट्कारक से परिणमती है। आहाहा! कर्म की पर्याय जो ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, वह भी अपनी पर्याय है, वह षट्कारक से (परिणमित्त हुई है)। कर्म की पर्याय का कर्ता कर्म की पर्याय, कर्म की पर्याय का करण कर्म की पर्याय, कर्म की पर्याय का साधन पर्याय, कर्म की पर्याय के कारण हुए, उस पर्याय में रखे, वह पर्याय, पर्याय के आधार से पर्याय हुई है। आहाहा! कर्म में, हों! परन्तु यहाँ निमित्त से कथन है। जैसे अज्ञान और मिथ्यात्वभाव से उपार्जित कर्म, वह कर्म आत्मा अनन्त विचिक्षण

पुरुष होने पर भी अपनी पर्याय में हीनरूप, विपरीतरूप परिणमता है, तो कर्म उसे भटकाते हैं, ऐसा (व्यवहार से) कहा जाता है।

मुमुक्षु : कर्म में शक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह। यह कर्म में शक्ति का निमित्तपना किसका? उपादान तो उसका है। परन्तु यहाँ निमित्तपना शक्ति बल हीन होकर जो निमित्त हुआ, वही कर्म अपनी बलहीन परिणति में निमित्त होता है। भविष्य में भी। समझ में आया? कहो, धन्नालालजी! कर्म आच्छादन करते हैं, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ समझ में नहीं आता?

पहले कहा था कि मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये... इसका अर्थ क्या? कि कर्म उपार्जन किये, वह तो निमित्त से कथन है। कर्म की पर्याय तो कर्म से हुई है। यह तो दोपहर में चलता है।

मुमुक्षु : दोपहर और अभी में अन्तर पड़ गया न? दोपहर में कुछ, अभी कुछ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक ही बात है। कथन की शैली में अन्तर है।

यहाँ तो अपना ... 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' कर्म से नहीं। अपना चैतन्यस्वभाव परमात्मस्वरूप को भूलकर मिथ्यात्वभाव किये। यहाँ तो मिथ्यात्वभाव की बात है। उस मिथ्यात्वभाव के साथ जो कर्म बँधे, वे आत्मा ने उपार्जित किये, ऐसा व्यवहार से कहा गया है। तो वे कर्म भी आत्मा को आच्छादन करते हैं। वह भी आच्छादन भाव ज्ञान की हीन दशा में अपनी भावघाति परिणति हीन करनेवाले हैं। उसमें ज्ञानावरणी कर्म को द्रव्यघाति को निमित्त कहा। जैसे मिथ्यात्व से उपार्जित कर्म, उसी प्रकार कर्म से आत्मा में भटकना, यह दो ऐसे कथन हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : हाथी के (दाँत) बताने के अलग और चबाने के अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन पद्धति यह है। संक्षिप्त पद्धति लेनी है न? कि आत्मा भटकता क्यों है? रुलता क्यों है? कि भटकानेवाले कर्म जो हैं, वे भटकाते हैं। क्यों? कि उस कर्म में निमित्त मिथ्यात्व था। उस मिथ्यात्व के कारण कर्म स्वयं से उत्पन्न हुए

तो वह कर्म स्वयं से उत्पन्न होकर आत्मा अपनी हीनदशा करता है, उसे आच्छादन करते हैं ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। समझ में आया? आहाहा!

सिद्धान्त तो यह लेना है कि आत्मा का स्वभाव कर्म को निमित्त हो, ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। यह तो आ गया न? समयसार १०५ गाथा। समयसार की १०५ गाथा। कर्म तो कर्म से होते हैं। उनकी पर्याय के योग्य क्रमबद्ध, परमाणु में वह कर्म होने की पर्याय के काल में कर्म पर्यायरूप होते हैं। समझ में आया? उस कर्मबन्धन में जीवद्रव्य निमित्त नहीं। जीवद्रव्य उसमें निमित्त नहीं। यह बात आयी न? कही थी न? समयसार १०५ गाथा।

इस लोक में वास्तव में आत्मा स्वभाव से पौद्गलिक कर्म को निमित्तभूत नहीं होने पर भी... भाषा देखो! भगवान आत्मा इस लोक में वास्तव में (भगवान) आत्मा स्वभाव से... उसका स्वभाव ऐसा है कि पौद्गलिक कर्म को निमित्तभूत नहीं होने पर भी... पुद्गलकर्म में आत्मा निमित्तभूत होता ही नहीं।

मुमुक्षु : यह लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिखा है ? १०५।

इस लोक में वास्तव में... जिसे भगवान आत्मा कहते हैं वह तो वीतरागमूर्ति ज्ञानघन है। वह पौद्गलिक कर्म में निमित्त कहाँ से होगा? पौद्गलिक कर्म तो पौद्गलिक कर्म से होता है। समझ में आया? कर्म में निमित्त द्रव्य आत्मा कहाँ से हो? ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द ब्रह्म प्रभु, ऐसा द्रव्यस्वभाव पुद्गलकर्म की पर्याय में निमित्त नहीं होता। आहाहा! अर्थात् द्रव्यस्वभाव कर्म के बन्धन में निमित्त नहीं है, इसलिए उसे बन्धन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। देखो! क्या कहा?

इस लोक में वास्तव में (भगवान) आत्मा... चैतन्यमूर्ति वीतरागस्वभाव अनाकुल आनन्द का कन्द, स्वच्छता से अकेला शोभावन्त प्रभु है। वह स्वच्छतास्वरूप है। वह स्वच्छतास्वरूप भगवान कर्मबन्धन में निमित्त होता ही नहीं। समझ में आया? तथापि अनादि अज्ञान के कारण... आहाहा! अनादि अज्ञान के कारण अपना स्वरूप ऐसा है, ऐसा मानता नहीं। वह अज्ञान के कारण पौद्गलिक कर्म को निमित्तरूप होते ऐसे अज्ञानभाव से परिणमता हुआ... लो! चीज़ तो ऐसी है कि कर्म में निमित्त भी नहीं

होना। कर्मरूप नहीं होना। वह तो कर्म की पर्याय कर्मरूप होती है। कर्म की पर्याय कर्म के कारण होती है। परन्तु उसमें भगवान आत्मा निमित्तभूत भी नहीं। वस्तु निमित्त कैसी? भगवान चिदानन्द प्रभु। और निश्चय से तो ऐसा लेते हैं कि द्रव्य भी कर्म को निमित्त नहीं तो द्रव्यदृष्टिवन्त भी कर्म में निमित्त नहीं। उसे बन्धन होता ही नहीं, ऐसा न्याय दृष्टि से है। इस अपेक्षा से कहा गया है। समझ में आया?

जैसे चैतन्य भगवान... यह क्या चीज़ है? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास से भरपूर प्रभु है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा त्रिलोकनाथ प्रभु कर्मबन्धन में निमित्त कैसे होगा? आहाहा! उपादान तो उससे से होता है, परन्तु निमित्त भी आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि... समझ में आया? यह १००वीं गाथा में आया न? यह तो विशेष १०५ है। धर्मी जीव—सम्यग्दृष्टि जीव कर्म में निमित्तकर्ता नहीं होता। समझ में आया? अथवा द्रव्यस्वभाव कर्म में निमित्तकर्ता नहीं होता। उपादानकर्ता तो वह। परन्तु द्रव्यस्वभाव निमित्तकर्ता, पर में निमित्तपने का कर्ता भी नहीं होता। द्रव्यस्वभाव नहीं होता तो द्रव्यस्वभाव की दृष्टिवन्त धर्मात्मा... आहाहा! नये कर्म में निमित्तकर्ता भी नहीं होता। अर्थात् नये कर्म उसे नहीं होते। आहाहा! समझ में आया?

कर्मबन्धन होता है, उसमें निमित्तकर्ता किसे कहें? उपादान तो उससे होता है। परन्तु निमित्तकर्ता किसे कहें? कि जो प्राणी राग और योग का कर्ता होता है, राग और कम्पन—योग का कर्ता होता है, वह अज्ञानी उपादान पर की क्रिया में निमित्तकर्ता कहा जाता है। आहाहा! समयसार।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि को?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि। हाँ, परन्तु मिथ्यादृष्टि कैसे? कि वह योग और राग का कर्ता है। बस। तो नये कर्म में निमित्तकर्ता कहने में आता है। समझ में आया? कर्म तो उपादान से उससे होता है। वह तो उसकी पर्याय का काल है तो कर्म होता है। परन्तु उसमें निमित्तकर्ता किसे कहा जाता है? कि जो कोई राग और योग का कर्ता होता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि। क्योंकि उसकी दृष्टि योग और राग के ऊपर है। आहाहा! उसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर नहीं है। स्वभाव के ऊपर दृष्टि होवे तो जैसे स्वभाव कर्म में

निमित्तकर्ता नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी कर्म में निमित्तकर्ता नहीं। आहाहा! लोगों को बहुत अटपटी बात लगती है। वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो न समझे तो अटपटी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो न समझे, उसके लिये है न? समझे तो सहज, बिन समझे मुश्किल। समझ पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्किल। समझ में आया? 'समझ पीछे सब सरल है, बिन समझे मुश्किल, ये मुश्किल क्या कहूँ।' आहाहा! यह श्लोक है श्रीमद् का। श्रीमद् राजचन्द्र। आहाहा! लो! कहा?

इस लोक में वास्तव में आत्मा स्वभाव से... त्रिकाली ज्ञायकभाव से पौद्गलिक कर्म को निमित्तभूत नहीं होने पर भी, अनादि अज्ञान के कारण पौद्गलिक कर्म को निमित्तरूप... देखो अब। पौद्गलिक कर्म को निमित्तभूत होते ऐसे अज्ञानभाव से परिणमता होने से निमित्तभूत होने से, पौद्गलिक कर्म उत्पन्न होता है, इसलिए पौद्गलिक कर्म आत्मा ने किया, ऐसा निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभाव से, भ्रष्ट... आहाहा! पौद्गलिक कर्म उत्पन्न किये, वह आत्मा ने किये, ऐसा कहते हैं। अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्व से पुद्गलकर्म जीव ने उपार्जित किये। यह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया? यहाँ तो यह कहा। मिथ्यात्व से बन्धन हुआ। यह है या नहीं पहली लाईन? मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये... वहाँ कहते हैं कि पौद्गलिक कर्म आत्मा ने किये, ऐसा निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभाव से भ्रष्ट, विकल्प परायण अज्ञानियों का विकल्प है; वह विकल्प उपचार ही है,... पर का कर्ता कहना वह उपचार व्यवहार है, मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

यह तो भगवान का दरबार है। केवलज्ञानी के दरबार की यह बात है। यह साधारण प्राणी को बहुत प्रयत्न चाहिए। व्यवहार-निश्चय की शैली क्या है, इसका उसे यथार्थ ख्याल करना चाहिए। यहाँ तो ऐसा कहा और १००वीं गाथा में ऐसा कहा कि नये कर्मबन्धन होते हैं, वह तो उसकी पर्याय से, उपादान से, क्रम में उसकी पर्याय होनेवाली थी, वह हुई है। उसमें निमित्तकर्ता मिथ्यादृष्टि को कहते हैं। जो कोई योग और राग का कर्ता होता है, वह जड़ की पर्याय में निमित्तकर्ता कहलाता है। सम्यग्दृष्टि को, जैसे द्रव्यस्वभाव नये कर्म में निमित्तभूत द्रव्य नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी

द्रव्यस्वभाव की दृष्टिवन्त है तो वह भी नये कर्म में निमित्तभूत नहीं है। वह निमित्तकर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्या है? कि सम्यग्दृष्टि द्रव्य के स्वभाव की अनुभवदृष्टि है, इसलिए उस समय शरीर, वाणी, मन आदि की जो क्रिया होती है, वह ज्ञान में निमित्त होती है। अपने ज्ञान में वह निमित्त होती है। अज्ञानी बन्धन में निमित्त होता है। ज्ञानी को शरीर आदि की अवस्था अपने ज्ञान में निमित्त होती है। आहाहा! कठिन बातें हैं, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : अज्ञानी की पर्याय कर्मबन्धन में निमित्त, ज्ञानी की अपने ज्ञान में निमित्त! वाह! क्या बात है!

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? अभ्यास करना पड़ेगा। ऐसे पैसे में रुके, इससे नहीं मिलेगी। और वह पैसा भी पुण्य हो तो आता है, इसका तुम्हें विश्वास हो गया न? आहाहा!

देखो! यहाँ ऐसा कहा, जीव ने मिथ्यात्वभाव से कर्म उपार्जन किये। समझ में आया? अर्थात् कर्म उपार्जन में मिथ्यादृष्टि का भाव निमित्त था। वही कर्म आत्मा को भटकाते हैं, ज्ञान को आच्छादन करते हैं, यह निमित्त से कथन करते हैं। उस समय की अपनी पर्याय को हीन करनेवाला आत्मा स्वयं स्वतन्त्र है। उसमें कर्म का निमित्त कहने में आता है। आहाहा! ऐसा सब...

मुमुक्षु : कर्म कुछ करते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे क्यों नहीं? उनके अपने में करते हैं। कर्म की पर्याय में कर्म करते हैं। अपनी पर्याय में कर्म बिल्कुल कुछ नहीं करते। आहाहा! बड़ा झगड़ा अभी कर्म का यह है। सब बड़े पण्डित वहाँ गोते खाते हैं।

मुमुक्षु : झगड़ा आपने डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। चलता था उसमें.... वस्तु का स्वरूप तो ऐसा है।

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से.... अब मिथ्यात्व हुआ तो अपनी पर्याय में हुआ, और कर्मपर्याय जड़ में हुई। तो जड़ की पर्याय मिथ्यात्व से उत्पन्न करता है?

मुमुक्षु : तो कैसे करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा निमित्त का कथन है ।

आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त गुणों से बुद्धिमान चतुर है । आहाहा ! तो भी वह जीव को उस संसार का कारण कर्म... आहाहा ! संसार का कारण तो मिथ्यात्व था । तो मिथ्यात्व कर्म में निमित्त हुआ तो कर्म अपनी हीन पर्याय में निमित्त हुआ । संसार में भटकने की अपनी हीन, अल्प और विपरीत (दशा हुई) तो उसमें कर्म निमित्त हुए, तो कर्म भटकाते हैं, ऐसा कहने में आता है । समझ में आया ?

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, इतना आप कह दो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ क्या ? निमित्त-निमित्त में कर्ता-कर्म आया नहीं । राग कर्म की पर्याय को करे, ऐसा आया नहीं । और कर्म की पर्याय जीव को राग करे, ऐसा तो आया नहीं । निमित्त है इसका अर्थ क्या ? आहाहा ! निमित्त दूसरी चीज़ है और निमित्तकर्ता दूसरी चीज़ है । समझ में आया ?

यह तो शास्त्र में ऐसा लिखा है । समयसार में जयसेनाचार्य की टीका में । ज्ञानी ऐसा जानता है कि पर का जीवन हुआ, मरण हुआ, सुख-दुःख का संयोग हुआ, वह तो उसके कारण से हुआ, मैं तो निमित्त हूँ । निमित्तकर्ता नहीं, निमित्त हूँ । निमित्त दूसरी चीज़ है । निमित्तकर्ता दूसरी चीज़ है । समझ में आया ? समयसार की टीका जयसेनाचार्य की । पर के जीवन में यह जिया उसमें मेरा निमित्त है । मैंने उसे जिलाया, उसका कर्ता मैं नहीं । समझ में आया ? यह तो ज्ञान करने की बात है । समकृति ऐसा मानता है । पर को आहार-पानी दिया, उसमें मैं निमित्तमात्र हूँ । यह क्रिया तो उससे हुई है । आहाहा !

मुमुक्षु : अर्थात् कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-कर्म बिल्कुल नहीं ।

मुमुक्षु : निमित्त है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त नहीं, यह किसने कहा ?

मुमुक्षु : कर्ता-कर्म नहीं, ऐसा किसलिए कहते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं कि निमित्त है इतना कहो। परन्तु निमित्त से होता नहीं, ऐसा क्यों कहते हो ?

मुमुक्षु : कहने की आवश्यकता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्तु अन्दर है। आहाहा!

यह पहले कहा नहीं ? दो-तीन बार कहा था। पूरे लोकालोक में केवलज्ञान निमित्त है। ऐसा पाठ है। इसका अर्थ क्या ? केवलज्ञान ने लोकालोक को बनाया है ? लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त है। तो क्या केवलज्ञान ने लोकालोक बनाया है ? किया है ? निमित्त है तो किया है ? निमित्त दूसरी चीज़ है और करना दूसरी चीज़ है। और अपने केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है, ऐसा पाठ है। तो क्या लोकालोक ने केवलज्ञान उपार्जित किया है ? निमित्त अलग चीज़ है और उसका कर्ता कहना, वह अलग चीज़ है। समझ में आया ? घड़ा बनाने में कुम्हार निमित्त कहो, परन्तु निमित्तकर्ता नहीं। उसने बनाया, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्तकर्ता का मतलब उपादान हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का उपादान हुआ। यह तो एक क्रिया के दो कर्ता हो गये। ऐसा नहीं होता। यह आ गया ८६ गाथा में। समयसार की ८६ गाथा। एक परिणति के दो कर्ता नहीं। एक परिणाम के दो कर्ता नहीं। दो परिणति का एक कर्ता नहीं। आहाहा! प्रत्येक की परिणति अपने-अपने से होती है। भाई! पर से क्या है ?

मुमुक्षु : यह मूल तत्त्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल वस्तु है। मूल में भूल। पुस्तक आयी थी न! मूल में भूल। उपादान-निमित्त के व्याख्यान में। निमित्त कहना, वह तो ज्ञान कराने के लिये है। कर्ता कहना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! गजब बात है।

यहाँ यह कहा। कर्म जो मिथ्यादृष्टि ने मिथ्यात्वभाव से कर्म उपार्जित किये अर्थात् कर्म की पर्याय में निमित्त हुआ, वह कर्म की पर्याय अपनी हीन परिणति के काल में उसने आच्छादन किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? जैसे मिथ्यात्व के काल में मिथ्यात्व से कर्म उपार्जित किये, यह निमित्त का कथन है। उससे

उपार्जित नहीं। कर्म तो उनसे उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार कर्म के उदय काल में आत्मा की हीन अवस्था आच्छादन की, यह निमित्त का कथन है। अपनी आच्छादनयोग्य परिणति में अपने कारण से (हुई), उसमें ज्ञानावरणी को निमित्त कहा जाता है। आहाहा!

तब कहते हैं न कि ज्ञानावरणी कुछ करता नहीं। नहीं, करता है। ग्यारह अंग पढ़ा हुआ कहे तो भी हम कहते हैं कि नहीं, कर्ता है। क्या करे? यह भाषा पढ़े। वह पढ़े नहीं। मिथ्यात्व के कारण से मिथ्यादृष्टि ने कर्म उपार्जित किये, यह व्यवहारकथन है। ऐसा कर्म से आत्मा में आच्छादन हुआ, यह व्यवहार का कथन है। समझ में आया? धन्नालालजी! सूक्ष्म बात, भगवान! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! और दुर्लभ नहीं। समझे? दुर्लभ है, अशक्य नहीं। परन्तु समझने का प्रयत्न बहुत चाहिए। मध्यस्थ प्रयत्न चाहिए। कोई आग्रह हो, उसे छोड़ देना। यह तो सत्य के पंथ में जाना है, नाथ! तो सत्य का पंथ तो जैसा है वैसा,... आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानादि गुण से... देखो! ज्ञान की हीन अवस्था ज्ञानावरणीय ने की। समकित की (उल्टी) पर्याय मिथ्यात्व, दर्शनमोह ने की। देखो! ऐसा आया। वीर्य की हीन अवस्था वीर्यान्तराय ने की। आदि है न? **ज्ञानादि गुणों का आच्छादन करके...** यह कहा था कि जैसे कर्म उपार्जन में मिथ्यात्वभाव निमित्त था, तो उसने उपार्जित किये, ऐसा कहा। ऐसे अपनी हीन पर्याय के काल में कर्म निमित्त है तो कर्म ने आच्छादन किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया? अब ऐसी निवृत्ति कहाँ? कमाना, बाहर में इज्जत निकालना। धूल की... आहाहा!

भाई! ऐसे अवसर में यह निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा! जैसा सत्य है, उसका निर्णय करने के लिये समय लेना पड़ेगा, निवृत्ति लेनी पड़ेगी। निवृत्ति लेनी पड़े, किसी समय निवृत्ति—पर से छूट जायेगा। परन्तु पहले से ही थोड़ी निवृत्ति लेकर (निर्णय) न करे? समझ में आया? एक समय में तो परद्रव्य से छूट जायेगा। आहाहा! शरीर, वाणी, मकान, बकान, उसमें पचास वर्ष रहे हों। यह यहाँ है... यह यहाँ है... क्षेत्राकार वृत्ति हो गयी हो। धूल भी उसका क्षेत्र नहीं। पोपटभाई! बड़े बँगले हों। इन सेठ को छह लाख के बँगला है। शोभालाल को। सेठ वहाँ रहते हैं। शोभालाल का मकान बड़ा है। दस लाख का है। गहरे-गहरे गये थे हम। होता है। ४०-४० लाख के बँगले हैं। गोवा।

शान्तिलाल खुशाल। दस-दस लाख के दो हैं और चालीस लाख का एक है। ६० लाख के तीन बँगले हैं। क्षेत्राकार... हो जाये अन्दर। आहाहा! यह यहाँ दरवाजा, यहाँ से हवा आती है, यह दरवाजा खुला है। परन्तु तेरी चीज़ कहाँ है? ऐई! चिमनभाई! सब सेठिया। आहाहा!

मुमुक्षु : बँगले तो यहाँ रह गये, सेठ चले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र तो यहाँ रहा। सेठ! बँगला-बँगला तो रह गया। २५-५० वर्ष रहे हो वहाँ। क्षेत्राकार (हो जाता है)। इस क्षेत्र में मैं रहा... इस क्षेत्र में मैं रहा... यह हवा खिड़की के पास मेरा पलंग है, वहाँ से हवा आती है। ऊपर ऐसा है। अरे! क्या है? भगवान क्षेत्राकार रहता है। परक्षेत्र... कहाँ तू परक्षेत्र में है? तू तो असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में है। आहाहा! रात्रि में ऐसा होता है और दिन में ऐसा होता है। काल की वृत्ति हो गयी। आहाहा! क्षेत्राकार और काल आकार। रात्रि में ऐसा करना, दिन में ऐसा करना, दोपहर में ऐसा करना, सवेरे ऐसे करना, शाम को ऐसे करना। काल-बाल क्या है? यह समयसार नाटक में आया है, हों! समयसार नाटक में।

मुमुक्षु : टाईम टेबिल करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : टाईम टेबिल किसका? यह घड़ी मेरी, यह दिन मेरा, यह रात... समयसार नाटक में है। घड़ी मेरी, काल मेरा, रात मेरी। दोपहर में बारह बजे मेरा काम... आहाहा! यह काल आकार हो गया। और पुण्य-पाप के भाव विकार में एकाकार होते हैं, वह भाव आकार होता है। आहाहा! और द्रव्य पर है शरीर, कर्म और स्त्री, कुटुम्ब का, वह द्रव्य मेरा, यह मेरा... तेरा कहाँ है? यह कहाँ से आया? यह कहाँ जायेगा? समझ में आया? 'पक्षी मेला... उड़ आकाश में आवे।' पुस्तक में आता है। बड़ा वृक्ष होता है न? तो रात्रि में पक्षी आते हैं न? पक्षी शाम को आते हैं। सवेरा जहाँ हो तो सब अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। आहाहा! इसी प्रकार हसमुख कहीं से आया और दूसरा कहीं से आया, और पोपटभाई कहीं से आये, जमनाबेन कहीं से आये? इस प्रकार कहाँ के कहाँ... यह सब क्या है? आहाहा! प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, सब चीज़ को अपने में रहकर जाननेवाला है न! आहाहा! किसी चीज़ को अपनी मानना, वह तो जीव का स्वभाव है नहीं। धन्नलालजी! बात ऐसी है यहाँ, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त काल से ऐसा ही किया है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह का यह कर रहा है भ्रमणा। यह खेत में जाये और पाक हो उसे... आहाहा! बाजरे के डण्ठल लम्बे होते हैं न! ओहोहो! पाक बराबर है। उसके ऊपर... गहरे। बाजरा, ज्वार। बाजरा कहते हैं? बाजरे के डण्ठल होते हैं। यह तो बनिये को अभी खेती बहुत है न, लो न! अपने नहीं यह माणेकचन्दभाई नहीं, बड़ा दरबार, खुरई ... के ऋषभकुमार। करोड़पति। कितनी आमदनी! खेती है। अपने दिगम्बर बनिया है। यहाँ आये थे। हमको तो यह खबर भी नहीं। वे यहाँ कहे, महाराज एक महीना मैं रह गया था। होगा, आये होंगे। इतनी आमदनी ऐसी। दस-दस लाख के गेहूँ, दस-दस लाख के कपास। कितनी आमदनी।

मुमुक्षु : मजा है, आनन्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। सरकार की ओर से उसे क्या कहा जाता है ?

मुमुक्षु : कृषि पण्डित।

पूज्य गुरुदेवश्री : कृषि पण्डित की उपमा मिली सरकार की ओर से। कृषि पण्डित। अपने जैन दिगम्बर। बहुत वैभव में घुस गये। उनकी स्त्री को कुछ अधिक... यह तो जरा बहुत पैसा-पैसा। करोड़ों रुपये। आमदनी कितनी आमदनी। एक बार... हम गये थे। यहाँ हमारे... इतनी खेती। यह सब खेती सेठ की है। खेत... खेत... खेत... खेत... कहीं पार नहीं। आमदनी का पार नहीं। उसमें आकृति हो जाये। आहाहा! धूल भी नहीं।

मुमुक्षु : वहाँ तो दुःख है, सोनगढ़ में सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी सुख नहीं। मूढ़ ने माना हुआ सुख है। वह क्षेत्राकार... आहाहा! यह गेहूँ पके और फिर गेहूँ के वे करे। क्या कहलाते हैं? होला*-होला। होला कहते हैं न? बाजरी के होला। ज्वार के। हमारे गुजरात में ज्वार के होला बहुत मिले। बहुत मीठा। हम तो व्यापार करते थे न! गृहस्थ अवस्था में। ग्राहक हो न, वह ले जाये, उसके खेत में होला खाने। छोटी उम्र में, हों! ग्राहक हो न? मुसलमान ग्राहक। वहाँ वोरा बहुत थे। ज्वार के लिये खेत में ले जाये। गाडा... सेठ आओ... सेठ

* होला - हरी डाली से अनाज के दाने आँच पर सेंककर खाना।

आओ। हम और कुँवरजीभाई सब होला खाने जाते थे। ... ऐसा मीठा। ज्वार ऐसी मीठी हो। परन्तु क्या है यह? जड़ के रजकण अलग, भगवान! तू भिन्न। तू तो ज्ञान करनेवाला। उसमें तुझे यह मिठास कहाँ आ गयी?

मुमुक्षु : अभी तो आपने कहा मीठा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय मीठा लगता था। छोटी उम्र और दुकान में हमको सेठ कहते थे। १९ वर्ष की उम्र थी। १७ वर्ष की उम्र थी। १९ से चार वर्ष किये १९६३ से ६८, पाँच वर्ष। लोग लेन-देन करते थे न? इसलिए लोग गाडा लेकर माल लेने आवे। सेठ आज सवेरे होला खाने हमारे खेत में आना। हम जाते थे। छोटी उम्र में सब किया है, देखा है। धूल है। बेचारे बहुत प्रेम से लेकर आवे। थोड़ी खांड डाले। ... अरे! प्रभु! क्या है? क्या है?

मुमुक्षु : उस समय आपको बहुत मीठा लगता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। मीठा-बीठा तो जड़ की अवस्था है। जड़ की अवस्था आत्मा में आवे? उस ओर का राग होता है, उस राग की मिठास इसे आती है। होला की मिठास है? लड्डू की मिठास है वहाँ? जलेबी होती है जलेबी? जलेबी कहते हैं न? घी में तली हुई। बिना दाँतवाले भी खाये, लो! मीठी बहुत। उसका स्वाद है? वह तो जड़ है। जड़ को आत्मा स्पर्श करे? आहाहा! यह जलेबी-आकार दृष्टि हो जाती है उसकी। परन्तु खाता है राग। उस समय जलेबी (खाता) नहीं। आहाहा! गजब बात, बापू! संयोग की आकृति में खिंच गया है। एक भगवान और संयोगी अनन्त चीज है। आत्मा एकरूप और संयोगी अनन्त चीज है। भिन्न-भिन्न क्षेत्र, द्रव्य, क्षेत्र, भव, भाव यह सब दृष्टि में... यहाँ मनुष्य हुआ।

दृष्टान्त दिया है न! कर्ता-कर्म में नहीं? भैंस का ध्यान करते हुए भैंस... सींग बड़े और भैंस का ध्यान किया। समयसार में। भैंस का ध्यान किया। कमरे में बैठा था। छोटे कमरे में। भैंस का ध्यान करता था। ओहो! बड़े सींग हैं। छोटे कमरे में से निकलने के लिये ऐसे-ऐसे करके निकले। भैंसाकार दृष्टि हो गयी न कि मैं भैंस हुआ। यह दृष्टान्त है। इसी प्रकार परपदार्थ की आकृति में एकाकार होता है, उसमें से निकलने का... है नहीं। आहाहा! स्त्री, पुत्र, शरीर, मकान, बखारू। बखार को क्या कहते हैं?

गोदाम। बड़े गोदाम। सेठ को बहुत गोदाम है। तम्बाकू रखने के। ...आहाहा! यह मोटर हमारी, यह मोटर....

मुमुक्षु : सब गोदाम की कीमत निकाल दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की कीमत हुई न? आहाहा!

केसर के डिब्बे होते हैं न? केसर के डिब्बे। केसर। मुम्बई में तो उसके बड़े गोदाम होते हैं। हम तो माल लेने जाते थे न! (संवत्) १९६८ के वर्ष। ६६ के वर्ष में। नेमीचन्दभाई! केसर के डिब्बे के गोदाम। करोड़ों रुपये का केसर। तब तो सस्ता था न? एक रुपये का रुपयाभार। अब तो कहते हैं, महँगा हो गया है। आहाहा! ऐसा हो जाय। यह मकान। यह तो जड़ का मकान है। उसमें एकाकार होकर, आहाहा! वृत्ति ऐसी होती है कि यह स्तम्भ और यह... क्या है? यह तो पर है। ज्ञान में जानने की चीज़ है। ज्ञान में इस आकार होना, वह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्वकर अनेक प्रकार उपार्जन किये कर्मों से.... ऐसा जो कहने में आया है। वह कर्म आत्मा को आच्छादन करता है, ऐसा निमित्त से कथन किया है। समझ में आया? जैसे मिथ्यात्व से कर्म उपार्जन किया, ऐसा कहा न? तो कर्म तो उसकी पर्याय से हुए हैं। परन्तु निमित्त से कहा, इसी प्रकार कर्म स्वयं को नुकसान करते हैं, वह भी अपनी पर्याय अपने से हीन होती है, तो उसे निमित्त कहा जाता है। उसे आच्छादन करता है, ऐसा कहा गया है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत खोटे मार्ग में डालते हैं,.... कर्म डालते हैं, ऐसा कहते हैं। यह भावकर्म करता है तो जड़कर्म को निमित्त से खोटे मार्ग में डालता है, ऐसा कहा जाता है। खोटा मार्ग तो स्वयं से करता है। समझ में आया? यह कहा न? **अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत....** जो अभेदरत्नत्रय अपने में होना चाहिए, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और रमणता, यह अभेदरत्नत्रय होना चाहिए, वह नहीं करके उससे विपरीत करता है तो कर्म ने विपरीत कराया, ऐसा कहने में आता है। आहा! ऐसी बातें!

मोक्षमार्ग से भुलाकर.... देखो! भव-वन में भटकाते हैं। आहाहा! भववन, सिन्धु, भव सिन्धु चौरासी के अवतार। आहाहा! हम वहाँ रहे थे न? मुम्बई में। भाई

रमणीकभाई के मकान में। अपने दिगम्बर हैं। आमोद के (हैं)। पाँच करोड़ रुपये हैं। ... उनका ७० साल का तो मकान था। जिस मकान में उतरे थे, वह एक मकान ७० लाख का। बड़े गृहस्थ हैं। तो वहाँ समुद्र नजदीक है। ऐसे नजर करते थे तो ओहोहो! यह पानी! यहाँ से कहीं नजर पहुँचे नहीं। इतना गहरा। एक-एक बूँद में असंख्य जीव, उस समय हमको तो यह विचार (आया) कि प्रभु! यह कब दो इन्द्रिय हो? कब मनुष्य हो? कब इन्हें जिनवाणी कान में पड़े? आहाहा! पानी का दल, हों! नजर न रहे कहीं, इतना पानी। एक-एक बिन्दु में असंख्य जीव, इतना-इतना गहरा और इतना लम्बा। उसमें हम देखते थे। वहाँ क्या कहलाये? कबूतर? बगुला-बगुला। सफेद बगुला। तो एक बार सेठ को कहा कि यह बगुला कहाँ जाते हैं? सफेद बगुला मछली पकड़ने जाते हैं। परन्तु पकड़ने जाते हैं कहाँ तक? कि बीस-बीस मील तक पानी में। बैठने का कोई स्थान नहीं, वृक्ष नहीं। बीस मील तक चले जायें और बीस मील वापस आवें। आहाहा! मछली पकड़ने। पोपटभाई! यह मनुष्य का अवतार, बापू! भूल गया तू। इस अवतार में। और उसे वापस नरक में जाना। आहाहा!

अरे! प्रभु! ऐसे भव में यदि यथार्थ दृष्टि नहीं की... आहाहा! यह सब भववन में कर्म भ्रमाते हैं, ऐसा कहने में आया है। भटकने की अवस्था तो अपनी है। समझ में आया? परन्तु वह अवस्था कर्म से हुई है, ऐसा कहा जाता है। जैसे मिथ्यात्व से कर्म हुआ, ऐसा कहा, वैसे ही कर्म से आत्मा को भटकाता है, ऐसा कहा जाता है। अमरचन्दभाई! ऐसी अटपटी बात है, भाई!

देखो न भाई! रामजी हंसराज बड़े करोड़पति गिने जाते हैं। एक बार ले गये थे। ... दो-दो हजार के वेतनवाली महिलायें। बड़ा ऑफिस। कामाणी! २०-२५ महिलायें और सब गृहस्थ और दो ... मर गये। अब फिर ऐसा सुना है कि सब टूट गया। आहाहा! उस समय की जहोजलाली। रामजीभाई के साथ। रामजीभाई हंसराज। दो-पाँच करोड़ रुपये थे। अभी तो... और एक बड़ा था वह मर गया। बाबाजी का था। वह नहीं? साईबाबा, उनका भक्त था। मूर्खता का पार नहीं।

मुमुक्षु : साईबाबा ने बुला लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : साईबाबा ने बुला लिया। मर जाने के बाद कहे कि साईबाबा

ने बुला लिया। अरे मूर्ख! अपने पास बुला लिया। आहाहा! मर गया। ऐसी बात करते-करते मर गया कि अब मुझे वहाँ साईंबाबा के पास जाना है। ऐसी बातें करता था। देह छूट गयी। ... पूछा कि क्या करना? तुम कुछ कर सकते हो? कौन धूल करे? ... मैंने बुला लिया है। मूर्ख। और उसका पूरा परिवार माने वापस। अरे! यह वह बनिये की बुद्धि कहाँ गयी? ऐसे तो चतुर कहलाये।

यहाँ कहते हैं कि पर ने भटकाया, जो मिथ्यात्व से कर्म बाँधे, कहा। उसी प्रकार कर्म ने आत्मा को भटकाया, यह निमित्त से कथन है। आहाहा! **अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग से विपरीत खोटे मार्ग में डालते हैं,....** विपरीत मार्ग में कर्म डालते हैं। जैसे मिथ्यात्व से कर्म उपार्जित किये, ऐसा कहा, वैसे कर्म ने मिथ्यात्व में डाला, ऐसा पारस्परिक निमित्त से बात कही है। समझ में आया? उसमें वापस न समझ में आये तो उल्टा मारे, ऐसा है। मिथ्यात्व से कर्म बाँधे तो क्या कर्म की पर्याय मिथ्यात्व से हुई है? ८६ गाथा में आया नहीं? यही चलता है अपने ८७। यह ठण्डे पहर की दूसरी बातें और वह दूसरी बात, ऐसा सेठ कहते हैं।

मुमुक्षु : एकाध शास्त्र में जो लिखा है नहीं करते। यहाँ लिखा है कि करता है।

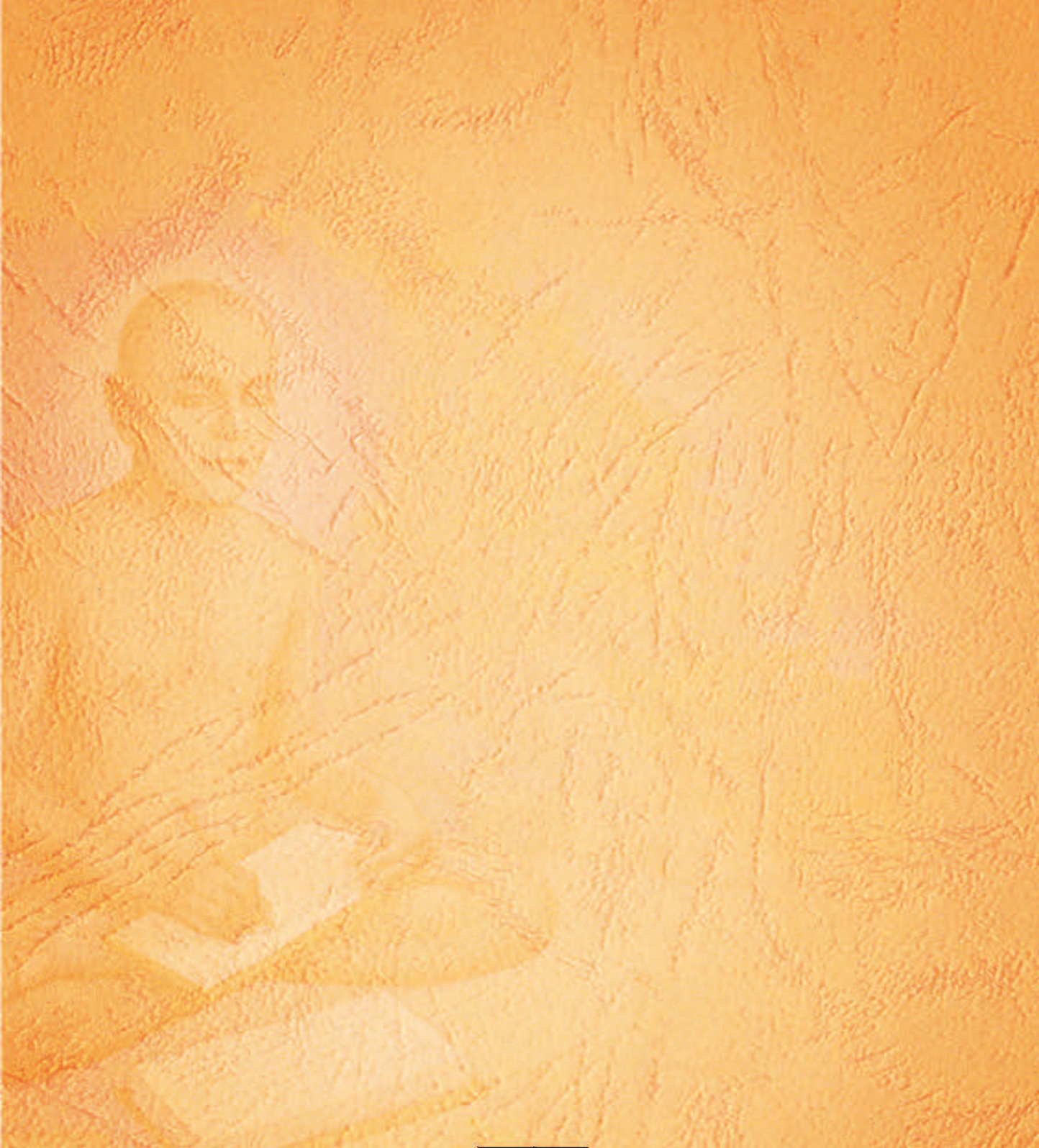
पूज्य गुरुदेवश्री : किस नय से कथन है? प्रत्येक शास्त्र के शब्द में पहले शब्दार्थ करना चाहिए, फि नयार्थ करना चाहिए। पाँच बोल हैं। फिर आगमार्थ—आगम को क्या कहना है, अन्यमति का निषेध किस प्रकार होता है और भावार्थ, अर्थात् तात्पर्य क्या है? पाँच बोल आये हैं। ... इसमें आये हैं। शब्द, नय, मत, आगम और भावार्थ। पहली गाथा का अन्तिम। है? पहला शब्द। गाथा का शब्दार्थ करना। फिर नय। किस नय का कथन है, यह लेना। ऐसा का ऐसा कहते हैं कि यह कहा। परन्तु किस नय से? फिर मत। सर्वज्ञ का मत इसमें क्या कहता है? अन्यमत में क्या कहते हैं और उससे विरुद्ध। तथा आगमार्थ अर्थात् भगवान क्या कहते हैं। और फिर भावार्थ—तात्पर्य। वीतरागता तात्पर्य। सब कहने में वीतरागता तात्पर्य अर्थात् पर की उपेक्षा करके त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा करना, यह तात्पर्य है। समझ में आया? सब शास्त्र में से चाहे जो पढ़ो। यह भाषा आयी तो इसका तात्पर्य क्या? कर्म उपार्जन किये और कर्म ने हैरान किया, इसका तात्पर्य क्या? कि वीतरागता। स्वसन्मुख झुककर, वीतरागता प्रगट कर, यह इसका तात्पर्य है। यह अभेदरत्नत्रय कहा न?

अभेदरत्नत्रय में जा, तुझे वीतरागता होगी। और वह अभेदरत्नत्रय स्व के आश्रय से होता है। पर्याय से और पर के आश्रय से नहीं होता। यह सब शास्त्र का तात्पर्य है। पंचास्तिकाय १७२ गाथा। शास्त्र तात्पर्य और सूत्र तात्पर्य। अर्थात् कि एक-एक गाथा का तात्पर्य तो प्रत्येक गाथा में कहा। पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता, ऐसा कहा। १७२ गाथा। चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। अर्थात् पर की उपेक्षा करके भगवान त्रिलोकनाथ का आश्रय और अपेक्षा करना, वह वीतरागता उत्पन्न हो, यह तात्पर्य है। सम्यग्दर्शन तात्पर्य का अर्थ, कि पूरे कथन में चाहे जो शैली हो, उसका तात्पर्य स्वद्रव्य का आश्रय करके वीतराग समकित प्रगट कर। समकित पर्याय वीतरागी है। वह वीतरागी तात्पर्य है। स्व का आश्रय करना, यह सर्व का तात्पर्य है। समझ में आया ?

यहाँ यह अभिप्राय है कि संसार के कारण जो कर्म और उनके कारण मिथ्यात्व रागादि परिणाम हैं,.... देखो! दोनों ले लिये। वे सब हेय हैं,.... मिथ्यात्व भी हेय और उससे कर्म हुए, वे भी हेय। अभेदरत्नत्रयरूप निश्चयमोक्षमार्ग है, वह उपादेय है। देखो! यह वीतराग तात्पर्य आया। आहाहा! अभेदरत्नत्रयरूप भगवान निश्चयमोक्षमार्ग। पूर्णानन्द के नाथ त्रिलोकीनाथ, उसकी दृष्टि, उसका स्वसंवेदनज्ञान और उसमें रमणता, यह अभेदरत्नत्रय (हो), वह तात्पर्य है। अभेदरत्नत्रय कहो या वीतरागता कहो। अभेदरत्नत्रय कहो या वीतरागता कहो। १७२ (गाथा पंचास्तिकाय) में कहा, वीतरागता तात्पर्य, वह यह तात्पर्य आया। चारों ओर से सिद्धान्त देखो। दिगम्बर सिद्धान्त अर्थात् ओहोहो! उसकी शैली, उसकी सत्य को खड़ा कर देता है। परन्तु लोगों को उसकी दरकार नहीं। समझ में आया ? इतना कहा, देखो!

ऐसा कहा कि मिथ्यात्व से कर्म उपार्जन होता है। कर्म से भटकता है, इतना कहा। परन्तु इसका तात्पर्य क्या? कि तू अभेदरत्नत्रय प्रगट कर, यह तात्पर्य है। भगवान! मिथ्यात्व भी छोड़ दे और पर की क्रिया जो जड़ की होती है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! वस्तु भगवान पूर्ण आनन्द त्रिलोक प्रभु त्रिलोकनाथ परमात्मा। परमात्मस्वरूप है न? तो परमात्मस्वरूप तू है। द्रव्यस्वभाव, वह परमात्मस्वरूप ही है। उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, उस सर्व कथन का तात्पर्य यह है। समझ में आया ? यह उपादेय है। लो! यह ७८ गाथा हुई। ७९ कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



...प्रकाशक...

श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट